प्रकाशकीय

बहुत-सी कृतियां ऐसी होती हैं, जिनके बार-बार पढ़ने अथवा सुनने में बड़ा आनंद आता है। रामायण उन्हींमें से एक है। वह वाल्मीकि की हो या तुलसी की या कंबन की, राम-कथा को पढ़कर बड़ी सुखद अनुभूति होती है।

हिंदी के पाठक वाल्मीकि तथा तुलसीदास की रामायणों से सुपरिचित हैं, लेकिन दक्षिण भारत में अनेक रामायणों की रचना हुई है। उनमें तमिल के महान कवि भगवद्भक्त कंबन की रामायण से उत्तर भारत के पाठक भी कुछ-कुछ परिचित हैं। उसका कथानक लगभग वही है, जो वाल्मीकि अथवा तुलसीदास की रामायणों का है, किंतु वर्णनों में यत्र-तत्र कुछ अंतर हो गया है। कहीं-कहीं घटनाओं की व्याख्या में कंबन ने अपनी विशेषता दिखाई है।

हमें हर्ष है कि श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य जैसे समर्थ लेखक के द्वारा वाल्मीकि-रामायण का यह सार पाठकों को सुलभ हो रहा है। राजाजी की लेखनी से पाठक भली भांति परिचित हैं। 'महाभारत-कथा' तथा अन्य कृतियों द्वारा उनकी प्रभावशाली तथा सजीव शैली का रसास्वादन पाठक पहले से ही करते आ रहे हैं। यह भी किसीसे छिपा नहीं है कि राजाजी ने धर्मग्रंथों का बड़ी बारीकी से अध्ययन किया है।

यह पुस्तक उन्होंने रामायण के तीनों रूपों अर्थात् वाल्मीकि, तुलसी तथा कंबन के अध्ययन के पश्चात् प्रस्तुत की है। तभी तो अनेक घटना-स्थलों पर यह बता गये हैं कि तुलसीदास अथवा कंबन ने उसका वर्णन किस प्रकार किया है और उसकी क्या विशेषता है। पाठकों के लिए यह तुलनात्मक विवेचन बड़े काम का है। आशा है कि यह विविध घटनाओं को नये दृष्टिकोण से देखने तथा समझने में सहायक होगा।

पुस्तक का अनुवाद मूल तमिल से श्रीमती लक्ष्मी देवदास गांधी ने किया

है। विद्वान लेखक की सुपुत्री होने के कारण इस कृति से उनकी आत्मीयता होना स्वाभाविक है, लेकिन इतनी बडी पुस्तक का इतना सुदर अनुवाद बिना उसके रस में लीन हुए सभव नहीं हो सकता था। लक्ष्मीबहन की मातृ-भाषा तमिल है, पर हिंदी पर उनका विशेष अधिकार है। इस पुस्तक के अनुवाद में उन्होने जो असाधारण परिश्रम किया है, उसके लिए हम उनके आभारी हैं।

इस प्रसग में हमें श्री देवदासजी गाधी का स्मरण आता है। इस पुस्तक का हिंदी में अनुवाद करने के लिए उन्होने ही लक्ष्मीबहन को राजी किया था। उनके जीवन-काल में यह कार्य प्रारभ भी हो गया था, लेकिन उनका अकस्मात देहात हो गया और वह इसे छपता हुआ नहीं देख पाये। उनके निधन के उपरात लक्ष्मीबहन अनुवाद में ऐसी जुटी कि लगभग दो महीने में उन्होने सारी पुस्तक का अनुवाद कर डाला। निश्चय ही इसके पीछे स्व. देवदासभाई की प्रेरणा रही होगी।

हमें विश्वास है कि राजाजी की अन्य कृतियो की भाति इस रचना का भी सर्वत्र स्वागत और अभिनदन होगा।

—मंत्री

प्रस्तावना

परमात्मा की लीला को कौन समझ सकता है? हमारे जीवन की सभी घटनाएं प्रभु की लीला का ही एक लघु अंश है।

महर्षि वाल्मीकि की राम-कथा को सरल बोलचाल की भाषा में लोगों तक पहुंचाने की मेरी इच्छा हुई। विद्वान् न होने पर भी वैसा करने की धृष्टता कर रहा हूं। कंबन ने अपने काव्य के प्रारंभ में विनय की जो बात कही है, उसीको मैं अपने लिए भी यहां दोहराना चाहता हूं। वाल्मीकि-रामायण को तमिल भाषा में लिखने का मेरा लालच वैसा ही है, जैसे कोई बिल्ली विशाल सागर को अपनी जीभ से चाट जाने की तृष्णा करे। फिर भी मुझे विश्वास है कि जो श्रद्धा-भक्ति के साथ रामायण-कथा पढ़ना चाहते हैं, उन सबकी सहायता, अनायास ही समुद्र लांघनेवाले मारुति करेंगे।

बड़ों से मेरी विनती है कि वे मेरी त्रुटियों को क्षमा करें और मुझे प्रोत्साहित करें, तभी मेरी सेवा लाभप्रद हो सकती है।

समस्त जीव-जन्तु तथा पेड़-पौधे दो प्रकार के होते हैं। कुछके हड्डियां बाहर होती हैं और मांस भीतर। केला, नारियल, ईख आदि इस श्रेणी में आते हैं। कुछ पानी के जन्तु भी इसी वर्ग के होते हैं। इनके विपरीत कुछ पौधों और हमारे जैसे प्राणियों का मांस बाहर रहता है और हाड़ अंदर। इस प्रकार आवश्यक प्राण-तत्वों को हम कहीं बाहर पाते हैं, कहीं अंदर।

इसी प्रकार ग्रंथों को भी हम दो वर्गों में बांट सकते हैं। कुछ ग्रंथों का प्राण उनके भीतर अर्थात् भावों में होता है, कुछका जीवन उनके बाह्य रूप में। व्याकरण, वैद्यक, गणित, इतिहास, भूगोल आदि लौकिक शास्त्र के सब ग्रन्थ पहली श्रेणी के होते हैं। सार का महत्व रखते हैं। उनके रूपान्तर से विशेष हानि नहीं हो सकती। परन्तु काव्यों की बात दूसरी होती है। उनका प्राण

है। विद्वान लेखक की सुपुत्री होने के कारण इस कृति से उनकी आत्मीयता होना स्वाभाविक है, लेकिन इतनी बडी पुस्तक का इतना सुदर अनुवाद बिना उसके रस में लीन हुए सभव नही हो सकता था। लक्ष्मीबहन की मातृ-भाषा तमिल है, पर हिंदी पर उनका विशेष अधिकार है। इस पुस्तक के अनुवाद में उन्होने जो असाधारण परिश्रम किया है, उसके लिए हम उनके आभारी हैं।

इस प्रसग में हमें श्री देवदासजी गाधी का स्मरण आता है। इस पुस्तक का हिंदी में अनुवाद करने के लिए उन्होंने ही लक्ष्मीबहन को राजी किया था। उनके जीवन-काल में यह कार्य प्रारभ भी हो गया था, लेकिन उनका अकस्मात देहात हो गया और वह इसे छपता हुआ नहीं देख पाये। उनके निधन के उपरात लक्ष्मीबहन अनुवाद में ऐसी जुटीं कि लगभग दो महीने में उन्होने सारी पुस्तक का अनुवाद कर डाला। निश्चय ही इसके पीछे स्व देवदासभाई की प्रेरणा रही होगी।

हमें विश्वास है कि राजाजी की अन्य कृतियो की भाति इस रचना का भी सर्वत्र स्वागत और अभिनदन होगा।

—मंत्री

प्रस्तावना

परमात्मा की लीला को कौन समझ सकता है ? हमारे जीवन की सभी घटनाए प्रभु की लीला का ही एक लघु अश हैं।

महर्षि वाल्मीकि की राम-कथा को सरल बोलचाल की भाषा में लोगो तक पहुचाने की मेरी इच्छा हुई। विद्वान् न होने पर भी वैसा करने की धृष्टता कर रहा हू। कबन ने अपने काव्य के प्रारभ में विनय की जो बात कही है, उसीको मैं अपने लिए भी यहा दोहराना चाहता हू। वाल्मीकि-रामायण को तमिल भाषा में लिखने का मेरा लालच वैसा ही है, जैसे कोई बिल्ली विशाल सागर को अपनी जीभ से चाट जाने की तृष्णा करे। फिर भी मुझे विश्वास है कि जो श्रद्धा-भक्ति के साथ रामायण-कथा पढना चाहते हैं, उन सबकी सहायता, अनायास ही समुद्र लाघनेवाले मारुति करेंगे।

बडो से मेरी विनती है कि वे मेरी त्रुटियो को क्षमा करें और मुझे प्रोत्साहित करें, तभी मेरी सेवा लाभप्रद हो सकती है।

समस्त जीव-जतु तथा पेड-पौधे दो प्रकार के होते है। कुछके हड्डिया बाहर होती हैं और मास भीतर। केला, नारियल, ईख आदि इस श्रेणी में आते है। कुछ पानी के जतु भी इसी वर्ग के होते हैं। इनके विपरीत कुछ पौधो और हमारे जैसे प्राणियो का मास बाहर रहता है और हाड अदर। इस प्रकार आवश्यक प्राण-तत्वों को हम कही बाहर पाते है, कही अदर।

इसी प्रकार ग्रथो को भी हम दो वर्गों में बाट सकते हैं। कुछ ग्रथो का प्राण उनके भीतर अर्थात् भावो में होता है, कुछका जीवन उनके बाह्य रूप में। रसायन, वैद्यक, गणित, इतिहास, भूगोल आदि भौतिक शास्त्र के ग्रथ प्रथम श्रेणी के होते हैं। भाव का महत्व रखते हैं। उनके रूपातर से विशेष हानि नही हो सकती। परतु काव्यो की बात दूसरी होती है। उनका प्राण

अथवा महत्व उनके बाह्य रूप पर निर्भर रहता है। इसलिए पद्य का गद्य में विश्लेषण करना खतरनाक है।

फिर भी कुछ ऐसे ग्रथ है, जो दोनो कोटियो में रहकर लाभ पहुचाते हैं। जैसे तमिल में एक कहावत है कि 'हाथी मृत हो या जीवित, दोनों अवस्थाओ में अपना मूल्य नही खोता'। वाल्मीकि-रामायण भी इसी प्रकार का ग्रथ है। उसे दूसरी भाषाओ में, गद्य में कहे या पद्य में, वह अपना मूल्य नही खोता।

पौराणिको का मत है कि वाल्मीकि ने रामायण उन्ही दिनो लिखी जबकि श्रीरामचद्र पृथ्वी पर अवतरित होकर मानव-जीवन व्यतीत कर रहे थे, किंतु सासारिक अनुभवो के आधार पर सोचने से ऐसा लगता है कि सीता और राम की कहानी महर्षि वाल्मीकि के बहुत समय पूर्व से भी लोगो में प्रचलित थी, लिखी भले ही न गई हो। ऐसा प्रतीत होता है कि लोगो में परपरा से प्रचलित कथा को कवि वाल्मीकि ने काव्य-बद्ध किया। इसी कारण रामायण-कथा में कुछ उलझनें, जैसे वाली का वध तथा सीताजी को वन में छोड आना जैसी न्याय-विरुद्ध बातें घुस गई हैं।

महर्षि वाल्मीकि ने अपने काव्य में राम को ईश्वर का अवतार नहीं माना। हा, स्थान-स्थान पर वाल्मीकि की रामायण में हम रामचद्र को एक यशस्वी राजकुमार, अलौकिक और असाधारण गुणो से विभूपित मनुष्य के रूप में ही देखते हैं। ईश्वर के स्थान में अपनेको मानकर राम ने कोई काम नही किया।

वाल्मीकि के समय में ही लोग राम को भगवान मानने लग गये थे। वाल्मीकि के सैकडो वर्ष पश्चात हिंदी में सत तुलसीदासजी ने और तमिल में कबन ने रामचरित गाया। तबतक तो लोगो के दिलो में यह पक्की धारणा बन गई थी कि राम भगवान नारायण के अवतार थे। लोगो ने राम में और कृष्ण में, या भगवान विष्णु में भिन्नता देखना ही छोड दिया था। भक्ति-मार्ग का उदय हुआ। मदिर और पूजा-पद्धति भी स्थापित हुई।

ऐसे समय में तुलसीदास अथवा कबन रामचद्र को केवल एक वीर

मानव समझकर काव्य-रचना कैसे करते ? दोनो केवल कवि ही नही थे, वे पूर्णतया भगवद्‌भक्त भी थे। वे आजकल के उपन्यासकार अथवा अन्वेषक नही थे। श्रीराम को केवल मनुष्यत्त्व की सीमा में बाध लेना भक्त तुलसीदास अथवा कबन के लिए अशक्य बात थी। इसी कारण अवतार-महिमा को इन दोनो ने सुदर रूप में गद्‌गद् कठ से कई स्थानो पर गाया है।

महर्षि वाल्मीकि की रामायण और कबन-रचित रामायण में जो भिन्नताए हैं, वे इस प्रकार हैं वाल्मीकि-रामायण के छद समान गति से चलनेवाले है, कबन के काव्य-छदो को हम नृत्य के लिए उपयुक्त कह सकते हैं, वाल्मीकि की शैली में गाभीर्य है, उसे अतुकात कह सकते है, कबन की शैली में जगह-जगह नूतनता है, वह ध्वनि-माधुरी-सम्पन्न है, आभूषणो से अलकृत नर्तकी के नृत्य के समान वह मन को लुभा लेती है, साथ-साथ भक्ति-भाव की प्रेरणा भी देती जाती है, किंतु कबन की रामायण तमिल लोगो के ही समझ में आ सकती है। कबन की रचना को इतर भाषा में अनूदित करना अथवा तमिल में ही गद्य-रूप में परिणत करना लाभप्रद नही हो सकता। कविताओ को सरल भाषा में समझाकर फिर मूल कविताओ को गाकर बतायें तो विशेष लाभ हो सकता है। किंतु यह काम तो केवल श्री टी के चिदम्बरनाथ मुदलियार ही कर सकते थे। अब तो वह रहे नही।

सियाराम, हनुमान और भरत को छोडकर हमारी और कोई गति नही। हमारे मन की शाति, हमारा सब-कुछ उन्हीके ध्यान में निहित है। उनकी पुण्य-कथा हमारे पुरखो की धरोहर है। इसके आधार पर हम आज जीवित हैं।

जबतक हमारी भारत भूमि में गगा और कावेरी प्रवहमान हैं, तबतक सीता-राम की कथा भी आबाल, स्त्री-पुरुष, सबमें प्रचलित रहेगी, माता की तरह हमारी जनता की रक्षा करती रहेगी।

मित्रो की मान्यता है कि मैंने देश की अनेक सेवाए की है, लेकिन मेरा मत है कि भारतीय इतिहास के महान् एव घटनापूर्ण काल में अपने व्यस्त जीवन की साध्यवेला में इन दो ग्रथो ('व्यासर् विरुन्दु'-महाभारत और

अथवा महत्व उनके बाह्य रूप पर निर्भर रहता है। इसलिए पद्य का गद्य में विश्लेषण करना खतरनाक है।

फिर भी कुछ ऐसे ग्रथ है, जो दोनो कोटियो में रहकर लाभ पहुचाते है। जैसे तमिल में एक कहावत है कि 'हाथी मृत हो या जीवित, दोनों अवस्थाओ में अपना मूल्य नही खोता'। वाल्मीकि-रामायण भी इसी प्रकार का ग्रथ है। उसे दूसरी भाषाओ में, गद्य में कहें या पद्य में, वह अपना मूल्य नही खोता।

पौराणिकों का मत है कि वाल्मीकि ने रामायण उन्ही दिनो लिखी जबकि श्रीरामचद्र पृथ्वी पर अवतरित होकर मानव-जीवन व्यतीत कर रहे थे, किंतु सासारिक अनुभवो के आधार पर सोचने से ऐसा लगता है कि सीता और राम की कहानी महर्षि वाल्मीकि के बहुत समय पूर्व से भी लोगो में प्रचलित थी, लिखी भले ही न गई हो। ऐसा प्रतीत होता है कि लोगो में परपरा से प्रचलित कथा को कवि वाल्मीकि ने काव्य-बद्ध किया। इसी कारण रामायण-कथा में कुछ उलझनें, जैसे वाली का वध तथा सीताजी को वन में छोड आना जैसी न्याय-विरुद्ध बातें घुस गई है।

महर्षि वाल्मीकि ने अपने काव्य में राम को ईश्वर का अवतार नही माना। हा, स्थान-स्थान पर वाल्मीकि की रामायण में हम रामचद्र को एक यशस्वी राजकुमार, अलौकिक और असाधारण गुणो से विभूषित मनुष्य के रूप में ही देखते हैं। ईश्वर के स्थान में अपनेको मानकर राम ने कोई काम नही किया।

वाल्मीकि के समय में ही लोग राम को भगवान मानने लग गये थे। वाल्मीकि के सैकडो वर्ष पश्चात हिंदी में सत तुलसीदासजी ने और तमिल में कबन ने रामचरित गाया। तबतक तो लोगो के दिलो में यह पक्की धारणा बन गई थी कि राम भगवान नारायण के अवतार थे। लोगो ने राम में और कृष्ण में, या भगवान विष्णु में भिन्नता देखना ही छोड दिया था। भक्ति-मार्ग का उदय हुआ। मदिर और पूजा-पद्धति भी स्थापित हुई।

ऐसे समय में तुलसीदास अथवा कबन रामचद्र को केवल एक वीर

मानव समझकर काव्य-रचना कैसे करते ? दोनो केवल कवि ही नही थे, वे पूर्णतया भगवद्भक्त भी थे। वे आजकल के उपन्यासकार अथवा अन्वेषक नही थे। श्रीराम को केवल मनुष्यत्व की सीमा में बाध लेना भक्त तुलसीदास अथवा कबन के लिए अशक्य बात थी। इसी कारण अवतार-महिमा को इन दोनो ने सुदर रूप में गद्गद् कठ से कई स्थानो पर गाया है।

महर्षि वाल्मीकि की रामायण और कवन-रचित रामायण में जो भिन्नताए हैं, वे इस प्रकार हैं वाल्मीकि-रामायण के छद समान गति से चलनेवाले हैं, कबन के काव्य-छदो को हम नृत्य के लिए उपयुक्त कह सकते हैं, वाल्मीकि की शैली में गाभीर्य है, उसे अतुकात कह सकते है, कवन की शैली में जगह-जगह नूतनता है, वह ध्वनि-माधुरी-सम्पन्न है, आभूपणो से अलकृत नर्तकी के नृत्य के समान वह मन को लुभा लेती है, साथ-साथ भक्ति-भाव की प्रेरणा भी देती जाती है, किंतु कवन की रामायण तमिल लोगो के ही समझ में आ सकती है। कवन की रचना को इतर भापा में अनूदित करना अथवा तमिल में ही गद्य-रूप में परिणत करना लाभप्रद नही हो सकता। कविताओ को सरल भापा में समझाकर फिर मूल कविताओ को गाकर बतायें तो विशेष लाभ हो सकता है। किंतु यह काम तो केवल श्री टी के चिदम्बरनाथ मुदलियार ही कर सकते थे। अब तो वह रहे नही।

सियाराम, हनुमान और भरत को छोडकर हमारी और कोई गति नही। हमारे मन की शाति, हमारा सब-कुछ उन्हीके ध्यान में निहित है। उनकी पुण्य-कथा हमारे पुरखो की धरोहर है। इसके आधार पर हम आज जीवित हैं।

जबतक हमारी भारत भूमि में गगा और कावेरी प्रवहमान हैं, तबतक सीता-राम की कथा भी आबाल, स्त्री-पुरुष, सबमें प्रचलित रहेगी, माता की तरह हमारी जनता की रक्षा करती रहेगी।

मित्रो की मान्यता है कि मैंने देश की अनेक सेवाए की हैं, लेकिन मेरा मत है कि भारतीय इतिहास के महान् एव घटनापूर्ण काल में अपने व्यस्त जीवन की साध्यवेला में इन दो ग्रथो ('व्यासर्विरुन्दु'-महाभारत और

'चक्रवर्त्ति तिरुमगन्'-रामायण) की रचना, जिनमें मैने महाभारत तथा रामायण की कहानी कही है, मेरी राय में, भारतवासियो के प्रति की गई मेरी सर्वोत्तम सेवा है और इसी कार्य से मुझे मन की शाति और तृप्ति प्राप्त हुई है। जो हो, मुझे जिस परम आनद की अनुभूति हुई है, वह इनमें मूर्त्तमान है, कारण कि इन दो ग्रथो में मैने अपने महान सतो को हमारे प्रियजनो, स्त्री और पुरुषो से, अपनी ही भापा में एक बार फिर वात करने—कुती, कौशल्या, द्रौपदी और सीता पर पडी विपदाओ के द्वारा लोगो के मस्तिष्को को परिष्कृत करने—में सहायता की है। वर्त्तमान समय की वास्तविक आवश्यकता यह है कि हमारे और हमारी भूमि के सतो के वीच ऐक्य स्थापित हो, जिससे हमारे भविष्य का निर्माण मजबूत चट्टान पर हो सके, वालू पर नही।

हम सीता माता का ध्यान करें। दोष हम सभीमें विद्यमान हैं। मां सीता की शरण के अतिरिक्त हमारी दूसरी कोई गति ही नही। उन्होने स्वय कहा है, भूलें किससे नही होती ? दयामय देवी हमारी अवश्य रक्षा करेंगी। दोषो और कमियो से भरपूर अपनी इस पुस्तक को देवी के चरणो में समर्पित करके मैं नमस्कार करता हू। मेरी सेवा से लोगो को लाभ मिले !

— चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

विषय-सूची

स०	विषय	पृष्ठ	स०	विषय	पृष्ठ
१	छद-दर्शन	१	२४	विदाई	१००
२	सूर्यवशियो की अयोध्या	४	२५	वन-गमन	१०५
३	विश्वामित्र-वसिष्ठ-सघर्ष	८	२६	निषादराज से भेंट	११२
			२७	चित्रकूट में आगमन	११८
४	विश्वामित्र की पराजय	१२	२८	जननी की व्यथा	१२१
५	त्रिशकु की कथा	१४	२९	एक पुरानी घटना	१२४
६	विश्वामित्र की सिद्धि	१९	३०	दशरथ का प्राण-त्याग	१२८
७	दशरथ से याचना	२३	३१	भरत को सदेश	१३१
८	राम का पराक्रम	२७	३२	अनिष्ट का आभास	१३५
९	दानवो का दलन	३१	३३	कैकेई का कुचक्र विफल	१३९
१०	भूमि-सुता सीता	३५	३४	भरत का निश्चय	१४३
११	सगर और उनके पुत्र	३७	३५	गुह का सदेह	१४९
१२	गगावतरण	४०	३६	भरद्वाज-आश्रम में भरत	१५४
१३	अहल्या का उद्धार	४४	३७	राम की पर्णकुटी	१५८
१४	राम-विवाह	४९	३८	भरत-मिलाप	१६२
१५	परशुराम का गर्व-भजन	५३	३९	भरत का अयोध्या लौटना	१६६
१६	दशरथ की आकाक्षा	५७			
१७	उलटा पासा	६४	४०	विराध-वध	१७४
१८	कुबडी की कुमत्रणा	७०	४१	दण्डकारण्य में दस वर्ष	१८१
१९	कैकेई की करतूत	७३	४२	जटायु से भेंट	१८७
२०	दशरथ की व्यथा	७७	४३	शूर्पणखा की दुर्गति	१९०
२१	मार्मिक दृश्य	८३	४४	खर का मरण	१९७
२२	लक्ष्मण का क्रोध	९०	४५	रावण की बुद्धि भ्रष्ट	२०४
२३	सीता का निश्चय	९६	४६	माया मृग	२१२

४७	सीता-हरण	२१९	६७	लका-दहन	३४२
४८	सीता का बदीवास	२२८	६८	वानरो का उल्लास	३४९
४९	शोक-सागर में निमग्न राम	२३५	६९	हनुमान ने सब हाल सुनाया	३५३
५०	पितृ-तुल्य जटायु की अत्येष्टि	२४१	७०	लका की ओर कूच	३५६
			७१	लका में मत्रणाए	३६०
५१	सुग्रीव से मित्रता	२४७	७२	रावण की अशाति	३६५
५२	सुग्रीव की व्यथा और राम की परीक्षा	२५७	७३	विभीषण का लका त्याग	३६९
५३	बालि का वध	२६५	७४	वानरो की आशकाए	३७३
५४	तारा का विलाप	२७०	७५	शरणागत की रक्षा	३७८
५५	क्रोध का शमन	२७७	७६	सेतु-बध	३८३
५६	सीता की खोज आरभ	२८३	७७	लका पर चढ़ाई और रावण को सदेश	३८७
५७	निराशा और निश्चय	२८८			
५८	हनुमान का समुद्र-लघन	२९५	७८	जानकी की प्रसन्नता	३९२
५९	लका में प्रवेश	२९९	७९	नाग-पाश से चिता और मुक्ति	३९७
६०	आखिर जानकी मिल गई	३०५	८०	रावण लज्जित हुआ	४०३
६१	रावण की याचना सीता का उत्तर	३०८	८१	कुभकर्ण को जगाया गया	४०९
६२	'बुद्धिमता वरिष्ठ'	३१४	८२	चोट पर चोट	४१५
६३	सीता को आश्वासन	३१९	८३	इद्रजित् का अत	४१९
६४	हनुमान की बिदाई	३२६	८४	रावण-वध	४२४
६५	हनुमान का पराक्रम	३३२	८५	शुभ-समाप्ति	४२९
६६	हनुमान की चालाकी	३३८	८६	उपसहार	४३५

दशरथ-नंदन श्रीराम

दशरथ-नंदन श्रीराम

: १ :

छंद-दर्शन

एक दिन प्रात काल नारद मुनि वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में पहुचे। वाल्मीकि ने नारदजी को प्रणाम किया और यथोचित आदर-सत्कार के वाद, हाथ जोडकर प्रश्न किया, "हे मुनिवर, आप सर्वज्ञ है। कृपया मुझे यह वताइये कि इस ससार के वीर पुरुषो में ऐसा कौन है, जो विद्या में, ज्ञान में और सद्गुणो में भी सर्वश्रेष्ठ हो ? ऐसे पुरुष का नाम मैं जानना चाहता हू। मुझे कृतार्थ करे।"

मुनि नारद अपनी ज्ञान दृष्टि से समझ गये कि वाल्मीकि यह प्रश्न क्यो कर रहे है। उन्होने उत्तर दिया, "इस ससार के वीर पुरुषो में सर्व-सद्गुणसपन्न पुरुष सूर्यवशी राम ही है, जो अयोध्या में राज कर रहे है। उन्हीको मै पुरुषश्रेष्ठ मानता हू।" इतना कहकर नारदजी ने वाल्मीकि को राम की सपूर्ण कथा सुनाई। ऋषि अतीव प्रसन्न हुए।

नारदजी के चले जाने पर भी वह राम की अद्भुत कथा का स्मरण करते रहे। जव स्नान का समय हुआ तो वह नदी-तट पर गये। स्नान-योग्य स्थान ढूढते हुए वह नदी-तट पर टहलने लगे। टहलते-टहलते उन्होने देखा कि क्रौंच पक्षी की एक जोडी पेड की डाल पर मस्त होकर किलोल कर रही है। ऋषि के देखते-ही-देखते व्याध का वाण चला और उसमें से नर-पक्षी एकाएक आहत होकर पृथ्वी पर गिर पडा और तडपकर मर गया। उसकी प्रेयसी अपने प्रियतम की यह करुण दशा देख, वियोग से दुखी हो विलाप करने लगी।

दयार्द्र नयनो से वाल्मीकि मुनि ने यह दु खद घटना देखी। उन्हे व्याध पर बडा क्रोध आया। उनके मुह से अपने-आप ये शाप-वचन निकल पडे—

मा निषाद प्रतिष्ठा त्वम्,
अगम. शाश्वती समाः।
यत् क्रौन्चमिथुनादेक
अवधो काममोहितम्॥

"हे निषाद, तुमने यह क्या कर डाला ? केलि-सलग्न जोडी में से एक को मार गिराया ! इस पाप-कृत्य के फलस्वरूप तुम्हे अनेक वर्ष जीने पर भी कही रहने को स्थान न मिलेगा और भटकते रहोगे।"

कहने को तो वह इन शाप-वचनो को कह गये, लेकिन दूसरे ही क्षण ऋषि को अपने वचनो पर गहरा पश्चात्ताप होने लगा। वह सोचने लगे कि शिकारी को शाप देने का उन्हें क्या अधिकार था ? क्रोध को मन में क्यो जगह दी ? वह बहुत ही व्याकुल हुए।

शाप के ये वचन ऋषि के कानो में गूजते रहे। अश्रुतछद और स्वरबद्ध श्लोकरूप अपने वचनो पर उनको स्वय विस्मय हुआ ! पक्षियो के प्रति अनुकम्पा और शोक से उत्पन्न वाक्यो के ढग से उनको आश्चर्य होने लगा। उन्होने सोचा कि यह सब परमात्मा की कोई लीला है, जिसे मै समझ नही पा रहा हू। सोचते-सोचते वह ध्यानावस्थित होगये।

तभी स्वयभू ब्रह्मा प्रकट हुए और कहने लगे, "मुनिवर, आप व्याकुल न हों। यह सब घटना इसीलिए हुई है कि आप श्री रामचद्र की कथा लिखना प्रारभ करें। शोक-विह्वल होकर आपके मुह से जो छद निसृत हुआ है, उसीको उदाहरण-रूप सामने रखकर आप रामचरित का श्लोको में गायन करें। इससे जगत का कल्याण होगा। इस महान कार्य को पूरा करने की शक्ति मै आपको देता हू।" इतना कहकर चतुरानन वहा से लोप हो गये।

श्लोक के रूप को याद करने के लिए वाल्मीकि और उनके शिष्यगण बार-बार गाने लगे—

"मा निषाद प्रतिष्ठा त्वम्,
अगमः शाश्वतीः समाः ।
यत् क्रौन्चमिथुनादेक
अवधीः काममोहितम् ।।"

अनतर वाल्मीकि ने सारी राम-कथा को उसी रूप में गाकर अपने शिष्यो से भी गवाया। इस प्रकार पुण्य-ग्रथ रामायण का आरभ हुआ।

भगवान् नारायण ने जगत् के उद्धार के लिए अपनी देवीसहित पृथ्वी पर मनुष्य का जन्म लिया। उन्होने सामान्य मनुष्य की तरह ही ससार के सुख-दुखो का अनुभव किया। लोगो को धर्म का पालन करके दिखाया। अनेक कष्ट झेलकर ससार में धर्म की स्थापना की और लोप होगये। इस पुण्य कथा को महर्षि वाल्मीकि ने अनुपम मधुर ढग से गाकर सासारिको के लिए प्रस्तुत किया है। स्वय ब्रह्म का यह कथन कभी असत्य सिद्ध नही हो सकता कि "जबतक ससार में नदियां और पर्वत विद्यमान रहेंगे तबतक लोगो में रामायण-कथा प्रचलित रहेगी और उसके कारण लोग पापो से मुक्त होगे।"

: २ :

सूर्यवंशियों की अयोध्या

गगा के उत्तर में सरयू नदी से सिंचित कोशल नामका धन-धान्यपूर्ण प्रदेश था। उसकी राजधानी अयोध्या थी। उस अति सुदर, सुविख्यात और विशाल नगरी का निर्माण प्रसिद्ध सूर्यवशी राजा मनु ने किया था। ऋषि वाल्मीकि ने अयोध्या का ऐसा वर्णन किया है, जिसे पढने से प्रतीत होता है कि अयोध्या किसी आधुनिक राजधानी से किसी प्रकार कम न थी। उसके पढने से हमें यह भी पता चलता है कि प्राचीन काल में भारत के नगर कितनी उच्चकोटि के होते थे। उस वर्णन से नागरिको की सस्कृति और सभ्यता का भी भास होता है।

उन दिनो कोशल के राजा दशरथ थे। वह अपनी राजधानी अयोध्या में वास करते थे। स्वर्ग के देव लोग भी महान पराक्रमी राजा दशरथ को युद्ध में सहायता के लिए बुलाया करते थे। तीनो लोको में दशरथ का नाम प्रसिद्ध था। राजा दशरथ की तुलना इद्र और कुबेर के साथ की जाती थी। कोशल की सभ्य प्रजा सदा प्रसन्न रहती थी। असख्य वीर तथा योद्धा नगर की रक्षा के लिए नियुक्त रहते थे। दशरथ के कौशलपूर्ण प्रबध से शत्रु लोग अयोध्या के पास तक भी नही पहुच पाते थे। दुर्ग की प्राचीर को घेरती हुई नहरो और नाना प्रकार के शत्रुघातक यत्रो से अयोध्या सर्वदा अजेय थी। उसका 'अयोध्या' नाम यथार्थ था।

यश और ऐश्वर्य में देवेंद्र-तुल्य राजा दशरथ के मत्री भी बडे योग्य थे। आठ मत्री थे। सब-के-सब अच्छे सलाहकार, राजाज्ञा का तुरत पालन करनेवाले और राजा की सेवा में तत्पर। इन सचिवो के अतिरिक्त धर्मोपदेश देने तथा यज्ञ आदि विधियो को शास्त्रोक्त ढग से कराने के लिए वसिष्ठ, वामदेव आदि राजगुरु तथा अन्य उत्तम ब्राह्मण राजा के साथ रहा करते थे।

दशरथ के राज्य में कभी वलपूर्वक कर वसूल नही किये जाते थे। जव कभी अपराधियो को दड दिया जाता तो अपराधी की परिस्थिति और शक्ति का भी विचार किया जाता था।

समर्थ सलाहकार और कर्मचारियो के वीच राजा दशरथ सूर्य की तरह प्रकाशमान थे।

दशरथ को राज करते हुए कई वर्ष वीत गये, किंतु उनकी एक मनोकामना पूरी नही हुई थी। अवतक उन्हें पुत्रलाभ नही हुआ था।

एक वार वसत ऋतु में चितातुर राजा के मन में यह वात आई कि 'पुत्रकामेष्टि' और 'अश्वमेध यज्ञ' किया जाय। उन्होने गुरुजनो से राय ली। गुरुजनो ने समर्थन किया। सवने निर्णय किया कि ऋषि ऋष्यश्रृग को वुलाया जाय और उनकी देखरेख में यज्ञ किया जाय।

यज्ञ की तैयारिया होने लगी। राजाओ को निमत्रण भेजे जाने लगे और यज्ञमडप का निर्माण आदि कार्य तेजी से शुरू होगये।

उन दिनो यज्ञ करना कोई मामूली वात न थी। सवसे पहले वेदी का निर्माण ध्यानपूर्वक किया जाता था। इस कार्य के लिए निपुण लोग ही नियुक्त किये जाते थे। उनके नीचे कई कर्मचारी होते थे। विशेष-विशेष प्रकार के वर्तन वनवाने पडते थे। वढई, शिल्पी, कुए खोदनेवाले, चित्रकार, गायक, विविध वाद्यो को वजानेवाले और नर्तक एकत्र करने पडते थे। हजारो की सख्या में आनेवाले अतिथियो को ठहराने के लिए एक नये नगर का ही निर्माण किया जाता था, जहा सवके लिए भोजन और मनोरजन की भी व्यवस्था होती थी। सभीको वस्त्र, धन, गौ आदि का दान देना भी आवश्यक माना जाता था।

ऐसे अवसर पर उन दिनो उसी प्रकार के प्रवध होते थे, जैसे आजकल के वडे-वडे सम्मेलनो के लिए हुआ करते है।

ये सव कार्य सम्यक् रूप में हो जाने के उपरात चारो दिशाओ में भ्रमण करके विजयी होकर लौटने के लिए यज्ञ के अश्व को वडी सेना के साथ भेजा गया। एक वर्ष वीत जाने के वाद यज्ञ का अश्व और सैनिक विजय-पताका फहराते हुए कौतुक तथा शोर-शरावे के साथ निर्विघ्न

अयोध्या लौट आये। तत्पश्चात् शास्त्रो के आदेशो के अनुसार यज्ञ-क्रिया प्रारभ हुई।

अयोध्या में जिस समय यह सब चल रहा था, देवलोक में देवो की एक भारी बैठक हुई। वाल्मीकि कहते हैं कि ब्रह्मा को सबोधित करके देवो ने शिकायत की, "हे प्रभु, राक्षस रावण को आपसे वरदान मिल गया है। उसके बल से वह हम सबको बुरी तरह से सता रहा है। उसे दबाना, जीतना या मारना हमारी शक्ति के बाहर है। आपके वरदान से सुरक्षित होकर उसका दर्प बहुत बढ गया है। वह सबका अपमान करता रहता है। उसके अत्याचारो का अत नही। वह इद्र को भगाकर स्वर्ग पर कब्जा कर लेना चाहता है। उसे देखकर सूर्य, वायु और वरुण भी डर से कापते हैं। उसके अहकार को दबाने और उसके अत्याचारो से बचने का आप ही कोई उपाय बता सकते हैं।"

ब्रह्मा ने देवो की शिकायत सुनी। उन्होने उत्तर दिया, "रावण ने अपने तपोबल से वरदान प्राप्त किया है। किंतु हमारे सद्भाग्य से वर मागते समय वह एक बात भूल गया। देव, गधर्व, राक्षसो से उसने अमरत्व मागा। मनुष्यो को या तो उसने अति तुच्छ समझा या भूल गया। इसलिए उसे मारने के लिए अभी भी मार्ग खुला हुआ है।"

यह सुनकर देवगण बहुत ही प्रसन्न हुए। सबके-सब विष्णु के पास पहुचे। उनको प्रणाम करके सबने एक स्वर से कहा, "हे नाथ, पापी रावण ब्रह्मा से वरदान पाकर सारे जगत को पीडित कर रहा है। अब हमसे सहा नही जाता। उसने देव, गधर्व, राक्षसादि से अमरत्व माग लिया है। मनुष्यो का नाम उसने नही लिया। या तो भूल गया, या उसने मनुष्य-जाति को अति दुर्बल समझा। हमें आपकी कृपा चाहिए। मनुष्य-जन्म लेकर आपको हमारी रक्षा करनी होगी।"

नारायण ने देवो की प्रार्थना स्वीकार कर ली। उन्होने सात्वना देते हुए कहा, "भूलोक में राजा दशरथ पुत्र-प्राप्ति के लिए यज्ञ कर रहा है। मै उसके घर चार पुत्रो के रूप में जन्म लूगा। रावण को मारकर आप लोगो

को सकट से मुक्त करूगा।"

अपने वचन का पालन करने के लिए भगवान विष्णु ने दशरथ की रानियो के गर्भ में वास करने का सकल्प कर लिया।

दशरथ के यज्ञ की विधिया चल रही थी। ऋष्यश्रृग ने अग्नि में घी की आहुति दी। अग्नि-देवता ने घी का पान किया। अग्नि से एक वडी भारी ज्वाला निकली। सूर्य के समान उसके प्रकाश से सवकी आखो में चकाचौंध व्याप्त हो गई। उस ज्वाला के अदर दोनो हाथो में सुवर्ण पात्र लिये एक मूर्त्ति खडी थी। गभीर दुदुभिनाद जैसे स्वर से उसने महाराजा को सवोधित करके कहा, "राजन्, तुम्हारी प्रार्थना को सुनकर देवो ने तुम्हारी रानियो के लिए यह पायस भेजा है। तुम्हें पुत्रो की प्राप्ति होगी। यह पायस ले जाकर अपनी पत्नियो को पिलाओ। तुम्हारा मगल हो।"

दशरथ के आनद का पार न था। जैसे मा-वाप वालक को वात्सल्य से उठाते है, वैसे ही उन्होने सुवर्ण पात्र अपने हाथो में लिया और अग्नि से निकला हुआ यज्ञ-पुरुप अतर्धान होगया।

यज्ञ की शेष विधिया पूरी हो जाने के वाद दशरथ पायस से पूर्ण पात्र को अपने अत पुर में रानियो के पास ले गये और कहने लगे, "देवताओ का प्रसाद लाया हू। तुम तीनो इसे ग्रहण करो। इससे पुत्रो का जन्म होगा।"

इस वात को सुनते ही सारा अत पुर प्रसन्नता से खिल उठा। दशरथ के तीन रानिया थी। महारानी कौशल्या ने पायस का आधा भाग पिया। शेप आधा कौशल्या ने सुमित्रा को दिया। सुमित्रा ने उसका आधा स्वय पिया और जो वचा वह कैकेयी को दे दिया। उसके आधे को कैकेयी ने पीया और वाकी को दशरथ ने पुन सुमित्रा को पीने के लिए दे दिया।

परम दरिद्र को कही से खजाना मिल जाय तो उसे जैसी खुशी होगी, वैसे ही दशरथ की तीनो रानिया फूली न समाई। उनकी आशा पूर्ण हुई। तीनो ने गर्भ धारण किया।

: ३ :

विश्वामित्र-वसिष्ठ-संघर्ष

यज्ञ से मिले पायस को पी जाने के फलस्वरूप तीनो रानियो ने गर्भ धारण किया। समय आने पर कौशल्यादेवी ने राम को जन्म दिया। उसके बाद कैकेयी ने भरत को। सुमित्रादेवी के दो पुत्र हुए। ये लक्ष्मण और शत्रुघ्न नाम से प्रसिद्ध हुए। कहा जाता है कि जिस प्रकार पायस का विभाजन हुआ, उसी क्रम से चारो शिशुओ में भगवान विष्णु के अशो का समावेश हुआ। सबसे अधिक राम में, फिर लक्ष्मण में, तत्पश्चात भरत और शत्रुघ्न में शेष बचे अश का प्रवेश हुआ। यह बात कोई महत्व की नही है। भगवान को टुकडे करके नापा या गिना नही जा सकता। परब्रह्म को हम भौतिक शास्त्र मे नही बाध सकते। श्रुति में गाया गया है

ॐ पूर्णमद· पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

चारो कुमारो को राजकुमारोचित सभी विद्याए सिखाई गईं।, उनके पालन-पोषण एव पढाई-लिखाई आदि की व्यवस्था बहुत ध्यानपूर्वक की गई। बचपन से ही राम और लक्ष्मण के बीच विशेष प्रीति थी तथा भरत और शत्रुघ्न एक-दूसरे को बहुत प्रेम करते थे। यो मान सकते हैं कि जिस क्रम से रानियो ने पायस पिया था, उसी प्रकार बच्चो में परस्पर प्रेम रहा।

चारो पुत्रो के गुण, कार्य-कुशलता, प्रीति तथा तेज दिन-प्रतिदिन बढने लगे। इनको पाकर राजा दशरथ देवो से परिवृत स्वयभू ब्रह्मा की तरह आनदपूर्वक रहने लगे।

× × ×

एक दिन राजा दशरथ अपने सचिवो के साथ राजकुमारो के विवाहो की चर्चा कर रहे थे कि सहसा द्वारपाल अदर आये। वह घबराये हुए दिखाई

दिये। उन्होने सूचना दी—"महामुनि विश्वामित्र महाराज के दर्शन के लिए द्वार पर प्रतीक्षा कर रहे है।"

ऋषि विश्वामित्र के नाम लेने मात्र से ही लोग उस समय डर जाया करते थे।

सुप्रसिद्ध, प्रभावशाली महामुनि एकाएक इस प्रकार मिलने आये हैं, यह सुनकर राजा ने तत्काल आसन से उतरकर स्वय आगे जाकर मुनि का शास्त्रोचित विधि से सत्कार किया।

विश्वामित्र पहले एक क्षत्रिय वशज राजा थे। अपने तपोवल से वाद में ऋपि वने थे। वडी-वडी कठिनाइयो का सामना करने के वाद ही उन्हें अपने यत्न में सफलता प्राप्त हुई। एक वार त्रिशकु शाप से पीडित था। उसके ऊपर विश्वामित्र को दया आई। उन्होंने अलग से सृष्टि की रचना करने की ठान ली। एक नई दुनिया तथा अन्य ग्रह-मडल रचने का उन्होंने निश्चय किया और अपने तपोवल से आकाश के दक्षिण की ओर कुछ तारागणो को स्थापित भी कर दिया। जव देवो ने उनसे यह काम छोड देने की प्रार्थना की तो वह मान गये और अपनी नवीन सृष्टि-रचना का कार्य रोक लिया। ये वातें रामायण की घटनाओ से पहले की है।

ऋषि-पद पाने से पहले विश्वामित्र राजा कौशिक कहलाते थे। एक वार वह अपनी सेनाओ के साथ पर्यटन करते हुए वह वसिष्ठ ऋपि के आश्रम में पहुचे। ऋपि को प्रणाम किया। ऋपि ने भी विश्वामित्र का यथोचित सत्कार किया।

कुशल-समाचार के वाद ऋपि वसिष्ठ ने विश्वामित्र से कहा—"राजन्, आप अपनी सेना और परिवारवालो के साथ मेरे आश्रम में भोजन करने के लिए ठहर जाय। मै आप सवका समुचित सत्कार करना चाहता हू।"

विश्वामित्र ने वसिप्ट से कहा, "मुनिवर, आपके इन वचनो एव अर्घ्य-जल से जो सत्कार मुझे प्राप्त हुआ है, उससे ही मै अत्यत सतुष्ट हू। मै आपका कृतज्ञ हू। आप और कष्ट न करें। वस, हमें यहा से जाने के लिए अनुमति दें।"

किंतु वसिष्ठ ने बहुत आग्रह किया कि वह और सेनासहित उनके यहा भोजन करके ही जाय।

विश्वामित्र ने फिर कहा, "आप बुरा न मानें। मैं आपका अनादर नही कर रहा। आप तो आश्रमवासी मुनि ठहरे। मेरी इतनी बडी सेना! सबके लिए एकाएक भोजन का प्रबध करना कैसे सभव हो सकेगा? इसीलिए मुझे हिचकिचाहट है।"

ऋषि वसिष्ठ मुस्कराये। अपनी गाय शबला को वात्सल्य के साथ बुलाकर बोले, "बिटिया, देखो, राजा विश्वामित्र आये है। इन्हें तथा इनके परिवार को खिलाने का शीघ्र प्रबध कर दो।"

तब जो कुछ देखा, उससे विश्वामित्र विस्मय विमुग्ध रह गये। उस राजकीय वृहत परिवार के लिए नाना प्रकार के पर्याप्त व्यजन अपने-आप ढेर-के-ढेर इकट्ठे हो गये। खाने की तरह-तरह की सुस्वादु वस्तुए, नाना प्रकार के पेय, घी, दही, मक्खन, फूल और सुगध-लेप आदि सभी चीजें क्षणभर में उपस्थित होगई और सबको पहुच गई। राजा कौशिक की पत्निया, सचिव, वधुवर्ग, पुरोहित, सैनिक और अन्य कर्मचारी सभी ऋषि के आश्रम में खा-पीकर सतुष्ट हुए। सबको वसिष्ठ के तपोबल पर बडा आश्चर्य हुआ।

विश्वामित्र ने वसिष्ठ के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की और अत में उनसे याचना की, "मुनीश्वर, अपनी धेनु शबला को मुझे दे दीजिये। इसकी शक्ति को मैंने आज देखा। ऐसी वस्तु तो राजा के ही पास रहने योग्य है।"

ऋषि वसिष्ठ को यह सुनकर दु ख हुआ। उन्होने विश्वामित्र से कहा "महाराज, मै शबला को कदापि नही छोड सकता। उसके बहुत-से कारण है। आप अपना हठ छोड दें।"

ज्यो-ज्यो वसिष्ठ इन्कार करते गये, विश्वामित्र की इच्छा बढती गई। उन्होने शबला के बदले में अनेक बहुमूल्य वस्तुए देने का प्रलोभन दिया, किंतु वसिष्ठ अपने निश्चय पर अटल रहे। उन्होने स्पष्ट कह दिया कि आपकी सारी सपदा मेरी शबला के सामने कुछ भी नही है, किसी भी हालत

में मैं उसे आपको नही दे सकता ।

तव क्रोव में आकर विश्वामित्र ने अपनी सेना को आज्ञा दी कि शवला को जवर्दस्ती ले चलो ।

शवला आसू वहाकर रोने लगी । उसने सोचा, "ऋपि वसिप्ठ का मैंने क्या विगाडा ? वह मुझे राजा के हाथो में जाने से क्यो नही वचा रहे है ? उसकी दुप्ट सेना मुझे खीचकर ले जा रही है। ऋषि यह देखकर भी चुप क्यो हैं ?"

इसके वाद अपने सीगो से सैनिको को भगाकर वह स्वय वसिष्ठ के पास आकर खडी होगई ।

ऋषि वसिप्ठ शवला को अपनी छोटी वहन की भाति प्यार करते थे । उसका दु ख उनसे सहन न हुआ । उन्होने कहा, "शवले, तुझे सतानेवाले इन लोगो को हराने लायक सैनिक तो पैदा कर ।"

वात-की-वात में शवला की 'हुकार' से अनगिनत सैनिक खडे हो गये और लडने लगे । विश्वामित्र की सेना हारकर भाग निकली । यह देखकर विश्वामित्र के क्रोव का पार न रहा । उनकी आखें लाल होगई । वह रथ पर चढे और चारो ओर वाणो की वर्पा करने लगे । लेकिन शवला के शरीर से नए-नए सैनिक उत्पन्न होते गये । विश्वामित्र की सेना वुरी तरह पराजित हुई ।

युद्ध भयकर रूप में छिड गया । विश्वामित्र के लडके वसिष्ठ के पुत्रो को मारने के लिए उद्यत हुए । लेकिन वसिप्ठ ने जव उन्हें जोर से डाटा तो वे वही जलकर राख हो गये ।

पराजय से विश्वामित्र का मुख-मडल निस्तेज होगया । वही उन्होने अपना राज्य एक पुत्र को सौंप दिया । उनकी अव एक ही मनोकामना थी । किसी तरह भी हो, वसिप्ठ को पराजित करें । इस इच्छा की पूर्ति के लिए वह हिमाचल की ओर चले गये । उन्होने उमापति महादेव का ध्यान लगाया और घोर तपस्या करने लगे ।

: ४ :

विश्वामित्र की पराजय

विश्वामित्र के उग्र तप से प्रसन्न होकर महादेव उनके समक्ष प्रकट हुए और वोले, "राजन्, तुम्हारी मनोकामना क्या है ? किस उद्देश्य से तुम तप कर रहे हो ?"

विश्वामित्र ने हाथ जोडकर शिवजी से निवेदन किया, "प्रभो, यदि मेरी तपश्चर्या से आप प्रसन्न हुए हो, तो ऐसा आशीर्वाद दे कि मैं धनुर्वेद का सपूर्ण अधिकारी वन जाऊ। समस्त असुर मेरे अधीन हो जाय।"

महादेव मान गये। उन तमाम असुरो को, जो देव, दानव, गधर्व, ऋषि, यक्ष और राक्षसो के वश में थे, शिवजी ने विश्वामित्र को सौंप दिया।

शिवजी से वरदान प्राप्त कर विश्वामित्र लौटे। तपोवल से पाई शक्ति के कारण उनका अहकार वरसात की नदी की भाति उमड रहा था। उन्होने सोचा—"बस, अव वसिष्ठ का अत आगया।"

वह सीधे वसिष्ठ के आश्रम में गये। क्रुद्ध महाकाल की तरह आते हुए विश्वामित्र को देखकर वसिष्ठ के आश्रमवासी शिष्यगण डर के मारे इधर-उधर भागकर छिपने लगे।

विश्वामित्र ने आग्नेय अस्त्र का प्रयोग किया। उसके प्रभाव से ऋषि वसिष्ठ का आश्रम जलकर राख होगया। वसिष्ठ ने अपने शिष्यो को बहुत समझाया कि वे घबरायें नही, किंतु उनके आश्रमवासियो का डर कम न हुआ। वे भागने लगे और छिपने की जगह खोजते रहे।

यह देखकर वसिष्ठ दुखी हुए। उन्होने सोचा कि अव इस विश्वामित्र के गर्व का खण्डन करना ही पडेगा। कालाग्नि की तरह प्रज्वलित अपने ब्रह्मदण्ड को उन्होने हाथ में लिया और विश्वामित्र को ललकारा और कहा—"विश्वामित्र, यह क्या मूर्खता कर रहे हो ?"

विश्वामित्र का क्रोध और भी भडक उठा। उन्होने भी ललकारा–'अरे वसिष्ठ, जरा ठहर तो सही।" यह कहकर उन्होने वसिष्ठ के ऊपर नए-नए सीखे हुए अपने आग्नेय अस्त्र का प्रयोग किया।

ऋषि वसिष्ठ ने उत्तर दिया, "मै तो खडा ही हू। भाग नही रहा।" और यह कहते हुए अपने सामने ब्रह्मदण्ड रख लिया। विश्वामित्र का अस्त्र वेकार सिद्ध हुआ। पानी से जैसे आग बुझ जाती है, उसी प्रकार विश्वामित्र के अस्त्र की ज्वालाए अपने-आप बुझ गईं।

इसके वाद विश्वामित्र ने एक-एक करके अपने तमाम अस्त्रो को आजमाया, मगर वसिष्ठ के ब्रह्मदण्ड के सामने वे सभी निष्फल सिद्ध हुए। विश्वामित्र को वडा विस्मय हुआ। लाचार होकर अत में उन्होने वसिष्ठ के ऊपर ब्रह्मास्त्र छोड दिया।

देव और ऋषिगण भयभीत होगये। उन्होने सोचा कि अव अनर्थ हो गया। ब्रह्मास्त्र का सामना भला कौन कर सकता है? किंतु ऋषि वसिष्ठ का ब्रह्मदण्ड ब्रह्मास्त्र से भी अधिक वलवान सिद्ध हुआ। ब्रह्मदण्ड ब्रह्मास्त्र को भी निगल गया। ब्रह्मदण्ड अग्नि के समान चमकने लगा। उसके चारो ओर चिनगारिया प्रज्वलित हो उठी। विश्वामित्र के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। लवी सास लेकर उन्होने कहा, "मै अव हार गया। मेरा क्षत्रिय वल इस ऋषि के एक साधारण दण्ड के सामने निरर्थक रहा। महादेव ने मुझे धोखा दिया। मै भी वसिष्ठ की तरह ब्रह्मर्षि वनूगा। कोई दूसरा रास्ता नही।"

यह कहकर उन्होने युद्ध रोक दिया और दक्षिण दिशा की ओर जाकर कठोर तपश्चर्या करने लगे।

अव वह स्वयभू ब्रह्मा का ध्यान करके तप करने लगे। अनेक वर्षो की तपश्चर्या के पश्चात् ब्रह्मा प्रकट हुए और यह कहकर कि "हे कुशिक-पुत्र, अपने तप की महिमा से तुम राजर्षि वन गये", अतर्धान हो गये।

विश्वामित्र को वडा आघात पहुचा कि इतनी कठोर तपश्चर्या के वाद भी केवल राजर्षि पद मिला! वह और भी घोर तप करने में तत्पर हो गये।

: ५ :

त्रिशंकु की कथा

जब विश्वामित्र की कठोर तपश्चर्या चल रही थी, उन दिनो सूर्यवश के राजा त्रिशकु राज्य कर रहे थे। वह बडे नामी और प्रतापी थे। अनेक वर्षो तक अच्छी तरह राज करने के पश्चात् उनकी इच्छा हुई कि सदेह स्वर्ग पहुचा जाय। इस सबध में विचार-विमर्श करने के लिए वह वसिष्ठ ऋषि के पास गये। वसिष्ठ उनके कुलगुरु थे।

वसिष्ठ ने राजा से कहा, "राजन्, ऐसी इच्छा न करें, यह सर्वथा असभव है।"

त्रिशकु को गुरु की सम्मति पसद न आई। वह वसिष्ठ के पुत्रो के पास पहुँचे और कहने लगे, "देखिये, आपके पिता ने जिस काम को असभव कह दिया है, उसे आप लोग मेरे लिए कर दें। मैं सदेह स्वर्ग पहुचने के लिए एक यज्ञ करना चाहता हू। आप लोग यह यज्ञ कराकर मुझे अनुग्रहीत करें।"

वसिष्ठ-पुत्रो को राजा की यह हठ पसद न आई। उन लोगो ने राजा से कहा, "आपने गलत रास्ता पकडा है। आपके गुरु और हमारे पिताजी ने जब आपको यह कार्य करने से रोका है, तो वही काम हमसे कराने की सोचना ठीक बात नही है। आप वापस चले जाय। हमसे यह काम कदापि न हो सकेगा।"

किंतु राजा गुरु-पुत्रो से अनुरोध करते ही रहे। वसिष्ठ के पुत्र राजा से तग आगये। उन लोगो ने चिढकर कहा, "आप हमसे हमारे पिता का अपमान कराना चाहते हैं, यह कभी नहीं हो सकता।"

लेकिन त्रिशकु ने इसपर भी अपना हठ नही छोड़ा। उन्होने कहा, "यदि आप लोग मेरा यज्ञ न करायेंगे, तो मै कोई दूसरा ऋषि ढूढ लूगा। जैसे भी होगा, मै यह यज्ञ करके ही रहूगा।"

वसिष्ठ-पुत्रो को इस बात पर बडा क्रोध आया। उन्होने राजा को शाप दिया, "तुमने गुरु का अपमान किया है। तुम चाण्डाल हो जाओ।"

दूसरे दिन राजा जब निद्रा से उठे तो देखते क्या हैं कि उनके शरीर की काति नष्ट हो गई थी। उनका रूप कुरूप बन गया था और पीताबर के बदले उनका शरीर मलिन चिथडो से ढका हुआ था। शरीर के ऊपर के आभूषण पता नही कहा गायब होगये। मत्री परिवार और प्रजाजन इस अप्रिय परिवर्तन को देखकर उन्हे छोडकर भाग गये। कोई भी उनका मुह नही देखना चाहता था। अपमान और क्लेश से पीडित राजा त्रिशकु ने अपना देश छोड दिया और वन में चले गये। न उन्हे खाने की चिंता थी, न सोने की। वह दिन-रात भटकते रहे।

चाण्डाल के रूप में ही त्रिशकु एक दिन विश्वामित्र ऋषि के आश्रम में जा पहुचे।

विश्वामित्र को राजा की दशा देखकर बडी दया आई। उन्होने पूछा, "तुम तो त्रिशकु हो न ? तुम्हारी यह दशा कैसे हुई ? किसके शाप से यह हुआ, मुझे बताओ।"

त्रिशकु ने विश्वामित्र को सारा हाल बता दिया और कहा, "मैंने राज्य-धर्म का अच्छी तरह से पालन किया है। कभी अधर्म नही किया। सत्य के विरुद्ध मैं कभी नही चला। कभी किसीको मैंने दुःख नही पहुचाया। मेरे गुरु-पुत्रो ने मेरी सहायता करने से इन्कार कर दिया, और ऐसा शाप दे दिया, जिससे मैं चाण्डाल बन गया। अब आप ही मेरे रक्षक हैं।" यह कहकर त्रिशकु विश्वामित्र के चरणो में गिर पडे।

शाप के कारण चाण्डाल बने त्रिशकु पर विश्वामित्र के दिल में दया उमड आई। विश्वामित्र के साथ यही बडी कठिनाई थी कि उनकी अनुकपा, प्रेम और क्रोध आदि आवेश बहुत प्रबल हुआ करते थे।

मीठी वाणी में विश्वामित्र बोले—"हे मित्र, हे इक्ष्वाकु-कुल राजन्, मैं तुम्हारा स्वागत करता हूं। तुम्हारे धार्मिक जीवन से मै परिचित हू। तुम निर्भय रहो। ऋषि, मुनि तथा अन्य प्रतिष्ठित लोगो को आमत्रण भेजकर

मै तुम्हारा यज्ञ कराऊगा । गुरु-शाप से तुमने चाण्डाल का रूप पाया है । चिंता न करो, तुम सदेह स्वर्ग पहुचोगे ।" इस तरह विश्वामित्र ने राजा त्रिशकु को वचन दे दिया ।

यज्ञ के लिए विश्वामित्र ने सब प्रबध कर दिया । त्रिशकु को उन्होने धैर्य दिलाया और बोले "तुम मेरी शरण में आये हो, समझ लो कि तुम्हारी मनोकामना पूरी होगई । इसी शरीर से तुम स्वर्ग पहुचोगे ।"

उसके बाद विश्वामित्र ने अपने शिष्यो को आदेश दिया कि सब ऋषि-मुनियो को यज्ञ के लिए बुला लाओ । उनसे कहो कि विश्वामित्र ने बुलाया है ।

आदेश का पालन करते हुए विश्वामित्र के शिष्यो ने सभी वयोवद्ध तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियो के पास जाकर अपने गुरु का सदेश पहुचाया । लगभग सभीने आमत्रण स्वीकार कर लिया । महातपस्वी विश्वामित्र की आज्ञा का तिरस्कार करने की हिम्मत भला किसमें थी ।

किंतु वसिष्ठ के पुत्रो के पास जब निमत्रण पहुचा, तो उन लोगो ने उसे अस्वीकार करते हुए कहा, "विश्वामित्र चाहे कितने भी बडे तपस्वी क्यों न हो, आखिर वह क्षत्रिय हैं । उन्हे यज्ञ कराने का अधिकार नही । एक चाण्डाल को भी कही यज्ञ का अधिकार होता है ।"

विश्वामित्र ने जब यह बात सुनी तो उनका क्रोध और भी भडक उठा । उन्होने शाप दिया, "मैने जो कार्य प्रारभ किया है, उसमें मै कोई दोष नहीं देखता । घमडी वसिष्ठ-कुमारो को मैं शाप देता हू कि वे जलकर भस्म हो जाय ।"

ऐसा कहकर वह यज्ञ के काम में लग गये ।

उपस्थित बडे-बडे लोगो से विश्वामित्र ने कहा, "इस पुण्यात्मा धर्मशील इक्ष्वाकुवशी राजा को सशरीर स्वर्ग पहुचाने के लिए मैंने यह विधि प्रारभ की है । आप सब इस शुभ कार्य में सम्मिलित होकर इसकी सिद्धि में सहायक हो ।"

सबने सोचा कि विश्वामित्र की आज्ञा मान लेना ही श्रेयस्कर है । ऐसे

तपस्वी के क्रोध का सामना करना असभव है। इसलिए सब-यज्ञ-कार्यो में जुट गये। वे सब कौशिक के आदेशानुसार कार्य करने लगे।

यज्ञ के अत में हवि स्वीकार करने के लिए देवताओ को बुलाया गया। मत्रोच्चार के साथ विश्वामित्र ने देवताओ का आह्वान किया। किंतु कोई न आया। जो ऋषि विश्वामित्र के डर के मारे चुप थे, वे भी अब उनपर हँसने लगे।

विश्वामित्र के क्रोध का पार न रहा। उन्होने उस श्रुवा को, जिससे वह होमाग्नि में घी डाल रहे थे, ऊपर उठाया और राजा त्रिशकु को सबोधित करके कहा, "हे त्रिशकु, मेरे तप की महिमा तुम अब देखोगे। मेरा सारा प्रयत्न, तप और शक्ति तुम्हारे लिए ही काम आयगा। यदि मेरे वर्षो के तप में जरा-सी भी शक्ति हो, तो तुम इसी क्षण स्वर्ग के लिए ऊपर की ओर चलने लगोगे। देवता लोग हवि लेने न आयें, इसकी मुझे चिंता नही। राजन, अब स्वर्ग की ओर प्रस्थान करो।"

तभी एक बडी ही अद्भुत घटना घटी। ऋषि तथा ब्राह्मणो के देखते-देखते चाण्डाल राजा एकदम आकाश मे स्वर्ग की ओर उठकर जाने लगे। सारी दुनिया ने विश्वामित्र की शक्ति को उस समय पहचाना।

त्रिशकु स्वर्ग पहुचे। किंतु इद्र ने त्रिशकु की हालत देखी तो वह उसे स्वर्ग में रखने को राजी न हुए। बोले, "यह चाण्डाल अपने इस रूप में यहा कैसे आया? गुरु के शाप से पीडित मूर्ख, हट, यहा से हट!" इतना कहकर इद्र ने त्रिशकु को स्वर्ग से नीचे की ओर धकेल दिया।

बेचारे त्रिशकु करुण स्वर में चीखने लगे, "मुझपर दया करो, मेरी रक्षा करो।" इस प्रकार चिल्लाते हुए वह नीचे गिरने लगे। उनका सिर नीचे की ओर था और पैर आकाश की ओर।

विश्वामित्र ने जब यह देखा तो वह गुस्से में भर गये और कहने लगे, "अच्छा, मेरे तप का ऐसा अनादर! देखता हू।" और उन्होने आज्ञा दी, "हे त्रिशकु, वही रुको।" यह कहकर उन्होने त्रिशकु को बीच आकाश में ही रोक दिया। उस समय विश्वामित्र स्वय ब्रह्मा की तरह तेजोमय दिखाई दे रहे थे।

और त्रिशकु आकाश में स्थित एक नक्षत्र की तरह स्थिर होकर चमक रहे थे ।

विश्वामित्र ने अव दूसरा चमत्कार दिखाया । दक्षिण आकाश की ओर जहा त्रिशकु लटक रहे थे, वही एक नई सृष्टि (नये तारागण और सप्तर्षि मण्डल आदि) उत्पन्न करने को वह उद्यत हो गये ।

"मैं नया इद्र पैदा करूगा । नये देव भी वन जायगे ।" यह कहकर वह नई सष्टि की रचना में सलग्न होगये ।

देव और ऋषिगण यह देखकर घवरा गये । उन्होने सोचा कि अव अनर्थ होने ही वाला है । जैसे भी हो, विश्वामित्र के क्रोध को शात करना चाहिए।

वे सव मिलकर ऋपि के पास पहुचे और नम्र भाव से कहने लगे, "अव आप शांत हो । त्रिशकु और अन्य नक्षत्र, जिन्हे आपने अभी-अभी उत्पन्न किया है, वे सव आकाश में ऐसे ही स्थिर रहेगे। आप आगे और कुछ न कर शात हो जाय । हमारी रक्षा करें ।"

वडी मुश्किल से विश्वामित्र शात हो पाये ।

पर ऐसा करने में विश्वामित्र की समस्त तापसिक शक्ति खर्च हो गई ।

: ६ :

विश्वामित्र की सिद्धि

तपस्वी जन यदि काम-क्रोध के वश में आ जाय, अथवा किसीको शाप दे दें, तो उनका तपोवल क्षीण हो जाता है। ऋषि विश्वामित्र का भी तपोबल क्रोध करने तथा शाप देने के कारण बहुत-कुछ कम हो गया था। इसलिए वह फिर से उग्र तप करने पश्चिम दिशा की ओर पुष्कर तीर्थ चले गये।

वहा उन्होने कई वर्ष तक कठोर तपश्चर्या की। तप की सिद्धि जव सन्निकट थी तभी एक घटना घटी और क्रोध ने फिर उनपर विजय पा ली। अपने पुत्रो को ही उन्होने शाप दे दिया। इसका उन्हें वडा पछतावा हुआ। उन्होंने दृढ निश्चय कर लिया कि भविष्य में वह कभी क्रोध को स्थान ही न देंगे। ऐसा सकल्प करके वह फिर से घोर तपश्चर्या में लीन हो गये। वर्षो बाद प्रजापित ब्रह्मा ने देवो के साथ उन्हें पुन दर्शन दिये। उन्होनें विश्वामित्र से कहा, "हे कौशिक, अव तुम्हारी गणना राजाओ में नही रही। तुम सपूर्ण रूप से ऋषि हो गये।" यह कहकर ब्रह्माजी अतर्धान होगये।

किंतु इससे विश्वामित्र सतुष्ट कैसे हो सकते थे? उन्हे शिवजी से समस्त अस्त्र मिल गये थे। ब्रह्मा से ऋषिपद मिल गया। किंतु उनका ध्येय तो वसिष्ठ के समान शक्ति प्राप्त करना था। यह कार्य अभी भी शेष ही था। इसलिए उन्होने कठिन-से-कठिन तप करने का सकल्प किया।

देवो को यह वात नही रुची। विश्वामित्र को अपने निश्चय से हटाने के लिए उन्होने पुष्कर तीर्थ में सुदरी अप्सरा मेनका को भेजा। विश्वामित्र उसके मनमोहक रूप के शिकार होगये। उसके साथ उन्होने दस वर्ष आनद से विता दिये। ये दस वर्ष, एक दिन और एक रात की तरह, वडी जल्दी वीत गये।

तव ऋषि जागे और परिणाम जानकर घवरा गये। उन्हे अपनी करनी पर वडा खेद हुआ। मेनका डर से कांपने लगी। उसे लगा कि वस, अव ऋषि

शाप दे डालेंगे। वह हाथ जोडकर खडी रही। किंतु इस वार ऋषि ने अपने क्रोध को वश में रखा, उन्होने मेनका से कहा, "तुम्हारा कोई दोष नही, मेरी ही मूर्खता है। तुम वापस चली जाओ।" इस तरह मेनका को प्यार से विदा करके वह हिमालय की ओर चल पडे। वहा इद्रियो का दमन करके उन्होने एक हजार वर्ष तक पुन तप किया।

देवो के सहित ब्रह्मा फिर उनके सामने प्रकट हुए। उन्होने विश्वामित्र से कहा—

"विश्वामित्र, मेनका को शाप न देकर तुम पुन तप में प्रवृत्त हुए और उसे पूर्ण भी किया, इसलिए हम तुमसे अत्यत प्रसन्न हैं। आज से तुम महर्पि हुए ।"

ब्रह्माजी के वचनो से विश्वामित्र प्रसन्न तो हुए, किंतु अभी उनकी मनोकामना पूरी नही हुई थी। उन्होने फिर से एक ऐसा कठिनतम तप आरभ कर दिया कि जिस प्रकार का तप न किसीने कभी किया था, न सुना था। ऐसा अद्भुत तप उन्होने एक हजार वर्ष और किया।

देवो की चिंता बढ गई। इस वार उन्होने अप्सरा रभा को विश्वामित्र के पास भेजना निश्चित किया। इद्र ने रभा से याचना की, "रभे, हमारे ऊपर दया करके किसी भी उपाय से विश्वामित्र का मन मोह लो। उनके तप को रोको।"

रभा की हिम्मत तो नही हुई। पर इद्र की आज्ञा भी वह कैसे टाल सकती थी? उसने विश्वामित्र के मन को चचल कर दिया। विश्वामित्र ने मन में उठे काम को तो रोक लिया, किंतु उन्हे रभा पर क्रोध आगया। तप में विघ्न डालने यह क्यो आई? उन्होने रभा को शाप दे दिया कि वह वही पत्थर की हो जाय। ऋषि जब अपने मन में दूसरो के लिए बुरा सोचते हैं तो वही उनके अपने लिए भी शाप-रूप ही बन जाता है। दूसरो के प्रति उनका शाप तो सफल हो जाता है, किंतु साथ ही उनका तप भी नष्ट हो जाता है। इस वार भी विश्वामित्र के साथ वही हुआ। अब विश्वामित्र ने एकदम दृढ सकल्प किया कि किसी हालत में भी क्रोध आने न देंगे। ऐसा निश्चय करके खान-पान, वाणी,

श्वास आदि सपूर्ण इद्रियो को उन्होने रोक लिया और अयन्त कठिन तपस्चर्या में वैठ गये। इस प्रकार एक हजार वर्ष का तप उन्होने पूरा किया। देवताओ ने उनके तप को भग करने के अनेक प्रयत्न किये, लेकिन वे सफल न हुए। तपस्या से विश्वामित्र का शरीर काठ की तरह होगया था। उसमें केवल प्राण ही वचे थे। इद्रियो की गतिया एकदम रुक गई थी।

विश्वामित्र के तप की उग्रता से देव-गण छटपटाने लगे। वे ब्रह्मा के पास गये और हाथ जोडकर कहने लगे, "हे नाथ, हमसे अव कौशिक के तप की उग्रता नही सही जाती। हमने उनके तप को भग कराने के लिए अनेक प्रयत्न किये, किंतु सभी व्यर्थ गये। अव उनके तप के सामने हम नही टिक सकते। वह जो वर मागते हो, उन्हें दे दीजिये।"

देवो के सहित ब्रह्मा पुन विश्वामित्र के पास आये और उन्हे आशीर्वाद दिया, "आज से तुम ब्रह्मर्षि वन गये, तुम्हारा कल्याण हो।"

विश्वामित्र अत्यत प्रसन्न हुए। किंतु उन्होने ब्रह्माजी से कहा, "मैं तो पूर्णरूप से तभी सतुष्ट होऊगा, जव वसिष्ठ स्वय, अपने मुह से कहें कि 'विश्वामित्र, तुम ब्रह्मर्षि वन गये।"

यह सुनकर वसिष्ठजी किंचित् मुस्कराये। पुराने झगडे उनकी स्मृति में उभर आये। उन्होने कहा, "विश्वामित्रजी, आपने अपने महा कठोर तपो का फल प्राप्त कर लिया। आप पूर्णत ब्रह्मर्षि हैं, इसमें कोई शका नही।" वसिष्ठजी की स्वीकारोक्ति से सव लोग प्रसन्न हुए।

इस प्रकार विश्वामित्र महा प्रयत्नशील एव शक्तिशाली ऋषि थे।

× × ×

एक दिन वह विना किसी पूर्व-सूचना के राजा दशरथ के दरवार में उपस्थित हुए।

जिस प्रकार इद्र अपने दरवार में ब्रह्मदेव का स्वागत-सत्कार करता है, उसी प्रकार राजा दशरथ ने विश्वामित्रजी का स्वागत-सत्कार किया। राजा दशरथ ने विनम्र शब्दो में कहा, "मुनिवर, मैं कृतार्थ हुआ। मेरे पूर्वजो के पुण्य-फल से आपका शुभागमन मेरे यहां हुआ है। रात्रि के वाद सूर्योदय की

तरह आपके दर्शन से मै बहुत ही प्रसन्न हू। राजा होकर अपने तपोबल से ब्रह्मर्षि-पद को प्राप्त करनेवाले आप जैसे पुण्यात्मा का यहा आना कैसे हुआ ? मुझे आज्ञा दीजिये। आप जो भी कहेंगे,उसे करने के लिए मैं प्रस्तुत हू। आपकी आज्ञा का पालन करना मेरा कर्तव्य है।"

"राजन्, ऐसे प्रिय वचन तुम्हारे ही मुह से निकल सकत हैं। तुम इक्ष्वाकु-कुल में उत्पन्न हो। तुम्हारे गुरु स्वय वसिष्ठ है। तुम्हारे मुख से दूसरे वचन कैसे निकल सकते है ? मेरे मागने से पहले तुमने वचन दे दिया है। उससे मैं तुष्ट होगया। अब बताता हू कि मैं किस उद्देश्य से यहा आया हू।"

इतना कहकर वह राजा दशरथ को अपने आगमन का प्रयोजन बताने लगे।

: ७ :

दशरथ से याचना

विश्वामित्र दशरथ से कहने लगे, "मैंने व्रत-नियमादि के साथ एक यज्ञ-विधि प्रारभ कर रखी है, लेकिन जव भी विधि समाप्त होने का समय आता है, तभी मारीच और सुवाहु नाम के दो दुष्ट राक्षस, कुछ-न-कुछ करके उसे विगाड देते हैं। दोनो राक्षस वली, वीर और युद्धशास्त्र में निपुण है। उन्हें मैं तथा अन्य ऋषि लोग शाप देकर नष्ट कर सकते हैं, किंतु ऐसा करना नियम-पालन के विरुद्ध है। इसलिए वडी समस्या पैदा होगई है। हम लोग परेशान है। ये राक्षस हमारे यज्ञ को रक्त और मास की वर्षा करके अपवित्र किया करते हैं। अपने वीर पुत्रो में ज्येष्ठ राम को यदि आप मेरे साथ भेज दें तो मेरा कष्ट दूर हो जायगा। मेरी देखभाल में राम के वीर्य और दिव्य वल दोनो में वृद्धि ही होगी। इन राक्षसो को परास्त करक वह विजय और यश भी पायेंगे, यह निश्चय है। वस, राजकुमार को थोडे समय के लिए मुझे सौंप दीजिये। मेरी प्रार्थना को न ठुकराइये। मै मागू, उससे पहले ही आपने मुझे वचन तो दे ही दिया है। उसे अव न टालें। कुमार के कल्याण का मैं जिम्मेदार हू। यदि आपने यह कार्य किया तो तीनो लोको में शाश्वत प्रतिष्ठा पायेंगे। मुझे इस वात का पूरा विश्वास है कि वसिष्ठ और आपके सचिवों से भी मुझे समर्थन मिलेगा।"

अपने दरवार में मुनि के आगमन से राजा वडे प्रफुल्लित हुए थे, किंतु उनकी वातो से वह इतने डरे और चिंतित हुए कि उसका वर्णन करना कठिन है। उनका शरीर कापने लगा। वडी इच्छा के साथ, वर्षों की प्रार्थना के वाद, उन्हें पुत्र-योग प्राप्त हुआ था। राम जैसे पुत्र को राक्षसो का शिकार कैसे वना दिया जाय? यदि वह ऐसा करने से इन्कार करें तो ऋषि के कोप से कैसे वचें?

वह थोडी देर किंकर्तव्यविमूढ़ रहे। जव होश में आये तव उन्होने विश्वा-

मित्र से कहा, "मुनिवर, राम तो अभी पूरे सोलह साल का भी नही हुआ। राक्षसो के साथ लडने की क्षमता उसमें अभी कहा है ? आप उसे ले जाकर क्या करेंगे ? युद्ध के छल-कपट से वह विल्कुल अनभिज्ञ है। राक्षसो के युद्ध तो छल-कपट से भरे होते हैं। उनका सामना करने के लिए छोटे-से बालक को भेजना उचित नही है। मै वैठा हू। मेरी चतुरग सेना है। यह सब छोडकर बालक राम को आप क्यो माग रहे हैं ? कहा वे महावली राक्षस, और कहा बालक राम ! आपके यज्ञ की रक्षा बालक थोडे ही कर पायेगा। मुझे पहले आप अपने विरोधियो के वल, और शक्ति के बारे मे विस्तार से बतायें। मैं आपके साथ स्वय चलूगा। अपनी सेना को साथ ले चलूगा। आपको जो कुछ भी चाहिए, वह सब होगा। पहले शत्रुओ की ताकत से मुझे परिचित करायें।"

चर्चा के विषय को राजा दशरथ दूसरी ओर ले जाना चाहते थे।

विश्वामित्र ने दशरथ को मारीच और सुबाहु तथा उनके स्वामी रावण के विषय में सबकुछ विस्तार से कह सुनाया। उन्होने राजा से पुन आग्रह किया कि राम को ही उनके साथ भेजें।

लेकिन दशरथ ने फिर प्रार्थना की, "कठिन व्रतो के फलस्वरूप मैंने राम को पाया है। उसे मैं कैसे अलग करू ? उसके वियोग से तो मैं मर ही जाऊगा। आप मुझे ले चलिये। मैं अपनी सारी सेना के साथ आपकी मदद के लिए चलूगा। आपके वर्णन से तो लगता है कि यह कार्य मेरे लिए भी आसान नही है। जब ऐसी बात है तो भला मै राम को कैसे भेजू ? यह मुझसे नहीं होगा।"

राजा दशरथ की इन प्रतिकूल बातो से विश्वामित्र का क्रोध घी से प्रज्वलित होमाग्नि की भाति वढने लगा। उन्होने कहा, "आप ही ने कहा था कि मैं जो कुछ मागूगा, वही मुझे मिलेगा। अब आप उलटी बातें करने लगे हैं। आपका यह व्यवहार इक्ष्वाकु-कुल की शोभा नही बढा रहा। आप अपने कुल से द्रोह कर रहे है। यदि यही आपका निर्णय है तो मैं वापस जाता हू। असत्य-आचरण के साथ अपने मित्रोसहित आप सुखी रहें।"

मुनि के क्रोध से पृथ्वी कापने लगी। देवता लोग भी डरे। तब वसिष्ठ

ने दशरथ को धीरे-से समझाया, "राजन्, आपने रघुकुल में जन्म लिया है। आप धर्म के अवतार है। आपकी कीर्ति दुनिया के कोने-कोने में छाई हुई है। एक वार वचन देकर उससे हटना आपके लिए अच्छा नही है। आपके समस्त पुण्य कार्य इससे एकदम क्षीण हो जायगे। आप राम को मुनि के साथ अवश्य भेज दें। साथ में लक्ष्मण भी जाय। इस वात की चिता न करें कि राम को युद्ध का वहुत अभ्यास नही है। विश्वामित्र के सरक्षण में जवतक राजकुमार रहेगे, राक्षस उनका कुछ भी न विगाड सकेंगे। वे उन्हे छूने भी न पायगे। जिस प्रकार अग्नि का चक्र अमृत की रक्षा करता है, उसी प्रकार विश्वामित्र राम की रक्षा करेंगे। मुनि की शक्ति को शायद आप पूरी तरह नही समझते हैं। यह तो साक्षात् शरीरधारी तप है। वीरो में वीर हैं। इन्हे आप ज्ञान और तप की पराकाष्ठा ही समझिये। कोई ऐसा अस्त्र नही, जिसे यह न जानते हो। इस विषय में इनके समान तीनो लोको में न कोई है, न कभी था, न भविष्य मे हो सकता है। ये त्रिकालज्ञ हैं। ऐसे वीर और तेजस्वी ऋषि के साथ आप राजकुमार को नि सकोच भेज दीजिये। ऋषि स्वय अपनी रक्षा कर सकते हैं। अपने यज्ञ की भी रक्षा कर सकते हैं। किंतु वह तो राजकुमार के भले के लिए ही यहा आये है और आपसे इनकी माग कर रहे है। उनकी माग पूरी कीजिये।"

वसिष्ठ के इस उपदेश को सुनकर राजा दशरथ का मोह दूर हुआ और उन्होने राम और लक्ष्मण को विश्वामित्र के साथ भेजने का निश्चय किया।

दोनो राजकुमार राजा से विदा लेने आये। राजा, राजमाताओ तथा कुलगुरु वसिष्ठ ने दोनो को मन्त्रोच्चार के साथ आशीष दी। मस्तक चूमकर कहा, "मुनिवर विश्वामित्र के साथ जाकर उनकी आज्ञा का पालन करना।"

और दोनो कुमारो के साथ विश्वामित्र विदा हुए।

उस समय सुखद और मद पवन वह रहा था। आकाश से पुष्पवृष्टि हुई। आकाशवाणी सुनाई दी। दोनो धनुर्धारी राजकुमार दशरथ से

विदा लेकर विश्वामित्र के साथ गभीर गति से चल पडे।

इसका बहुत सुदर वर्णन वाल्मीकि ने आठ श्लोको में किया है। तमिल कवि कबन ने भी अपने सुदर ढग से इस दृश्य को गया है। महामुनि विश्वामित्र अपने युग के सुप्रसिद्ध योद्धाओ में से थे, जिनमें एक नई सृष्टि ही रच डालने की क्षमता थी। ऐसे शक्तिशाली व्यक्ति के नेतृत्व में दोनो राजकुमार उनके दाए-बाए चलने लग। दोनो की कटि में तलवारें लटकी हुई थी, और वे कधो पर धनुष चढाये हुए थे। राक्षस-कुल का नाश करने के लिए अवतरित दोनो कुमार विश्वामित्र के साथ चलते हुए उस समय ऐसे प्रतीत होते थे, मानो तीन सिरवाले दो नाग अपने फन फैलाकर चल रहे हो।

: ८ :

राम का पराक्रम

विश्वामित्र और दोनो राजकुमारो ने पहली रात सरयूतट पर बिताई। सोने के पूर्व ऋषि ने राजकुमारो को कुछ मत्र सिखाये। मत्रो के नाम थे 'बला' और 'अतिबला'। आशीर्वाद देते हुए उन्होने कहा कि इन मत्रो को जो जानता है और जपता है, वह सकटो में नही फसता।

तीनो अगले दिन बहुत सवेरे जगे। नित्य-कर्म किये। उसके बाद वहा से प्रस्थान करके वे अग देश के कामाश्रम नामक स्थान पर पहुचे। वहा के तपस्वियो से विश्वामित्र ने दशरथ-पुत्रो का परिचय कराया। उसके बाद उन्होने राम और लक्ष्मण को कामाश्रम की कथा सुनाई। यह वह स्थान है, जहा शकर भगवान ने वर्षो तक अखड समाधि लगाई थी। बुद्धिभ्रष्ट कामदेव ने देवाधिदेव शकर पर अपने बाण चलाने का प्रयत्न किया। फलस्वरूप महादेव के क्रोध का लक्ष्य बना और जलकर भस्म होगया। तभी से यह स्थान 'कामाश्रम' कहा जाता है।

विश्वामित्र और राम-लक्ष्मण ने तपस्वियो का आतिथ्य स्वीकार किया और वह रात उन्होने आश्रम में बिताई।

दूसरे दिन नित्य-कर्मो से निवृत्त हो वे गगा नदी के तट पर पहुचे। तपस्वियो ने इनके लिए एक नाव का प्रबध करा दिया था। नदी पार करते हुए उन्हें एक विचित्र आवाज सुनाई दी। राजकुमारो को कौतुहल हुआ। विश्वामित्र ने उन्हें समझाया कि यहा सरयू नदी गगा में मिल रही है। यह विचित्र स्वर उसीका है। नदियो के सगम को राजकुमारो ने हाथ जोडकर प्रणाम किया। परब्रह्म की उपासना करने के लिए नदी, आकाश, वृक्ष, पर्वत आदि सभी रम्य वस्तुए बडे अच्छे साधन है।

गगा को पार करके वे आगे चलने लगे। मार्ग एक सघन वन के बीच में

से था। उसमें प्रवेश सुगम नही था। भयानक जानवरो की आवाजें हृदय को कपा देती थी।

मुनि ने राजकुमारो को बताया, "इस वन को 'ताडका-वन' कहते है। यह प्रदेश, जो इस समय इतना भयकर दिखाई दे रहा है, एक समय बडा सुदर और उपजाऊ प्रदेश था। एक बार वृत्रासुर को मार डालने से इद्र को ब्रह्महत्या का पाप लगा। इससे उसने बहुत दु ख पाया। देवराज इद्र की इस पीडा को दूर करने के लिए देवो ने कई उपाय किये। पवित्र नदियो का पानी वे बडे-बडे पात्रो मे लाये। मत्रो का उच्चार करके उस पानी से उन्होने इद्र को स्नान कराया। स्नान से उसके शरीर का मल पृथ्वी में पहुचा। उसी मल ने खाद के रूप में परिणत होकर इस स्थान को बहुत ही उपजाऊ बना दिया।"

कैसी भी गली-सडी वस्तु हो—जैसे प्राणियो के मृत शरीर या दुर्गंधयुक्त मल—ये सब पृथ्वी के अदर पडकर, मिट्टी के साथ मिलकर, मिट्टी ही बन जाते है, और उस मिट्टी से अमृत-तुल्य फल-फूल कद उपजने लगते हैं। यह धरती माता की कृपा-शक्ति ही है।

ऋषि ने बताया कि बहुत समय तक यहा के लोग सुखपूर्वक रहे। बाद में सुद नामक यक्ष की पत्नी 'ताडका' ने अपने लडके मारीच के साथ इस प्रदेश की यह दुर्दशा कर डाली है। वे दोनो इसी वन में वास करते है। उनके डर के मारे यहा कोई नही आता। इसीलिए यह वन ऐसा निर्जन होगया है। ताडका हजार हाथियो के समान बलशालिनी है। उसके अत्याचारो का पार नही। उसीके विनाश के लिए मै तुम्हे यहा लाया हू। ऋषियो को सतानेवाली यह राक्षसी तुमसे मारी जायगी, इसमें मुझे कोई शक नही। तुम्हारा कल्याण हो।

जब कभी भय या दुख पैदा करनेवाली बात की जाय तो सुननवालो को धैर्य देने के लिए 'भद्र ते' (तुम्हारा कल्याण हो) कहने की एक प्रथा है। यह वाक्य हम रामायण में बार-बार देख सकते है।

विश्वामित्र से ताडका की बात सुनकर राम बोले, "आपने बताया कि ताडका यक्ष-स्त्री है और यक्षो में ऐसा देह-बल मैंने आज तक नहीं सुना।

मैंने सोचा था कि केवल राक्षसो में ही ऐसा अमानुषिक शरीर-बल होता है, फिर एक स्त्री म ऐसी शक्ति कहा से आई ?"

विश्वामित्र ने उत्तर दिया, "तुम्हारा प्रश्न बिल्कुल ठीक है। पितामह ब्रह्मा के वरदान से ही ताडका ऐसी बलवती होगई है। सुकेतु नामक एक यक्ष था। उसके कोई स तान नही हुई। सतानोत्पत्ति के लिए उसने तप किया। उसके सदाचारो से सतुष्ट होकर ब्रह्मा ने उसको वरदान दिया, 'तुम्हारे यहा एक सुदर लडकी का जन्म होगा, जिसमें एक हजार हाथियो की शक्ति होगी। किंतु तुम्हारे कोई पुत्र नही हो सकता।'

"इस वरदान से सुकेतु के एक अत्यत सुदरी कन्या पैदा हुई। बडी होने पर उसका सुद नामक यक्ष के साथ विवाह हुआ। उनके एक पुत्र हुआ जिसका नाम मारीच रखा गया।

"एक बार सुद ने ऋषि अगस्त्य को छेडा-छाडा और उनके शाप से मारा गया। इससे रुष्ट होकर ताडका और मारीच दोनो अगस्त्य मुनि पर आक्रमण करने लगे। देह-बल के घमण्डी उन दोनो को अगस्त्य ऋषि ने शाप दे दिया कि वे मनुष्य का मास खानेवाले राक्षस बन जाय। तबसे उन दोनो का सुदर रूप नष्ट होगया। राक्षसो के रूप में वे दोनो यहा विचर रहे हैं। जैसे हिंस्र पशुओ का वध करना उचित है, इसी प्रकार इस राक्षसी को मार डालना भी आवश्यक होगया है। रक्षा करनेवालो का यह धर्म है। दुराचारी स्त्री को भी कभी-कभी मारना अनिवार्य हो जाता है। इसलिए तुम चिंता न करो।"

देखने में आता है कि सभी देशो में, जहातक हो सके, स्त्रियो को मृत्यु-दण्ड से बचाने का प्रयत्न किया जाता है। किंतु सब नियमो में अपवाद होते हैं। इनके बिना लोक-कल्याण स्थापित नही हो सकता।

विश्वामित्र के वचनो को सुनकर राम ने विनयपूर्वक कहा, "हे गुरु, दरबार में हमारे पिताजी ने हमें आदेश दिया है कि आपकी आज्ञा का पालन करें। इसलिए जैसा आप कहेंगे, वेसा ही हम करेंगे। लोक-कल्याण के लिए आपकी आज्ञा से मैं ताडका को अवश्य मारूगा।"

राम ने अपने धनुष को चढाकर उसे कधे तक खीचा। इससे भयकर नाद हुआ। उसकी प्रतिध्वनि आठो दिशाओ में गूज गई। उस ध्वनि से वन के सारे प्राणी भयभीत होकर कापने लगे।

ताडका को बडा विस्मय हुआ कि किसकी ऐसी हिम्मत हुई होगी। जहा से आवाज सुनाई दी उसी दिशा में वह चल पडी और महाक्रोध के साथ राम के ऊपर टूट पडी।

राम ने पहले सोचा था कि ताडका के हाथ-पैर काट डालना ही काफी होगा। वह ऐसा ही करने लगे। किंतु ताडका के आक्रमण अधिक-से-अधिक भयकर होते गये। यह देखकर उनको आश्चर्य हुआ। इधर-उधर भागकर ताडका ने उनपर पत्थरो की वर्षा शुरू की। लेकिन राम-लक्ष्मण ने चतुराई से अपने बाणो द्वारा पत्थरो को रोक लिया।

युद्ध चलता रहा। बीच में विश्वामित्र ने राजकुमारो को सचेत किया, "देखो, रात होने लगी है। रात्रि के समय राक्षसो का बल बहुत बढ जाता है। इनपर दया करने से कोई लाभ नही। देर न करो।"

तब राम ने एक घातक बाण राक्षसी की ओर लक्ष्य करके चलाया। उससे ताडका का विशालकाय शरीर निर्जीव होकर धरती पर गिर पडा।

राम के इस पराक्रम से देवो में प्रसन्नता की लहर दौड गई। मुनिवर विश्वामित्र के आनद का ठिकाना न रहा। उन्होने राम को हृदय से लगा लिया और आशीर्वाद दिया।

ताडका के मरते ही उस वन का रग-रूप बदल गया। वह पहले जैसा रमणीक दिखाई देने लगा। दोनो राजकुमारो ने रात वही बिताई। दूसरे दिन प्रात काल दैनिक क्रियाओ से छुट्टी पाकर वे विश्वामित्र के आश्रम की ओर रवाना हुए।

: ९ :

दानवों का दलन

विश्वामित्र ताडका-वघ से वहुत ही प्रसन्न थ। दशरथ-नदन श्रीराम को उन्होने अपने पास विठाया। उनके सिर पर हाथ रखकर कहने लगे, "राम, तुम्हारा कल्याण हो! मैं तुमसे अत्यत प्रसन्न हू। मैं आज तुम्हे कुछ अस्त्रो की शिक्षा और देना चाहता हू।"

यह कहकर उन्होने श्रीराम को कई अस्त्रो के प्रयोग करने की विधि, उन्हें रोकने तथा वापस लाने आदि की क्रियाए, और उस समय जो मत्र बोले जाते हैं, वह सवकुछ सिखा दिया। जिन देवताओ के अधीन ये अस्त्र थे, वे श्री रामचद्र के सम्मुख प्रकट हुए और यह कहकर कि "आप जव वुलायेंगे, हम आपकी सेवा में उपस्थित हो जायगे" उनसे विदा होगये। श्रीराम ने इनसव अस्त्रो की प्रयोग-विधि अपने छोटे भाई लक्ष्मण को भी सिखा दी।

विश्वामित्र ने फिर इस वात की परीक्षा कर ली कि राम ने अस्त्र-विद्या का ज्ञान ठीक तरह से प्राप्त कर लिया है या नही। सतुष्ट होकर वह राम से बोले, "वत्स, तुम इन अस्त्रो के वल से देव, असुर, गधर्व, आदि सवको पराजित कर सकोगे।"

तीनो जने अव फिर आगे वढे। कुछ दूर आगे चलने पर राम ने विश्वामित्रजी से पूछा, "सामने यह जो पहाड की सुदर तराई दिखाई दे रही है, क्या यही वह जगह है, जहा हमें पहुचना है? आपके यज्ञ में वाधा डालनेवाले दुरात्मा लोग कौन हैं और कहा है? कृपया वताइये। उन्हे मारने के क्या उपाय है, यह भी मुझे समझा दीजिये।" श्रीराम उन दुष्टो का दलन करने के लिए आतुर हो रहे थे।

"हा वत्स, हम वही पहुच रहे है। वहीपर एक समय श्रीमन्नारायण स्वय तप कर चुके हैं। महाविष्णु ने इसी जगह पर वामन-रूप धारण किया था।

यह जगह तबसे सिद्धाश्रम कही जाती है।" विश्वामित्र मुनि ने बताया।

प्रह्लाद का पुत्र विरोचन था। विरोचन का पुत्र था महाबली। असुर राजा बली का प्रताप सब जगह व्याप्त था। उसका राज्य सब जगह फैला हुआ था। यहातक कि इद्र के राज्य तक भी उसका विस्तार हो गया था।

इद्र के माता-पिता कश्यप मुनि और अदिति देवी दोनो बली राजा के पराक्रमो से घबराने लगे। उन्होंने महाविष्णु को लक्ष्य करके तप किया और याचना की, "हे लोकनाथ, आप हमारे पुत्र-रूप में पैदा हो और इद्र के अनुज बनकर इद्र तथा दूसरे देवा को इस महाबली से रक्षा करें।" महाविष्णु ने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली और वामन-रूप में अदिति के पुत्र-रूप में पैदा हुए।

महाबली ने एक बार एक यज्ञ किया। उसमें छोटे-से ब्रह्मचारी वामन भी भी पहुच गये। असुरो के गुरु शुक्राचार्य ने ताड लिया कि यह नन्हे-से ब्रह्मचारी कौन है और उनके आने में कोई-न-कोई विशेष बात होगी। उन्होंने राजा बली को सचेत किया और कहा कि वामन ब्रह्मचारी कोई भी चीज मागे, उसे कुछ न दिया जाय। किंतु राजा बली ने अपने गुरु से कह दिया, "यदि भगवान विष्णु मेरे द्वार पर याचक बनकर आये हो, तो उससे बढकर मेरे लिए और क्या बात हो सकती है ? उन्हे याचना करने दीजिये।"

नन्हे-से वामन ने याचना की, "मैं तीन डग चलूगा, उन तीन डगो में जितना प्रदेश समायेगा, उतना प्रदेश मुझे दान कर दिया जाय। मुझे और कुछ नही चाहिए।"

राजा ने कहा—"स्वीकार है।"

वामन ने त्रिविक्रम का वृहद् रूप धारण कर लिया। उनके पहले डग में सारी पृथ्वी समा गई। दूसरे में समस्त आकाश आगया। दानी महाबली नत-मस्तक हाथ जोडकर बैठा था, भगवान ने अपना तीसरा डग उसके सिर पर रखा। इस कथा से यह सिद्ध होता है कि भक्त का सिर इस ब्रह्माण्ड के विस्तार के समान है। तबसे सात चिरजीवी पुरुषो में महाबली भी एक होगया।

विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण को यह कथा सुनाई और कहने लगे, "इसी पुण्य प्रदेश में, जहा श्रीमन्नारायण तप म लीन रह चुके हैं, और जहा कश्यप

मुनि ने देवों की रक्षा के लिए वामन को जन्म दिया, मैं रहता हू । मेरा आश्रम यहींपर है । राक्षस लोग मेरे हवन-यज्ञादि कर्मों में विघ्न डालकर मुझे परेशान करते रहते हैं । अब चूकि तुम आ गये हो, उनका अत अनिवार्य समझना चाहिए ।"

जब तीनो आश्रम में पहुचे तो वहा के तपस्वी लोग बहुत प्रसन्न हुए । सबने एक-एक करके मुनि को प्रणाम किया । राजकुमारो का भी खूब स्वागत-सत्कार हुआ ।

लेकिन श्री रामचद्र तो राक्षसो का दलन करने को आतुर हो रहे थे । उन्होने विश्वामित्रजी से विनयपूर्वक कहा, "आप आज ही यज्ञ-कार्य में प्रवृत्त हो जाइये ।"

विश्वामित्रजी ने श्रीराम का कहना स्वीकार कर लिया । यज्ञ-विधि से पूर्व जो दीक्षा ली जाती है, मुनि ने वह उसी रात ले ली ।

दोनो कुमार दूसरे दिन बडी जल्दी ही उठ बैठे । यज्ञ-शाला में ऋषि बैठे हुए थे । श्रीराम ने उनसे पूछा, "राक्षस लोग कब दिखाई देंगे ? हमसे कोई चूक न हो जाय, इसलिए हमें उनके सबध में सबकुछ बता देने की कृपा करें ।"

वहा उपस्थित तपस्वी लोग युवा रामचद्र की बातें सुनकर बड़े प्रसन्न हुए । उन्होने कहा, "हे राजकुमार, विश्वामित्रजी मौन धारण कर चुके हैं । इसलिए वह अभी छह दिन नही बोलेंगे । छह दिन और छह रात तुम दोनो भाई एकदम जागृत रहकर यज्ञ की रक्षा करो ।"

दोनो तरुण राजकुमार धनुष-बाण लिये छह दिन बिना विश्राम के यज्ञ-शाला की रखवाली करते रहे । छठे दिन सुबह राम ने छोटे भाई लक्ष्मण से कहा, "आज हमें बहुत सावधान रहना चाहिए । मुझे लगता है कि आज राक्षस अवश्य आयेंगे ।"

राम ने जैसे ही यह कहा कि अग्निकुण्ड में अग्नि प्रज्वलित हो उठी । अग्निदेवता को पता चल गया था कि राक्षस आकाश में मडराने लगे हैं । यज्ञ-विधिया क्रम से चल रही थी । तभी एकाएक ऊपर से किसीके गर्जन-का-सा शोर हुआ । राम ने सिर उठाकर देखा । मारीच और सुबाहु अपने परिवार-

सहित आकास से अपवित्र मास और रुधिर यज्ञवेदी पर फेंकने लगे थे। काले बादलों की तरह राक्षस लोग आकाश में छाये हुए थे। राम ने मानवास्त्र उठाया और लक्ष्मण से बोले, "तुम देखते रहो कि क्या होता है।"

ज्योही वह अस्त्र मारीच के लगा, वह दुष्ट उसकी मार से वहा से सौ योजन दूर समुद्र-तट पर जीवित ही जा गिरा।

श्रीराम ने उसके बाद आग्नेय अस्त्र का प्रयोग किया। उसके लगते ही सुबाहु वही ढेर होगया। अन्य राक्षस भी राम के अस्त्रो से निर्मूल होगये।

आकाश फिर से उज्ज्वल हो गया। यज्ञ-विधि में उत्पात करनेवाले राक्षस मारे गये और यज्ञ निर्विघ्न समाप्त होगया। विश्वामित्र बडे प्रसन्न थे। कहने लगे, "मैं राजा दशरथ का बहुत ही आभारी हू। तुम दोनो ने उनका काम कर दिया। तुम दोनो की शक्ति बडी सराहनीय है। यह आश्रम आज से फिर सिद्धाश्रम बना।" इस प्रकार ऋषि विश्वामित्र ने राजकुमारो को आशीर्वाद दिया।

उस रात दोनो भाई सिद्धाश्रम में खूब आराम से सोये और सात दिनो की अपनी थकान दूर की।

सबेरा हुआ। नित्यक्रिया से निवृत्त होकर राम और लक्ष्मण ने ऋषि के चरण छुये और पूछने लगे, "अब आगे क्या आज्ञा है?"

विश्वामित्र रामावतार के रहस्य को और उन दैवी अस्त्रो की शक्ति को जानते ही थे। फिर भी राम और लक्ष्मण के वहा आने से जो सफलता मिली उससे वह फूले न समाये। श्रीरामचद्र का और क्या सत्कार किया जाय, वह इसका विचार करने लगे। राजकुमार का सीताजी के साथ पाणिग्रहण कराने का काम अभी शेष था। यह सोच सभी तपस्वियो ने और विश्वामित्र ने रामचद्र जी से कहा, "अब हम सब मिथिलापुरी चल रहे हैं। वहा राजश्रेष्ठ जनक एक अनुष्ठान करनेवाले हैं। हमें उसीमें सम्मिलित होना है। आप दोनो राजकुमार हमारे साथ चलेंगे। राजा जनक के अद्भुत धनुष को भी रामचद्र देखें, तो अच्छा है।" और दूसरे दिन राम-लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ मिथिलापुरी की ओर चल दिये।

: १० :

भूमि-सुता सीता

विदेह देश के राजा जनक अपनी प्रजा का पालन बडे न्यायपूर्वक करते थे। वह महाराज दशरथ के पुराने मित्र थे। एक बार दशरथ ने अपने एक यज्ञ में बहुत-से राजाओ को आमत्रित किया था। अन्य राजाओ के पास तो दूत लोग निमत्रण लेकर गये थे, किंतु राजा जनक को मत्री लोग स्वय जाकर निमन्त्रित करें, ऐसा राजा दशरथ का आदेश था। इससे हम समझ सकते हैं कि राजा जनक का महाराज दशरथ कितना आदर करते थे। जनक केवल शूरवीर ही नही थे, वह सभी शास्त्रो के ज्ञाता, वेद-वेदागो में प्रवीण, नियमपालक और ज्ञानी पुरुष भी थे। भगवान कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुए कर्मयोग से सिद्धि प्राप्त करनेवालो में जनक राजा का उदाहरण दिया था। जब देवी सीता ने उनको पिता-रूप में स्वीकार किया तो, फिर उनके विषय में अधिक कुछ कहने को नही रहता।

राजा जनक ने एक बार एक यज्ञ करने का निश्चय किया और उसके लिए उपयुक्त स्थान पसद किया। जमीन को जोतकर नरम और समतल किया गया। हल उन्होने स्वय चलाया। जिस समय वह हल चला रहे थे, उन्हें अत्यत तेजोमय और सुदर बालिका मिट्टी में लिपटी हुई दिखाई दी। निस्सतान राजा जनक के मन में सहसा यही भावना हुई कि धरती माता ने दया करके उन्हे यह कन्या प्रदान की है। बडे आनद के साथ उन्होने उस नन्हीं बालिका को गोद में उठा लिया और अपनी रानी के पास ले जाकर बोले, "देखो, यह कैसा अनमोल रत्न हमें प्राप्त हुआ है। यज्ञभूमि में मैंने इसे पाया है। आज से हम संतानवान होगये।"

रानी ने बालिका को छाती से लगा लिया। उन्हें ऐसा लगा जैसे वह उनकी कोख से ही पैदा हुई हो।

भूदेवी के सौंदर्य को हम पूरी तरह से देख नही पाते। श्यामल शस्य जब सूर्य की किरणो से प्रभासित होता है, तब हम उसका यत्किंचित सौंदर्य ही देख पाते हैं। देवी सीता जब राजा जनक के हल के फल से ऊपर उठीं, तबके सौंदर्य का वर्णन करना कठिन है। कवि कबन ने गाया है कि क्षीरसागर से उत्पन्न महालक्ष्मी भी यदि उस समय सीतादेवी का सुदर रूप देखती, तो विस्मित हो जाती। इस दैवी बालिका का राजा जनक और उनकी रानी बडे ही यत्न और प्यार से पालन-पोषण करने लगे।

कन्या सीता अब विवाह योग्य होगई। जनक को चिंता होने लगी कि अब तो यह बडी हो रही है। इसे अलग कैसे किया जायगा ? ऐसी कन्या के लिए योग्य वर कहा से मिलेगा ? वरुण ने राजा जनक को तूणीरसहित एक रुद्र-धनुष उपहार में दिया था। इस रुद्र-धनुष को शक्तिवान, तेजस्वी और अति बली पुरुष ही हिला-डुला सकता था। राजा ने सोचा कि जो इस धनुष का सधान कर सकेगा, उसीके साथ अपनी पुत्री का विवाह करूगा। यह सोचकर उन्होंने घोषणा की कि जो कोई राजकुमार इस पुरातन, दैवी रुद्र-धनुष को उठायेगा और उसे झुकाकर जो इसकी प्रत्यचा चढावेगा, उसीके साथ सीता का पाणिग्रहण होगा।

राजकुमारी सीता की ख्याति तो सब जगह फैली हुई थी ही। उसे पाने की इच्छा से कई राजा और राजकुमार जनक के दरबार में आये। किंतु वे सभी धनुष को देखकर ही अवाक् होकर चले गये।

: ११ :

सगर और उनके पुत्र

विश्वामित्र के नेतृत्व में तपस्वीगण बैलगाडियो में बैठकर मिथिलापुरी की ओर रवाना हुए। आश्रम के पक्षी और मृग भी उनके साथ-साथ चलने लगे। पर विश्वामित्र ने उन्हे स्नेह से रोक दिया।

जब ये लोग शोन नदी पर पहुचे, तब शाम होगई थी। सबने रात वही बिताई। विश्वामित्रजी ने राजकुमारो को कई प्राचीन कथाए सुनाई। दोनो राजकुमारो को वे कथाए बहुत अच्छी लगी। सुबह सब उठे और नदी पार की। नदी गहरी नही थी, इसलिए चलकर ही पार कर ली। मध्यान्ह के समय गगा-तट पर पहुचे। सबने गगाजी में स्नान किया। देवताओ, ऋषियो और पितृगण को याद करके तर्पण किया। वहा कुछ भोजन भी तैयार किया गया। पूजा करके भोजन किया। दोपहर को सब विश्वामित्रजी के चारो ओर बैठ गये।

राजकुमारो ने विश्वामित्र से कहा—"मुनिवर, हम गगाजी का वृत्तात सुनना चाहते है। हमें वह सुनाने की कृपा करें।"

विश्वामित्रजी ने गगावतरण की कथा प्रारभ की

पर्वतराज हिमवान के सर्वलक्षण-सपन्न दो पुत्रिया थी। बडी पुत्री को देवो ने मागा। हिमवान ने उसे आकाश भेज दिया। छोटी उमा शकर को प्राप्त करने के लिए उनका ध्यान करके कठोर तप में लीन होगई। उसमें वह सफल हुई। महादेव शकर ने उमा से पाणिग्रहण कर लिया। हिमवान की दोनो लडकियो ने इस तरह पवित्र स्थानो को प्राप्त कर लिया।

पापमोचिनी गगा उन दिनो आकाश में ही वास करती थी।

इधर अयोध्या के राजा सगर सतान-प्राप्ति की अभिलाषा से अपनी दोनो रानियो केशिनी और सुमति के साथ हिमालय में तपस्या कर रहे थे। भृगु मुनि राजा के तप से प्रसन्न हुए और आशीर्वाद दिया कि उन्हें पुत्र-लाभ

होगा। उन्होने कहा, "हे वीर, तुम्हें पुत्र और यश दोनो प्राप्त होगे। तुम्हारी पत्नियो में से एक के तो एक ही पुत्र होगा। उससे तुम्हारा वश बढेगा। दूसरी से साठ हजार पराक्रमी पुत्र पैदा होगे।"

राजा ने मुनि को प्रणाम किया और पूछा, "स्वामिन्, दोनो रानियो में किसके एक लडका होगा और किसके गर्भ से साठ हजार राजकुमार उत्पन्न होगे ?"

ऋषि ने उत्तर दिया, "जिसके एक लडका होगा, उसके द्वारा वश की वृद्धि होगी, और दूसरी के साठ हजार राजकुमार खूब बल और यश प्राप्त करेंगे। दोनो रानिया स्वय निर्णय कर लें कि उन्हे किस प्रकार की सतति चाहिए।"

लोगो की रुचिया और इच्छाए भिन्न भिन्न होती हैं। केशिनी ने कहा कि उसे एक ही पुत्र पसद है, जिससे वश चलता रहे। सुमति ने कहा कि मुझे तो हजारो पुत्र पसद हैं, जो नामी और पराक्रमी हो। मुनि ने आशीर्वाद दिया कि उनकी इच्छाए पूरी हो। राजा सगर प्रसन्न मन से अपनी पत्नियो के साथ अयोध्या लौट आये।

समय होने पर केशिनी ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम असमजस रखा गया। सुमति के गर्भ से एक पिण्ड पैदा हुआ। उसमें से ऋषि के वचनानुसार साठ हजार पुत्र निकले। दाइयो ने इन हजारो कुमारो के पालने का काम अपने हाथ में ले लिया और भली प्रकार उन्हें सम्हाला। ये साठ हजार राजकुमार युवावस्था को पहुचे। बडे तेजस्वी हुए। केशिनी का पुत्र असमजस जैसे-जैसे बढ़ता गया, वैसे-वैसे क्रूर और मूर्ख बनता गया। नगर के खेलते-कूदते बालको को पकडकर नदी-नालो में फेंक देता और उन्हें तडपते देखकर तालिया बजाकर खुश होता था। ऐसे पागल राजकुमार को प्रजा कोसने लगी। राजा से लोगो ने प्रार्थना की कि असमजस को देश से बाहर निकाल दिया जाय। राजा क्या करता। मान गया। असमजस तो था क्रूर और पागल, किंतु उसके एक लडका पैदा हुआ, जिसका नाम था अशुमान। वह बडा सुशील, विवेकी और वीर था।

सगर राजा ने एक बार अश्वमेध-यज्ञ का आयोजन किया। यज्ञ के घोडे की रक्षा अशुमान के जिम्मे थी। इद्र के मन में खोट आई और एक राक्षस का भेष घरकर वह घोडे को चुराकर ले गया।

देवो को अश्वमेघ-यज्ञ में वाघा डालने की आदत पड गई थी। इसका कारण भी था। मनुष्य राजाओ के अश्वमेघ-यज्ञ करने से इनको अपने पद का महत्व घट जाने का डर रहता था। किंतु विघ्नो के वावजूद यदि यज्ञ पूरा हो जाता तो देवतागणो को उसमें शामिल होकर हवि स्वीकार करनी ही पडती थी। उससे राजा को यज्ञ का फल मिल जाता था।

जव राजा सगर को पता चला कि उनका घोडा चुरा लिया गया है तो उन्हें वहुत वुरा लगा। उन्होने अपने साठ हजार पुत्रो को वुलाकर कहा, "जैसे भी हो, खोये हुए घोडे का पता लगाओ, चाहे सारे भूमण्डल का ही चक्कर क्यो न काटना पडे। यज्ञ का अश्व खो जाने से उससे सवधित जनों का अनर्थ हो सकता है। इसलिए पृथ्वी, पाताल, सव जगह जाकर खोज की जाय।" सभी राजकुमार चारो ओर खोज में लग गये। वडा शोर मचा। लोगो को पकड-पकडकर पूछा जाने लगा कि घोडा किसने चुराया है।

लेकिन पृथ्वी पर कही भी घोडे का पता न चला। तव राजकुमारो ने धरती को खोदकर अदर घोडे की तलाश प्रारभ की। वहा उन्हें दिग्गज मिलें। उन गजो को नमस्कार करके राजकुमार इधर-उधर घोडे को ढूढने लगे। ढूढ़ते-ढ़ढते पाताल की पूर्वोत्तर दिशा में उन्होने अपने घोडे को देखा। वही महाविष्णु कपिल भी समाधि लगाये वैठे थे। घोडा उनके पास ही चर रहा था। सगर-पुत्रो ने शोर मचाया, "देखो, कैसा चोर है, जो घोडे को चुराकर यहा छिपा रखा है और अव समाधि का ढोग कर रहा है।" इतना कहकर वे कपिलदेव पर टूट पडे।

समाधि-अवस्था से इस प्रकार जगाय जाने पर कपिलदेव ने आखें खोली। उनके मुह से एक हुकार निकली और उस हुकारसे साठो हजार राजकुमार वही-के-वही जल कर भस्म हो गये। यह इद्र की करतूत थी। उसीने घोडे को पाताल में कपिल के पास छिपा दिया था। उसके इस कृत्य से सगर-पुत्र भस्म हो गये।

: १२ :

गंगावतरण

राजा सागर चिंता में पड गये कि अश्व की तलाश में गये हुए उनके साठ हजार पुत्रो में से कोई भी वापस क्यो नही आया ? उन्होने काफी दिन प्रतीक्षा में निकाले। अत में अपने पोते अशुमान को बुलाकर कहा, "अभी तक तुम्हारे साठ हजारो चाचाओ का कोई पता नही चला। वे सब पाताल की ओर गये थे। तुम बडे वीर हो। कुशल योद्धा हो। हथियार-बद फौज लेकर तुम उनकी खोज को जाओ। तुम्हारा मगल हो! तुम्हे सफलता मिले।"

जिस मार्ग से उसके हजारो चाचा नीचे गये थे उसी मार्ग से अशुमान पाताल गया। उसे भी दिग्गज मिले। उन्हें प्रणाम करके अशुमान ने अपने वहा पहुचने का हेतु बताया। दिग्गजो ने उसे आशीर्वाद दिया और कहा कि उसे कार्य में सिद्धि प्राप्त होगी। इससे अशुमान का उत्साह बढा। वह आगे चला। एक स्थान पर उसने राख का एक बडा ढेर देखा और पास में अपने अश्व को भी चरता हुआ पाया। यह सब देखकर उसे बडा आश्चर्य हुआ।

वही उसकी माता सुमति के भाई गरुड भी दिखाई दिये। वह बोले, "अशुमान, घबराओ नही। यह राख तुम्हारे चाचाओ की है। कपिलदेव की हुकार से उनकी यह गति होगई है। हे वत्स, अपने घोडे को वापस ले जाओ और अपने पितामह से कहो कि यज्ञ पूरा करें। यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे पितृगण सद्गति पायें तो इसके लिए स्वर्गलोग से गगा को पृथ्वी पर लाना होगा। उस जल में यदि यह भस्म प्रवाहित कर दी जाय तो सगर-पुत्रो की सद्गति हो जायगी।"

अशुमान घोडे को लेकर तेजी से अयोध्या पहुचा और अपने पितामह सगर को सारा वृत्तात कह सुनाया।

अपने प्यारे पुत्रो का दुखद अत सुनकर राजा सगर शोक-विह्वल

हो उठे। फिर भी यज्ञ का घोडा वापस मिल गया था, इसलिए उन्होंने किसी तरह यज्ञ-विधि पूरी की। लेकिन वह सदा यही सोचते रहे कि गगा को कैसे आकाश से पाताल में लाया जाय ? इसी चिंता में वह दिन-पर-दिन क्षीण होते गये और एक दिन पुत्रो के शोक में उन्होंने अपने प्राण छोड दिये।

रामायण में कहा गया है कि सगर ने तीस हजार वर्ष तक राज्य किया। इन सख्याओ से हमें घबराना नही चाहिए। यहा सहस्र का अर्थ अनेक लेना चाहिए। इसी प्रकार साठ हजार पुत्रो का अर्थ भी यही है कि उनके अनेक पुत्र हुए थे। यदि कोई इन सख्याओ को यथार्थ भी मानें भी तो कोई विशेष बात नही है।

सगर के बाद अशुमान, अशुमान के बाद दिलीप, दिलीप के बाद भगीरथ अयोध्या के राजा हुए। अशुमान और दिलीप दोनो बडे नामी राजा हुए थे। प्रजा उन्हे प्यार करती थी। किंतु वे दोनो ही राजा अपने दिल में इस दु ख को लेकर मरे कि उनसे अपने पितृव्यो को सद्गति प्राप्त कराने के लिए स्वर्ग से गगाजल लाने का काम नही हो सका।

दिलीप के बाद उनका पुत्र भगीरथ अयोध्या का राजा हुआ। उसके कोई सतान नही होती थी। उसके लिए और गगा को पृथ्वी पर लाने के लिए भी उसने तपश्चर्या करने का निश्चय किया। वह राज्य का भार अपने मत्रियो को सौंपकर गोकर्ण पर पहुचा और दीर्घ तपश्चर्या में लीन हो गया। उधर सूर्य की गरमी और अपने चारो ओर आग की तपन सहन करते हुए भगीरथ ने अनेक वर्ष तक उग्र तप किया। वह महीने में केवल एक बार कुछ थोडा-सा भोजन करता था। आजकल भी यदि कोई कार्य-सिद्धि के लिए अटूट यत्न करता है तो उसे भगीरथ प्रयत्न कहते है।

प्रजापति ब्रह्मा ने भगीरथ की तपस्या से सतुष्ट होकर दर्शन दिये और पूछा, "क्या चाहिए ?"

भगीरथ ने कहा, "भगवन्, यदि आप मेरे ऊपर दया करना चाहते हैं तो मुझे पुत्र-धन दीजिये, जिससे हमारा वश चलता रहे। दूसरी बात यह कि आकाश से गगा नीचे की ओर प्रवाहित हो, जिससे मैं अपने पूर्वजो की

भस्म को उसमें प्रवाहित कर सकूं और वे सद्गति प्राप्त करें। यही मेरी प्रार्थना है। अपने कुल के उद्धार के लिए आपसे मैं ये दो वर माग रहा हू। मेरे ऊपर कृपा करें।"

ब्रह्मा बोले, "तुमसे समस्त देवता प्रसन्न है। तुम्हारी मागें पूरी हो जायगी। किंतु एक बात है। जब ऊपर से गगा नीचे की ओर आयगी तो उसका वेग इस पृथ्वी से सहन कैसे होगा? केवल उमापति शकर ही गगा का वेग सहन कर सकते हैं। इसलिए तुम शकर का ध्यान करो।"

भगीरथ ने हिम्मत न हारी। भगवान शिव को लक्ष्य करके उन्होंने अनेक वर्ष खान-पान के बिना कठोर तपश्चर्या की। महादेव प्रसन्न हुए, भगीरथ के सामने आये और कहने लगे, "तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी। गगा जब नीचे की ओर बहने लगेगी तो मैं उसे सम्हाल लूगा।"

महादेव ने जब यह आश्वासन दे दिया तो ब्रह्मा के आदेशानुसार स्वर्ग से गगा नीचे की ओर भयकर वेग के साथ उतरी। भगवान शिव जटाए खोले खडे थे। गगा बडे जोर से उनके सिर पर गिरी। उसने सोचा कि वह शकर को भी अपनी शक्ति से पाताल में धकेल देगी। पर शिवजी के सामने उसका गर्व कैसे चलता? गगा के पूरे वेग और प्रवाह को भगवान शिव ने अपनी जटाओ में समेट लिया। गगा ने जटा-जाल से बाहर आने का बडा प्रयत्न किया, किंतु वह निष्फल रही।

इधर भगीरथ चिंता में पड गये कि यह क्या हुआ? गगा का प्रवाह दिखाई ही नही दे रहा था! उन्होंने फिर शकर का ध्यान करके तप प्रारभ किया। महादेव का हृदय पिघला और उन्होंने गगा को बिंदु-रूप में धीरे-धीरे छोडा। वहा से वह सात शाखाओ में बडी नम्रता के साथ प्रवाहित हुई। उसकी तीन शाखाए पूर्व की ओर और तीन शाखाए पश्चिम की ओर बहने लगी। सातवी शाखा भगीरथ के पीछे-पीछे चली।

भगीरथ के आनद का ठिकाना न था। अपने पूर्वजो के उद्धार की कल्पना से वह फूले न समाते थे। वह विजय-भाव से रथ में बैठकर आगे-आगे चले और उनके पीछे-पीछे गगा की धारा उछलती-कूदती बढने लगी।

जल के जीवो से भरी हुई गगा विजली की तरह चमकती हुई दिखाई देने लगी। इस मनोहर दृश्य को देखने के लिए आकाश में देव और गधर्व इकट्ठे होगये। कही उसकी गति धीमी होती थी तो कही तीव्र, कही वह अधोमुख हुई तो कही उन्नत मुख। उसका यह मनमोहक नृत्य राजा भगीरथ के रथ के पीछे-पीछे होता जा रहा था। उसे देखने के लिए देव और गधर्व भी साथ-साथ चले जा रहे थे। मार्ग में जह्नु ऋषि हवन कर रहे थे। मस्त गगा ने उनकी परवा न की और उसने उनकी यज्ञ-अग्नि को बुझा डाला। जह्नु को वडा बुरा लगा। उन्होने गगा के सारे प्रवाह को हथेली में लेकर आचमन कर डाला।

भगीरथ ने पीछे मुडकर देखा तो वह चौक पडे। उन्होने देवर्षिगण के साथ जह्नु को प्रणाम किया और गगा को क्षमा करके वाहर छोडने की प्रार्थना की, जिससे उनके पूर्वज मुक्ति पा सकें। ऋषि को दया आई और अपने दाहिने कान के द्वारा गगा को वाहर छोड दिया। देवगण वहुत प्रसन्न हुए। उन्होने गगा से कहा, "तुम अव जह्नु की पुत्री समझी जाओगी। हम तुम्हें 'जाह्नवी' नाम देते है। उसके वाद विना किसी प्रकार की रुकावट के गगा समुद्र में जा मिली।

सगर-पुत्रो के पृथ्वी खोदने के कारण समुद्र का नाम सागर हुआ। वहा से गगा पाताल में, जहा सगर-पुत्रो की भस्म पडी हुई थी, पहुची। भगीरथ ने अपने पितृजनो का उदक-कर्म किया और उन्हें उत्तम लोक में पहुचा दिया।

भगीरथ के इसी प्रयत्न के कारण गगाजी का नाम 'भागीरथी' पडा है।

विश्वामित्र कहने लगे, 'हे राम, तुमने अपने पूर्वज सगरपुत्रों से खुदे हुए सागर का इतिहास और भगीरथ के कठोर प्रयत्नो से लाई गई गगा का वर्णन सुना। तुम्हारा कल्याण हो। अव शाम होगई। तुम्हारे पूर्वज राजा के यत्न से पृथ्वीवासियो को यह गगा मिली है। चलो, इसमें उतरकर संध्या-वदन करें।"

: १३ :

अहल्या का उद्धार

विश्वामित्रजी के सब सहयात्री एक दिन विशाला नगरी में ठहरे। दूसरे दिन प्रात काल उठकर वे मिथिला को चल पडे।

जब जनक की राजधानी थोडी ही दूर रही तो उन्होने राह में एक रमणीय आश्रम देखा। आश्रम अत्यत सुदर होने पर भी निर्जन दिखाई पड रहा था।

श्रीराम ने विश्वामित्रजी से पूछा, "इस आश्रम में कोई तपस्वी क्यो दिखाई नही देता ? यह प्रदेश इस प्रकार निर्जन क्यो है ?"

मुनि कहने लगे, "तुमने ठीक प्रश्न किया। यहा का वृत्तात तुम्हे अवश्य जानना चाहिए। यह आश्रम ऋषि गौतम का है, पर इस समय इसको शाप लगा है। पहले गौतम यही रहा करते थे।"

ब्रह्मर्षि विश्वामित्र ने बताया कि बहुत दिनो पहले गौतम और उनकी पत्नी अहल्या यहा आनदपूर्वक रहा करते थे। उन लोगो के नित्य नियमो में, तप और यज्ञ में कोई रुकावट नही थी। लेकिन एक दिन उनके घर में एक दुर्घटना होगई। अहल्या का रूप तीनो लोको में प्रसिद्ध था। एक दिन जब ऋषि कुटी से बाहर थे तभी इद्र गौतम ऋषि के भेष में मोहाध होकर उनके आश्रम में घुस गया। उसने अहल्या से अपनी इच्छा प्रकट की। अहल्या को पता चल गया कि यह देवेंद्र है, मुनि नही, तो भी उसे अपने सौंदर्य पर घमड हो आया और वह बुद्धि खो बैठी। चरित्र-भ्रष्ट होगई। जब होश में आई तो इद्र को चेताया कि, "तुम अब यहा से शीघ्र निकल जाओ। ऋषि के लौटने का समय होगया है।" इद्र उसको धन्यवाद देकर चलने ही लगा था कि गौतम मुनि स्नान-जपादि से निवृत्त होकर घर लौटे।

गौतम मुनि का तपोबल इतना प्रखर था कि उससे देव-दानव सभी

डरते थे। स्नान करके शरीर को गीले कपडो से लपेटे, तेजोमय मुखमंडल के साथ, हाथ में होम के लिए दर्भ और समिधाए लिये वह घर आ रहे थे। द्वार पर आते ही उन्होंने इद्र को अपने भेष में देखा। गौतम मुनि को देखकर इद्र सिटपिटा गया और डर के मारे कापने लगा। दीन होकर वह मुनि के चरणो में गिर पडा।

मुनि ने इद्र से कहा, "मूर्ख पापी, तूने यह कैसा अनिष्ट कार्य कर डाला ? मेरे आश्रम में, मेरा रूप धारण करके, यह क्या पापाचरण तूने किया ? जा, आज से तू नपुसक वन जा।"

क्रुद्ध मुनि के शाप से इद्र बहुत पछताया। देवगण बहुत दुखी हुए। मुनि ने अपनी पत्नी को प्रायश्चित्त करने का आदेश दिया, "तुम केवल हवा के आधार पर विना कुछ खाये-पिये अदृश्य बनी रहो और राख के ऊपर सोई रहो। तुम कई वर्ष इसी अवस्था में पडी रहोगी। एक दिन काकुत्स्य रामचद्र यहापर आयगे। आश्रम में उनका पदार्पण होने से ही तुम्हारा पाप छूटेगा। तुम उनका स्वागत तथा अतिथि-सत्कार करना। तव तुम फिर से शाप-मुक्त होकर अपने स्वाभाविक गुण और रूप को पा जाओगी। और तव हम फिर साथ रहने लगेंगे।"

विश्वामित्र कहने लगे, "इस प्रकार गौतम मुनि ने अपनी पथभ्रष्ट पत्नी को त्याग दिया और हिमाचल की ओर तप करने चले गये। अव चलो, हम आश्रम में प्रवेश करें। असहाय अहल्या को अव उसके दुःख से मुक्ति मिले।"

ऋषि की आज्ञानुसार रामचद्र ने आश्रम में पदार्पण किया। दूसरे लोग भी उनके साथ हो लिये। राम के पाद-स्पर्श से राख में छिपी अहल्या शाप से मुक्त होकर अतुल शोभा के साथ आ खडी हुई।

कहा जाता है कि सृष्टिकर्त्ता ने दुनियाभर की सुदरियो का सौंदर्य एकत्र करके उसे अहल्या में डाल दिया था। अहल्या कई वर्ष तक प्रायश्चित्त करती रही थी। उसने अपनेको वेल-पत्तो से छिपा लिया था। शर्म से वह किसी-के सामने नही आती थी। राम जव आश्रम में आये तब वह हिम से

आच्छादित चद्रमा की तरह, धूम्र से आवृत्त अग्नि की तरह और विचलित जलाशय में सूर्यबिंब की तरह दीख रही थी। राम और लक्ष्मण ने शाप-मुक्ता देवी को चरण छूकर प्रणाम किया। ऋषि-पत्नी ने भी बडे आनद के साथ दशरथनदन का अर्घ्य-पाद्यादि से सत्कार किया। उस समय आकाश से पुष्पवृष्टि हुई। महापाप से छूटकर अहल्या फिर से देवकन्या की तरह शोभित हो उठी। उसी समय गौतम मुनि भी वहा वापस आ पहुचे।

अहल्या की कथा रामायण में इसी प्रकार दी गई है। पुराणो में इस कथा का वर्णन किंचित भिन्न रूप में किया गया है, पर उससे हमें परेशान होने की आवश्यकता नही।

यहा कुछ रुककर आजकल के लोगो को, जो रामायण, महाभारत आदि पढते हैं, दो-चार शब्द कहना चाहता हू।

हमारे पुराणो में देव, असुर और राक्षसो का बार-बार जिक्र आता है। राक्षसकुल के लोग अधर्म से न डरनेवाले दुराचारी होते थे। असुर भी वैसे ही होते थे। कभी-कभी इन दुष्ट कुल के लोगो में भी एकाध अच्छा सदाचारी ज्ञानी पैदा हो जाता था। उसी प्रकार अच्छे कुल में भी कभी-कभी कोई दुराचारी पैदा हो जाता था। किंतु सामान्य रूप से राक्षस और असुर दुष्ट कर्मो में ही खुश होते थे।

अपनेको पडित माननेवाले कुछ लोग यह समझने लगे हैं कि हमारे रामायणादि पुराणो में दक्षिणवासी द्रविडो को राक्षस और असुर कहा गया है। यह कथन एकदम निराधार और मूर्खतापूर्ण है। देवो का यह गुण बताया गया है कि वे धर्म से विचलित होने से डरते थे। उनका प्रधान काम असुरो को बढने से रोकने का और उनको जीतने का था। राक्षस लोग तप करके असाधारण शक्ति और वर प्राप्त कर लेते थे। वे उसका दुरुपयोग करने से लज्जित नही होते थे। उस समय उन्हें हराने के लिए देव कुछ ऐसे उपाय करते थे, जो कभी-कभी एकदम धर्मपूर्ण नही कहे जा सकते थे। पर आमतौर से देव धर्म से अलग मार्ग ग्रहण नही करते थे। उनमें कभी कोई दुराचारी निकल आता था तो उसे देव समझकर क्षमा नही मिल सकती

ी। उसे अपने कर्म का फल भोगना ही पडता था।

चूकि सामान्य रूप से देव सदाचारी होते थे, इसलिए यदि उनसे कोई अपराध हो जाता था तो वह वहुत स्पष्ट दिखाई देता है, ठीक वैसे ही जैसे उजले कपडे पर कोई दाग एकदम दिखाई दे जाता है। यह स्वाभाविक है कि सदा दुराचार करनेवाले राक्षसो का अपराध हमें, रगीन कपडो में मैल की तरह, स्पष्ट दिखाई न दे।

दुराचारी लोगो के अत्याचारो को सहन कर लेना और धर्मसकट में कोई भला आदमी कुछ गलती कर बैठे तो उसको वहुत-से कटु वचन सुना देना स्वाभाविक है। किंतु वह न्यायपूर्ण नही हो सकता।

पुराणकर्त्ताओ ने कभी-कभी कुछ देवी-देवताओ को, इद्र को, रास्ता भूलनेवाला और गलतिया कर बैठनेवाला चित्रित किया है। इसपर हमें ध्यानपूर्वक विचार करना चाहिए। उन्होने ऐसी कहानिया क्यो लिखी ? अच्छे-अच्छे लोगो के पाप-कर्मो में प्रेरित होने के कारणो को हमें समझना चाहिए और सावधान रहना चाहिए। लोगो के मन में विवेक, नम्रता और भक्ति पैदा करने के लिए वाल्मीकि जैसे पुराणो के लेखको ने हमारे सामने देवताओ की कुछ समस्याए और कुछ गलतिया वताई है। वात यही है। इसको न समझकर यदि हम टीका करने लग जाय कि "वाल्मीकि भी कैसे अजीव आदमी है कि रावण को तो महादुष्ट वता दिया और राम ने जव यही काम किया, या सीता ने ऐसा कहा, तो उसके लिए कुछ भी नही कहा", तो हम निरे मूर्ख सावित होगे।

वाल्मीकि ने हमें जीवन की समस्याओ को खूव विस्तार से वताया है। वह हमारे ही हित के लिए है। राम की कथा पहले-पहल उन्होने ही दुनिया-वालो को सुनाई है। उनके कथन से ही हमें रामायण व उसके कथा-पात्रो के ुण-अवगुणो का पता चला है। अन्य किसी ग्रथ से नही। हम चाहें तो ईर्ष्या-रहित और शात-चित्त से रामायण का अध्ययन करके उससे अच्छे पाठ सीख सकते हैं।

अव अहल्या की कहानी से हमने क्या सीखा, इसपर विचार करें।

इस कथा से यही सिद्ध होता है कि यदि कोई व्यक्ति बहुत बड़ा पाप कर डाले तो भी यदि उसके मन में पश्चात्ताप की भावना हो, उसके लिए वह प्रायश्चित्त करे, किये पाप के लिए दंड भोगने के लिए तैयार रहे तो वह व्यक्ति पाप-मुक्त हो सकता है। किसीसे गलती हो जाय तो उसकी निंदा करने के बजाय खुद वैसी गलती न करे, ऐसी कोशिश हरेक को करनी चाहिए। कैसे भी ऊंचे पवित्र स्थान में क्यों न रहे, मनुष्य को सदा सावधान रहना चाहिए।

: १४ :

राम-विवाह

मिथिला में राजा जनक के यज्ञ के लिए धूमधाम से सब प्रबध किये जा रहे थे। नाना प्रदेशो से उत्तम ब्राह्मण और ऋषि लोग एकत्र हो रहे थे। सबके ठहरने के लिए यथोचित प्रबध किया गया था। विश्वामित्रजी, उनके साथी ऋषि और दोनो राजकुमारो के ठहरने के लिए भी स्थान निश्चित हो गया था। जनक के पुरोहित सदानदजी ने स्वय विश्वामित्रजी का स्वागत किया। राजा जनक भी आकर उनसे मिले।

जनक ने विश्वामित्रजी से कहा, "इस समय आपके यहा आगमन को मैं अपना अहोभाग्य मानता हू। ये दोनो कुमार कौन हैं ? देव-लोकवासियो जैसे तेजवाले ये राजकुमार कहा के हैं ? अपने आयुधो को जिस प्रकार ये धारण कर रहे हैं, उसे देखने से पता लगता है कि ये दोनो शस्त्रविद्या में बडे प्रवीण हैं। दोनो देखने में एक-जैसे लग रहे हैं। वह भाग्यशाली पुरुष कौन है, जो इनका पिता है ?"

विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण का परिचय देते हुए राजा को बताया, "राजन्, ये दोनो सम्राट दशरथ के पुत्र हैं। मैं इन दोनो को अपने यज्ञ की रक्षा के लिए अयोध्या से ले आया था। मेरे यज्ञ की रक्षा करते हुए इन दोनो ने हाल ही में अनेक राक्षसो का सहार किया है। इन्होने आपके पास जो धनुष है, उसके बारे में सुन रखा है। ये उसे देखना चाहते हैं। आप उचित समझें तो इन्हें वह धनुष दिखा दीजिये।"

जनक ने विनयपूर्वक उत्तर दिया, "मुनिवर, यदि राजकुमार राम उस दैवी धनुष को उठाकर उसपर बाण चढा सकेंगे तो मेरे जैसा सुखी और आनदित और कोई न होगा। मैं अपनी लडकी का विवाह, जिसका जन्म अति पवित्र रूप से—शारीरिक सबध के बिना—हुआ है मैं राम के साथ कर दूगा।"

अभी तक कई राजा और राजकुमार निराश होकर लौट गये हैं। राम अवश्य धनुष को देखें। मैं अभी उस रुद्र-धनुष को मडप में मगाता हू।"

धनुष लोहे के एक बहुत बडे सदूक में यत्नपूर्वक रखा हुआ था। उसे आठ पहियोवाली एक बहुत बडी गाडी में लदवाकर सैकडो लोग, रथोत्सव के समय जैसे रथ को खीचा जाता है, उसी प्रकार खीचकर सभा-मडप में ले आये।

"यह है रुद्र-धनुष। यह हमारे कुलदेवता महादेवजी का है। सीता को पाने की आशा में कई राजा इसपर तीर चढाने के लिए आये, लेकिन सब-के-सब हार मानकर चले गये। राम की इच्छा हो तो वह प्रयत्न करके देखें।" जनक ने सबके सामने सभा में कहा।

इतना सुनकर विश्वामित्रजी ने राम से कहा, "वत्स, जाओ सदूक खोलकर धनुष का दर्शन करो।"

गुरु की आज्ञा पाकर श्री रामचद्र उठे और सदूक खोलकर धनुष का दर्शन किया। फिर वह विनयपूर्वक पूछने लगे, "क्या मैं इसका स्पर्श कर सकता हू? क्या इसे उठाकर इसपर प्रत्यचा चढाने की मुझे अनुमति है?"

जनक और विश्वामित्र दोनो ने एक साथ आशीर्वाद दिया, "तुम्हारा कल्याण हो!" सभामडप में जितने लोग उपस्थित थे, सब-के-सब टकटकी लगाकर देखने लगे कि क्या होता है!

और महान आश्चर्य से लोगो ने देखा कि उस भारी-भरकम धनुष को श्रीरामचद्र ने ऐसी आसानी से उठा लिया जैसे वह कोई पुष्पमाला हो। उन्होने उसके एक सिरे को पैर के अगूठे से दबाया और मोडकर डोरी चढाने के लिए जैसे ही उसे कान तक खीचा कि जोर लगने से वह बडे कडाके की आवाज के साथ दो टूक होगया। सब काम इतनी शीघ्रता से हुआ कि देखने-वाले दंग रह गये। देवताओ ने पुष्प-वृष्टि की। जनक ने कहा, "राम, मेरी प्राणो से भी प्रिय सीता अब तुम्हारी है।"

विश्वामित्र बोले, "अब दूतो को शीघ्र ही दशरथ के पास अयोध्या-

पुरी भेज दीजिये और उन्हें विवाह के लिए निमन्त्रित कीजिये।"

उसी समय दूत भेज दिये गये। वे तीन दिनो में ही अयोध्या पहुच गये।

सिंहासन पर देवेंद्र की तरह दशरथ विराजमान थे। दूतो ने वदना की, "महाराजा की जय हो, हम शुभ सदेश लेकर आये है। ब्रह्मर्षि विश्वामित्र और राजा जनक ने हमें आपके पास भेजा है। महाराज के सुपुत्र श्रीराम ने सीता-स्वयवर के मडप में शिवजी का धनुष चढाकर उसे तोड दिया है। अब राजकुमार का विवाह सीताजी के साथ सपन्न कराने के लिए आपकी अनुमति मागने और आपको वहा ले जाने के लिए हमें राजा जनक ने यहा भेज है। आपके पधारने से सब लोग असीम सुख और आनद पायेंगे, अत आप तुरत ही सपरिवार मिथिला को पधारने की कृपा करें।"

दशरथ ने डरते हुए राम को विश्वामित्र के साथ भेजा था। इस कारण वह चितातुर थे। लेकिन ऐसी खुशी की खबर पाकर वह आनद से अभिभूत होगये। उसी समय उन्होंने मन्त्रियो को बुलाया, यात्रा का सब प्रबध करवाया और दूसरे ही दिन सपरिवार मिथिला की ओर प्रस्थान कर दिया।

राजा दशरथ मिथिला नगरी में बडे ठाटबाट के साथ पहुचे। जनक बहुत ही प्रेम के साथ उनसे मिले। उनका खूब आदर-सत्कार किया। जनक ने दशरथ से कहा, "यज्ञविधि जल्दी ही समाप्त हो जायगी। उसके बाद तुरत ही विवाह-सस्कार के कार्य शुरू कर देंगे। इसमें मैं आपकी सम्मति चाहता हू।"

"कन्या के पिता को ही सबकुछ निर्णय करने का अधिकार है। आप जो कहेंगे, वही होगा।" दशरथ ने उत्तर दिया।

और विवाह के समय सीता के हाथ को राम के हाथ में रखकर गद्गद् स्वर से जनक बोले, "मेरी यह कन्या तुम्हारे साथ धर्ममार्ग में सदा साथी होकर चलेगी। इसका पाणि-ग्रहण करो। महासौभाग्यवती, पतिव्रता, मेरी कन्या छाया की तरह तुम्हारे पीछे-पीछे चलेगी। तुमसे यह कभी अलग नही हो सकती।"

"इय सीता मम सुता, सहधर्मचरी तव ।।
प्रतीच्छ चैनां भद्र ते पाणि गृह्णीष्व पाणिना ।
पतिव्रता महाभागा छायेवानुगता सदा ।।"

सीता पाणिग्रहण के समय का यह मत्र है । आजकल भी विवाह-विधि के समय यही मत्र वोला जाता है ।

राजा जनक ने अपने प्राणो से भी प्यारी पुत्री को इस प्रकार श्री रामचद्र के हाथो में सौंप दिया । राम और सीता क्षीरसागर के पुराने प्रेमी तो थे ही । दोनो ऐसे पुलकित हुए मानो वर्षो के विछुडे दो प्रेमी फिर मे मिले हो ।

: १५ :

परशुराम का गर्व-भंजन

विश्वामित्र ने राजा दशरथ से कहा, "मै अपनी जिम्मेदारी पर राजकुमार को आपके पास से लाया था। अब मै फिर उन्हे आपको सौपता हू। विवाह का मगल कार्य भी सपन्न हुआ। अब मुझे आज्ञा दीजिये।"

इस प्रकार राजा दशरथ और जनक से विदा लेकर विश्वामित्रजी हिमालय की ओर चल दिये।

श्रीरामावतार-कथा में विश्वामित्र का भाग यही समाप्त हो जाता है। इसके बाद वह कही नही आते। राम-कथा-रूपी मदिर में विश्वामित्र को हम उसकी नीव कह सकते हैं। वाल्मीकि रामायण की यही विशेषता है कि उसके प्रत्येक काड में एक प्रधान व्यक्ति होता है। प्राय उस काड के बाद उसका उल्लेख बहुत कम या बिल्कुल नही होता। हम बालकाड के पश्चात विश्वामित्र को भी कही नही देखते। अयोध्याकाड के बाद कैकेई लुप्त हो जाती है। निषादराज गुह का भी यही हाल है। भरत का भी अधिकतम परिचय अयोध्याकाड में ही है। चित्रकूट में राम से विदा लेने के पश्चात जबतक राम फिर अयोध्या नही लौटते, भरतजी भी हमे कही दिखाई नही देते। आजकल के कथा या नाटको के पात्र तो हमे छोडते ही नही। सबके-सब बार-बार हमारे सम्मुख खडे हो जाते है। स्त्री-पात्रो पर विशेष ममता रखनेवाले हमारे साहित्यकारो को इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है।

विवाह-महोत्सव पूरा हुआ। राजा दशरथ जनक से विदा लेकर राजकुमारो, उनकी नववधुओ तथा परिवार-सहित अयोध्या लौटने लगे।

पर मार्ग में कुछ अपशकुन दिखाई देने लगे। दशरथ को चिता हुई। गुरु वसिष्ठ से पूछा, "इन अनिष्ट-सूचक चिन्हो का क्या कारण है?"

वसिष्ठ ने उत्तर दिया, "यद्यपि अनिष्ट-सूचक चिन्ह हो रहे हैं तो भी साथ-साथ अच्छी चीजें भी दिखाई दे रही हैं। इसलिए कोई विघ्न आया भी तो वह शीघ्र ही दूर हो जायगा।"

राजा दशरथ और कुलगुरु वसिष्ठ ये बातें कर ही रहे थे कि सहसा पवन की गति अत्यत तीव्र होने लगी। पेड-पौधे जड से उखडकर गिरने लगे। धरती हिल उठी। सूर्य को धूल आवृत करने लगी। दशो दिशाओ में अध-कार छा गया। सब-के-सब भयभीत होगये। कारण समझ में आने में देर न लगी। क्षत्रिय-कुल के लिए काल-रूप परशुराम सामने आकर खडे होगये थे।

धनुर्धारी परशुराम के कधे पर फरसा लटका हुआ था। उनके हाथ में एक दमकता हुआ बाण भी था। त्रिपुर-सहारी रुद्र की तरह जटाधारी परशुराम दीप्तिमान हो रहे थे। उनके मुख का तेज कालाग्नि की भाति प्रज्वलित हो रहा था। क्षत्रियकुल-सहारी जमदग्निसुत परशुराम जब कभी और जहा भी जाते थे, हवा प्रचड हो जाती थी और धरती हिल उठती थी। क्षत्रिय-कुल में तो उनके नाम से ही कपकपी पैदा हो जाती थी।

दशरथ के दल में जो ब्राह्मण थे वे आपस में बात करने लगे, "अपने पिता की हत्या एक क्षनिय राजा के द्वारा हो जाने के कारण परशुराम ने उसका बदला लेने की प्रतिज्ञा की थी। तबसे सैकडो राजाओ को उन्होने मार डाला है। हमने तो सोचा था कि उनका क्रोध अब शात होगया होगा, लेकिन अब यह यहा कूद पडे!"

डरते-डरते लोगो ने परशुराम को अर्घ्य समर्पण करके उनका सत्कार किया।

परशुराम ने सत्कार स्वीकार किया और राम की तरफ घूमकर बोले, "हे दशरथपुत्र, तुम्हारे पराक्रम के बारे में मैने बहुत सुना है। पर तुमने वह शिव-धनुष तोड भी दिया, यह सुनकर मुझे बडा आश्चर्य हुआ है। मैं तुम्हारी परीक्षा लेने आया हू। यह देखो, मेरे पास भी एक धनुप है। यह उस रुद्र-धनुष के समान ही है, जिसे तुमने तोडा है। यह महाविष्णु का दिया

हुआ है। यह मेरे पिता जमदग्नि के पास रहा करता था। यह लो, बाण भी दे देता हू। इसपर प्रत्यचा चढाकर सधान करो। यदि तुम इसे चढाने में सफल न हुए तो हम दोनो युद्ध करेंगे।"

राजा दशरथ जैसे यह सुन रहे थे, उनका दिल काप रहा था। उन्होने सोचा कि क्रूर परशुराम से किसी भी तरह राम को बचाना चाहिए। वह दीन स्वर में कहने लगे, "आप तो ब्राह्मण हैं। क्षत्रिय-जाति पर आपका क्रोध तो कभी का शात हो चुका। उसके बाद तो आप उदासीन होकर तप करने चले गये थे। मेरा लडका तो अभी बालक है। वह आपके साथ क्या लडेगा? देवेंद्र को आपने वचन दिया था कि आप फिर कभी शस्त्र न उठायगे। कश्यप के हाथ में भूमडल को सौपकर आप तो तप करने महेद्र पर्वत चले गये थे न? आपसे वचन-भग कैसे हो सकता है? राम तो हमें प्राणो से भी प्यारा है। इसे अगर कुछ होगया तो हम सब उसी क्षण मर जायगे।"

दशरथ की यह प्रार्थना परशुराम को मानो सुनाई ही न दी। उन्होने राजा की ओर मुडकर भी न देखा। वह राम से ही बातें करने लगे। उन्होने कहा

"महान विश्वकर्मा ने दो धनुषो का निर्माण किया था। दोनो ही महान शक्तिशाली थे। एक तो त्रिपुरसहारी त्र्यबक शिवजी को भेंट दिया गया और दूसरे को विश्वकर्मा ने महाविष्णु को समर्पित कर दिया। यह वही विष्णु-धनुष है। इसको मोड सकते हो तो प्रयत्न कर देखो। नही तो फिर हम दोनो लडेंगे।"

महाबली परशुराम जब ऊचे स्वर में यो बातें कर रहे थे तब मृदु वाणी में राम बोले, "जामदग्ने, सुनिये। आपने अपने पिता की हत्या का बदला लेने के लिए बहुतो की हत्या की। उसके लिए मैं आपको दोष नही देता। किंतु जैसे आपने अन्य राजाओ को पराजित किया है, मुझे नही कर सकेंगे। कृपा करके अपना धनुष मुझे दीजिये। चढाकर देखता हू।"

रामचद्र ने परशुराम के हाथ से धनुष और बाण ले लिये। जितनी सरलता से उन्होने रुद्र-धनुष उठाया था, उतनी ही सरलता से इस-धनुष को भी

मोडकर उन्होने उसपर बाण चढा दिया । तदुपरात वह मुस्कराकर बोले

"हे ब्रह्मन्, अब क्या करू ? इस बाण का कही-न-कही प्रयोग करना ही पडेगा । बताइये, कहा करू ?"

इन दो रामो के एक साथ दर्शन करने के लिए आकाश में देव, यक्ष और गधर्वो के समूह इकट्ठे होगये थे ।

परशुराम का तेज मुरझा गया और अवतार-शक्ति लोप होने लगी थी । उन्होने कहा

"हे दशरथनदन राम, आज मैंने तुम्हारी शक्ति का दर्शन पाया । तुमसे मेरा गर्व-भजन हुआ, इसका मुझे कोई दु ख नही । मै समझ गया कि तुम कौन हो । मुझसे मुक्त सारी शक्ति अब तुम्हारे अदर समाविष्ट हो जाय । किंतु तुमसे मै एक वस्तु मागता हू । कश्यप को मैंने जो वचन दिया है, उसके अनुसार मै महेद्र पर्वत के सिवा और कही रात में नही ठहर सकता । सूर्यास्त से पहले मै महेद्र पर्वत लौटना चाहता हू । उतनी शक्ति मुझे देकर मेरे शेष समस्त तपोबल को अपने बाण का लक्ष्य तुम बना डालो ।"

यो कहकर परशुराम ने रामचद्र की प्रदक्षिणा की, प्रणाम किया और वहा से चल दिये ।

: १६ :

दशरथ की आकांक्षा

चक्रवर्ती दशरथ सपरिवार—पुत्र और पुत्र-वधुओ-सहित—लौट रहे है, यह खबर अयोध्या में जब पहुची तब वहा की प्रजा को जो आनद हुआ, उसका वर्णन करना अशक्य है। राज-परिवार के स्वागत के लिए अल-कृत अयोध्या इद्रपुरी की तरह शोभायमान थी।

राम और सीता बडे ही आनद के साथ रहने लगे। उन्हें किसी बात की कमी न थी। राम ने अपना सारा हृदय सीता को सौप दिया था। इन दोनो के ऐसे गहन प्रेम का कारण उनका अनुपम गुण था, या अद्वितीय रूप—यह कहना कठिन था, क्योकि उन दोनो का जैसा मनमोहक रूप था, गुण भी उनके उसी प्रकार के थे। दोनो की एक-दूसरे के प्रति प्रीति दिनो-दिन बढती ही गई। वाणी से व्यक्त किये बिना ही एक का हृदय दूसरे के हृदय के भाव को समझ जाता था और प्रफुल्लित होता था। राम के सपूर्ण प्रेम को पाकर सीता साक्षात महालक्ष्मी की तरह शोभायमान हो रही थी।

इसके कई वर्षो के पश्चात इन लोगो का वनवास शुरू हुआ था। तब तपस्विनी अनुसूया ने राम के प्रति सीता के प्रेम को सराहते हुए कुछ शब्द कहे थे। सीता ने उसके उत्तर में यो कहा था, "राम सर्वगुण-सपन्न है। मुझ-पर उनके प्रेम की तुलना मेरे उनके प्रति प्रेम के साथ ही हो सकती है। उनका प्रेम मैंने सदा सभी अवस्थाओ में एक-सा पाया है। यह मेरे पति निर्मल विचारोवाले है और इद्रियो को वश में रखने की शक्ति इनमें खूब है। यह मेरे पति तो हैं ही, किंतु मेरी रक्षा भी इस प्रकार करते है जैसे माता-पिता अपनी सतान की करते है। ऐसे पति के प्रति श्रद्धा और प्रेम करना सर्वथा स्वाभाविक है।"

वैवाहिक दायित्व सम्हालनेवाले आजकल के युवक-युवतियो को अनुसूया से कहे हुए सीता के इन शब्दो पर ध्यान देना चाहिए । सीता के वाक्य अर्थगर्भित हैं । पति और पत्नी दोनो का प्रेम समान होना आवश्यक है । प्रेम में कभी अतर नही आने देना चाहिए । सुख में या दु ख में, क्लेश में या आनद में अपने प्रेम में परिवर्तन न लायें । पति पत्नी की वैसी ही रक्षा करे जैसे माता-पिता वच्चो की करते हैं । तभी जीवन में सफलता प्राप्त हो सकती है ।

विवाह के बाद अयोध्या में राम और सीता के वारह वर्ष वडे सुख से वीते । जो नियम सामान्य मनुष्यो के लिए वनाये, भगवान ने उन्हे अपने लिए भी स्वीकार किया । उन्होने स्वेच्छा से मानव-जन्म लिया था । सुखमय जीवन के वाद अव राम-सीता दोनो को दुख और क्लेश का अनुभव करना वाकी था ।

राजा दशरथ अपने चारो पुत्रो को खूब चाहते थे। कितु चारो में राम पर उनकी विशेष रूप से प्रीति थी । राम ने भी अपने शील और सदाचार से पिता के असाधारण प्रेम के लिए अपनेको योग्य सिद्ध कर दिया था । उनमें राजा होने के समस्त लक्षण सपूर्ण रूप में थे । उनकी माता कौशल्यादेवी अपने सर्वगुण-सपन्न पुत्र को देखकर देवेंद्र की मा अदिति की तरह फूली नही समाती थी ।

कवि वाल्मीकि ने रामायण के कई पृष्ठो में राम के गुणो का काव्यमयी भाषा में वर्णन किया है । राम के गुण-रूपी जलाशय से जल पीतेपीते वाल्मीकि की प्यास बुझती ही नही । कभी वह स्वय दशरथ-नदन के गुणो का वखान करते हैं, तो कभी दशरथ के प्रमुदित मन का वर्णन करते हुए या अन्य पात्रो द्वारा रामचद्र की स्तुति कराते हुए सर्वत्र श्रीराम के गुणो का गान करते जाते है । वैसे तो उनकी शैली विपयों को सक्षिप्त रूप में वताने की है, पर जहा राम की महिमा का प्रसग आता है, वाल्मीकि पृष्ठ-पर-पृष्ठ भरने में कजूसी नही दिखाते हैं । उनकी यही मनोकामना रही होगी कि लोग रामायण पढते हुए स्थान-स्थान पर

रघुकुलकेसरी श्रीराम के गुणो को पूरी तरह जानें और उससे अपने आचरणो को सुधारकर उन्नति की ओर चलें।

राम जैसे सुदर थे वैसे ही उनके आचरण भी मनमोहक थे। वह शरीर से भी उतने ही स्वस्थ थे। रामचद्र का निर्मल चरित्र, मृदु वचन, विद्वत्ता और राजनीति में प्रवीणता आदि को देखकर प्रजा वहुत खुश थी और वडी आतुरता के साथ प्रतीक्षा कर रही थी कि वह कव राजा वनें। दशरथ इस वात को अच्छी तरह जानते थे। वह अव वूढे भी होने लगे थे। राम के हाथो में अव वह राज्यभार सौंप देना चाहते थे। एक दिन इसी वात की चर्चा के लिए उन्होने एक वडी सभा का आयोजन किया। सभा में सम्मिलित होने के लिए उन्होने अपने सचिवो के अतिरिक्त अन्य राजाओ, देश के शिक्षित पडितो, नगर के प्रमुख लोगो तथा ऋषि-मुनियो को भी निमन्त्रित किया। राजा दशरथ ने सवका विधिवत् स्वागत किया और उचित आसनो पर विठाया। सव लोग जव अपने-अपने आसनो पर वैठ गये, तव राजा दुदुभि-नाद जैसे गभीर स्वर में वोले—

"अपने पूर्वजो का अनुकरण करते हुए मैं भी अपनी पूरी शक्ति लगाकर प्रजा का पालन करता आया हू। प्रजा को अपनी सतान समझकर उसकी भलाई का ही विचार मैंने किया है। उसके हित के लिए काम करते हुए कभी आलस्य मेरे मन में नही आया। अव मै वूढा होगया हू। शरीर भी ढीला होगया है। अपने वडे पुत्र राम के हाथो में राज्यभार सौंपकर मै आराम करना चाहता हू। जैसे मेरे पूर्वज करते आये हैं, उसी प्रकार मै भी जीवन के अतिम दिन वानप्रस्थी होकर विताना चाहता हू।

"राम को तो आप सव जानते ही हैं। वह सुशिक्षित है। राज्य-पालन, नीति-शास्त्र और शस्त्र-विद्या इन सवको वह अच्छी तरह जानता है। शत्रुओ के वल को समझनेवाला और पराक्रमी है। शीलवान है। उसके हाथो में राज्य सौंपकर मैं निश्चित हो जाना चाहता हू। आप सभी माननीय राजा और वयोवृद्ध, नगर के प्रमुख महाजन इस कार्य के लिए मुझको अनुमति दें। मेरे विचार में कोई त्रुटि दिखाई देती तो हो मुझे वतायें।"

चाहता हू। कल पुष्य नक्षत्रवाला शुभ दिन है। मालूम नही क्यो, मेरे मन में यह शुभ कार्य शीघ्र ही कर डालने की आतुरता हो रही है। अत हे प्रिय, तुम एकदम आज ही वधू सीता-सहित व्रत लेकर पूजा में बैठो ताकि मगल कार्य निर्विघ्न समाप्त हो। भरत तो दूर अपने मामा के यहा है। कैकय देश यहा से बहुत दूर है। भरत को खबर भेजी जाय और वह आये, इसमें बहुत विलब हो सकता है। तबतक यह कार्य टालने की मेरी हिम्मत नही हो रही।" राजा दशरथ ने पुत्र से अपने मन की बात बताई।

दशरथ के वचनो द्वारा कवि वाल्मीकि हमें कुछ सोचने का मसाला देते है। हो सकता है कि दशरथ को पुरानी बातें याद आगई हो। हो सकता है कि उन्हें कैकेयी को दिये गये अपने दो वरदानो का स्मरण हो आया हो। यद्यपि भरत के अति उच्च सद्गुणो से राजा भली-भाति परिचित थे, जानते थे कि राम के राज्याभिषेक का वह कदापि विरोध नही करेगा, तो भी उनके मन में कुछ अनिष्ट का आतक छा गया था। डरने लगे कि मानव-हृदय की कमजोरियो को कौन समझ सकता है? अभिषेक-कार्य भरत के लौटने से पहले ही हो जाय तो अच्छा।

दशरथ से विदा लेकर श्री रामचद्र माता कौशल्या को यह आनदप्रद समाचार स्वय सुनाने और उनसे आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए अत पुर में गये। कौशल्यादेवी के पास पहले ही खबर पहुच चुकी थी। सीता और लक्ष्मण भी वही थे। माता कौशल्या रेशमी वस्त्र धारण करके पूजा में बैठी थी। राम ने उनको पिता की आज्ञा सुनाई।

"हा, मेरे लाल, मैंने भी सुना है। दीर्घायु होओ। राज्य का भार भली प्रकार सम्हालना। वैरियो को रोकना। प्रजा और परिवारो की रक्षा में तत्पर रहना। यह मेरा अहोभाग्य है कि तुमने अपने गुणो द्वारा राजा के मन को लुभा लिया है।" कौशल्यादेवी ने राम को आशीर्वाद दिया।

राम लक्ष्मण से कहने लगे, "क्यो लक्ष्मण, तुम तो मेरे साथ राज्य का भार उठाओगे न? मै अपने में और तुममें कोई अतर नही देखता। जो कुछ मेरा होगा, वह तुम्हारा भी होगा।"

राम को लक्ष्मण के प्रति अपार प्रेम था। एकाएक बहुत ही बडा पद उन्हें मिल रहा था। फिर भी राम उससे किसी प्रकार के आवेश में नही आये। अनासक्त भाव से वह लक्ष्मण से बातें करने लगे।

इसके बाद माता कौशल्या और लक्ष्मण की माता सुमित्रा दोनो को उन्होंने प्रणाम किया और वहा से देवी सीता को लेकर अपने भवन गये। वहा राजा के आदेश से गुरु वसिष्ठ आ रहे थे। राम ने सामने जाकर सहारा देकर उन्हे वाहन से उतारा, प्रणाम किया और अदर ले गये। शास्त्रोक्त विधि से वसिष्ठ ने राम और सीता से उपवास-व्रत का सकल्प करवाया और फिर राजा के पास वापस चले गये। सारे मार्ग में लोगो की भीड लग गई थी। सभी जन अभिषेक की बातें बडी ही उत्सुकता के साथ कर रहे थे। नगर-निवासी अपने घरो के द्वार और मार्ग सजाने में सलग्न थे। कल ही तो राम का अभिषेक होना था। वसिष्ठ का रथ उस भीड को चीरता हुआ धीमे-धीमे राजभवन पहुच गया। राजा दशरथ ने आतुरता से गुरुदेव से पूछा, "व्रत और पूजा के कार्य राम ने प्रारभ कर दिये ? उपवास शुरू हो गया न ?"

दशरथ के मन में विघ्नो का आतक हटा नही था।

सारा नगर आमोद-प्रमोद में निमग्न था, लेकिन स्त्रियो का उत्साह असाधारण दीख पडता था। सबने ऐसा माना मानो उनके ही घर में कोई शुभ प्रसग हो रहा है। बच्चे, बूढे, जवान, नर, नारी सभी प्रसन्न होकर इधर-उधर घूमने लगे।

उधर श्री रामचद्र के भवन में राम और सीता दोनो ने राजा के कथनानुसार व्रत करने का निश्चय किया और भगवान नारायण का ध्यान किया। शातिपूर्वक होमाग्नि में घी की आहुति डाली। पात्र में जो घी बाकी रह गया था, उसीको प्रसाद-रूप में पाया। उसके सिवा और कुछ न खाकर धरती पर घास बिछाकर उसीपर सो गये। दूसरे दिन प्रात काल वाद्यो की ध्वनि से वे दोनो जगे।

: १७ :

उल्टा पांसा

राजघरानो की प्रथा के अनुसार रानी कैकेयी की भी एक निजी परिचारिका थी। वह कुबडी थी और रानी के दूर के रिश्ते की थी। रानी की आत्मीय मित्र बनकर उनके स्नेह को दासी मथरा ने अच्छी तरह प्राप्त कर लिया था। वह रामायण-गाथा की प्रसिद्ध स्त्री-पात्र है। हमारे देश का हरकोई मथरा के नाम को दुतकारता है। मथरा के कारण ही रामचद्र को वनवास भुगतना पडा था। यह कैसे हुआ, मथरा ने क्या किया, यह अब देखेंगे।

जिस दिन राजा ने विशेष सभा बुलाई थी और यह निश्चय किया कि दूसरे ही दिन अभिषेक होगा, उस दिन मथरा योही रानी कैकेयी के भवन की सुदर छत पर जाकर खडी हुई थी। ऊपर से उसकी दृष्टि नीचे नगर की गलियो पर पडी। उनपर पानी छिडका जा रहा था। लोग जगह-जगह तोरणों से नगर को सजा रहे थे। घरो के ऊपर झडे लगाये जा रहे थे। अच्छे भडकीले वस्त्रो से तथा आभूपणो और अन्य मालाओ आदि से सज्जित होकर लोग घूम रहे थे। जगह-जगह लोगो का जमघट लगा था। मदिरो से नाना प्रकार के वाद्य-वृदो का निनाद आ रहा था। इसमें कोई मदेह नही था कि किसी विशेष उत्सव की तैयारी हो रही थी।

पास खडी एक दासी से मथरा ने पूछा, "क्या बात है ? तूने यह रेशमी साडी आज क्यो पहन रखी है ? धन को खर्च करने में बहुत मोच-विचार करनेवाली महारानी कौशल्या कैसे आज ब्राह्मणो को बडी उदारता के साथ दक्षिणा दे रही है ? जहा देखो वहा बाजा और गाना सुनाई दे रहा है ? आज कौन-सा मेला है ? क्या तुझे कुछ पता है ?"

दूसरी दासी उमर में छोटी थी। उछल-कूदकर जोर से कहने लगी, "तुम्हे

यह भी नही पता कि हमारे श्रीरामचद्रजी का कल अभिषेक होनेवाला है ?"

यह बात सुनते ही मथरा के मन में बडी बेचैनी पैदा होगई। उसने मुह से एक शब्द भी नही निकाला। तेजी से सीढिया उतरी और सीधे कैकेयी के कमरे में गई। कैकेयी लेटी हुई थी। उसको सबोधित करके मथरा चीखने लगी, "अरी पगली, तुम्हे तो सोते रहने के अलावा, बाहर क्या हो रहा है, इसका कुछ भी ज्ञान नही है ? उठो तो सही ? तुम्हे धोखा दे दिया गया है। भारी अनर्थ होगया। उठो, अब भी सम्हलो।"

कैकेयी घबराई। उसने सोचा कि मथरा को कोई पीडा हुई है। उससे प्यार से पूछा, "मथरा, तुम्हे क्या कष्ट है ? क्यो रो रही हो ? रोना बद करके बताओ, क्या बात है ?"

मथरा बडी चतुर थी। बोली, "तुम्हारे और मेरे ऊपर वज्रपात हो गया है। अभी-अभी मैंने सुना है कि राम युवराज बनने जा रहे है। इससे भयकर और क्या बात हो सकती है ? यह बात सुनकर मुझसे रहा नही गया। भागी-भागी तुम्हारे पास आई हू। कैसे अच्छे राजकुल में तुम पैदा हुई। यहा दशरथ की सबसे प्यारी रानी बनकर हुक्म चलाती रही। अब तुम्हारा यह सारा वैभव नष्ट हो रहा है। राजा ने मीठी-मीठी बातो से तुम्हें छल लिया। यह तो महाकपटी निकला। सब-कुछ अब कौशल्या का हो जायगा। तुम भटकती ही रह जाओगी। भरत को जान-बूझकर दूर भेज दिया गया है और कल ही राम का युवराजाभिषेक हो जानेवाला है। तुम्हें तो जैसे कोई चिता ही नही। सोई पडी हो। तुम और तुम्हारे भरोसे रहनेवाले हम सब अब डूब गये।"

मथरा यो कुछ-न-कुछ कहती ही गई। यद्यपि कैकेयी के कानो में उसकी बातें पडती थी, पर उसने उनपर ध्यान नही दिया। उसका ध्यान एक ही वाक्य पर आकर्षित हुआ। वह सहसा बोल उठी, "क्या कहा तुमने ? हमारा पुत्र राम कल युवराज बनेगा ? बडी खुशी की बात है यह तो। यह लो मेरा मुक्ताहार। इसे मैं तुम्हें उपहार में देती हू। तुम ऐसी अच्छी खबर लाई हो। और भी जो चाहो माग लो। मै देने को तैयार हू।"

राज-कुटुव के लोग सदा मगल-समाचार लानेवालो को बडी उदारता के साथ उसी समय कुछ-न-कुछ दे देते थे।

कैकेयी ने सोचा कि मथरा व्यर्थ घवरा रही है। आखिर दासी ही ठहरी। ऊचे घरो की वार्ते यह क्या समझे। इसका डर मूर्खतापूर्ण है। इसे आभूषण देकर खुश कर दूगी और इसके भय को हटा दूगी।

कैकेयी उच्च सस्कारवाली स्त्री थी। वह काफी देर तक मथरा को समझाती रही, पर मथरा ने हार न मानी। उसने कैकेयी के दिये हुए मोती के हार को उतारकर धरती पर पटक दिया। "अरी मूर्खा, छाती कूटकर रोने के वदले तुम हँस रही हो। तुम्हारी जीवन-नौका तो डूब रही है। मेरी समझ में नही आ रहा है कि तुम्हारे इस व्यवहार को देखकर मै हँसू या रोऊ ? तुम्हारी सौत कौशल्या तो बडी होशियार निकली। किसी तरह राजा को मनवाकर अपने लडके को कल गद्दी पर विठवा रही है। उसे तुम 'बडी अच्छी खबर' कहती हो! तुम्हारी बुद्धि को मैं क्या कहू। कभी तुमने सोचा भी कि राम यदि राजा बन गये तो भरत की क्या दशा होगी ? राम तो हमेशा भरत को अपने रास्ते का काटा समझकर उसे दूर करने को ही तत्पर रहेगा। उसे वह अपना वैरी समझेगा। उससे डरेगा। राजगद्दी पर बैठते ही राम भरत से डरने लगेगा। डर के कारण से ही तो हम साप को देखते ही मार डालते है। भरत की जान तो समझो, आज से खतरे में है। वस,मालकिन, कल से रानी कौशल्या यहा की मालकिन है और तुम उसकी दासी। हाथ जोडकर उसको प्रणाम करती रहो। तुम्हारा बेटा भी अब से राम का एक किंकर बनकर रहेगा। हमारे इस अत पुर के वैभव का आज से अत होगया समझो।"

वोलते-वोलते मथरा की सास फूलने लगी। दु ख के आवेग से वह जरा रुकी।

कैकेयी को मथरा की वातो से आश्चर्य हुआ। 'राम के स्वभाव को भली भाति जाननेवाली यह औरत क्यो ऐसी वातें करती है ? सत्य और धर्म के अवतारस्वरूप राम से इसके घवराने का क्या कारण हो सकता है ?'

यो देवी कैकेयी सोचने लगी।

"मथरे, राम के सत्य, शील और विनय को तो हम सभी जानते हैं। देखकर खुश हुए है। वह राजा का ज्येष्ठ पुत्र है। उसीको तो राज्य मिलना चाहिए। भरत का हक तो राम के वाद ही हो सकता है। मेरी प्रिय सखी, किसीका,कुछ विगडा नही है। राम के पश्चात् भरत राजा होकर सौ वर्ष राज्य कर सकता है। तुम क्या यह नही जानती कि राम मुझपर कितना प्रेम और आदर रखता है? मुझे तो अपनी मा से भी अधिक मानता है। अपने छोटे भाइयो को तो प्राणो के समान चाहता आया है। तुम्हारा डर वेकार है। हटाओ, उसे छोडो।" कैकेयी ने मथरा को समझाते हुए कहा।

"हाय मेरी मा, तेरी वुद्धि भ्रष्ट होगई है। राम जैसे ही राजा वना कि भरत का हक खतम हो जाता है। राजकुल के नियम भी भूल गई हो क्या? राम सिहासन पर वैठेगा तो उसके वाद उसका लडका गद्दी पर वैठेगा। उसके वाद उसके पुत्र का लडका राजा वनेगा। कही अनुज थोडे ही राजा वन सकता है? ज्येष्ठ पुत्र, फिर उसका ज्येष्ठ पुत्र, इस तरह कडी जारी रहा करती है। राम के राजा वन जाने के वाद भरत को कौन पूछनेवाला है? वह अनाथ हो जायगा। उसके या उसके पुत्रो के लिए सिहासन का स्थान कभी नही हो सकता। तुम्हें यह छोटी-सी वात भी समझ में नही आई? मेरी दुलारी, तुम्हें क्या हो गया है?" मथरा का विलाप वद न हुआ।

"राजा वनने के वाद राम का पहला काम भरत को खत्म करने का होगा। यदि भरत की प्राण-रक्षा चाहती हो तो उसको कैकयी राज्य में ही कही छिपाकर रखना होगा। यहा तो खतरा है। कौशल्या तुमसे चिढी हुई है। यह सोचकर कि राजा की कृपा-दृष्टि अपने ऊपर है, तुमने कौशल्या का कई वार अपमान किया है। वह उसका वदला लिये विना न रहेगी। सौत का वर वहुत वुरा होता है। यदि राम राजा वन जाय तो समझ लो कि भरत मर गया। किसी प्रकार से भी राम को रास्ते से हटाकर भरत को राज्य दिलाओ।" यह उलटा उपदेश देकर मथरा चुप हुई।

मथरा के वाक्यो ने देवी कैकेयी के मन में धीरे-धीरे डर पैदा कर दिया

और अत में कुवडी की विजय हुई। भय और क्रोध से कैकेयी का चेहरा लाल होगया। उसकी सासें खूब गरम-गरम निकलने लगी। वह मथरा के हाथो को अपने हाथो में लेकर पूछने लगी, "ऐसी बात है तो फिर उपाय बताओ।"

जब कौशल्या और सुमित्रा दोनो रानियो से राजा क कोई सतान न हुई तो राजा दशरथ ने पुत्र पाने की आशा से कैकय-राजकुमारी कैकेयी से विवाह किया था। उस समय कैकय देश के राजा ने एक शर्त पर अपनी कन्या का दशरथ के साथ विवाह कराया था। शर्त यह थी कि जो लडका कैकेयी के गर्भ से होगा वही गद्दी पर बैठेगा। दशरथ का यह तीसरा विवाह था। दोनो रानियो के कोई बालक नही था। राजा का कोई उत्तराधिकारी न था, तभी राजा ने तीसरी बार विवाह करने का सोचा था। उन्होने कैकय राजा की शर्त को न मानने का कोई कारण न देखा। तब भी उनके मन की अभिलाषा पूरी न हुई। कई वर्षो के बाद पुत्र-कामेष्टि और अश्वमेध-यज्ञ किये। तब तीनो रानियो के चार पुत्र हुए। सबसे बडे राम थे। राम को सभी तरह से योग्य देखकर सभी नर-नारी यही चाहने लगे कि राम ही राजा बनें। प्रजा की इच्छा का तिरस्कार करके भरत को युवराज बनाने की कोई आवश्यकता राजा ने या मत्रियो ने नही देखी। कैकेयी को भी यह विचार कभी न हुआ कि राम राजा न बनें। वह राम को भरत के समान ही प्यार करती रही। इसलिए राजा दशरथ ने भी सोचा कि राम के युवराजाभिषेक में कोई बाधा नही हो सकती। भरत का राम के प्रति जो प्रेम और आदर था वह तो सभी जानते थे।

किंतु जैसे दशरथ ने राम से कहा था, मनुष्य के हृदय की विचित्र गतियो को समझना अति कठिन होता है। दुष्टो के दुर्बोध से अच्छे-से-अच्छे हृदय भी कलुषित हो जाता है। साथ में दैव भी मिल जाय तो क्या कहना! कैकेयी के मन ने एकदम भिन्न रूप धारण कर लिया। राजा दशरथ को अनिष्ट का आतक होगया था। इसीलिए उन्होंने एकदम राम का युवराजाभिषेक कर डालना चाहा था। भरत के लौटने तक राह नही देखना चाहते थे। उनको शुभ कार्य के लिए जितनी जल्दी हो रही थी, उतनी ही शीघ्रता के साथ

मथरा ने कैकेयी की बुद्धि को कुटिल दिशा में ले जाने में सफलता प्राप्त कर ली। उसने मौका हाथ से जाने न दिया।

"सोचो तो सही कि राजा ने इतनी जल्दी क्यो मचाई है? जब भरत विदेश में है तब उन्होने यह षड्यत्र रचा है। उनका तुम्हारे ऊपर का प्रेम तो एकदम ढकोसला है।" मथरा ने कैकेयी से कहा।

कैकेयी सहज स्त्री-स्वभाव से मथरा की कुमति में आ गई। ककेयी वैसे तो भली थी, पर तीक्ष्ण बुद्धिवाली होने पर भी जिद्दी स्वभाव की थी। अब वह विवेक-बुद्धि खो बैठी और मथरा के बहकावे में पूरी तरह से आ गई।

अब रामायण की कथा में सकट-काल का प्रारभ हो जाता है।

: १८ :

कुबड़ी की कुमंत्रणा

कैकेयी, जो अवतक राम को अपनी ही कोख का पुत्र समझती थी और वैसा ही प्यार करती थी, मथरा के उपदेशरूपी जाल में पूरी तरह फस गई। कहने लगी, "मथरे, मुझे डर लगने लगा है। वताओ, अव क्या किया जाय ? मैं कौशल्या की दासी तो कभी न वनूगी। भरत को किसी-न-किसी उपाय से राजगद्दी पर बिठाना ही होगा। तुम ठीक कहती हो, राम को यहा से निकालकर वन में भेजना ही पडेगा। इसके लिए कौन-सा उपाय करें ? तुम इन वातो में वडी चतुर हो। अव राम को वन में भेजने के लिए कोई रास्ता ढूढो।" उस समय कैकेयी को कुवडी मथरा वहुत ही प्यारी लग रही थी। इसमें हँसी की कोई वात नही है। यह तो सूक्ष्म मनोविज्ञान की ही परिचायक है।

मथरा ने तुरत उत्तर दिया, "कैकेयी, तुम्हारी वातो से मुझे आश्चर्य होता है! मुझसे उपाय क्यो पूछती हो ? मजाक कर रही हो क्या ? अथवा सचमुच भुलक्कड होगई हो ? यदि वास्तव में मुझसे सलाह माग रही हो तो मैं बताने को तैयार हू।"

"जल्दी वताओ। किसी तरह भी भरत राजा वने और राम यहा से हटे।" कैकेयी को अव विलब असह्य होने लगा था।

"तो धीरज से सुनो", मथरा ने कहना प्रारभ किया, "वहुत समय पहले तुम्हारे पति दशरथ दक्षिण में शवर नामक असुर से लडने गये थे। याद है कि नही ? तुम भी उनके साथ थी। दशरथ इद्र की सहायता करने गये थे। वैजयती नगर के शवर को जव इद्र अकेले पराजित न कर पाये तो दशरथ उस असुर के साथ खूव लडे। उनका सारा शरीर घायल होगया और वह वेहोश हो गये। तव तुम उनके रथ को वडी खूवी से स्वय चलाकर युद्ध-क्षेत्र से

वाहर निकाल लाई थी। राजा के शरीर म लगे सभी वाणो को तुमने कोमलता के साथ निकाल लिया था। तुम राजा को होश में लाई और उनकी प्राण-रक्षा की। तुम्हें ये वातें याद हैं या नही ?"

मथरा ने कुछ ठहरकर फिर कहना प्रारभ किया, "तव राजा ने तुमसे क्या कहा था ? जरा याद तो करो। राजा ने कहा था—'प्रिये, मै तुम्हें दो वरदान देता हू। कोई भी दो वर माग लो। मैं दूगा।' तुमने उत्तर में कहा था, 'वाद में सोचकर माग लूगी।' राजा को भी यह वात अच्छी लगी थी। एक दिन तुम्हीने तो मुझे ये सारी वातें वताई थी। मालूम होता है तुम भूल गई। लेकिन मुझे अच्छी तरह याद है। अव उन दो वरदानो के मागने का स्वर्ण अवसर आ गया है। हमारा काम इससे वन जायगा। राम की जगह भरत का युवराजाभिषेक हो। यह तुम्हारी पहली माग होगी। दूसरी माग यह हो कि राम चौदह वर्ष वनवास करें। दयाभाव को मन में विल्कुल न आने देना। डरना मत। मेरा कहना मानो। राम जव चौदह वर्ष आखो से दूर रहेगा, तभी प्रजा उसको भूल सकेगी। तुम्हारा भरत राजगद्दी पर जमकर वैठ पायगा। अभी, इसी घडी कोपभवन मे चली जाओ। नीचे धरती पर लोट जाओ। इन कपडो और आभूषणो को उतार दो। मलिन और जीर्ण वस्त्र धारण कर लो। राजा जव तुम्हारे पास आवें तो उनसे वोलना मत। उनकी तरफ देखना भी मत। तुम्हारा क्लेश दशरथ सहन नही कर पायगे। वस, हमारी कार्य-सिद्धि हो जायगी।"

थोडी देर चुप रहकर मथरा फिर वोलने लगी—"राजा तुम्हारे मन को फेरने के लिए खूव प्रलोभन देंगे, किंतु तुम अपनी मागो से टस-से-मस न होना। राजा अपने दिये वचनो को कभी वापस नही लेंगे। वह प्राण छोड देंगे, किंतु सत्य से नही हटेंगे। वह तुम्हे खूव चाहते है। तुम यदि कहो कि 'आग में कूद पडो' तो वह भी करने को तैयार होगे। इसलिए डरने का तो विल्कुल काम ही नही है। मै जो कहती हू, वही करो। राम के वनवास के विना हमारा काम नही वन सकता। यदि राम राज्य में रहे, तो भरत के राजा होने का कोई भरोसा नही। मैने तुमको सव वता दिया है। सावधान रहना

और अपना हठ बिल्कुल न छोडना।"

कैकेयी का मुख, जो डर से सफेद होगया था, अब कुबडी मथरा की मत्रणा से फिर खिल उठा। उसने कहा, "मेरी प्रिय सखी, तुम्हारी बुद्धिमत्ता की प्रशसा करने के लिए मेरे पास शब्द नही है। तुमने ठीक समय पर मुझको बचा लिया।" यह कहकर रानी कैकेयी खुश हो गई।

तभी मथरा फिर बोली, "देवी, अब देर न करो। बाढ आने से पहले बाध पक्का हो जाना आवश्यक है। मैंने जो बातें बताई है, सब ध्यान में रखलो। अपने हठ पर डटी रहो। तुम्हे सफलता अवश्य मिलेगी। बस, अब तुम कोपभवन में चली जाओ।"

कैकेयी ने उसको विश्वास दिलाया और वह एकदम कोपभवन में प्रविष्ट हो गई। उसने अपने रेशमी वस्त्रो और बहुमूल्य आभूषणादि को उतारकर फेंक दिया। मलिन वस्त्र पहनकर वह धरती पर लोट गई। राजा दशरथ पर अब उसको वास्तव में बहुत क्रोध आ रहा था। उसने सोच लिया कि राजा का प्रेम केवल ढकोसला था। वह सिसकती हुई मथरा से बोली, "मथरे, जा, मेरे पिता के पास जा और उनसे कह दे कि या तो भरत का अभिषेक होगा या कैकेयी मर जायगी।"

उस अवस्था में भी रानी कैकेयी की देह-काति कम न हुई। प्रसन्नमुद्रा में वह जैसी रूपवती दिखाई देती थी, उसी तरह कोपमुद्रा में भी उसका सौंदर्य भिन्न रूप में मनमोहक था। रूपवती स्त्रियो की यह एक विशेषता होती है।

भरत के प्राण-भय का भूत कैकेयी के मन पर सवार होगया। उसका मन पापपूर्ण चिताओ से भर गया। शुरू में जो सकोच का भाव उदित हुआ था, वह तिरोहित होगया। कैकेयी ने अब अपना हृदय पत्थर का बना लिया। उसने अपने सुदीर्घ केशो को खोल लिया। दीर्घ नि श्वास छोडती हुई, शोकातुर हो वह एक नाग-कन्या की तरह भूमि पर लेट गई। निषाद के शरो से आहत एक सुदर पक्षी की तरह कैकेयी धरती पर पडी थी। उसके द्वारा [illegible] मानो आकाश में तारे चमक

: १९ :

कैकेयी की करतूत

राजा दशरथ ने जो विशेष सभा बुलाई थी वह समाप्त हुई। राजा ने कर्मचारियो को विभिन्न कार्य सौंपे। उनके मन से बडा भारी भार उतर गया। चितामुक्त हो जाने पर मनोरजन की ओर ध्यान गया। अपनी सबसे प्यारी रानी कैकेयी को यह शुभ समाचार स्वय सुनाने तथा आराम से रात वही बिताने की उन्हें उत्कठा हुई।

राजभवन वैसे तो सारा ही बहुत सुदर था, परतु कैकेयी का भवन तो विशेष रूप से सुदर बना था। भवन के चारो ओर रमणीय उपवन था। उपवन में स्थान-स्थान पर तालाब, फव्वारे इत्यादि थे। तालाब में तैरनेवाले पक्षी आनद से कलरव करते हुए विचरण करते थे। फूलो से लदे वृक्षो के पास मोर अपने पख फैलाकर नृत्य करते थे। राजा दशरथ ने प्रमुदित मन से, किसी प्रकार के आतक के बिना, चद्रग्रहण के दिन आनेवाले सकट से अनभिज्ञ, शुक्लपक्ष के पूर्ण चद्र के समान महल में प्रवेश किया। उनका चेहरा आनद से प्रफुल्लित हो रहा था। उन्हें आनेवाले अनिष्ट की तनिक भी प्रतीति न थी।

रानी के भवन में सुगध की वस्तुए, नाना प्रकार के पान आदि भोग के द्रव्य अपनी-अपनी जगह पर सदा की तरह रखे हुए थे। इन मादक वस्तुओ से राजा को अपनी प्रेयसी रानी के पास पहुचने की आतुरता और भी प्रबल हुई। किंतु उन्होने देखा कि रानी के सभी आसन खाली पडे थे।

जब कभी राजकार्यो से राजा दशरथ थक जाते थे तो रानी कैकेयी के पास पहुचकर विश्राम पाते थे, क्योकि कैकेयी बाहर के कार्यो के बारे में न कभी पूछती थी, न उनमें दखल देती थी। वह सदा राजा के मन को प्रमुदित करती थी। प्रेम से आलिंगन करके उनका स्वागत किया करती थी। आज

उसको सामने न देखकर दशरथ को विस्मय हुआ। मच का और आसनो का फिर से निरीक्षण करते हुए राजा ने इधर-उधर देखा। रानी वहा न थी। उन्हें शका हुई कि वह शायद उन्हें चिढाने के लिए कही छिपकर न बैठी हो। उससे प्रसन्नतामिश्रित कौतूहल हुआ और एक बार फिर सब जगह निगाह दौडाई। तभी वहा एक दासी आई और उसने हाथ जोडकर कहा, "राजन्, देवी कोपभवन में प्रविष्ट हुई है।"

भयभीत होकर दशरथ कोपभवन में घुस पडे। इससे पहले ऐसा मौका कभी न आया था। कैकेयी भूमि पर पडी हुई थी। उसने राजा की तरफ आख उठाकर भी न देखा। भोले राजा को कुछ समझ में न आया। उनके मन मे कोई मैल न था। कैकेयी के मन में तो दुर्विचार भरे हुए थे। राजा वृद्ध थे और कैकेयी अभी जवान थी। ऐहिक भोगो की लालसा राजा के चित्त में खूब थी। कैकेयी की दशा देखकर उन्मत्त की तरह वह आचरण करने लगे।

धरती पर पडी रानी के पास जमीन पर ही वह बैठ गये। उसके सिर को अपनी गोद में रख लिया और प्यार से हाथ फेरने लगे। "प्रिय, तुम्हे क्या हो गया ? कही पीडा हो रही है क्या ? मेरे पास तो चिकित्साशास्त्र में निपुण कई चिकित्सक है। तुम जिसको कहो उसे अभी बुलवाता हू। तुम्हे एकदम ठीक कर देंगे। घबराओ नही, मेरी तरफ देखो तो सही।" दीन स्वर में राजा दशरथ बोले।

रानी लबी-लबी सासें लेती रही। बोली कुछ नही।

"तुम्हारा किसीने अपमान किया है क्या ? मुझे उसका नाम बताओ। अभी उसको कठोर दड दिलवाता हू। तुम्हे किसीपर क्रोध हुआ है, मुझे बताओ। यदि मुझसे ही कुछ अपराध होगया हो तो भी, देवी, मुझे बताओ।" दशरथ गिडगिडाये। पर कैकेयी के बर्ताव में कोई अतर नही आया।

"मेरी प्यारी रानी, तुम जिसे दड देना चाहो, उसको दड दूगा। किसीको जेल से छुडवाना चाहती हो तो उसे मुक्त कर दूगा, चाहे उसने नरहत्या ही क्यो न की हो।" कामाध राजा कहते गये।

"मै सम्राट हू। मेरी शक्ति को तुम जानती हो। वह कौन है, किस देश

में है, जिसने तुम्हे दु ख पहुचाया है ? उसको अभी ठीक कर देता हू। यदि किसीको खुश करना चाहती हो तो वह भी बता दो।" राजा फिर बोले।

कैकेयी जो अबतक चुपचाप लेटी थी, उठकर बैठ गई। दशरथ प्रसन्न हुए। वह बोली—

"न मेरा किसीने अनादर किया, न किसीने मेरी निंदा की है। हे राजन्, आपसे मुझे कुछ चाहिए। यदि आप मेरी अभिलाषा पूरी करना स्वीकार करते हो तो मैं कहू।"

यह सुनकर दशरथ खुश हो गये। उन्होंने सोचा—यह कौन-सी बडी बात है ? कैकेयी को मै क्या न दे सकूगा ?

"मेरी रानी, तुम जो मागोगी, मैं देने को तैयार हू। स्त्रियो में मेरे लिए सबसे प्यारी तुम ही हो। पुरुषो में मै राम को सबसे अधिक चाहता हू। राम की शपथ लेकर कहता हू, तुम जो कुछ भी मागोगी वह तुम्हारा हो जायगा, यह सत्य है।" दशरथ ने कैकेयी को वचन दे डाला।

अब कैकेयी का पापचिंतन वृद्धि पाता गया। जब राजा ने 'राम की शपथ' कहा तो अब उसे कोई डर न रहा।

वह बोली, "अच्छा, तो फिर दुबारा राम की शपथ लेकर कहिये कि मेरी माग पूरी करेंगे।"

"प्राणप्रिये, लो, राम के नाम से और मेरे समस्त पुण्य कर्मो के नाम से शपथ लेता हू कि मै तुम्हारी मन की इच्छा को पूरा करूगा।" राजा ने कह डाला।

इस समय कैकेयी को तनिक-सा सदेह हो उठा कि राजा शायद यह कह सकते हैं कि मैं शपथ को ऐसे भयकर कुकर्म के लिए कभी काम में न लाऊगा, क्योकि उसकी मनोकामना कितनी भयकर और नीति-विरुद्ध थी, यह वह जानती थी। कैकेयी उठकर खडी हुई। दोनो हाथ जोड लिये, चारो दिशाओ में अजलिबद्ध हो प्रणाम किया और जोर से चिल्लाकर बोली, "हे समस्त देवतागण, मेरे पति ने जो शपथ ली है, उसके तुम सभी साक्षी हो। हे पचभूत, तुम लोग भी मेरे पति की प्रतिज्ञा के साक्षी हो।"

राजा दशरथ को अब भी कुछ भय का अनुभव न हुआ। कैकेयी के सुदर रूप को ही वह निरखते गये। अब रानी को अपनी माग राजा के सामने रखने का पूर्ण रूप से धीरज हो गया। बोली, "राजन्, आपको याद है न कि एक समय आप रणक्षेत्र में घायल हो गये थे और आपका बचना कठिन हो रहा था। उस समय मैं अधेरे में ही आपको रथ में लिटाकर युद्ध-क्षेत्र से बाहर निकाल लाई थी। आपकी देह से बाणो को बाहर निकाला और आपको आराम पहुचाया था। जब आप होश में आये तो मुझपर बडे प्रसन्न हुए थे और मुझसे कहा था कि 'दो वर माग लो, तुमने मेरे प्राण बचाये है। मै तुम्हारे प्रति कृतज्ञ हू।'

"मैंने उत्तर में कहा था, 'आपके प्राण बचे, यही मेरे लिए काफी है। मुझे कोई वर नही चाहिए, फिर कभी माग लूगी।' ये सब बातें आपको याद हैं या भूल गये?"

"अच्छी तरह याद है। अभी माग लो वे दोनो वर।" दशरथ ने कहा।

"देखिये, आपने राम का नाम लेकर शपथ ली है। सभी देवतागण और पचभूत इसके साक्षी हैं। मैं अभी अपनी मागें बताती हू। आप अपने रघुकुल की रीति से हटना मत। वचनभग न करना। आपका कल्याण होगा। सुनिये, अभी-अभी आपने युवराजाभिषेक का जो आयोजन किया है, राम की जगह वह मेरे बेटे भरत के लिए होगा। युवराज मेरा भरत बनेगा। यह मेरा पहला वर है। दूसरा वर यह है कि राम चौदह वर्ष वनवास भोगेंगे। उन्हें अभी दडकारण्य भेज देना होगा। अपने प्रण की रक्षा करें, अपने कुल की प्रतिष्ठा और सत्य का मान रखें और सत्य से न हटें।"

आखिर कैकेयी ने कह ही डाला।

: २० :

दशरथ की व्यथा

दशरथ को अपने कानों पर विश्वास न हुआ।

"कैकेयी के मुह से मै यह क्या सुन रहा हू ? सभव है कि मै कोई बुरा स्वप्न देख रहा हू, या पिछले जन्मो के बुरे कर्मो की याद सच्ची घटना की तरह मेरी आखो के सामने आ रही है। हो सकता है, मेरे ग्रहो के बुरे सचारो का यह परिणाम है। मैं पागल तो नही होगया हू ?"

कैकेयी के वचनो से राजा को भयकर आघात पहुचा। वह मन में नाना प्रकार के विचार करने लगे। कैकेयी के वचनो को फिर से मन में लाने का उन्होंने प्रयत्न किया तो यह उनके लिए अशक्य और असहनीय प्रतीत हुआ। एकदम बेसुध होकर वह गिर पडे। थोडी देर बाद जब उन्हें होश आया तो सामने कैकेयी खडी थी। उसे देखकर राजा ऐसे कापने लगे, जैसे शेरनी को देखकर हिरन कापता है। "हाय" करके मदारी के साप की तरह उनका शरीर चक्कर खाने लगा और फिर मूर्च्छित होगये। इस बार वह काफी देर तक उसी अवस्था में रहे। जब होश में आये तो आखो से क्रोध की चिनगारिया निकलने लगी। "अरे दुष्टा राक्षसी, कुलघातिनी! राम ने तेरा क्या बिगाडा ? अपनी मा में और तुझमें उसने अबतक कोई भेदभाव नही रखा। तुझे मै अबतक बहुत अच्छी समझता रहा, मेरी यह बडी भारी मूर्खता थी, गलती थी। तू तो महाविषैली नागिन निकली। तुझे भूल से मै अपनी गोद में खिलाता रहा!" दशरथ विलाप करने लगे और कैकेयी चुपचाप सुनती रही। बोली बिल्कुल नही।

"सारा जगत राम का गुणगान कर रहा है। उससे क्या अपराध हुआ, जिससे मैं उसे वनवास का दड दू ? कौशल्या के बिना मैं दिन निकाल सकता हू, धर्मस्वरूपा सुमित्रा को खोकर भी मैं जी लूगा, किंतु राम के बिना तो मै

मर जाऊगा । जल के विना मै जिदा रह सकूगा, सूर्य के प्रकाश के विना भी रह लूगा, किंतु अपने राम के विना मै मर जाऊगा । तू इस महापापमय विचार को मन से दूर कर ले । मैं तेरे पैरो पडता हू । तूने स्वय अपने मुह से कितनी बार राम की वडाई की है । मैंने तो यही सोचा था कि राम के अभिषेक से तुझको आनद होगा । तेरे मुह से ये कठोर शव्द क्यो निकले ? ये भयकर वर तूने क्यो मागे ? कही मेरी प्रीति की परीक्षा तो नही ले रही है ? शायद तू यह देखना चाहती है कि मैं भरत को प्यार करता हू या नही ?"

राजा के इन वचनो का भी कैकेयी ने कोई उत्तर नही दिया । क्रुद्ध आखो से वह दशरथ को देखती ही रही ।

"आजतक तो तूने कभी ऐसा काम नही किया, जिससे मुझे दु ख पहुचे । कभी बुरे शव्द भी मुह से नही निकले । अवश्य ही किसीने तुझे वहका दिया है । तू अपने-आप यह कभी नही माग सकती । तूने मुझसे कितनी ही वार कहा है कि 'भरत तो बडा अच्छा लडका है, किंतु राम में तो और भी विशेषता है, राम के समान कोई नही हो सकता ।' ऐसे राम को वनवास का दड क्यो दिलाना चाहती है ? वह जगल में कैसे रहेगा ? घोर वन में जगली जानवर उसे खा डालें तो मै क्या करूगा ? तुझपर उसने कितना प्यार दिखाया है, वह सब भूल गई क्या ? उससे क्या अपराध हुआ ? राजभवन में सैकडो स्त्रिया रहती हैं । आजतक राम के विरुद्ध किसीसे एक शव्द भी मैंने नही सुना । सारी दुनिया उसे चाहती है । तुझे एकाएक उसपर घृणा क्यो होगई ? वह तो इद्रादि देवताओ की तरह और ऋषि-मुनियो जैसा तेजवान है । राम के सत्य, शील, स्नेह, ज्ञान, विद्वत्ता, शौर्य और वडो के प्रति विनय इत्यादि गुण सुप्रसिद्ध है । कभी उसके मुह से तूने कटु वचन सुना है ? उसे मैं कैसे कहू कि 'तू वन को चला जा ।' नही, यह सभव नही । महामाया, इस बूढे पर दया कर ! यह सारा राज्य तू ले ले । मुझे यम के पास न भेज । मैं तेरे हाथ जोडता हू । पैर पकडता हू । तेरी शरण में आया हू । मेरी रक्षा कर । राम को वन जाने को मत कह । मुझे अधर्म की ओर प्रेरित मत कर ।"

यो प्रलाप करते हुए राजा दशरथ अनेक वार वेसुध हुए । उनकी आखो

से अविरल अश्रुधारा वहने लगी। ऐसी व्यथा पानेवाले दशरथ से रानी कैकेयी फिर भी निर्दयतापूर्वक कहने लगी, "राजन्, आपने मुझे दो वर मागने को कहा था। और यह भी कहा था कि मैंने दोनो वर दे दिये। देने के बाद अब पश्चात्ताप करते हैं? दिये वर वापस लेना चाहते हैं? यह कहा का न्याय है? तब फिर आपको सत्य और धर्म का नाम भी लेने का क्या अधिकार रहा? आपको यह कहते हुए कि 'हा, कैकेयी ने मेरे प्राण बचाये थे, उसके बदले में मैंने उससे दो वर मागने को कहा था, बाद में उसकी मागें मुझे पसद न आई, मैंने इन्कार कर दिया', लज्जा नही आयगी? सारा राजकुल आपकी निंदा करेगा। शिवि ने अपने वचन का पालन करने के लिए अपने शरीर का मास काटकर दे दिया था। अलर्क ने अपनी दोनो आखें निकालकर वचन का पालन किया था और सद्गति को प्राप्त हुआ था। क्या इन बातो को आप भूल गये? समुद्र ने अपनी मर्यादा को भग न करने की प्रतिज्ञा की थी, अभी तक उसने अपना वचन भग नही किया। आपने उत्तम कुल में जन्म पाया है। उस कुल के नाम को बट्टा न लगायें। पर नही, आपको सत्य और धर्म की क्या चिता है? आपको तो बस कौशल्या चाहिए, राम चाहिए। पर याद रखिये, मेरे मागे हुए वरो को आप मुझे न देंगे तो मैं अभी आपके सामने जहर पीकर मर जाऊगी। आपका राम राजा बन जायगा, मैं आपके सामने मरी पडी रहूगी। यह सत्य है। मैं भरत की सौगध खाकर कहती हू, यदि राम को तुरत वन न भेजा तो अभी विषपान करूगी।"

राजा दशरथ स्तब्ध होकर उसकी ओर देखने लगे। उन्हें सदेह हुआ कि यह पत्नी है, या पिशाचिनी? फिर बेसुध होकर कटे वृक्ष की भाति धडाम से नीचे गिर पडे। थोडी देर बाद सचेत हुए तो दीन स्वर में कैकेयी को समझाने लगे, "मेरी रानी, बता, तुझे किसने यह सब सिखाया है? मैं तो अब मरा। मेरा कुल भी गया, समझ ले। कोई भूत-प्रेत तो तुझे नही नचा रहा है? इस प्रकार का निर्लज्ज आचरण तेरे स्वभाव के विरुद्ध है। क्या तू सोचती है कि राम को वन भेजकर खुशी के साथ भरत राजा बन जायगा? भरत के

गुण को तू अच्छी तरह नही जानती। भरत कभी इसके लिए राजी न होगा। मैं किस मुह से राम से कहू कि 'वन चला जा'। यह कभी हो सकता है ? दुनिया के अन्य नरेश मेरे वारे में क्या सोचेंगे ? 'औरत के कहने में आकर वूढा पागल हो गया। लडके को देश से निकाल दिया।' यही कहेंगे न ? तूने तो वडी आसानी से कह डाला कि राम को चौदह वर्ष के लिए वन मे भेज दो। यह सुनते ही कौशल्या जान दे देगी। मै भी जीवित न रहूगा। जनकसुता सीता के वारे में भी तूने कुछ सोचा है ? राम के दडकारण्य में रहते हुए क्या सीता के प्राण यहा टिक सकते है ? तेरे रूप को देखकर मै धोखे में आगया। विप मिला हुआ मधु है तू। व्याध के सुरीले राग में जैसे हिरन फस जाता है, वैसे ही तेरे रूप के मोह में फसकर मैंने मृत्यु मोल ली। सारी दुनिया मुझे दुतकारेगी। मद्यपान करनेवाले ब्राह्मण से जैसे हरकोई घृणा करता है,वैसे ही मुझसे भी घृणा करेगा। तूने भी अच्छे वर मागे ! राम थोडे ही मेरी आज्ञा का उल्लघन करनेवाला है। उसको वन भेजकर मै और मेरे साथ-साथ कौशल्या और सुमित्रा हम सभी मर जायगे। तू राज्य का भोग करती हुई जिदा रह। अरी पिशाचिनी, यदि भारत तेरे षड्यन्त्र को मान ले तो वह मेरे मरने के वाद मेरी उत्तर-क्रियाए न करे। हे मेरी परम वैरिन, विधवा होकर मेरी सपत्तियो का भले तू भोग कर।

"हाय, मेरे राम को मैं राज्य से भगाकर वन भेजू ? यह भला मुझसे कैसे होगा ? स्त्रिया कैसी बुरी होती हैं। नही, सभी स्त्रिया बुरी नही होती। यह कैकेयी ही ऐसी पापिनी निकली। औरो को मैं क्यो कोसू ? इसने भरत जैसे को जन्म कैसे दिया ?

"कैकेयी, बार-बार मै तेरे पैर पकडता हू। मेरी वात मान ले। अपनी माग वापस ले ले।"

इतना कहकर राजा दशरथ जमीन पर लोटने लगे। करुण प्रलाप करने लगे। कर्म की गति न्यारी होती है। दशरथ को देखकर ऐसा लगता था कि किये हुए पुण्यो के क्षीण हो जाने पर जैसे स्वर्ग से नहुष राजा पृथ्वी पर फेंके गये हो।

राजा के हजार वार मनाने पर भी रानी तनिक भी नरम न पडी। "देवता साक्षी हैं, आप तो सवसे यही कहते फिरते है कि 'मैं महासत्यवादी हू।' अव उससे हटना चाहते है ? यदि आप अपना वचन न पालेंगे तो मैं भी आत्महत्या कर लूगी। यह मेरा पक्का और अतिम विचार है।" कैकेयी ने वाक्य पूरा किया।

"तो पापिनी, सुन ! राम वन को जायगा। मैं मर जाऊगा। मेरे और मेरे कुल की शत्रु वनकर प्रसन्न हो। आराम से धन-दौलत का भोग कर।" राजा ने चिल्लाकर कहा, "दुष्टे, राम को वन भेजकर तू कौन-सा सुख भोगनेवाली है ? सारी प्रजा तुझे कोसेगी। वरसो की तपस्या के वाद मुझे राम मिला था, अव उसको जगल भेज रहा हू। अपने भाग्य को क्या कहू !"

फिर आकाश की ओर राजा ने देखा और कहा, "हे निशे, तू तो तेजी से जा रही है। सूर्योदय शीघ्र होनेवाला है, और तू एकदम चली जायगी। भोर हुआ तो मैं क्या करूगा ? अभिषेक के लिए लोग राह देख रहे हैं। उनको अपना मुह कैसे दिखाऊगा ? हे तारागण, आप लोग सव अपने-अपने स्थानो में रुके रहे। नही-नही, शायद आप सव मुझ पापी को देखना नही चाहते होगे। अच्छा, तो आप सव हट जाय। सुवह होने दें। सुवह होते ही मैं यहा से निकल जाऊगा। इस पिशाचिनी को देखने से तो वचूगा।"

वर्षो तक राज्य पालन करते-करते जो वूढे हो गये थे, जिन्होने कभी किसीसे हार न मानी थी, वह दशरथ इस तरह करुण विलाप करने लगे।

"हे देवी, एक वार मेरे ऊपर दया कर। मैंने आवेश में आकर तुझे वहुत-कुछ वुरा सुना दिया। उसे भूल जा। तू तो मुझे कितना प्यार करती है ! मैंने तो यह सारा राज्य तुझे दे ही दिया है। अव मेरी एक वात सुन ले। अपने हाथो से उस राज्य को राम को दे दे। कल का शुभ कार्य हो जाने दे। सवको मैंने वता दिया है कि कल राम का राज्याभिषेक होगा। उसे तू निभा ले। जवतक यह दुनिया रहेगी, लोग तेरी स्तुति करते रहेंगे। मैं यही चाहता हू, लोग यही चाहते हैं, वयोवृद्ध लोग यही चाहते हैं और भरत की भी यही

इच्छा होगी कि राम राजा बने। मान जा, मेरी प्यारी, मेरी रानी, मेरी सर्वस्व।"

यो कहते हुए राजा ने फिर कैकेयी के पैर पकड लिये।

कैकेयी ने अपने पैर छुडाकर कहा, "मै आपकी बात कभी न मानूगी। आपको अपना वचन पालना ही होगा और वह भी अभी, एकदम। यदि आप सत्य से हटकर झूठ की तरफ जायगे तो तुरत आत्महत्या कर लूगी।"

"मत्रोच्चार के साथ अग्नि के सामने मैंने तेरे साथ पाणिग्रहण किया था। अब तेरा परित्याग करता हू। तेरे लडके भरत का भी त्याग करता हू। रात पूरी हो जाय और सूर्योदय हो तब युवराजाभिषेक नही, मेरी अतिम क्रियाए होगी।" राजा बोले।

"क्यो व्यर्थ बके जा रहे हो? अभी इसी क्षण राम को यहा बुलवाइये। उससे कहे कि राज्य भरत के लिए है और तुम वन की ओर चल दो। मुझसे अब देर नही सही जाती।" कैकेयी के मुह से ये कठोर वचन निकले।

"अच्छा, मुझे मरने से पहले अपने प्रिय पुत्र का मुह तो देख लू। बुला उसको। वचनबद्ध होकर मै तो अब लाचार होगया हू। मैं बेवकूफ बूढा अब कर ही क्या सकता हू?"

यह कहते-कहते राजा दशरथ फिर बेहोश हो गये।

: २१ :

मार्मिक दृश्य

एक ओर राम के प्रति अपार स्नेह, दूसरी ओर वचन का बधन—इन दो बातो से राजा धर्मसकट में पड गये। उन्होने यह आशा की थी कि कैकेयी दया करेगी, मान जायगी, किंतु परिणाम कुछ और ही निकला। कैकेयी जरा भी नही पिघली। "अब एक ही मार्ग खुला है। मैं वचनबद्ध हू। किंतु राम स्वतत्र है। उसे मेरी प्रतिज्ञा के बारे में क्यो चिंता होनी चाहिए ? वह बली है। सारी प्रजा उसके साथ रहेगी। उसे मेरी माग को मान लेने की कोई आवश्यकता नही। किंतु क्या राम ऐसा करेगा ? यह तो उसके स्वभाव के बिल्कुल प्रतिकूल है। यदि उसके मन में मेरे विरुद्ध खडे होने का विचार आ जाय तो मैं कितना खुश होऊगा, तब मैं भी वचन-भग से बच जाऊगा। इससे कुलधर्म की रक्षा और प्रजा की माग, दोनो बातें पूरी हो जायगी।" राजा दशरथ इस प्रकार सोचने लगे। पुत्र के कल्याण और आराम में ही तत्पर दशरथ उस समय भूल गये कि रामचद्र पिता के वचन का पालन करने के लिए सबकुछ त्याग सकते हैं।

राजा को निश्चत रूप से विश्वास होगया कि वह अब मरने ही वाले हैं। इससे उन्हें कुछ सात्वना मिली। उन्होने सोचा, "चलो, अपनी आखो से तो यह सब न देखूगा।"

मृत्यु जब राजा को एकदम पास में खडी दिखाई दी तो राजा को पुरानी बातें याद आने लगी। "अपने कर्मो का फल ही तो यह भोग रहा हू। ऋषि-कुमार की हत्या करके उसके वृद्ध माता-पिता को मैंने कैसा भयकर आघात पहुचाया था, वह व्यर्थ कैसे हो जा सकता है ? मेरा पुत्र-शोक से पीडित होकर मरना अनिवार्य है। उससे पापमुक्त होऊगा।" दशरथ के मन में इसका निश्चय होगया। अपने मन को शात करने का व्यर्थ प्रयत्न वह करते रहे।

अब ककेयी को दिये गये वचनो को अमल में लाने के अतिरिक्त दशरथ के पास और कोई उपाय न रहा। इसलिए कैकेयी से यह कहकर चुप हो गये कि "तुझे जो कुछ करना है, अपने-आप कर ले।"

जैसे ही सूर्य उदय हुआ और मगल मुहूर्त का समय आने लगा, वसिष्ठ और उनके शिष्य पुण्य सरिताओ के जल से पूरित स्वर्णकलश तथा अन्य सामग्रियो को जुटाकर राजपथ से होकर राजभवन की ओर आने लगे। सारा मार्ग सजावटो से सुशोभित हो रहा था। लोगो की बडी भीड लगी हुई थी। बडी आतुरता के साथ जनसमुदाय मगल घडी की प्रतीक्षा में था। पुरोहितो का जलूस देखकर उन्हें बडा आनद हुआ। पूर्ण कुभ, धन, धन्य, मधु, दही, घी, खील, दर्भ, समित्, पुष्प, दूध, हाथी, घोडे, रथ, धवल, छत्र, बैल और व्याघ्र चर्मो के आसन इत्यादि वाद्यघोष के साथ राजभवन की ओर जाते देखकर लोगो का उत्साह खूब बढ गया।

राजभवन के द्वार पर ऋषि वसिष्ठ ने सुमत को देखा। "सब वस्तुए तयार है। लोग आतुरता के साथ प्रतीक्षा कर रहे है। राजा से कहें कि मगल कार्य का प्रारभ हो जाय।" वसिष्ठ ने सुमत से कहा।

सुमत ने हाथ जोडकर राजगुरु को प्रणाम किया और राजा के शयनगृह के द्वार पर जाकर नियम के अनुसार मगल स्तुति की और खडे-खडे राजगुरु का सदेश सुनाया, "हे राजाधिराज, इद्र-तुल्य, मातलि जैसे इद्र को जगाया करता है वैसे ही मै आपको जगाना चाहता हू। सभी देवता आपको कार्यसिद्धि प्रदान करें। वयोवृद्ध लोग, सेनानायक, नगर के सभी प्रमुख जन आपके दर्शनो की प्रतीक्षा कर रहे हैं। अब रात बीत चुकी है। प्रात काल के सभी कार्य आपकी आज्ञा के बाद ही आरभ होगे। राजन्, उठने की कृपा करें। ऋषि वसिष्ठ अन्य ब्राह्मणोत्तमो के साथ प्रतीक्षा कर रहे हैं।" सुमत ने राजा से निवेदन किया।

राजा दशरथ की ऐसी स्थिति नही थी कि वह कुछ बोल सकें। उनके मन में ग्लानि चरमसीमा पर पहुची हुई थी। अत उनकी जगह रानी कैकेयी ने दृढता के साथ सुमत से कहा, "राजा तो राज्यभिषेक के बारे में ही

सोचते रहे। अभी-अभी जरा सोये हैं। गहरी नीद में हैं। आप जल्दी से राम को यहा बुलाकर लावें।"

इस प्रकार वडी चतुराई के साथ उसने सुमत को राम को वुलाने के लिए भेज दिया। उसने अपने मन में सोच लिया कि राजा ने वचन तो दे दिया है, पर उसे अमल में लाने के लिए वाकी सव काम मुझे स्वय ही करने पडेंगे। राजा से वह हो नही सकेगा।

सुमत राम के महल में गये। वहा राम और सीता दोनो महोत्सव के लिए एकदम तैयार थे। सुमत वहा पहुचे और राम से कहने लगे, "महाराजा और देवी कैकेयी ने आपको इसी क्षण वुलाया है।"

राम सुमत के साथ राजा के पास चल दिये। यह देखकर वहा उपस्थित लोगो को कुछ आश्चर्य होने लगा, किंतु किसीको कुछ पूछने की हिम्मत न हुई।

वाहर उत्सव के लिए आनदोल्लास हो रहा था। शुभ घडी भी एकदम पास आगई। पर अत पुर का और ही हाल था।

विलव का कारण लोगों की समझ में नही आ रहा था। सोचते थे कि प्रारभिक विधिया कुछ लवी हो गई होगी।

राजभवन के सामने लोगो की भीड वढती चली जा रही थी।

सुमत राम को ले आये। लोगो की भीड को हटाकर उन्हें रास्ता वनाकर जाना पडा। अत पुर में राजा के शयनगृह में राम ने प्रवेश किया। अदर का दृश्य देखकर राम एकदम चौंक पडे, क्योकि उन्हें स्वप्न में भी राजा की अस्वस्थता की कल्पना नही थी। राजा दशरथ शोकसागर में डूबे हुए थे। धूप में मुरझाए फूल की तरह उनका मुखमडल कातिहीन दिखाई दे रहा था।

रामचद्र ने पिता को चरण छूकर प्रणाम किया। कैकेयी को भी प्रणाम किया।

राजा के मुह से केवल 'राम' शब्द निकला। उससे आगे उनसे कुछ भी न वोला गया और न राम से आखें मिलाने का ही उन्हें साहस हुआ।

राम को बडा आश्चर्य हुआ । सोचने लगे कि पिताजी मेरी तरफ देख भी नही रहे हैं, कुछ बोल भी नही रहे हैं, क्या बात हो सकती है ? उन्हें चिता होने लगी ।

राजा को व्यथित देखकर राम को कुछ समझ में न आया । उन्होने माता कैकेयी से पूछा, "मा, बात क्या है ? कभी ऐसा नही हुआ कि राजा मुझे देखकर प्यार से बोले बिना रहे हो । चाहे कैसी भी चिंता में हो, मुझसे तो सदा मिठास से ही बोलते रहे हैं । आज क्या बात हुई ? मुझसे कौन-सा अपराध हुआ ? पिताजी का शरीर तो अस्वस्थ नही है न ? किसीने उन्हें चोट पहुचाई है ? मामला क्या है ? कृपा कर मुझे सारी बातें बतावें । मुझसे उनकी यह हालत सही नही जाती ।"

राम ने चिंताकुल होकर जब इस प्रकार पूछा तो कैकेयी ने सोचा कि अब सकोच करने का मौका नही है । कार्य-सिद्धि का अवसर आ गया है । इसे हाथ से नही जाने देना चाहिए । उसने राम से कहा, "राजा किसीसे खिन्न नही है । तुमको उन्हें एक-दो बातें बतानी हैं । किंतु उन्हें ऐसा करने की हिम्मत नही हो रही है । इसी कारण बोल नही पाते है । एक समय राजा मुझसे बहुत प्रसन्न हो गये थे । तब उन्होने मुझे दो वरदान दिये थे । लेकिन अब पछता रहे हैं कि ऐसा क्यो किया । तुम्ही बताओ, यह काम भला राजा को शोभा देता है ? दिये हुए दान पर पछताना मूर्खता नही तो क्या है ? अब उनके दिये हुए वचन को निभाना तुम्हारे हाथ मे है । तुमसे यह बात बताते हुए वह डरते हैं और अपने वचन से पीछे हटना चाहते हैं । यह कैसी बुरी बात है । यदि तुम उनसे कहोगे कि चिंता की कोई बात नही, तुम्हारे लिए वह अपनी प्रतिज्ञा को भग न करें, तो सबकुछ ठीक हो जायगा । राजा फिर अपने मन की बात तुमसे कह सकेंगे । यदि तुम मुझसे कहो कि यह काम अवश्य करूगा तो मैं स्वय सारी बात बता दूगी ।'

रामचद्र को कैकेयी की बात से बडी चोट पहुची । उन्होने उससे कहा, "मा, आपका मुझपर अविश्वास करना ठीक नही है, मैं इतना नीच नही बन गया हू । पिताजी यदि मुझे आग में कूदने को कहें तो उसके लिए भी मैं

तैयार रहूगा। मुझे आप भलीभाति जानती है। आप किसी बात की चिंता न करें। मैं प्रण करता हू कि पिताजी की जो भी कोई आज्ञा होगी उसका मै पालन करूगा, यह निश्चित है।"

रामचद्र की यह वाणी सुनकर कैकेयी को वडा हर्ष हुआ। उसने सोचा अब मेरा काम वन गया। पर राजा दशरथ तो दुखसागर में एकदम डूब गये। उन्होने सोचा—बस, अब बचने के सभी द्वार वद हो गये।

ककेयी ने अब लोकलाज छोड दी। दयाभाव को हृदय से दूर हटाकर रामचद्र से पापिनी कैकेयी ने अति कठोर वात कह डाली—"राम, तुमने जो कहा वह तुम्हारे ही योग्य है। पुत्र का सर्वोत्तम धर्म पिता को सत्य धर्म से हटने न देना होता है। अब तुम्हें सारी बातें मै बताती हू। इससे तुम्हारी समझ में आ जायगा कि राजा तुमसे बोलने के लिए क्यो सकुचाते है। शवर के साथ युद्ध करते समय जब राजा घायल हो गये थे तब मैंने उनके प्राण बचाये थे। उस समय मुझसे प्रसन्न होकर उन्होने मुझे दो वर मागने को कहा था। मैंने तब कुछ न मागा। कहा था कि फिर कभी माग लूगी। उन्होने मेरी बात मान ली थी। अब इस समय मैंने पुराने दो वरो की माग की है। मेरी पहली माग यह है कि भरत को राजगद्दी मिले और दूसरी यह कि तुमको आज के दिन से ही कोशल राज्य से बाहर निकल जाना चाहिए और दडकारण्य में चौदह वर्ष विताने चाहिए। राजा इन दो वरो को देने से अब इन्कार करना चाहते है। यह कैसे सभव है? तुम अब स्वय अपने और पिता के दोनो के प्रणो की रक्षा करो। यदि तुम भी सत्य से हटना चाहते हो तो दूसरी बात है। यदि वैसा न करना चाहते हो तो मेरी बात सुनो। तुम्हारे अभिषेक के लिए जो जल लाया गया है उसीसे भरत का अभिषेक करवाओ। विलब किये बिना अब अपने बालो की जटा बनवा लो, अपने नरम वस्त्रो को उतारकर वल्कल धारण करके वन के लिए चल पडो। यदि तुम 'हा' कर दोगे तो राजा भी धर्म-सकट से बच जायगे और तुम भी बड़ी ख्याति पाओगे।"

कैकेयी के इन भयकर शब्दो में एक ही बात थी, वह थी राम की

ख्याति। राम की ख्याति तो तबसे लेकर अबतक बनी है और जबतक हिमाचल और गगा का अस्तित्व रहेगा तबतक बनी रहेगी।

बेचारे दशरथ पत्नी की बातें सुनते रहे। उनका हृदय दु ख से फटने लगा। किंतु कैकेयी तो विस्मय से स्तब्ध ही रह गई। ऐसी निर्दय आज्ञा को सुनकर भी राम की मुखाकृति जरा भी विकृत न हुई। दशरथनदन मुस्करा-कर बोले, "मा, आपकी जो आज्ञा। लीजिये अभी वल्कल पहनकर वन के लिए निकल पडता हू। मै बडे हर्ष के साथ राज्य को छोडता हू। किसीके कहने से क्यो, अपनी इच्छा से मैं भरत के लिए सर्वस्व त्यागने को तैयार हू। जब पिताजी की भी यही आज्ञा है तब तो एक क्षण का भी विलब मैं नही कर सकता। मै उनका दास हू। दास को आज्ञा देते हुए राजा को जरा भी सकोच नही करना चाहिए। उनकी आज्ञा का पालन करना मै अपना अहोभाग्य समझता हू। मुझे इसी बात का दु ख है कि राजा ने, मेरे पिताजी ने, अपने मुह से मुझे आज्ञा क्यो नही दी? मैं सहर्ष वन जा रहा हू। भाई भरत के पास शीघ्रता से दूत भेज दिये जाय।"

ऐसे धीर-गभीर शब्द कहकर राम चुप हो गये। उस समय उनका सुदर मुख घी से प्रज्वलित अग्नि की तरह तेजोमय था। दुष्ट कैकेयी स्वार्थसिद्धि पाकर खुश हो गई। उसे इसका जरा भी भास न हुआ कि आगे उसके लिए कौन-कौन-से दु ख पडे हैं। अपने बेटे के मुह से तिरस्कारोक्ति से अधिक एक मा के लिए बुरी चीज और क्या हो सकती है? उस समय लोभ से कैकेयी अधी होगई थी। उसमें भरत के स्वभाव को जानने की क्षमता भी नही रही थी।

महाराजा दशरथ तडपने लगे। उनकी स्थिति चारो तरफ से रास्ता रोककर पकडे जानेवाले जगली हाथी जैसी थी। कैकेयी आगे बोली, "राम, राजा के मुह से आज्ञा सुनने के लिए ठहरो मत। यहा से जल्दी ही निकल पडो।"

राम ने विनय से कहा, "मा, आपने मुझे ठीक पहचाना नही। मैं किसी चीज की इच्छा से विलब नही कर रहा हू। मेरी एकमात्र इच्छा पिता के

वचनो का पालन ही है। भरत राज्य-भार अच्छी तरह सम्हालें और वृद्ध पिता को भी भली प्रकार सम्हालें, यही मैं चाहता हू।"

दशरथ से अब सुना नही गया। वह बेचारे फूट-फूटकर रोने लगे। श्री रामचद्र ने पिता के और कैकेयी के चरण छूकर प्रणाम किया और वहा से चल दिये।

लक्ष्मण अवतक बाहर खडे-खडे सब तमाशा देख रहे थे। क्रोध से उनकी आखें लाल होगई। वह राम के पीछे-पीछे जाने लगे।

सामने अभिपेक के लिए लाये गये पूर्णकुभो को देखकर भी राम का मुख-कमल विषादग्रस्त न हुआ। उनकी प्रदक्षिणा करते हुए श्रीराम आगे बढे। राम के साथ सफेद छत्र-चमर लिये लोग खडे थे। उनको श्रीराम ने अलग हटा दिया। वहा एकत्र लोगो से विनती की कि सब अपने-अपने स्थान को लौट जाय। और जितेंद्रिय रघुकुलमणि श्रीराम माता कौशल्या के पास उनको सारी बातें सुनाने तथा उनसे विदा लेने के लिए चले गये।

ऐसी घटना के समय उत्पन्न मानसिक उद्वेगो और सघर्षो को समझ पाना, केवल पुस्तको में पढ लेने से, अशक्य है। अपने-अपने अनुभवो को लेकर हम कल्पना कर सकते हैं कि उस समय अयोध्या में लोगो की मानसिक दशा क्या रही होगी। दशरथ का पुत्र-स्नेह, रघुनदन का सत्यधर्म, कैकेयी का लोभग्रस्त हृदय आदि हमारे दैनिक मानसिक सघर्षो से भिन्न नही है।

मुनि वाल्मीकि, कबन और अन्य भक्तो ने रामायण के इस भाग का बहुत ही हृदयद्रावक ढग से वर्णन किया है। इसीलिए कहते हैं कि जहा-कही भी रामायण का पाठ हो रहा हो वहा हनुमानजी 'बाष्पवारिपरिपूर्ण लोचन' होकर तथा अजलिबद्ध हाथो के साथ कथा सुनने लग जाते हैं।

रामायण की इस घटना को जो कोई नर, नारी, बालक पढेंगे, वे राम के कृपापात्र होगे। सकट के समय उन्हें श्री रामचद्र याद आयगे। उन्हे दु खो का सामना करने की शक्ति प्राप्ति होगी।

: २२ :

लक्ष्मण का क्रोध

रामचद्र माता कौशल्या के महल में पहुचे। वहा बहुत-से ब्राह्मण, स्त्रिया और अतिथिगण इकट्ठे थे। सब आनदित थे कि राम युवराज बननेवाले हैं और सब उसी मगल-घडी की प्रतीक्षा में थे। सामनेवाले मडप में महारानी कौशल्या धवल रेशमी वस्त्र पहने हवन कर रही थी। अपने पुत्र के कल्याण के लिए वह देवताओ का ध्यान कर रही थी। जैसे ही उन्होने रामचद्र को देखा वह उठ खडी हुई। उन्होंने पुत्र का आलिगन किया, माथा चूमा और युवराज के उपयुक्त आसन दिखाकर राम से कहने लगी, "इसपर बैठ जाओ।"

"मा, मैं ऐसे आसन पर अब नही बैठ सकता। नीचे दर्भ के आसन पर ही बैठूगा। आज से मै तपस्वी हुआ हू। मै आपको एक समाचार सुनाने आया हू। उससे आपको दु ख तो होगा पर आपको शाति रखनी होगी।" यह कह श्रीराम ने माता कौशल्या को सारी बातें बताई और उनसे आशीर्वाद मागा।

राम कहने लगे, "महाराज भरत को राज्य देना चाहते है। उनकी आज्ञा है कि मै चौदह वर्ष दडकारण्य में वास करू। आपसे विदा लेकर मुझे आज ही देश छोडकर चला जाना होगा।"

ऐसी कठोर बात को सुनते ही कटे हुए कदली के पेड के समान देवी कौशल्या नीचे गिर पडी। लक्ष्मण और राम ने उनको दौडकर सम्हाला। कौशल्या राम से लिपटकर रोने लगी। वह कहने लगी, "मेरा हृदय पत्थर का बना हुआ है या लोहे का ? मैं अभी तक जिदा कैसे हू ?"

माता कौशल्या का प्रलाप लक्ष्मण से नही सुना गया। उन्हें अपने पिता दशरथ पर बडा क्रोध आया। आवेश में आकर वह कहने लगे, "ऐसा दड, जो बडे दुष्ट अपराधियो को ही दिया जाता है, भाई रामचद्र को हमारे

बूढे बाप ने दिया है। किसके कहने से यह सब हुआ है ? राजा ने राम का क्या अपराध देखा ? दुश्मन भी राम पर किसी दोष का आरोप नही लगा सकता। बुढापे के कारण पिताजी पागल होगये लगते हैं। उन्हें राजा बने रहने का अब अधिकार नही। जो राजा अपनी स्त्री के कहने पर अधर्म करने लग जाता है, वह राजा कैसे रह सकता है ? वैरी भी राम को देखते ही अपना वैर भूलकर उन्हें प्यार करने लग जाते हैं। भैया, मेरी बात सुनो, हम दोनों मिलकर पिता से लडकर राज्य छीन लेंगे। हमारा सामना कौन कर सकता है ? कोई मेरा सामना करेगा तो उसे मार गिराऊगा। बस, आपकी आज्ञा की देर है। मैं अकेला ही सब देख लूगा। देखू भरत कैसे राजा बनता है ! आपको वन में भेज देने की खूब सूझी है इन लोगो को। आप इस षड्यन्त्र के शिकार न बनें। मै इनको हराकर आपको सिंहासन पर बिठाकर छोडूगा मुझमें ऐसा करने की पूरी शक्ति है। यह सूर्योदय नही हुआ है, अधकार छा गया है। सारी जनता तो आपके अभिषेक को देखने के लिए जमा हुई है और राजा आपको वन भेज रहे हैं ! मै इसे चुपचाप सहन नही कर सकता। मैं तो वही करूगा जो न्याययुक्त है। मा, आप देखती रहें। भाई आप भी देखें कि लक्ष्मण में कितनी ताकत है !"

लक्ष्मण की बातो से कौशल्यादेवी कुछ स्वस्थ हुई। किंतु राजा को गद्दी से हटा देना, बलपूर्वक सिंहासन पर बैठ जाना, बाप से राज्य छीनना आदि बातो से वह डर गई। राम से कहने लगी, "लक्ष्मण क्या कह रहा है, सोच लो। तुम दडकारण्य मत जाओ। तुम्हारे बिना मैं शत्रुओ के बीच में कैसे रह सकूगी ? यदि तुम्हे जाना ही पडे तो मुझे भी अपने साथ ले चलो।"

राम शाति से लक्ष्मण की बातें सुन रहे थे। उन्होंने सोचा कि लक्ष्मण को बीच में रोकना कठिन है। उसका रोष चरम सीमा तक पहुचने के बाद ही उतरता है। बाद में ही उसको समझाना उचित होगा।

श्री रामचद्र माता कौशल्या से कहने लगे, "मा, मेरे साथ वन में चलने की बात कोई न करे। पिताजी वृद्ध होगये हैं, दुखी हैं। उनकी सेवा-शुश्रूषा आप ही

कर सकती है। आपका धर्म यही है। महाराज की पटरानी होकर एक विधवा की तरह मेरे साथ आपका चलना ठीक नही। चौदह वर्ष वन में काटकर मैं तो जल्दी ही वापस आ जाऊगा। उसके बाद हम सब बहुत वर्ष सुख से रहेगे। पिता की आज्ञा धर्मयुक्त है या नही, अपने-आप उन्होने ऐसा कहा या किसी और के कहने में आकर कहा, इसका हम विचार न करें। मेरा धर्म तो उनका कहना मानना है। अपना धर्म छोडकर धन-धान्य राज्य और अधिकार से मैं सुख न पाऊगा। उसमें श्रेय भी नही है। (लक्ष्मण से) भाई लक्ष्मण, तुम जो कहते हो, वह ठीक नही है। तुम्हारी शक्ति को मै जानता हू। तुम सबको हराकर मुझे राजगद्दी दिला सकते हो। मेरे ऊपर तुम्हारा जो प्रेम है, उसे भी मैं समझता हू। किंतु, मेरे प्यारे भाई, ऐसा काम हमारे वश को शोभा नही दे सकता। पिता का कहना मानना सबसे उत्तम काम होता है। उसे खोकर अन्य कोई भी चीज निरर्थक है।"

राम इस प्रकार माता कौशल्या को और भाई लक्ष्मण को समझाने लगे। किंतु लक्ष्मण का क्रोध इतनी जल्दी उतरनेवाला न था। उनकी अपनी कोई बात होती तो वह भूल सकते थे। भाई राम के साथ बिना किसी कारण के ऐसा अन्यायपूर्ण व्यवहार लक्ष्मण से सहा नही गया। उनकी आखें लाल हो रही थी, मानो उनसे चिनगारिया निकल रही हो। रामचद्र उन्हें अलग ले गये और कोमलता से बात करने लगे—"प्यारे भाई, तुम तो मेरे चलते-फिरते प्राण हो। मेरा कहना मानो। तुम बडे साहसी हो, अपने क्रोध का—मेरे कारण उत्पन्न दु ख का—दमन करो। उसके वश में न होओ। हम धर्म को दृढता से पकडे रहे। अभी जो तुम कह रहे थे कि हमारा अपमान हुआ तो उसीको हमें आनद का रूप दे देना चाहिए। राज्याभिषेक को हम एकदम भूल जाय और अपने ध्यान को दूसरी दिशा में ले जाय। अब हमें सोचना चाहिए कि पिताजी की क्या स्थिति है? उनपर कैसा-क्या सकट आया है? अबतक वह एक बार भी सत्य से नही हटे। अब वह अपने वचन से हटे तो उनके किये सभी पुण्य निरर्थक हो जायगे और पाप उन्हें घेर लेगा। इसलिए पिताजी असत्य की ओर जाने से घबरा रहे हैं। हमारा धर्म

यह है कि उनसे कहें कि डरने का कोई कारण नही। उन्हें सचाई छोडने की आवश्यकता विल्कुल नही। उनकी आज्ञा से मुझे या तुमको विल्कुल दु ख नही हो रहा। तव पिताजी के लिए मार्ग सरल बन सकता है।

"हमारा कर्तव्य यह है कि प्राणदाता पिता के चित्त में शाति उत्पन्न करे, उन्हें विश्वास दिलायें कि उन्हें अवश्य ही सद्गति प्राप्त होगी। उनके मन में यह डर वैठ गया है कि कही असत्य आचरण से मरने के वाद वह नरक न पहुच जाय। हम उनके डर को दूर करेंगे। हमने आज तक उनको तनिक भी व्यथा नही पहुचाई है। अव वह दु खी हैं। उन्हें और दुखी न करेंगे।

"इसलिए हे लक्ष्मण, मेरा मन तो अपने युवराज्याभिषेक से हट गया है। मैं हृदय से चाहता हू कि छोटे भाई भरत को गद्दी मिले। हम इस कार्य में विलव करेंगे तो माता कैकेयी को मेरी वृत्ति के विषय में शका होगी। इसलिए मैं आज ही यहा से निकल जाना चाहता हू। तभी मा कैकेयी के मन में शाति हो सकती है। पिताजी भी धर्म-सकट से मुक्त होकर शाति पायगे। उन्हें यही विचार सता रहा है कि मै दु ख पाऊगा। उनका यह विचार निराधार है। मै यह सावित करके दिखाना चाहता हू। तभी उनके मन का दु ख दूर हो सकता है। इसी कारण मै जल्दी मचा रहा हू।

"कैकेयी माता के ऊपर भी हमें नाराज नही होना चाहिए। वह तो आज तक हमें कितना प्यार करती आई हैं। एकाएक उनके मन में जो परिवर्तन आया है, उसे मै विधि का ही दोष मानता हू। हम कैकेयी माता की निंदा करेंगे तो यह वडी अनुचित वात होगी।

"विधि के आगे मनुष्यो के सकल्प नही चलते। जो कुछ अव वना है, उसमें कैकेयी का दोप नही। होनी होकर ही रहती है। मा कैकेयी तो निमित्त वन गई है। माता कैकेयी को जैसे हम पहले प्यार करते थे, हमारा व्यवहार अव भी वैसा ही रहना चाहिए। यदि उनके मन में कपट रहता तो अवतक हमसे छिपा न रहता। आज एकाएक जव मैंने उनके मुह से सुना कि 'राम, तू आज ही देश छोडकर वन चला जा' तो मै समझ गया कि कुछ विधाता का ही खेल है। ऐसी सुसस्कृत, सदा मृदुभाषिणी, सदा हम सवको सगी मा की तरह

चाहनेवाली कैकेयी का राजा के सामन इस प्रकार का निर्लज्ज व्यवहार देखकर मुझे तो लगता है कि यह दैवेच्छा के सिवाय और कुछ भी नही। दैव के सामने तो बडे-बडे ऋषि-मुनि भी हार मानते हैं। अपने तप से फिसल पडते है। तो बेचारी मा कैकेयी क्या कर सकती थी ?

"हम अपने मनोबल से इस अनर्थ को खुशी का प्रसग बना डालेंगे। उसीमें हमारी शोभा है। प्यारे लक्ष्मण, अब वन जाने का सकल्प मुझे लेना है, गुरुजनो के आशीर्वाद लेना अभी बाकी है। समय बीत रहा है। जो पानी अभिषेक के लिए लाया गया है, उसी गगाजल को वनवास-व्रत-सकल्प के काम में लाऊगा। पर नही, यह भी ठीक नही है। वह जल तो राजकीय वस्तु है। अभिषेक के कार्य के लिए लाई गई चीज है। उसको काम में लाने का अधिकार अब हमें नही। राज्य और धन-सपत्ति की चिंता मत करो। वनवास उससे भी ऊची चीज है। हमारी छोटी मा के ऊपर से तुम अपना क्रोध हटा लो।" इस प्रकार राम लक्ष्मण को खूब अच्छी तरह समझाने लगे।

वाल्मीकि ने इस स्थान पर 'दैवी' शब्द का प्रयोग किया है। सस्कृत में 'देव' शब्द का अर्थ होनहार, अथवा नियति याने जो अचानक हमारी समझ के बाहर कोई घटना घट जाती हो, के लिए उपयोग में लाया जाता है। रामचद्र यहापर विधि का उल्लेख करके यह नही कर रहे हैं कि यह पहले ही से देवो से निश्चित वस्तु है, जिसका पता राम को था, किंतु यही कहना चाहते हैं कि मनुष्य-जीवन में ऐसी विपदाए दैवसकल्प से आ पडती है। इसमें किसी और व्यक्ति को दोष देना उचित नही , ऐसी स्थिति में हिम्मत नही हारनी चाहिए।

रामचद्र की बातो से लक्ष्मण का क्रोध कुछ समय के लिए शात हुआ तो, लेकिन थोडी ही देर में वह फिर भभक उठे, कहने लगे, "अच्छा, मैं मानता हू, यह विधि का काम है। विधि ने छोटी मा का दिमाग बिगाड डाला। किंतु हम क्यो चुपचाप विधि के अनर्थ को स्वीकार करें ? यह सब क्षत्रियो को शोभा देता है ? सारे राज्य में ढिंढोरा पिटवा दिया कि राम का अभिषेक होगा। उसके बाद पहले के दिये हुए वरो को याद किया और आपमे

कहा कि जाकर जगल में बसो। यह काम वीर पुरुषो का तो नही है। विधि के सामने सिर झुकाना कायरो का काम होता है। हमें तो उसके साथ लडना चाहिए। मै तो विना लडे नही रहूगा। आप देखेंगे कि विधि और वीर पुरुषो में किसका वल अधिक है। जिन्होने यह सोचा कि आपको वन में भेजना चाहिए, उन्हीको मैं जगल में भगाऊगा। यदि आपको जगल में वास करने की महत्वाकाक्षा हो तो कुछ देर ठहरकर फिर भले ही चले जाइयेगा। पर उसके लिए अभी समय है। अनेक वर्प राज्य करने के वाद अपने पुत्रो को राज्य सौप-कर फिर वन की याद करना। जो कोई इसका विरोध करेगा उसे हटाने के लिए मै हू। मेरी ये भुजाए किस काम के लिए हैं ? अपनी सुदरता दिखाने के लिए ? मेरी कमर में यह तलवार किसलिए टगी हुई है ? क्या यह केवल आभूपण है ? या मैं किसी नाटक में भाग लेनेवाला हू ? नही, मुझे आज्ञा दीजिये। मै आपका सेवक हू। जरा देखिये तो सही, आपके सेवक में कितनी सामर्थ्य है।"

श्रीराम ने पुन लक्ष्मण के क्रोध का शमन किया। वह धीरे-धीरे लक्ष्मण को समझाने लगे, "जबतक हमारे माता-पिता जीवित है, उनका कहना मानना हमारा परम धर्म है। मै उनका विरोध कभी नही करूगा। मा-वाप का अनादर करके, धर्म के अवताररूपी भरत की हत्या करके इस राज्य को लेकर मैं करूगा क्या ? मैं जो कहता हू, वह करो। शात हो जाओ।"

यो कहकर राम अपने हाथो से अनुज लक्ष्मण की आखो से आसुओ को पोछने लगे।

श्री रामचद्र जव स्वय अपने हाथो से लक्ष्मण की आंखें पोछने लगे तो वहा क्रोध कैसे टिक सकता था ? लक्ष्मण शात हो गये।

: २३ :

सीता का निश्चय

अभी तक नगर के लोगो को इस बात का पता नही लगा था कि राज-भवन के अत पुर में क्या बातें हो रही हैं। रामचद्र का मन अब तो वनवास की तैयारी की ओर था और उन्हें बहुत जल्दी भी हो रही थी। जब उनकी तैयारी पूरी हुई तो वह माता कौशल्या के पास आशीर्वाद लेने गये।

माता कौशल्या ने रामचद्र के साथ चलने की अपनी इच्छा प्रकट की। उन्होने कहा, "मेरे प्यारे राम, तुम्हारे बिना मुझसे अयोध्या में नही रहा जायगा। मैं तुम्हारे साथ ही चलती हू।"

रामचद्रजी ने माता को अनेक कारण बताकर और धर्म की बात समझाकर रोका। उन्होने कहा, "राजा और पति दशरथ को छोडकर आपका वन जाने का निश्चय धर्म-विरुद्ध होगा। बुढापे में पति की सेवा करने के लिए आपको अयोध्या में ही रहना चाहिए, परिस्थिति चाहे कैसी भी हो। रामचद्र जानते थे कि माता कौशल्या स्वय अपना धर्म समझती हैं, फिर भी अचानक पहाड-जैसा दु ख आ पडने पर वह किंकर्तव्यविमूढ होगई है। इसलिए राम ने माता को समझाने का प्रयत्न किया। अत में स्तुति-मत्रो द्वारा माता कौशल्या ने पुत्र को आशीर्वाद दिया। "पिता की आज्ञा पूरी करके सफलतापूर्वक सकुशल लौट आओ, मेरे राम!" उन्होने गद्गद स्वर से कहा। राम ने उनको सात्वना देते हुए हँसते-हँसते कहा, "मा, चौदह वर्ष बहुत जल्दी निकल जायगे। उसके बाद मैं तुम्हारे पास तत्काल उपस्थित हो जाऊगा।"

वाल्मीकि कहते है कि मा का मगलमय आशीर्वाद पाकर श्रीराम का मुखमडल और भी तेजोमय होगया। कर्त्तव्य-पालन के लिए जो सुख और वैभव त्यागते हैं उनके चेहरे पर एक असाधारण तेज आ जाता है।

जिन्होने ऐसे लोगो का दर्शन किया है, कवि वाल्मीकि का यह वर्णन उनकी समझ में अच्छी तरह आ सकता है।

सुमत के साथ श्री रामचद्र जब राजा दशरथ के पास चले गये तो उसके बाद सीता प्रति क्षण राम के वापस आने की, रथ और छत्र-चवर के साथ लौटने की, प्रतीक्षा करती रही। वहा से लौटते हुए राम विचारमग्न हो रहे थे कि सीता को वियोग की बात किस तरह बताई जाय ? राम जब बिना रथ के और बिना छत्र-चवर के अकेले आने लगे और उनका चेहरा कुछ उदास जान पडा तो सीता एक साथ चिंतित और विस्मित हो उठी। मन-ही-मन उन्होंने सोचा कि कुछ भी हो, हम दोनो के बीच में जो प्रेम है उसके रहते हुए किसी बात की चिता नही। उन्होने प्रेमपूर्वक राम से पूछा, "क्यो, क्या बात है ? आपके चेहरे पर विषाद क्यो छाया हुआ है ?"

श्री रामचद्र ने देवी सीता को सक्षेप में ही सारी बातें बता दी और कहने लगे, "वैदेही, मैं जानता हू कि मेरे बिना तुम्हे कितना बुरा लगेगा। फिर भी तुमसे अधिक धर्म को कौन समझता है ? जनक महाराजा की पुत्री जो हो। तीनो माताओ के साथ तथा राजा के साथ बुद्धिमत्तापूर्ण व्यवहार रखना और अपने लिए अत पुर की अन्य स्त्रियो से विशेष अधिकार की आशा न करना। राजा अब भरत बनेगा, उसके साथ सभलकर रहना होगा। इस बात का ध्यान रखना कि उसका तुम्हारे प्रति स्नेह बना रहे। हे जानकी, तुम मुझे तो इसी प्रकार चाहती रहोगी न ? चौदह वर्ष वन में बिताकर मैं जल्दी ही लौट आऊगा। तबतक अपने पूजा आदि व्रतो का ठीक तरह से पालन करती रहना। माता कौशल्या को विशेष रूप से देखना होगा। वह बहुत दु खी होगई हैं। भरत और शत्रुघ्न को अपने ही छोटे भाई के समान समझना। राजकुल के लोगो के स्वभाव तुम जानती ही हो। उनके सामने मेरी प्रशसा न करना और अपने मन को स्थिर रखना।"

सीता को राम की बातें सुनकर बडा गुस्सा आया। प्रेम ने क्रोध का रूप धारण कर लिया था। वह बोली, "आपने खूब उपदेश दिया, हे धर्मज्ञ राज-कुमार! पर मुझे आपकी बातें सुनकर हँसी आती है। पति अलग है और स्त्री

अलग, इस बात का ज्ञान मुझे आपकी बातो से आज हुआ है। जहातक मेरी जानकारी है, यदि राम को वनवास की आज्ञा मिलती है तो वह सीता के लिए भी है। आपके आगे-आगे चलकर ककड़-पत्थर को हटाकर आपके लिए मै मार्ग सुगम करती जाऊगी। हे नाथ, मुझसे नाराज न होइये। मैंने अपने माता-पिता से धर्म सीखा है। आज आप जो कह रहे है, और आजतक मैंने जो सीखा है, वे परस्पर विरोधी मालूम देते है। मैंने तो यही सीखा है कि जहा आप हो मुझे भी वही रहना चाहिए। यदि आप आज ही वन जा रहे हो तो मैं भी आज ही आपके साथ चल पडूगी। इसमें सोचने की कोई बात ही नही। आपके साथ खेल-खेल में ही वनवास के दिन निकल जायगे। आप मुझे यहा अकेली न छोड जाय। आपके चले जाने पर मैं यहा अकेली क्या करूगी ? मै आपको कोई कष्ट न दूगी। कद-मूल-फल खाकर रह जाऊगी। आपसे आगे चलूगी। आपके साथ नदी, पहाड आदि देखकर प्रसन्नता पाऊगी। यह तो मेरी बहुत दिनो की चाह रही है। पुष्पो से और विहगो से भरे हुए वनो में आपके साथ खूब घूमूगी। नदियो में और तडागो में हमलोग खूब आनद से रहेंगे। आपके बिना मुझे स्वर्ग भी पसद नही आ सकता। आप विश्वास करें कि यदि आप मुझे यहा अकेली छोड जायगे तो मैं अवश्य मर जाऊगी। मै आपसे याचना करती हू कि आप मुझपर दया करें। मुझे असहाय न छोड जाय।"

सीता ने क्रोध के साथ बोलना शुरू किया था, किंतु अत याचना के साथ किया। राम ने अपनी प्राणप्रिया पत्नी को वनवास के भय और सकट विस्तार से समझाये। सीता की आखो से आसुओ की धारा बहने लगी। "व्याघ्र, सिंह, रीछ और सर्प आपको देखकर दूर भागेंगे। आप जो धूप, वर्षा, आधी, भूख आदि की बातें बता रहे हैं उन्हें मैं बडे आनद से सहन कर लूगी। मुझे वनवास से बिल्कुल डर नही। हा, यहा मुझे अकेली रहना पडे तो मेरा जीना असभव है।" सीता ने साफ-साफ कह दिया।

फिर बोली, "मिथिला में, जब मैं छोटी थी, ज्योतिपियो ने मेरी मा से कहा था कि तुम्हारी लडकी के भाग्य में वनवास का भी योग मालूम

होता है।' और मैं अकेले ही थोड़े वनवास कर सकती हू ? अब आपके साथ जाने का मौका है। ज्योतिषियो की बात सुख से फलित हो जायगी। वनवास से उन्ही लोगो को कष्ट हो सकता है, जिनकी इद्रिया वश में नही होती हैं। आपको या मुझे इस बात का कोई डर नही है।"

: २४ :

बिदाई

सीता की भी राम के साथ वन जाने की बात पक्की होगई। सीता ने गरीब ब्राह्मणो को बुलाकर अपना सारा धन दान कर दिया और वनवास की तैयारी करने लगी।

उधर लक्ष्मण भी अपने हठ में विजयी हो गये। राम के साथ उनका भी जाना निश्चित होगया। अब शीघ्र-से-शीघ्र राज्य छोडना था। तीनो महाराज से विदा लेने चले। अब तो बात नगर भर में फैल गई।

जब शहर की गलियो में दोनो तरफ इकट्ठे हुए लोगो ने राम, सीता, और लक्ष्मण को पैदल जाते हुए देखा तो सबको बडा दुःख हुआ। राजा के निर्णय पर उन्हे आश्चर्य हुआ। सब उन्हें धिक्कारने लगे। सीता को मार्ग में इस तरह पैदल जाते हुए लोगो ने कभी न देखा था। उनसे यह बात सही नही गई। मकानो की खिडकियो में, छतो पर, आगे-पीछे सब ओर राजकुमारो और सीता को देखने के लिए भीड इकट्ठी होगई। सबने सोचा—"जनकदुलारी सीता वन में कैसे वास करेगी? इससे वर्षा और धूप कैसे सहन हो सकेगी? राम के बिना हमें इस नगर में रहने का क्या आकर्षण है? हम भी इन लोगो के साथ-साथ चल दें। अपनी धन-सपत्ति साथ ले जायगे। जहा राम रहेंगे, वही हमारी अयोध्या है। हम सब चले जायगे तो यह नगर उजड जायगा। जगल के जानवर और मुर्दो का मास खानेवाले प्राणी यहा आकर बसने लगेंगे। कैकेयी यहा राज करती रहे।"

रामचद्र के कानो में ये बातें पडती थी, किंतु उन्होने उनपर ध्यान नही दिया।

राज-भवन के द्वार पर सुमत एक कोने में शोकाच्छन्न मुखमुद्रा में खडे थे। राम ने उनसे कहा, "हम तीनो यहा से जाने से पहले महाराज से

विदा लेने आये हैं। उनसे पूछ लीजिये कि हम अदर आ सकते है या नही ?"
सुमत अदर गये।

वहा राजा दशरथ राहुग्रस्त सूर्य की तरह, राख से ढकी अग्नि की तरह या सूखे तडाग की तरह कातिहीन पडे थे। सुमत ने उनको प्रणाम किया। दु:ख से उनके मुह से पूरी आवाज भी नही निकल रही थी। बोले, "राजकुमारो ने अपनी सारी सपत्ति दान कर दी है और वन जाने के लिए द्वार पर तैयार खडे हैं। महाराज का मगल हो। आपके दर्शन के लिए आज्ञा माग रहे हैं। दडकारण्य जाने से पहले आपसे मिलना चाहते हैं।"

राजा ने कहा कि राम को अदर ले आओ।

राम ने कक्ष में प्रवेश करते ही पिता को प्रणाम किया। दशरथ पुत्र को देखते ही उन्हें आलिगन करने के लिए मच से उछलकर उनकी ओर जाने लगे, लेकिन राम के पास पहुचने से पहले ही वह मूर्च्छित होकर गिर पडे।

राम और लक्ष्मण दोनो ने एकदम राजा को उठाकर बिस्तर पर लिटाया। उनपर प्यार से हाथ फेरने लगे। राम ने दशरथ से कहा, "अब आप हमें अनुमति दीजिये। सीता और लक्ष्मण दोनो मेरे साथ जा रहे हैं। मैंने उन्हे रोकने के लिए काफी प्रयत्न किया, किंतु दोनो ने अपना हठ नही छोडा। अब हम जा सकते है न ?"

दशरथ बेचारे बोलने लगे, "राम, कैकेयी को दिये हुए वचन से अकेला मैं बधा हुआ हू। तुम स्वतत्र हो। तुम मेरे विरुद्ध खडे होकर राज्य छीन क्यो नही लेते ?" अबतक राजा इस बात को मन में सोचते रहे थे, अब उन्होंने स्पष्ट कह डाला।

राम बोले, "पिताजी, आप ऐसा न कहें। आप इस देश का और हजार वर्ष तक पालन कर सकते है। मुझे राजा बनने का मोह नही है। चौदह वर्ष वन में बिताकर वापस लौटकर आपके चरण छुऊ, यही मेरी अभिलाषा है।"

"मेरे प्यारे राम, मेरे प्रिय पुत्र, तुमने अपने कुल का नाम बढा दिया।

तुम्हारा मगल हो। तुम्हारे रास्ते में भय पास भी न फटकनें पाये। हे उत्तम, दृढ चित्तवाले वीर, तुमने तो वन जाने का निश्चय कर ही लिया है, किंतु आज ही क्यो ? आज रात तो ठहर जाओ। मैं जी भरकर आज तुम्हे देख लू। कैकेयी ने मुझे फसा दिया। उस कपटिनी के फदे में मै आ गया। तुम तो मेरे प्रण को पालनेवाले सत्यधर्मी हो। राज्य की उपेक्षा करके वन में चौदह वर्ष बिताने का तुमने निश्चय कर लिया। तुम्हारे जैसा पुत्र इस भूमडल में और कौन हो सकता है ? मैं सच कहता हू, यह सब मेरी इच्छा के विरुद्ध हुआ है।"

दशरथ रोने लगे। वह जान गये कि उनका अत अब अत्यत निकट है। इसलिए वह चाहते थे कि राम को सारी बातें वास्तविक रूप से मालूम हो जायं और अपने प्रति उनके प्रेम में कमी न आने पाये।

"पूज्य पिताजी, आप दुखी न हो। माता को दिये गये वचन को आप पालें। अभी दूतो को भेजकर भरत को बुलवा लें। मैंने अपने मन से राज-पद को निकाल दिया है। भरत को हृदय से आशीर्वाद देकर आप उसे राजा बना दे। मेरा तो मन अब वनवास में ही लगा है। यहा के किसी सुखोपभोग में मेरी आसक्ति नही रही। आप आसू न बहाये। आपको समुद्र के समान तटस्थ रहना चाहिए। आपको असत्यवादी बनाकर मुझे क्या मिलेगा ? यदि जैसे आप चाहते हैं वैसे हठात् राजा बनू भी तो आप झूठे साबित होगे और मुझे स्वय भी तो राज्यभोग की इच्छा नही हो रही। जगल में आनद से मेरे दिन निकल जायगे। आप मुझको चौदह वर्ष के बाद अवश्य अपने पास देखेंगे। आप शोक करना छोड दें। आज जाऊ अथवा कल, इसमें क्या अतर पडता है ? आज जैसा ही आपको कल भी लगेगा। इसलिए मै आपसे प्रार्थना करता हू कि आज ही हमें यहा से जाने की अनुमति दे दीजिये।"

दशरथ ने सुमत को आज्ञा दी, "सुनिये, मेरी आज्ञा है कि एक चतुरग सेना राम के साथ चलेगी। इसके बारे में अभी हमारे सेनानायको को खबर दे दी जाय। राम वन में ऋषियो के साथ आराम से रह सकें, इसके लिए

जरूरी चीजें काफी मात्रा में साथ में भेजी जाय। धन-धान्य, नौकर-चाकर, किसी की कोई कमी न होने पावे।"

बेचारे दशरथ सोचने लगे, राम के वनवास को राजाओ की सैर के रूप में क्यो न वदल दिया जाय ?

कैकेयी यह सुनकर हँस पडी। वोली, "वाह, महाराज! आपने अपना वचन खूब पालन किया! राज्य की सभी चीजें राम को दे दें तो भरत के लिए क्या वचेगा ? उसको राज्य दिया जायगा तो राज्य में से चीजें कैसे हटाई जा सकती हैं ? धन-धान्य से रिक्त राज्य लेकर भरत क्या करेगा ?"

दशरथ वडे क्रोध मे आकर कुछ वोलने ही लगे थे कि श्रीरामचद्र ने उन्हें बीच में ही रोक दिया। उन्होने कहा, "मेरी यह नम्र प्रार्थना आप सव सुनें। मुझे तापस-लोगो का ही जीवन लेकर वन में रहना है। मैं राज्य के ऐश और आराम को त्याग करके जाना चाहता हू। धन-धान्य और नौकर-चाकर मुझे बिल्कुल नही चाहिए। हाथी को दान में दे देने के पश्चात् उसकी जजीर अपने पास रखकर कोई क्या करेगा ? जल्दी से मेरे लिए वल्कल मगा दीजिये। हम लोगो को एक फावडा और टोकरी की आवश्यकता होगी, उन्हें मगवा कर दे दीजिये।"

यह सुनते ही कैकेयी भागकर अदर गई। उसने पहले से ही वल्कल तैयार कर रखे थे। निर्लज्ज भाव से उसने राम के हाथ में वल्कल पकडा दिये। राम ने अपने शरीर से वहुमूल्य वस्त्र उतारकर वही वल्कल धारण कर लिये। वल्कलधारी राम एक महर्षि की तरह तेजवान दिखाई देने लगे। लक्ष्मण ने भी वडे भाई का अनुसरण करके वल्कल पहन लिये। दशरथ वेचारे कुछ वोल नही पाये। चुपचाप देखते रह गये।

कैकेयी सीता के लिए भी वल्कल ले आई और सीता से वोली कि ले इसे पहन ले। वैदेही ने ऐसी पोशाक को अपने जन्म में कभी हाथ नही लगाया था। उसकी समझ में नही आया कि उसे किस प्रकार धारण किया जाता है। वह सोच में पड गई। फिर गधर्वराज की तरह अति सुदर शोभायुक्त अपने पति श्रीराम को सवोधित करके वोली, "मुझे वता दें कि इसे किस प्रकार

पहना जाता है।"

राम ने वल्कल को उठाकर सीता ने जो वस्त्र पहने थे, उन्हींके ऊपर पहनाकर दिखाया कि उसे यो पहनना चाहिए। इस दृश्य को देखकर अत पुर की स्त्रियो में हाहाकार मच गया। राजा दशरथ वेहोश होकर गिर पडे।

होश में आने के वाद राजा दशरथ कैकेयी को सबके सामने बुरा-भला कहने लगे। किंतु कैकेयी पर उसका कोई असर न पडा। कौन क्या कर सकता था ? सीता का वन जाना कैकेयी के कहने से नही हुआ था। उन्होंने अपनी इच्छा से राम के साथ जाना निश्चित किया था। उसीमें सीता ने सुख देखा। इसको कोई रोक नही सकता था।

जाते-जाते राम ने नीचे की ओर दृष्टि करके पिता से कहा, "पिताजी, मा कौशल्या को आपके पास छोडकर जा रहा हू। अनुपम गुणवाली है मेरी मा। उनको किसीपर क्रोध नही। उनको ठीक तरह से देखें। मेरे वियोग से दुखी होने पर भी आपके लिए ही वह प्राण धारण कर रही हैं। मैं जब वापस आऊगा तो मुझे मेरी मा जीवित मिलें, यह आपका काम होगा। ऐसा न हो कि मुझे मा को ढूढने के लिए परलोक जाना पडे।" राम को मा का वियोग बहुत दु खप्रद लगा।

राम, लक्ष्मण और सीता तीनो इस प्रकार विदा होकर बाहर चले आये। राजा दशरथ से यह दृश्य देखा न गया। वह अपने हाथो से मुह ढककर रोने लगे।

: २५ :

वन-गमन

राम के विदाई-वचनो से राजा दशरथ की मनोव्यथा असह्य हो उठी। उनकी आखो से आसुओ की धारा बद ही नही होती थी। वह मुह से कुछ भी न बोल पाये। थोडी देर के बाद कुछ सम्हले और बोले, "मालूम नहीं, मैंने कौन-सा पाप किया, जिसका फल आज भोग रहा हू! कदाचित् मैंने कई बछडे-बछियो को मारकर गोमाताओ को तडपाया होगा, नही तो मेरा राम आज मुझसे क्यो अलग होता? हाय, मालूम होता है कि मृत्यु भी जब हम चाहते है तब नही आती, नही तो मै कैकेयी के हाथो इन कष्टो को अनुभव करने के लिए जीवित क्यो रहता? अग्नि के समान तेजवाला मेरा पुत्र मेरे सामने वल्कल धारण किये खडा है। मेरी छाती फटी जा रही है। इस दृश्य को देखकर भी मै जिदा कैसे हू? हे राम, मुझे छोडकर कहा चले जा रहे हो?"

यो बेचारे विलाप करते रहे। फिर उन्होने सुमत को बुलाकर आदेश दिया, "देखो, पुत्र-वधू जानकी और राम-लक्ष्मण को राज्य की सीमा तक रथ में बिठाकर ले जाओ। यहा से वे पैदल नही जायगे।"

लक्ष्मण ने अपनी माता सुमित्रा से विदाई लेते हुए उनके चरण छुए। वह माता से कुछ कहना चाहते थे, किंतु शोकविह्वल हो जाने के कारण एक शब्द भी न बोल सके। देवी सुमित्रा ने पुत्र को प्यार से छाती से लगा लिया। मस्तक चूमकर वह कहने लगी, "मेरे प्यारे पुत्र, तुम्हारे भ्रातृप्रेम को मैंने आज देखा। धन्य हू मैं, जिसने ऐसा सपूत पाया। बेटा, राम का दिन-रात ख्याल रखना। तुम्हारे लिए राम न केवल भाई है, किंतु वह तुम्हारे गुरू और राजा भी हैं। हमारे कुल में छोटे भाई बडे भाइयो को इसी प्रकार मानते आये हैं। खुशी के साथ वन जाओ, मेरे लाल! राम और सीता ही अब

तुम्हारे माता-पिता हैं। वन को अयोध्या समझकर आनद से वनवास के दिन काटना।"

रामायण काव्य में सुमित्रादेवी को बहुत ही ज्ञानवाली, मितभाषिणी और महाविवेकी चित्रित किया गया है। पढे-लिखे वृद्ध लोगो की मान्यता है कि रानी सुमित्रा को रामावतार का रहस्य मालूम होगया था। कौशल्या-देवी को पुत्र के वियोग का शोक हुआ था, कितु सुमित्रा ने तो अपने लक्ष्मण को आनद के साथ ही विदा दी।

इसी बीच सुमत आये और कहने लगे—'हे कीर्तिमान, दशरथ-नदन रामचद्र, आपके लिए रथ तैयार है। आपका मगल हो। जहा और जिस तरफ आपको जाना हो, आज्ञा दें। इस क्षण से हम चौदह वर्ष की गिनती करेंगे।"

सीता हँसती-हँसती रथ में बैठ गईं। उनके लिए देवी कौशल्या ने वस्त्र और आभूषण बाध दिये थे। दोनो भाइयो के कवच और शस्त्र, कद-मूल आदि ढूढकर खोद निकालने के लिए फावडा और टोकरी इत्यादि चीजें भी रथ में रखी गई। वनवासियो के लिए तब फावडा और टोकरी नितात आवश्यक वस्तुए समझी जाती थी।

× × ×

हम यहा थोडी देर रुक जाय और भगवान का स्मरण करें। यहा से वनवास का खड प्रारभ होता है। हम अपने अत करण से दूपित विचारो को हटायें। मन को पवित्र करने के लिए प्रभु से प्रार्थना करें। रामायण से हमें सत्य, धैर्य और प्रेम, ये तीन वस्तुए प्रसाद रूप में मिलती हैं।

रामावतार इसी हेतु से हुआ था। वल्कलधारी दशरथनदन को, अनुज लक्ष्मण को, पतिव्रता जानकी को नमस्कार करें और उनसे कृपा-प्रसाद की याचना करें।

× × ×

इधर राम का रथ चला और उधर नागरिक चिल्लाने लगे—

"आहिस्ते-आहिस्ते चलो। रासो को मजबूती से पकडो। हे सुमत,

रथ को धीरे-धीरे चलाओ। एक बार हमें श्री रामचद्र को जी भरकर देख लेने दो।"

"तनिक इन राजकुमारो के सुकोमल मुखो को तो देखिये। इनकी माताए इनसे बिछुडकर कैसी तडपती होगी। वे कैसे जीवित रह पायगी ? वैदेही और लक्ष्मण! धन्य हो तुम!" लोग यो कहते हुए रथ के पीछे-पीछे दौडने लगे।

एक तरफ राम का आदेश था कि रथ को तेजी से दौडाया जाय, दूसरी तरफ लोग चिल्ला रहे थे—"जल्दी मत करो, आहिस्ते चलाओ।" भीड रथ के पीछे बढती चली जा रही थी। बडी कठिनाई के साथ सुमत रथ को किसी तरह अयोध्या के बाहर निकाल लाये। नगर शोकनिमग्न हो गया। किसी घर में किसीने खाना नही बनाया, न खाया। रोने और कोसने में दिन बीतने लगा।

राजा दशरथ अत पुर से बाहर आकर ड्यौढी पर खडे होकर जबतक रथ आखो से ओझल नही हुआ, उसकी ओर देखते रहे। जब रथ आंखो से ओझल होगया तो उससे उठी धूल को खडे देखते रहे। जब धूल भी खत्म होगई तो उनसे न रहा गया। मुह से एक चीख निकली और बेहोश होकर धडाम से नीचे गिर गये। उनकी दोनों तरफ कौशल्या और कैकेयी थी। दशरथ सुध में आये तो कैकेयी से उन्होने कहा, "हे पापिनी, दुराचारिणी, मुझे हाथ न लगा। तेरा चेहरा भी मैं नही देखना चाहता। तेरा और मेरा आज से सबध टूट गया। आज से तू मेरी कोई नही है। मैंने तुझे छोड दिया, जा छोड दिया।

"यदि भरत तेरी करतूत से सहमत होकर राज्य लेना चाहता है तो उसके हाथ से मेरे क्रिया-कर्म नही होगे। उसके हाथ का तर्पण मुझे नहीं पहुच सकता।

"मेरे राम, आज रात को तुम कहा सोओगे ? पत्थर का सिर-हाना तुमसे कैसे सहन होगा ? तुम किस तरह जगल के कद-मूल खा सकोगे ?" इस तरह बेचारे दशरथ विलाप करते रहे।

उन्होने फिर कहना प्रारभ किया, "कैकेयी, अव तो तू सुखी होगई ? तेरा काम वन गया न ? यह कहते हुए दशरथ भवन के अदर आये। उनकी हालत उस मनुष्य की तरह थी जो अभी-अभी श्मशान से लौटकर आ रहा हो। वह चिल्लाकर बोले, "मुझे यहा से हटाओ। मैं कौशल्या के यहा जाना चाहता हू।"

उनकी इच्छानुसार सब मिलकर उन्हें कौशल्या के अत पुर में ले गये। आधी रात को दशरथ जाग पडे और बोले, "कौशल्या, तुम हो न मेरे पास ? मुझे स्पर्श करो तो। मेरी दृष्टि राम के पीछे-पीछे ही चली गई मालूम होती है। मै कुछ देख नही पाता।"

कौशल्या बेचारी क्या करती ? वह दशरथ को आश्वासन देती या अपना दु ख भूलती ? उन्होने दशरथ को छूकर देखा और रो पडी, "रात्रि के समय भी आपका शरीर धूप की तरह गरम क्यो है ?"

तब समझदार सुमित्रा कौशल्या को समझाने लगी, "दीदी, देखिये, आपका इस तरह शोक करना उचित नही। आप सवकुछ जानती हैं। राम तो पिता के सत्य और धर्म की रक्षा करते हुए वन गये हैं। धर्म की रक्षा के लिए राज्य को तुच्छ समझनेवाले राम की आप मा हैं। धन्य हैं आप ! राम की धारणा उच्च कोटि की है। उससे हमें दु ख नही मानना चाहिए। मुझे तो बहुत गर्व हो रहा है कि मेरा वेटा लक्ष्मण राम की सेवा में है। वनवास के कष्टो को जानते हुए भी सीता राम के साथ गई है। राम का नाम तीनो लोको में गाया जायगा। राम की पवित्रता और सद्गुण उसकी रक्षा करेंगे। वे ही उसके कवच हैं। सूर्य-चद्र और पवन उसके अनुकूल रहेंगे। उसके पावन शरीर की रक्षा करते रहेंगे। आप बिल्कुल चिता न करें। कोई व्यक्ति राम का विरोध करके लड नही सकता। वह अवश्य सफलतापूर्वक वनवास-काल पूरा करके अयोध्या लौटेगा और उसके बाद अवश्य राजा बनेगा। राम को आप महाविष्णु ही समझें। सीता को भगवती लक्ष्मी मानें। इसमें मुझे कोई सदेह नही है। आपने देखा कि लोगो ने कैसी सहानुभूति प्रकट की। मेरा पराक्रमी वेटा धनुष-बाण लिये राम के साथ है। वह राम की दिन-रात

रक्षा करता रहेगा। अव आप शोक छोड दें। मेरी बात पर विश्वास रखें। राम लौटकर कुशलपूर्वक आयगा और आपके चरण छूकर आशीर्वाद लेगा। पूर्ण चद्र के समान खिलते हुए उसके मुखमडल को आप अवश्य ही फिर देखेंगी। आप रोना वद करें और अत पुर के अन्य जनो को आश्वासन दें। शोक के वदले आपको गर्व का अनुभव होना चाहिए। राम जैसा और कौन हो सकता है ?"

सुमित्रा की बातो से कौशल्या को कुछ आश्वासन मिला।

उधर राम के रथ के साथ-साथ लोग भी चलते गये। सबने राम से आग्रह किया कि अयोध्या वापस चले आयें। वे रथ को भी आगे बढ़ने से रोकने लगे।

राम ने उन सबको समझाया—"मै पिता के धर्म की रक्षा के लिए वन जा रहा हू। इसमें आप लोगो को दुखी नही होना चाहिए। मुझे रोकिये नही। आपसे प्रार्थना करता हू कि आप सब वापस चले जाय।"

राम के कई वार समझाने पर भी लोगो ने नही माना। वे रथ के साथ-साथ चलते ही गये। तव राम ने रथ को रोका। वडे प्रेम के साथ लोगो की तरफ देखा। बोले, "मेरे प्रिय अयोध्यावासियो, मैं आप लोगो के प्रेम को खूब जानता हू। मैं चाहता हू कि अव आप उसी प्रकार का प्रेमभाव भरत के प्रति दिखावें। उसको सतुष्ट रखें। मेरा भाई उम्र में छोटा होने पर भी वडा विवेकशील है। उसके स्वभाव में शौर्य और मृदुता दोनो का सुदर समन्वय है। वह आप सवका खूब अच्छी तरह पालन करेगा। अव आप लोगो का नाथ भरत है। पिता के वचन की रक्षा के लिए मैं वन जा रहा हू। भरत को राजा ने युवराज नियुक्त किया है। वह उसके लिए सभी प्रकार से योग्य भी है। आप लोगो को चाहिए कि राजा की आज्ञा का पालन करें, उनके मन की ग्लानि को हटाने का यत्न करें।"

राम के हितकर उपदेशो को लोगो ने सुना, लेकिन उनकी वाणी से राम के प्रति उनकी ममता और अधिक ही होगई। उनके धर्म, प्रेम और न्यायपूर्ण विचारो से राम पर वे और भी मुग्ध हो गये।

भीड में कुछ वृद्ध और भोले ब्राह्मण भी थे। वे रथ को खीचनेवाले

घोडो को सबोधित करके कहने लगे, "घोडो, हमारे राम को क्यो वन में भगाकर लिये जा रहे हो ? तुम भागो मत। हम लोगो ने सुना है कि घोडो की बुद्धि बहुत सूक्ष्म होती है। मनुष्य के मन की बातो को वे खूब समझ लेते है। हमारी माग को भी समझो न ? राम को उलटी दिशा में लाकर हमारे पास पहुचा दो।"

राम ने इन वृद्धो की बातो को सुना। उन्होने रथ को रुकवा दिया। तीनो जने रथ से उतरकर पैदल चलने लगे। कुछ दूर चलने पर सामने तमसा नदी आई। वहा रथ को और सब लोगो को रुकना ही पडा। ऐसा लगा कि सामान्य नर-नारी और वृद्ध ब्राह्मणो की माग सुनकर राम को रोकने के लिए तमसा नदी सामने आकर खडी होगई है। सुमत ने घोडो को खोल दिया, उन्हें पानी पिलाया और चरने छोड दिया।

"लक्ष्मण, यह हमारे वनवास की पहली रात्रि है। आज की रात इस पुण्य नदी के तट पर काटेंगे। कोई कष्ट नही होगा। यह देखो, यहा के पशु-पक्षी हमें कितने प्यार से निरख रहे है। मुझको केवल माता-पिता के शोक का विचार करते हुए कुछ चिता होती है। किंतु भरत इतना अच्छा है कि उसके अयोध्या में रहते हुए चिता का कोई कारण नही। सुमतजी, घोडे बेचारे थक गये हैं। उनकी आवश्यकताओ पर ध्यान दिया जाय।"

सबने सध्या-वदन किया। राम ने लक्ष्मण से कहा, "चूकि आज वनवास की पहली रात्रि है, हमें उपवास करना चाहिए। तुम्हारे पास में होते हुए मुझे किसी बात की चिता नही।"

लक्ष्मण ने रामचद्र और सीता के लिए भूमि पर घास विछाकर बिस्तर तैयार कर दिया। लेकिन स्वय उन्होने सुमत के साथ बातें करते हुए रात बिता दी। सोये बिल्कुल नही।

अभी सुबह हुई नही थी कि राम जाग गये। सुमत से उन्होने कहा, "लोग बहुत दूर चलकर आये हैं, इससे थककर इधर-उधर सोये पडे हैं। इन लोगो का प्रेम देखकर मुझे दु ख होता है। ये मुझे छोडना बिल्कुल नही चाहते है। किसी तरह मुझे वापस अयोध्या ले जाने का निश्चय करके ये आये

हैं। इसलिए मैं सोचता हू कि हमें यहा से चुपके-से निकल जाना चाहिए।"

तीनो जने रथ में बैठ गये। राम के कहने से सुमत रथ को कुछ दूर उल्टी दिशा में अयोध्या की तरफ ले चले और फिर लौटकर आगे बढे, ताकि लोगो को पहियो के चिन्हो से ठीक पता न चले कि रथ किस ओर गया और वे उनका पीछा करना छोड दें। इस प्रकार राम, सीता, और लक्ष्मण को सुमत दक्षिण दिशा की ओर ले गये।

सकता। मेरे आदमी सदा जागरूक है। इसलिए सीता और राम के बारे में तुम किसी प्रकार की चिता न करो। सो जाओ।"

यह सुन लक्ष्मण बोले, "हे मित्र, मुझे नीद नही आ रही है। वह देखो, जनक महाराजा की पुत्री और राजा दशरथ की पुत्रवधू जमीन पर पडी सो रही है। तीनो लोको को जीतने की शक्ति रखनेवाले पुरुषोत्तम रामचद्र घास पर लेटे हुए हैं। यह सब देखते हुए भला मुझे नीद कैसे आ सकती है?"

"मालूम नही आज अयोध्या का क्या हाल हो रहा होगा? अत-पुर रोनेवालो के करुण विलाप से भर गया होगा। मालूम नही महा-रानी कौशल्या और मा सुमित्रा जीवित हैं या नही। मै नही समझता कि राम को वन भेजकर पिताजी अब अधिक दिन जियेंगे। यद्यपि उन्होने ही यह आदेश दिया था कि राम वन जाय। उनकी मृत्यु के पश्चात् हमारी माताए कैसे जीवित रह सकेगी? उनके क्रिया-कर्म करनेका सौभाग्य भी हमें न मिल सकेगा। मुझे इस बात की जरा भी आशा नही हो रही है कि जब हम वनवास पूरा करके अयोध्या लौटेंगे तो अपने माता-पिता को जीवित पायेंगे।"

लक्ष्मण के इन दुखभरे शब्दो को सुनकर गुह राजा की आखो से आसुओ की धारा बह निकली। इसी प्रकार बातें करते गुह और लक्ष्मण ने रात बिता दी।

प्रात काल हुआ। राम जल्दी ही उठ गये। उन्होने लक्ष्मण से कहा, "हमें गगा पार करनी है। गुह से कहो कि इस विशाल नदी को पार करने के लिए एक नाव का प्रबध कर दें।"

गुह ने अपने अनुचरो द्वारा राम के लिए एक अच्छी नाव की व्यवस्था करा दी। राम से उसने जाकर कहा कि नाव तैयार है। राम और लक्ष्मण सीता के साथ तैयार होकर नाव में बैठने को नदी की तरफ जाने लगे, तब सुमत ने राम को प्रणाम किया और पूछा, "मेरे लिए क्या आज्ञा है?"

रामचद्र ने सुमत के कधे पर हाथ रखकर कहा, "सुमतजी, अब आप शीघ्रता के साथ अयोध्या लौट जाय। महाराज के पास पहुच जाय। अब उनको ही सम्हालने की आवश्यकता है।"

सुमत बालक की तरह फूट-फूटकर रोने लगे। रोते-रोते उन्होंने श्रीराम से कहा, "मैंने अब देख लिया कि इस दुनिया में भले लोगो का—सच्चरित्र और सुशिक्षित लोगो का—कुछ नही बनता, नही तो आप लक्ष्मण और सीतासहित वन क्यो जाते ? मै अब क्या करूगा ? कैकेयी के राज में हम कैसे रह पायगे ?

श्री रामचद्र ने प्यार से उनके आसुओ को पोछा। बोले, "आपसे बढकर हमारे कुटुब का घनिष्ठ मित्र और कोई नही। पिताजी को आप सहारा दें। आप जानते है कि उनका दिल टूट गया है। उनकी जो कोई आज्ञा हो उसका तत्काल पालन करें, ताकि उन्हें सतोष होजाय। इस बात का विचार न करें कि वह स्वय कह रहे हैं या कैकेयी को खुश करने के लिए कह रहे है। हमारे बारे में आप तनिक भी चिता न करें। पिताजी मे तथा अन्य बधुओ से यही कहे कि हम लोग जगल में चौदह वर्ष काटकर जल्दी से अयोध्या लौटेंगे। भरत को जल्दी से बुलवा लें और उसका राज्याभिषेक शीघ्र हो जाय। उससे मेरी तरफ से कहे कि महारानी कौशल्या और सुमित्रा माता दोनों की अपनी मा की ही तरह देखभाल करें।"

सुमत का रोना बद न हुआ। बोले, "मुझसे यह कैसे होगा ? इस खाली रथ को किस हिम्मत से चलाकर अयोध्या ले जाऊ ?"

राम ने उन्हें अनेक प्रकार से समझाया और विदा किया। गुहराज से राम कहने लगे, "हे मित्र, मैं तुम्हारे साथ बडी खुशी से चौदह साल निकाल सकता हू। किंतु वैसा करू तो मैं यह दावा नहीं कर सकता कि अपनी प्रतिज्ञा का मैंने ठीक तरह से पालन किया। मुझे तो ऋषि-मुनियो का-सा जीवन बिताना होगा। स्वादभरे भोजन मेरे लिए वर्जित होगे। शास्त्रो में जो निषिद्ध नही है उस आहार के अतिरिक्त मैं और कुछ खा नही सकता और यह भोजन हमें अपने आप ढूढ लेना होगा। होमाग्नि के अलावा दूसरे प्रकार से पकाया अन्न भी हमारे लिए वर्जित है।" इस प्रकार राम ने गुह को अच्छी तरह समझाया। वही तीनो ने वटवृक्ष के दूध को केशो में लगाकर अपनी-अपनी जटाए बनाई। सीताजी को पहले ठीक तरह से नाव में बिठाकर दोनों राज-

कुमार बन्द में चढे। गुह ने अपने आदमियो को नाव चलाने का आदेश दिया।

नाविक लोग तेजी से नाव चलाने लगे। बीच नदी में सीताजी ने भगवती भागीरथी को श्रद्धाजलि समर्पित की और कहने लगी,"देवी, हमें आशीर्वाद दो कि हम अपना व्रत पूरा करके फिर तुम्हे इसी प्रकार निर्विघ्न पार करके कुशलपूर्वक अयोध्या लौटे।"

बातचीत करते हुए सब गगा के दूसरे किनारे पहुचे। अब राम, लक्ष्मण और सीता तीनो पहली बार अकेले हुए। राम बोले, "लक्ष्मण, आज तुम्ही मेरी सेना हो। तुम आगे-आगे चलो। सीता बीच में रहेगी। मैं पीछे-पीछे चलूगा। इससे सीता की हम पूरी तरह से रक्षा कर पायगे। अब हम लोगो की भीड नही देख सकेंगे। खेलकूद, मनोरजन आज से बद।"

राम को उस दिन अपनी मा कौशल्या की बहुत याद आती रही। लक्ष्मण से बोले, "लक्ष्मण, मैं तो अब भी कहता हू कि तुम अयोध्या लौट जाओ, मेरी और अपनी माता का विचार करो। मैं किसी तरह अपनेको और सीता को सम्हाल लूगा।" किंतु लक्ष्मण थोडे ही मानने वाले थे। उन्होने कह दिया, "क्षमा करें, मुझसे यह न होगा।"

हम आगे भी जगह-जगह देखेंगे कि राम में सामान्य मानव के स्वभाव के अनुसार भावनाए उठती हैं, और वह उदास हो जाते है। रामायण की यही खूबी है। सर्वशक्तिशाली ईश्वर अपने निजी रूप में सारा काम करके दिखा दें तो फिर अवतार कैसे? सामान्य लोगो को धर्म का ज्ञान भी कैसे होता? आदि-अवतारो में और बाद के अवतारो में यही भेद है। रामावतार में हमे मानव-स्वभाव की प्रबलता और धर्म, इन दोनो का विशद परिचय मिलता है। जब रावण के साथ युद्ध समाप्त हो चुका था और सीता से उन्होने अग्नि में प्रवेश करने को कहा तब राम कहते हैं

'आत्मान मानुषं मन्ये
राम दशरथात्मजम्।'

"मैं तो अपनेको दशरथ-पुत्र राम ही समझता हू। मैं वास्तव में कौन हू? किस कारण से पैदा हुआ, यह मैं कैसे जानू? यह आप ही जान सकते है।"

वाल्मीकि लिखते हैं कि राम ने इस प्रकार ब्रह्मा से पूछा था।

गगा के दक्षिण तट पर राम जव उदास हो गये तव लक्ष्मण ने उनको धीरज दिलाया।

वह रात तीनो ने एक वटवृक्ष के नीचे विताई। दूसरे दिन प्रात काल वहा से निकलकर सूर्यास्त होते-होते वे भरद्वाज मुनि के आश्रम पहुचे। उनका आतिथ्य स्वीकार किया और मुनि से पूछा, "इस वन में कोई ऐसा एकात का स्थान हमको वतावें, जहा हम रह सकें।"

मुनि ने आशीर्वाद देकर कहा कि चित्रकूट-आश्रम वडा उपयुक्त है।

तीनो ने वही जाने का निश्चय किया।

: २७ :

चित्रकूट में आगमन

राम-लक्ष्मण-सीता ने रात भरद्वाज मुनि के आश्रम में बिताई। सुबह वे बहुत जल्दी उठ गये और महर्षि को प्रणाम किया। उनसे विदा लेकर वे जाने को उद्यत हुए। महर्षि ने तीनो को अपनी ही सतान समझकर प्यार किया और मन्त्रोच्चार के साथ आशीर्वाद दिया। मुनि ने उन्हें चित्रकूट जाने का मार्ग ठीक तरह से बताया।

मुनि के बताये रास्ते से तीनो जने जाने लगे। त्वरित-गामिनी कालिदी को पार करने के लिए उन लोगो ने बास और पेड की डालो का एक सुदर तथा मजबूत बेडा बनाकर पानी में छोडा। उसमें पहले सीताजी को बिठाया। सीता पहले तो कुछ डरी, फिर बैठ गई। लक्ष्मण ने पेड की कोमल डालिया तथा पत्ते बिछाकर उनके लिए नरम आसन तैयार कर दिया था। तत्पश्चात सीताजी के वस्त्राभूपणादि, कुदाली और टोकरी नाव में रख दिये। सीताजी के बैठ जाने पर राम और लक्ष्मण भी बैठ गये। आहिस्ता-आहिस्ता उन्होंने नदी पार की। बीच नदी में सीताजी ने कालिदी को प्रणाम किया और यात्रा-व्रत की सफलता के लिए प्रार्थना की।

इस प्रकार तीनो ने मार्ग में आनेवाली अन्य नदियो को भी पार किया। अत में उन्होने भरद्वाज महर्षि के बताये हुए वृक्ष को देखा। सीता ने उस वृक्ष की प्रदक्षिणा और पूजा की और अपने पति के कल्याण और कुशलता-पूर्वक यात्रा की समाप्ति के लिए प्रार्थना की।

राम ने लक्ष्मण से कहा, "लक्ष्मण, तुम आगे-आगे चलो, मैं पीछे हथियार लेकर चलूगा। मार्ग में सीता जो कुछ मागे, फल-फूलादि तोडकर लेना चाहे, तो उसको देते रहना, ताकि वह प्रसन्न रहे।"

सीता भी सारे रास्तेभर पूछती और वताती रही, "यह कौन-सा पेड है ? उन फूलो को देखिये।" आदि-आदि। क्योकि वन में सीताजी ने कई ऐसे वृक्ष, फल-फूलादि को देखा, जिन्हें उन्होंने पहले कभी न देखा था। आगे चलते-चलते उन्हें एक नदी मिली। उसके किनारे वे ठहर गये। वहा नाना प्रकार के पशु-पक्षी आदि थे। सीताजी उन्हें देखकर प्रसन्न हुई। यहा भी, और अन्य स्थानो पर भी, राम-लक्ष्मण कभी-कभी शिकार करते थे, और ऐसे मास को, जिसका निषेध न था, होमाग्नि में पकाकर खा लेते थे।

वाल्मीकि ने इस बात को छिपाया नही। इसलिए हमें इस विषय को लेकर विवाद में न पडना चाहिए। मास खाना क्षत्रियो के आचार-विरुद्ध काम नही था। देश-काल और स्वास्थ्य की रक्षा करते हुए उचित मार्ग से प्राप्त मितान्न में हमारे भारतीय धर्म ने दोष नही देखा।

दूसरे दिन प्रात काल होते ही रामचद्रजी ने लक्ष्मण को जगाया और कहा, "भया, उठो, चिडिया मधुर कठ से चहकने लगी हैं। अव यहा से प्रस्थान करने का समय हो गया।"

वाल्मीकि रामायण में यह नही कहा गया कि लक्ष्मण सारे वनवास में जागते ही रहे। सवेरे जव लक्ष्मण की नीद पूरी तरह से खुली न थी, राम ने उनको जगाया। लक्ष्मण तुरत जग पडे। सव स्नान, जपादि कार्यो से निवृत्त होकर प्रस्थान के लिए तैयार हो गये।

भरद्वाज के वताये हुए मार्ग से तीनो चलने लगे। उन दिनो वसत ऋतु छाई थी। सारे रास्ते में पेड़ फूलो से लदे हुए थे। फूलो के विविध रग मन को मोह लेते थे। कही-कही उनकी लालिमा अग्नि की तरह चमकती थी। कही-कही नव-पल्लव और फलो से पेड झुके हुए प्रतीत होते थे। कही पेड़ के नीचे भूमि फूलो से ढकी रहती थी। "यह देखो, मधु के छत्ते ! इनपर किसी मनुष्य का हाथ नही गया। इन फूलो को देखो ! पक्षियो के कलरव को सुनो। एक-दूसरे से कुछ कहते हुए कितने आनदमग्न हैं। इनके वीच हमारा वनवास का काल योही निकल जायगा।"

राम इस प्रकार कभी लक्ष्मण से, कभी सीता से वात करते चलते

थे। तभी तीनो को चित्रकूट पर्वत के दर्शन हुए। वे बडी प्रसन्नता से पर्वत की ओर कदम बढाने लगे।

राम कहने लगे, "इस प्रदेश की सुदरता को देखते-देखते जी ही नही भरता। कद-मूल-फलो की कमी नही दिखाई देती। पानी कितना स्वच्छ और मीठा है! शायद ऋषि-मुनि इन्ही कारणो से इस प्रदेश को पसद करते है। हम भी उन लोगो के साथ इसी स्थान में आनद से वास करेंगे।"

रहने के लिए कुटिया का निर्माण होने लगा। लक्ष्मण इस कार्य में चतुर थे। उन्होने एक ऐसी मजबूत कुटिया बना दी, जिसमें हर प्रकार की सुविधा थी। आधी और वर्षा से उसे सुरक्षित कर दिया था। खिडकिया और किवाड बनाकर उनपर हाथ से बुनकर चटाइया मढ दी गई। अकेले लक्ष्मण ने यह सारा कार्य कर डाला।

कबन और वाल्मीकि दोनो ने इस खड का सुदर वर्णन किया है। उसे पढते हुए ऐसा लगता है मानो दोनो कवियो में प्रतिस्पर्धा हो रही है। कबन कहते है कि कुटिया को देखकर रामचद्रजी ने भाई लक्ष्मण को एकदम गले लगा लिया। बोले, "प्यारे लक्ष्मण, तुमने यह कला कब सीखी थी? मुझे तो मालूम भी नही था कि इस कार्य में तुम इतने कुशल हो। कुसुमो से भी कोमल पैरोवाली जानकी के जगल में पैदल चलने का चमत्कार मैंने देखा। पर तुम्हारे हाथो का चमत्कार भी उससे कम नही निकला। तुम्हारे कला-कौशल के कारण जगल में मगल होगया।"

चित्रकूट की तराई में यह आश्रम माल्यवती नदी के तीर पर निर्मित किया गया था। तीनो जने उसमें बहुत ही आनद के साथ रहने लगे। वे अयोध्या को भी भूलने लगे। देवगणो के साथ इद्र के समान सीता और लक्ष्मण के साथ राम, आनद से दिन बिताने लगे।

कबन और वाल्मीकि दोनो ने चित्रकूट-आश्रम के सुदर वातावरण को चित्रित करके आगे आनेवाली दुखद घटनाओ के लिए एक अच्छी पृष्ठभूमि तैयार कर दी है।

: २८ :

जननी की व्यथा

जवतक राम-लक्ष्मण और सीता आखो से ओझल न हुए सुमत और गुह उन्हे देखते रहे। उनके आगे निकल जाने पर दोनो को वहुत दु ख हुआ। दोनो निराश गाव की ओर लौटे और सुमत निपादराज से विदा लेकर अयोध्या को चल दिये।

जैसे-जैसे वह अयोध्या के पास पहुचते गये, उन्हें वडा रीतापन लगने लगा। लोगो ने सुमत के रथ को घेर लिया और पूछने लगे, "हमारे रामचद्रजी कहा हैं? सीताजी कहा हैं?"

सुमत ने लोगो को वताया, "प्रिय सज्जनो, राम, लक्ष्मण और सीता गगा पार कर गये है। मुझे वापस जाने की आज्ञा देकर वे तीनो जगल के भीतर पैदल चले गये।"

यह सुनकर सभी लोग जोर-जोर से रोने लगे। स्त्रिया कहने लगी, "अभी-अभी तो हमने राम और सीता को इस रथ में देखा था। यह खाली रथ हमसे नही देखा जाता।" लोगो के रोने की आवाज सुमत के कानो में पड रही थी। उन्होंने अपने चेहरे को कपडे से ढक लिया और राज-भवन के द्वार पर रथ ले जाकर खडा कर दिया। वहा भी लोगो की भीड जमा होगई। औरतें आपस में वातें करने लगी, "कौशल्या से यह क्या कहेंगे? इनकी वात सुनकर महारानी कैसे जीवित रह सकेंगी?"

सुमत का दु ख इन वातो से और भी वढ गया। वह धीरे-धीरे माता कौशल्या के अत पुर में गये।

वहा महाराज दशरथ मृत्यु-शैय्या पर पडे थे। राम को वन छोड आने का वृत्तात सुमत ने राजा को धीमी आवाज में कह सुनाया। राजा विल्कुल नही वोले। चुप रहे।

लेकिन कौशल्यादेवी को असह्य दु ख का अनुभव हुआ । वह दशरथ को इस प्रकार कटु वचन सुनाने लगी, "हे भाग्यवत, मेरे बेटे ने तो अपनी दृढता से सारे जगत को चकित कर दिया । आपके मत्री उसे जगल में छोडकर आ गये हैं । वह यहा खडे है । उनसे कुछ बोलिये तो सही । कैकेयी को वरदान आपने बडी सरलता से दे दिया था । अब क्यो शरमा रहे है ? क्या आपने यह सोचा ही नही था कि वरदान का बुरा परिणाम भी निकल सकता है ? आपने अपने वचन की रक्षा खूब कर ली । आपको किस बात की तकलीफ हो रही है ? मेरे दु ख में कौन भाग ले सकता है ? मेरा कष्ट तो मुझको ही भोगना पडेगा । आपको दुखित होने की आवश्यकता भी नही । आपने मौन क्यो धारण कर लिया ? कैकेयी यहापर नही है । आप निडर रहे । राम को वन में छोड आने का वृत्तात विस्तार से सुमत से पूछें । घबराने की कोई बात नही । मैं फिर कहती हू, यहापर कैकेयी नही है ।"

अत्यधिक दु ख के कारण ये शब्द कौशल्या के मुह से निकल पडे । क्रोध, दु ख, और पति-भक्ति आदि आवेगो का एक साथ उनपर प्रहार हुआ । यह उनसे सहा नही गया । वह एकदम बेहोश होकर गिर पडी । लोगो ने यही सोचा कि वह मर गई । अत पुर में हाहाकर मच गया ।

पुत्र-वियोग के शोक से कौशल्यादेवी ने अपने पति की मानसिक तथा शारीरिक स्थिति का खयाल न किया और ऐसी कठोर बातें कह डाली । दशरथ को इससे चोट-पर-चोट पहुची । जब वह सम्हले तब उन्होने सुमत से सारा हाल पूछा । सुमत ने श्रीराम का सदेशा सुनाकर अपना कर्तव्य पूरा किया ।

कौशल्या को सुमत ने बहुत समझाया, लेकिन वह यही कहती रही, "जहा राम को छोडा है, मुझे भी वही छोड आओ । बहू सीता को जगल में भेजकर मुझे इस महल से क्या लेना है ?" उनका रोना बद न हुआ ।

"देवि, आपको धीरज रखना चाहिए । राम तो वन में यहा से भी अधिक आनद में है । आप बिल्कुल चिंता न करें । लक्ष्मण राम की सेवा करते हुए अपने जीवन को सार्थक बना रहे हैं । वह भी बहुत प्रसन्न हैं । सीता तो राम में

ही रमनेवाली और प्रसन्न है। उसे देखकर ऐसा लगता है मानो उसने बचपन से ही जगल में जीवन व्यतीत किया हो। चद्रमा के समान उसके चेहरे की काति अभी तक फीकी नही पडी है। राम के आश्रम में वह एक बालिका की तरह निर्भीक विचर रही है। राम-लक्ष्मण के साथ वह राह के गाव, पुर, नदिया, पेड-पौधे और पुष्पो के बारे में खूब चर्चा करके जानकारी और आनद प्राप्त कर रही है। जगल को तो वह एक सुदर उपवन समझ रही है। जगल में इस प्रकार चल रही हैं, मानो नृत्य कर रही हो। नृत्य करनेवाली स्त्रिया पैरो में घुघरू बाधती है। सीता के पैरो में घुघरू नही है, बस यही फर्क है। मैं जो कह रहा हू, सच कह रहा हू। दुनियावालो को राम-लक्ष्मण-सीता के आचरणो से शिक्षा मिलेगी। राजा के धर्म की रक्षा उनसे हो रही है। उन तीनो की ख्याति ससार में हमेशा रहेगी। आप क्लेश करना छोड दें।"

सुमत नाना प्रकार से कौशल्या को समझाने लगे। कौशल्या थोडी देर के लिए शात हो भी जाती थी, लेकिन फिर राम को याद करके वह जोर-जोर से विलाप करने लगती थी। सुमत के राम को वन मे छोडकर लौटने के बाद से कौशल्या का दु ख वेग से उमड पडा था।

लेकिन कौशल्यादेवी को असह्य दु ख का अनुभव हुआ। वह दशरथ को इस प्रकार कटु वचन सुनाने लगी, "हे भाग्यवत, मेरे बेटे ने तो अपनी दृढता से सारे जगत को चकित कर दिया। आपके मत्री उसे जगल में छोडकर आ गये है। वह यहा खडे है। उनसे कुछ बोलिये तो सही। कैकेयी को वरदान आपने वडी सरलता से दे दिया था। अब क्यो शरमा रहे है ? क्या आपने यह सोचा ही नही था कि वरदान का बुरा परिणाम भी निकल सकता है ? आपने अपने वचन की रक्षा खूब कर ली। आपको किस बात की तकलीफ हो रही है ? मेरे दु ख में कौन भाग ले सकता है ? मेरा कष्ट तो मुझको ही भोगना पडेगा। आपको दुखित होने की आवश्यकता भी नही। आपने मौन क्यो धारण कर लिया ? कैकेयी यहापर नही है। आप निडर रहे। राम को वन में छोड आने का वृत्तात विस्तार से सुमत से पूछे। घबराने की कोई बात नही। मैं फिर कहती हू, यहापर कैकेयी नही है।"

अत्यधिक दु ख के कारण ये शब्द कौशल्या के मुह से निकल पडे। क्रोध, दु ख, और पति-भक्ति आदि आवेगो का एक साथ उनपर प्रहार हुआ। यह उनसे सहा नही गया। वह एकदम बेहोश होकर गिर पडी। लोगो ने यही सोचा कि वह मर गई। अत पुर में हाहाकर मच गया।

पुत्र-वियोग के शोक से कौशल्यादेवी ने अपने पति की मानसिक तथा शारीरिक स्थिति का खयाल न किया और ऐसी कठोर बातें कह डालीं। दशरथ को इससे चोट-पर-चोट पहुची। जब वह सम्हले तब उन्होने सुमत से सारा हाल पूछा। सुमत ने श्रीराम का सदेशा सुनाकर अपना कर्तव्य पूरा किया।

कौशल्या को सुमत ने बहुत समझाया, लेकिन वह यही कहती रही, "जहा राम को छोडा है, मुझे भी वही छोड आओ। बहू सीता को जगल में भेजकर मुझे इस महल से क्या लेना है ?" उनका रोना बद न हुआ।

"देवि, आपको धीरज रखना चाहिए। राम तो वन में यहा से भी अधिक आनद में हैं। आप बिल्कुल चिंता न करें। लक्ष्मण राम की सेवा करते हुए अपने जीवन को सार्थक बना रहे है। वह भी बहुत प्रसन्न हैं। सीता तो राम में

ही रमनेवाली और प्रसन्न है। उसे देखकर ऐसा लगता है मानो उसने बचपन से ही जगल में जीवन व्यतीत किया हो। चद्रमा के समान उसके चेहरे की काति अभी तक फीकी नही पडी है। राम के आश्रम में वह एक बालिका की तरह निर्भीक विचर रही है। राम-लक्ष्मण के साथ वह राह के गाव, पुर, नदिया, पेड-पौधे और पुष्पो के बारे में खूब चर्चा करके जानकारी और आनद प्राप्त कर रही हैं। जगल को तो वह एक सुदर उपवन समझ रही है। जगल में इस प्रकार चल रही हैं, मानो नृत्य कर रही हो। नृत्य करनेवाली स्त्रिया पैरो में घुघरू बाधती हैं। सीता के पैरो में घुघरू नही है, बस यही फर्क है। मैं जो कह रहा हू, सच कह रहा हू। दुनियावालो को राम-लक्ष्मण-सीता के आचरणो से शिक्षा मिलेगी। राजा के धर्म की रक्षा उनसे हो रही है। उन तीनो की ख्याति ससार में हमेशा रहेगी। आप क्लेश करना छोड दें।"

सुमत नाना प्रकार से कौशल्या को समझाने लगे। कौशल्या थोडी देर के लिए शात हो भी जाती थी, लेकिन फिर राम को याद करके वह जोर-जोर से विलाप करने लगती थी। सुमत के राम को वन में छोडकर लौटने के बाद से कौशल्या का दु ख वेग से उमड पडा था।

: २९ :

एक पुरानी घटना

कौशल्या दशरथ को कोसती रही। मन की व्यथा को वह इस प्रकार बाहर निकाल रही थी। इससे उनकी वेदना कुछ कम हुई। पर बेचारे दशरथ ने तो धर्म-सकट में फसकर भारी विपदा ही मोल ली थी। उससे बचने का अब उनके पास कोई उपाय न था। श्री रामचद्र यदि पिता का विरोध करके अयोध्या न छोडने का निश्चय करते, तो दशरथ खुश ही होते। किंतु पिता के आज्ञाकारी धर्मावतार राम ऐसा काम क्यो करते? सीता और लक्ष्मण दोनो ने भी किसी-से न कुछ पूछा, न सुना, और स्वय राम के साथ जाने का निर्णय करके चल दिये।

ऐसी विषम परिस्थिति में राजा मृतवत् पडे थे और कौशल्यादेवी अपने दु ख के कारण राजा को व्यग्यपूर्ण बातें सुनाकर, उन्हे न्याय समझाने लगी, जिससे राजा और भी दुखी होगये।

कौशल्या कहने लगी—"अब आप चिता करना छोड दें। आपका सत्य सुरक्षित होगया। आपको और क्या चाहिए? अब आप अपनी युवा पत्नी के साथ आनद से रहे। लेकिन मै क्या करू? स्त्री का सबकुछ पति होता है। जब पति स्त्री का खयाल करना छोड दे, तो वह कहा जाय? मेरे पति ने तो मुझे छोड ही दिया। उसे अपनी नई पत्नी को ही प्रसन्न करने की लगन है। लडका वन चला गया। मेरे बाप का घर बहुत दूर है। पति जब जीवित हो तब किस मुह से पीहरवालो की शरण में जाऊ? मै तो अनाथ होगई। आपको मेरी क्या चिंता है? बस, आपको तो कैकेयी और भरत के अतिरिक्त दूसरो की चिंता क्यो होने लगी? आप यह न सोचें कि राम जब लौट आयेगा, तब क्या होगा? चौदह वर्ष पूरे करके जब लौटेगा, तब भी मेरा पुत्र भरत के राज्य को हाथ न लगावेगा। दूसरे पशुओ का जूठा व्याघ्र नही छूता। जैसे

मछली अपने बच्चो को खा जाती है, इसी प्रकार, हे स्वामी, आपने अपने पुत्र को नष्ट कर डाला है।"

कौशल्या के इन अप्रिय वचनो से राजा दशरथ अत्यत दुखी हुए। सोचने लगे, पता नही, यह सब किन दुष्कृत्यो का परिणाम है ? आखें मूदकर बीती बातो को याद करने लगे। एक बहुत पुरानी घटना याद आई। आखें खोली, टटोलकर देखा, कौशल्यादेवी पास ही बैठी थी। राजा ने हाथ जोडे और कहा,"प्रिये,मेरे ऊपर दया नहीं करोगी? तुम्हारा स्वभाव तो सदा दूसरो के अपराधो को क्षमा करने का था। आज क्यो मुझे ये अप्रिय बातें सुनाकर सताने लगी हो ? मेरी परिस्थिति को अच्छी तरह समझते हुए भी तुम्हारे मुह से ऐसे कटु वचन क्यो निकल रहे हैं ? तुम तो स्त्री-धर्म को खूब जानती हो। सकट में पडे हुए मुझको और न सताओ। मुझसे गलती होगई। क्षमा करो। मुझसे और कुछ न कहो।"

कौशल्या शर्म और दु ख से पीडित होकर रो पडी। बोली, "राजन्, बाहरी दुश्मनो के आक्रमण से आतरिक क्लेश अधिक कष्टप्रद होता है। मेरे हृदय का सताप असह्य हो रहा है। उसके कारण मेरे मुह से कुछ-का-कुछ निकल जाता है, क्षमा करें। सुनती हू कि राम को वन गये आज पाच दिन हो गये, मुझे तो ऐसा लग रहा है कि पाच वर्ष हो गये। उसीको सोचते हुए मेरा दु ख हर घडी नदी के प्रवाह की तरह बढता ही चला जा रहा है। मैं क्या करू ? ऐसी हालत में मैं आपे से बाहर हो जाती हू। आप मुझे क्षमा करें।"

कौशल्या के इन प्रिय वचनो से दशरथ को कुछ सात्वना मिली। तभी सूर्य अस्त हुआ, रात्रि हुई और राजा थोडी देर निद्रा के वशीभूत होगये।

आधी रात हुई। राजा जग पडे। पास ही में देवी कौशल्या थी। राजा बोले,"प्रिये, तुम मेरे पास ही हो न ? कर्म-फलो को कोई नही बदल सकता। क्षणिक सुख के लिए लोग बडे-बडे कुकर्म कर बैठते हैं। उसका फल बाद में भोगते हैं। मैं जब जवान था, शब्द-वेधी विद्या जानता था, अर्थात लक्ष्य को आखो से देखे बिना ही शब्द जिस स्थान से आता हो, वहा सफलता के साथ तीर चला लेता था। इसको जानने के अभिमान के कारण मुझसे एक अन्यायपूर्ण

घटना होगई। सुनो, मै तुम्हे बताता हू कि क्या हुआ ?"

"तब मेरा और तुम्हारा विवाह नही हुआ था। एक दिन शाम को रथ में सवार होकर मै सरयू के किनारे जगल में शिकार खेलने चला गया। वर्षा के कारण पहाड की धातुओ के साथ नई मिट्टी के मिल जाने से रग-बिरगा पानी चारो दिशाओ मे बह रहा था। रात होगई थी। पक्षियो ने मौन धारण कर लिया था। ऐसा मालूम होता था कि सारा जगल निद्रा में लीन होगया है। मैंने यही सोचा कि रात में विचरनेवाले शेर, चीते आदि जानवर पानी पीने आयगे और उनकी आवाज की दिशा को लक्ष्य करके शिकार कर लूगा। घनघोर अधकार छाया था। तब मुझे एक ऐसी आवाज सुनाई दी मानो कोई हाथी पानी पी रहा हो। उस आवाज की दिशा में मैंने लाघवता के साथ तीर चला दिया। मेरा बाण अचूक होता था। फौरन मैंने एक मनुष्य की पुकार सुनी, 'हाय, मैं मर गया।' क्या मैंने एक निर्दोष आदमी को मार डाला ? मैं चौंका और शब्द जिधर से आया था, उधर पहुचा।

'मैंने किसीका कुछ न बिगाडा। मुझसे यह द्वेष क्यो किया गया ? मैं तो पानी भरने आया था। मुझे किसीने मार डाला ? मेरे मरने से उसको क्या मिलनेवाला है ? मै तो व्रती तापस हू। मेरे अधे मा-बाप मेरे बिना क्या करेंगे ? मै उनका एकमात्र सहारा था। अब उनका जीना असभव है। हाय, व्यर्थ ही मुझे किसीने मार डाला।' इस प्रकार का करुण विलाप जब मैंने सुना तो मै बहुत ही घबरा गया। हाथ से धनुष-बाण नीचे गिर पडा।

'भागा-भागा मैं जहा से आवाज आ रही थी, वहा पहुचा। वहा मैंने एक ऋषि-कुमार को तडपते हुए देखा। उसके शरीर से खून की धारा बह रही थी। सिर की जटा खुलकर चेहरे पर बिखर गई थी। सारा शरीर खून और कीचड से सना हुआ था। पास ही पानी का घडा लुढका हुआ था। उसकी आखो के प्रकाश से मैं जल-सा रहा था।'

'पापी, मुझे तूने मारा है ? मैं तो पानी भरने आया था। मुझे मारकर तुझे क्या मिला ? आश्रम में मेरे अधे मा-बाप प्यासे मेरी राह देख रहे होगे। हे ईश्वर, मैंने ऐसा क्या अपराध किया ? मेरे वेदाध्ययन-व्रत का यही फल

मिलना था ? प्रतिक्षण मेरी प्रतीक्षा करनेवाले मेरे वयोवृद्ध माता-पिता अव क्या करेंगे ? तू तो कोशल का राजा दशरथ है न ? हे दुष्ट राजन्, तू जा, मेरे मा-वाप के पास जा, और उनके पैरो में पडकर क्षमा माग, नही तो उनके क्रोव से तू भस्म ही हो जायगा। यह पगडडी सीवी आश्रम तक जाती है। उसी मार्ग से मेरे मा-वाप के पास पहुच जा, और उनसे क्षमा मागकर अपने प्राणो को वचा ले। हाय, इस वाण को तो निकाल। वडा दर्द हो रहा है।" ऋषिकुमार मुझसे वोला। मै सोचने लगा कि इसके शरीर से वाण को निकाल दू तो अवश्य इसकी पीडा कम होगी, किंतु साथ-ही-साथ प्राण भी निकल जायगे। हिम्मत नही हुई। तव ऋषिकुमार वोले, 'राजन्, किस सोच में पड गये ? इस तीर को निकालकर मेरी वेदना को कम करो। मैं अव निश्चिन्त होगया हू। मरने की तैयारी है। हिम्मत दिखा और मेरे शरीर से इस वाण को वाहर निकालकर मुझे आराम से मरने दे।'

"मैंने धीरे-धीरे वाण को शरीर मे वाहर खीच लिया। मेरी तरफ निगाह करते हुए और छटपटाते हुए उस तपोधन ने प्राण छोड दिये।"

"वस, उसी पाप-कर्म का फल मै आज भोग रहा हू। उन अधे माता-पिता ने भी पुत्र-शोक में अपने प्राण छोड़े थे। मैं भी अपने पुत्र के वियोग से तडप रहा हू।"

घटना होगई। सुनो, मै तुम्हें बताता हू कि क्या हुआ ?"

"तब मेरा और तुम्हारा विवाह नही हुआ था। एक दिन शाम को रथ मे सवार होकर मैं सरयू के किनारे जगल मे शिकार खेलने चला गया। वर्षा के कारण पहाड की धातुओ के साथ नई मिट्टी के मिल जाने से रग-बिरगा पानी चारो दिशाओ में बह रहा था। रात होगई थी। पक्षियो ने मौन धारण कर लिया था। ऐसा मालूम होता था कि सारा जगल निद्रा में लीन होगया है। मैंने यही सोचा कि रात मे विचरनेवाले शेर, चीते आदि जानवर पानी पीने आयगे और उनकी आवाज की दिशा को लक्ष्य करके शिकार कर लूगा। घनघोर अधकार छाया था। तब मुझे एक ऐसी आवाज सुनाई दी मानो कोई हाथी पानी पी रहा हो। उस आवाज की दिशा में मैंने लाघवता के साथ तीर चला दिया। मेरा बाण अचूक होता था। फौरन मैंने एक मनुष्य की पुकार सुनी, 'हाय, मै मर गया।' क्या मैंने एक निर्दोष आदमी को मार डाला ? मै चौंका और शब्द जिधर से आया था, उधर पहुचा।

'मैंने किसीका कुछ न बिगाडा। मुझसे यह द्वेष क्यो किया गया ? मै तो पानी भरने आया था। मुझे किसीने मार डाला ? मेरे मरने से उसको क्या मिलनेवाला है ? मैं तो व्रती तापस हू। मेरे अधे मा-बाप मेरे बिना क्या करेगे ? मै उनका एकमात्र सहारा था। अब उनका जीना असभव है। हाय, व्यर्थ ही मुझे किसीने मार डाला।' इस प्रकार का करुण विलाप जब मैंने सुना तो मैं बहुत ही घबरा गया। हाथ से धनुष-बाण नीचे गिर पडा।

'भागा-भागा मैं जहा से आवाज आ रही थी, वहा पहुचा। वहा मैंने एक ऋषि-कुमार को तडपते हुए देखा। उसके शरीर से खून की धारा बह रही थी। सिर की जटा खुलकर चेहरे पर बिखर गई थी। सारा शरीर खून और कीचड से सना हुआ था। पास ही पानी का घडा लुढका हुआ था। उसकी आखो के प्रकाश से मैं जल-सा रहा था।'

'पापी, मुझे तूने मारा है ? मैं तो पानी भरने आया था। मुझे मारकर तुझे क्या मिला ? आश्रम में मेरे अधे मा-बाप प्यासे मेरी राह देख रहे होगे। हे ईश्वर, मैंने ऐसा क्या अपराध किया ? मेरे वेदाध्ययन-व्रत का यही फल

मिलना था ? प्रतिक्षण मेरी प्रतीक्षा करनेवाले मेरे वयोवृद्ध माता-पिता अब क्या करेंगे ? तू तो कोशल का राजा दशरथ है न ? हे दुष्ट राजन्, तू जा, मेरे मा-बाप के पास जा, और उनके पैरो में पडकर क्षमा माग, नही तो उनके क्रोध से तू भस्म ही हो जायगा। यह पगडडी सीधी आश्रम तक जाती है। उसी मार्ग से मेरे मा-बाप के पास पहुच जा, और उनसे क्षमा मागकर अपने प्राणों को बचा ले। हाय, इस बाण को तो निकाल। बडा दर्द हो रहा है।" ऋषिकुमार मुझसे बोला। मैं सोचने लगा कि इसके शरीर से बाण को निकाल दू तो अवश्य इसकी पीडा कम होगी, किंतु साथ-ही-साथ प्राण भी निकल जायगे। हिम्मत नही हुई। तब ऋषिकुमार बोले, 'राजन्, किस सोच में पड गये ? इस तीर को निकालकर मेरी वेदना को कम करो। मैं अब निश्चिन्त होगया हू। मरने की तैयारी है। हिम्मत दिखा और मेरे शरीर से इस बाण को बाहर निकालकर मुझे आराम से मरने दे।'

"मैंने धीरे-धीरे बाण को शरीर से बाहर खीच लिया। मेरी तरफ निगाह करते हुए और छटपटाते हुए उस तपोधन ने प्राण छोड दिये।"

"बस, उसी पाप-कर्म का फल मैं आज भोग रहा हू। उन अंधे माता-पिता ने भी पुत्र-शोक में अपने प्राण छोडे थे। मैं भी अपने पुत्र के वियोग से तड़प रहा हू।"

: ३० :

दशरथ का प्राणत्याग

"आगे क्या-क्या हुआ, यह मैं तुम्हे बताता हू। सुनो।" दशरथ कहने लगे। "मुझसे बडा भारी पाप बन पडा था। ऋषिकुमार ने मेरे देखते-देखते प्राण छोड दिये। मै सोचने लगा—अब क्या करू? अत में यही निश्चय किया कि जैसे ऋषिकुमार ने कहा था, वैसे ही करू। घडे को उठाकर मैं पानी भर लाया। पगडडी के सहारे आश्रम पहुचा। वहा दोनो बूढो को देखा। बुढापे के कारण उनका शरीर चिडिया की भाति सिकुड गया था। उनसे बिल्कुल चला-फिरा तक नही जाता था। अधे तो थे ही। आपस में यही बातें कर रहे थे कि लडका पानी भरने गया था। मगर अभी तक वापस क्यो नही आया?

'मैने सोचा—हे भगवान्, किस तरह ये बेटे की प्रतीक्षा में बैठे हैं। अब ये अनाथ होगये। मै किसी प्रकार डरते-डरते उनके पास पहुचा। मेरे पैरो की आहट सुनकर बूढे बाप ने कहा, 'बेटा, तुझे इतनी देर कैसे होगई? कही खेल में लग गया था क्या? तेरी मा तो प्यास के मारे मरी जा रही है। आज तू कुछ बोल क्यो नही रहा? हम दोनो से नाराज हो गया है क्या? नही, तू हमपर नाराज न हो। तू तो समझदार और बडा ही अच्छा बेटा है। तू ही तो हमारा एकमात्र सहारा है। हम तो आखो से देख भी नही पाते। तू ही हमारी आखे हैं, तू ही हमारा प्राण है। तोभी तू क्यो चुप है? मेरी बातो का तू बुरा मान गया है क्या?'

"बिना दात के उस वृद्ध के मुह से निकले इन अस्पष्ट शब्दो को सुनकर मेरा शरीर शाप के डर से कापने लगा। किसी तरह हिम्मत करके मैने कहा, 'स्वामिन्, मै दशरथ हू। आपकी आज्ञा पालनेवाला क्षत्रिय! मैं आपका पुत्र नही। किसी पूर्वजन्म के कर्म-फल के कारण मुझसे एक भयकर पाप-कर्म बन गया है। आपके सामने सिर झुकाकर क्षमा-प्रार्थना करता हू। भगवन्,

किसी जगली जानवर के शिकार के लिए मैं रात को नदी-तट पर गया था। घडे में पानी भरने की आवाज को सुनकर मैंने समझा कि कोई जगली हाथी पानी पी रहा है। उस दिशा में मैंने तीर चला दिया और वह आपके पुत्र की छाती में लग गया। आपका पुत्र मेरी इस भूल से चल वसा। मैंने जब आपके पुत्र को घायल देखा तो मुझे बडा ही पछतावा और शोक हुआ। मैं किंकर्तव्य-विमूढ हो गया। आपके पुत्र ने मरने से पहले मुझसे कहा कि मैं उसकी छाती से वाण को खीचकर निकाल दू। मैंने वैसा ही किया। आपका पुत्र इस लोक से चला गया। यह भूल मैंने जानवूझकर नही की, गलती से होगई। जो कुछ हुआ, मैंने आपको साफ-साफ वता दिया। अव आपकी इच्छा! जो कुछ शाप या दड देना चाहते हो, दे दें। मैं उसे भोगने को तैयार हू।'

"मेरे मुह से यह भयकर वृत्तात सुनकर दोनो वृद्ध-वृद्धा सन्न रह गये। उनकी आखो से आसू वहने लगे। वूढे वाप वोले, 'राजा, तूने तो वडा भयकर पाप-कर्म किया, पर स्वय अपना अपराध कवूल किया, इसलिए तुझे तो हम छोड देते हैं। अव हम दोनो को शव के पास ले चल। हम उसके शरीर पर हाथ फेरेंगे। यमदेव के पास भेजने से पहले उस प्यारी देह को हम स्पर्श करना चाहते हैं। हमें उसके पास ले चल।'

"मैं उन वूढे मा-वाप को हाथ से उठाकर नदी-तट पर लेगया, जहा उनका पुत्र मरा पडा था। वेटे के शरीर से लिपटकर वे दोनो खूव रोये। उसे आशीर्वाद दिये। मेरी मदद से उसकी दाह-क्रिया की। फिर वोले, 'राजा दशरथ तू भी हमारी ही तरह पुत्र-शोक से तडप-तडपकर मर जायगा। तूने जो दु ख हमें पहुचाया है, उसका अनुभव स्वय भी करेगा।' और यह कहते-कहते वे दोनो उनी चिता में चढकर भस्मीभूत हो गये।

"रानी, उस दिन का किया हुआ मेरा पाप-कर्म आज मुझे सता रहा है।

"अपथ्य आहार से जैसे रोग वढकर मनुष्य को अन में मार डालता है, उसी प्रकार मेरा यही पाप-कर्म अव मुझे मार डालनेवाला है। अधे और वूढे वाप ने जो शाप दिया था, वह आज फलीभूत होनेवाला है। मैंने अपने हाथो से निर्दोष पुत्र को वन भेजा। उसीके वियोग से आज मेरे प्राण निकलनेवाले

हैं। जो अद्भुत और स्वभाव-विरुद्ध घटनाए घटी हैं, उन सबका कारण मेरा पूर्वकर्म ही है, नही तो मै क्यो इस तरह फसता ? राम ने भी क्यो एकदम हठ पकड लिया कि वन जाये बिना न रहूगा। कौशल्या, मेरी आखें भी अब काम नही दे रही। मैं अधा हो गया हू। तुम मुझे दिखाई नही पड रही। मेरे बिल्कुल समीप आओ। ऐसा लगता है कि अब मै चला। मेरा काम समाप्त हुआ। यमदूत जल्दी मचा रहे हैं। क्या राम वापस आ जायगा ? क्या मैं उसे एक बार और नही देख सकूगा ? मरने से पहले बस एक बार उसे देख लेता। मेरा दम घुट रहा है। अब कुछ बाकी नही रहा। दीपक में तेल चुक गया। कौसल्ये, सुमित्रे !"

राजा की बोली धीमी पड गई। और श्रीराम की याद में तडपते हुए उन्होने उसी रात प्राणत्याग कर दिये।

रामायण-कथा के प्रारभ मे वाल्मीकि ने दशरथ को "दीर्घदर्शी, महा तेजस्वी, प्रजा का प्रीति-पात्र, धीर, महर्षि-तुल्य, यज्ञ तप आदि करके इद्रियो को वश में रखने में समर्थ, तीनो लोको में नामी, धन-ऐश्वर्य-सपन्न होकर इद्र और कुबेर तुल्य, राज्यपालन में मनु के समान न्यायशील" आदि बताया है। ऐसे दशरथ भी कर्म की गति को बदल न पाये। अत में उन्होने असह्य पुत्र-वियोग के शोक का अनुभव किया और उसीमें शरीर त्याग दिया।

दशरथ बार-बार बेहोश हो जाते, फिर होश में आ जाते थे। इसलिए कौशल्या और सुमित्रा को पता न चला कि राजा मर गये हैं। जागरण और शोक से थककर एक कोने में दोनो पडी थी। जब सुबह होने लगा, अत पुर की प्रथा के अनुसार, गायक लोग नियमानुसार सुप्रभात गाने और वाद्य बजाने लगे। पर राजा उठे नही। सेवको ने, जो राजा के निजी कामो को देखते थे, काफी देर तक राह देखी कि राजा अब उठें, अब उठें। जब बहुत देर हुई तो उन्हे चिता हुई और वे अदर कमरे में आये। उन्होने देखा कि दशरथ तो परलोक सिधार चुके थे।

महल में हाहाकार मच गया। महा प्रतिभाशाली सम्राट् दशरथ की पत्निया अनाथ बच्चो की तरह विलाप करने लगीं।

: ३१ :

भरत को संदेश

कौशल्या दशरथ के मृत शरीर से लिपट गई। रोते-रोते कहने लगी, "मैं तो राजा के साथ ही चिता पर चढूगी। मेरा पति मर गया। लडका भी मेरे पास नही। मै जिंदा नही रह सकती।" राजमहल के वडे-वूढे और अन्य कर्मचारी वडी मुश्किल से उन्हें छुडाकर दूसरी ओर ले गये।

आगे की क्रियाओ के वारे में सवने मिलकर सोचा कि क्या हो ? राजा के चारो पुत्रो में से एक भी उस समय वहा न था। राम और लक्ष्मण वन में थे और भरत-शत्रुघ्न ननिहाल में थे। कैकय राज्य काफी दूर था। वहा से उनके आने में विलव अनिवार्य था। सवने यही निश्चय किया कि भरत को तत्काल खवर भेज दी जाय और जवतक वह न आयें तवतक राजा के शरीर को औपधियुक्त तेल में रखा जाय, जिससे उसको क्षति न पहुचे।

सारे जगत में जिसकी ख्याति फैली थी, जिसने निर्विघ्न रूप से सैकडो वर्ष राज्य का सचालन किया था, उस सम्राट का शव एक तेलभरे पात्र में रखा गया! अयोध्या की शोभा एकदम गायव होगई। सव जगह अधेरा-सा छा गया। चारो ओर लोगो का करुण विलाप सुनाई देता था। नर-नारी कैकेयी को कोसने लगे। सारा नगर चितामग्न हो गया। जो युवराज वननेवाला था उसे तो राज्य से वाहर निकाल दिया, भरत भी विदेश में हैं, अव राज्य को कौन सम्हालेगा! राजा के विना राज्य-सचालन उस समय के लोगो की कल्पना से वाहर की चीज थी।

एक रात किसी तरह वीती। दूसरे दिन सुवह सचिवगण तथा कर्मचारी और अन्य वडे-वूढे सव सभा-मडप में इकट्ठे हुए। मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वासदेव, काश्यप, कात्यायन, गौतम, जावालि तथा अन्य द्विजोत्तमोसहित सुमत ने वसिष्ठ को प्रणाम किया और कहा, "भगवन्, एक रात्रि एक युग

के समान बीती है। महाराजा तो स्वर्ग चले गये। राम-लक्ष्मण वन में है भरत-शत्रुघ्न ननिहाल गये हुए हैं। यहा की स्थिति नाजुक है। अराजकता की हालत होगई है। शीघ्रता से अब राज्य-भार किसीको ले लेना चाहिए, नही तो अराजकता से राज्य की बुरी दशा हो जायगी।"

वे कहने लगे, "उस देश में जहा कोई राजा नही रहता, न्याय कहा से मिल सकता है? वहा बाप का कहना बेटा नही मानेगा। पति-पत्नी का बधन कमजोर हो जायगा। अधर्म के फैलने से वर्षा भी पूरी तरह न होगी। सब जगह लूट-मार फैलेगी। लोगो को अपने में भरोसा न रहेगा। अराजकता में कृषि और अन्य व्यापार सबकुछ धीमे पड जायगे। राजा के बिना यातायात, व्यापार अथवा कृषि-कार्य ढग से कैसे चल सकते है? राज्य में धन की कमी हो जायगी। मदिरो में पूजा-विधिया या उत्सवादि कौन करेगा? लोगो के जीवन में बडा भारी उत्पात पैदा हो जायगा। जहा अराजकता हो, वहां इतिहास-पुराण कौन सुनेगा? कौन सुनायेगा? किवाडो को खुला रखकर सोने की कोई हिम्मत न करेगा। सभ्यता का नाश हो जायगा। तप, व्रत, आनद वहा टिक न पायगे। शास्त्रो का अध्ययन कौन करेगा? जहा राजा न हो, वहा शाति कैसे हो सकती है? राजा ही तो राज्य में शाति स्थापित करता है। अराजकता बहुत ही बुरी चीज होती है। वहा स्त्रिया अपने स्वाभाविक रूप को खो देंगी। उनके अलकारादि भी विकृत हो जायगे। किसीको भी अपनी सपत्ति की सुरक्षा का अनुभव न होगा। लोग सदा डरते रहेगे कि पता नही कब कौन छीनकर ले ले। प्रजा आपस में लडने लगेगी और मर मिटेगी। अत्याचार और क्लेश बढता जायगा और देश का सत्या-नाश हो जायगा। राज्य के कल्याण के लिए एक राजा का होना अनिवार्य है।"

इस प्रकार सभा में बडे-बूढे अराजकता की हानिया बताने लगे। वाल्मीकि ऋषि ने इसका बहुत सुदर वर्णन किया है। सबने एक साथ वसिष्ठ से कहा कि सारे देश में अधकार छा गया है। इसलिए एक राजा का नियुक्त हो जाना नितात आवश्यक है।

मुनिवर वसिष्ठ ने तत्काल दूतो को बुलाया और उनसे कहा, "आप लोग तुरत निकल पडें। कही भी रुकें नही। जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी कैकय राज्य पहुच जाय। अपने मुख पर अथवा व्यवहार में शोक की छाया तक न पडने दें। भरत से यह सहा नही जायगा। राजा की मृत्यु की खबर उन्हें न लगने दें। भरत से बस इतना ही कहा जाय कि "कुलगुरु और सचिव लोग आपको फौरन अयोध्या बुलाते हैं। आप हमारे साथ तुरत चलिये। राम-सीता के वनवास के बारे में अथवा सम्राट के स्वर्गवास के बारे में भरत से किसी प्रकार की भी बात न की जाय। हमेशा की तरह कैकय-राज के लिए वस्त्र और आभूषण भेंट-रूप में ले जाये जाय।"

इस प्रकार वसिष्ठ मुनि ने दूतो को आदेश दिया।

दूतो को रास्ते के लिए कपडे, खाना और आवश्यक वस्तुओ के साथ बिना विलब के रवाना कर दिया गया। वे कैकय-राज के लिए नाना प्रकार की भेंट अपने साथ ले गये। अति शीघ्र चलनेवाले घोडो पर सवार होकर दूत जगल, नदी और पहाडो को पार करके कैकय राज्य की दिशा में जाने लगे।

कैकय राज्य अयोध्या से काफी दूर पर था। आजकल का पजाब और उससे भी आगे का पश्चिम प्रदेश कैकय राज्य कहलाता था। जब दूत लोग कैकय देश की राजधानी राजगृह पहुचे तब वे तथा उनके घोडे एकदम थक गये थे। यात्रा का मार्ग कठिन था और वे घोडो को बहुत तेज दौडाते हुए आये थे।

जिस दिन वे राजगृह पहुचे, उस रात को राजकुमार भरत ने बडे भयकर सपने देखे। उस दिन वह अशात चित्त से बिस्तर से उठे। उनका मुखमडल मुरझा-सा गया। इसे देखकर भरत के मित्रो ने उनके मन को बहलाने के लिए नृत्य, गायन तथा हास्य-विनोद आदि का प्रबध कराया, किंतु किसी अज्ञात कारण से भरत के मन में किसी चीज के लिए उत्साह पैदा नही हुआ।

प्रेम के वेगो का भेद हमें अभी तक पता नही। सभव है कि राजा दशरथ

की मनोव्यथा, मृत्यु-वेदना भरत के हृदय तक पहुच गई हो।

"मैंने बहुत सबेरे आज एक सपना देखा है। कहते हैं कि सुबह के समय का सपना सच होता है। मुझे लगता है कि हम चारो भाइयो में से किसीको कुछ होगा। मेरे मन में एक अजीब तरह के क्लेश का अनुभव हो रहा है। मुझे बडा डर-सा लग रहा है। समझ में नही आता कि मैं क्या करू ?" भरत ने अपने मित्रो से कहा। ठीक उसी समय अयोध्या से दूत वहा पहुच गये और उन्होने महल में प्रवेश करने की अनुमति मागी।

कैकय के राजा तथा उनके पुत्र युधाजित ने दूतो का आदरपूर्वक स्वागत-सत्कार किया। दूतो ने भी उन दोनो का, उचित रूप में, सम्मान किया। फिर वे भरत से कहने लगे, "कुलगुरु और मत्री सबने आपको मगल-कामनाए भेजी है और हम लोगो से कहा है कि एक बहुत आवश्यक काम आ पडा है। आप एकदम अयोध्या लौट चलें। आप इन वस्त्र और आभूषणादि का स्पर्श करें। इन्हें कैकय-राज को समर्पित करना है।"

भरत ने वैसा ही किया। दूतो से भरत ने पूछा, "पिताजी कुशल से हैं न ? भाई श्रीराम और लक्ष्मण कैसे हैं ? वे स्वस्थ हैं न ? सब माताए कैसी हैं ?"

दूतो ने उत्तर दिया, "सब ठीक हैं, राजकुमार ! आपका मगल हो। आप जल्दी वापस घर चलें। सबको आपको देखने की तीव्र इच्छा है।" दूतो ने सत्य को छिपाते हुए कहा। उनकी बात से कुछ ऐसा लग रहा था कि राज्याभिषेक के लिए अथवा ऐसी ही किसी महत्वपूर्ण वार्ता के लिए भरत को बुलाया जा रहा है।

राजकुमार विलब किये विना अयोध्या लौटने को तैयार हो गये। उन्होंने अपने नाना और मामा से तथा अन्य मित्र लोगो से विदा ली। कैकय-राज और उनके पुत्र युधाजित ने महाराजा दशरथ और रामचद्र के लिए अनेक बहुमूल्य वस्तुए रथो में रखवा दी। यात्रा के लिए आवश्यक चीजो का भी प्रबध करा दिया।

और सबके-सब अयोध्या की ओर तेजी से जाने लगे।

: ३२ :

अनिष्ट का आभास

भरत और उनके साथी अयोध्या का पथ वडी शीघ्रता के साथ तय करने लगे। घोडो को आराम देने के लिए ही उन्हें कही-कही रुकना पडता था। इस प्रकार यात्रा करते हुए वे आठवें दिन अयोध्या आ पहुचे। अयोध्या की दशा भरत को कुछ विचित्र-सी लगी। उन्होने पूछा, "सारथी, नगर में पहले जैसी चहल-पहल क्यो नही दिखाई दे रही है ? लोगो में प्रसन्नता का कोई चिह्न नही दीख पडता। नगर के वाहर उद्यानो में आनद के साथ घूमते हुए प्रसन्न नर-नारियो के स्थान पर मैं सभी जनो को उदास मुख-मुद्रा में देख रहा हू।

"मगल वाद्यो की ध्वनि कहीं भी सुनाई नही दे रही। लोगो ने गव इत्यादि को क्यो त्याग दिया है ? क्या वात है ? अपशकुनो के ही चिह्न चारो ओर दिखाई दे रहे हैं। मेरे मन की अशाति प्रवल होती जा रही है।"

भरत यो सारथी से पूछते रहे। उनका रथ वैजयत नामक दुर्ग-द्वार से नगर के अदर प्रविष्ट हुआ। वहा भी भरत ने देखा कि मुख्य वाजार, महल और मदिर शोभाहीन हो रहे हैं। न सडको पर छिडकाव किया गया था, न घरो के सामने की भूमि लीपी गई थी, न अल्पना द्वारा चित्र वनाकर उस भूमि को अलकृत किया गया था। लोगो के चेहरे ऐसे दीख पडते थे मानो कई दिनो से भूखे हो। भरत ने समझ लिया कि कोई वडी भारी दुर्घटना होगई है और इसी कारण उन्हें वापस वुलाया गया है।

भरत दशरथ के महल में गये। वहा पिता को न पाकर वह घवराये। माता कैकेयी का दर्शन करने के लिए वह उसके महल में गए। उन्हें देखते ही कैकेयी अपने स्वर्ण-आसन से उछलकर उतरी और पुत्र को छाती से लगा लिया। भरत ने मा के चरण छुये। पुत्र को प्यार से आलिंगन करके उसका मस्तक चूमकर कैकेयी वोली, "वेटा, दीर्घायु

हो। यात्रा कैसी रही ? तुम्हारे मामा और परिवार के सब लोग कुशल से है न ? वहा की सारी खबरें सुनाओ।" पुत्र को अपने साथ आसन पर बिठाकर कैकेयी पूछने लगी।

"मुझे यहा पहुचने में पूरे सात दिन लग गये। सब आनद है। नानाजी ने और मामा युवाजित ने आपके लिए नाना प्रकार की चीजें भेजी हैं। मैं पहले पहुच गया। और लोग उन चीजो को लेकर पीछे आ रहे हैं। पर मा, यहा यह क्या बात है ? मुझे एकदम क्यो बुलावा भेजा गया ? पिताजी को प्रणाम करने के लिए उनके भवन में गया तो वह वहा नही थे। यहा भी उनका आसन खाली देख रहा हू। मैंने सोचा कि यही होगे। बडी मा के भवन में हैं क्या ? मैं पहले जाकर उन्हें प्रणाम करना चाहता हू।"

बेचारे भरत को बिल्कुल पता न था कि यहा क्या-का-क्या घटित हो चुका है। कैकेयी राज्याधिकार के लोभ से पागल होगई थी। वह अपने पुत्र से कहने लगी, "वत्स, तेरे पिता ने ससार के उच्चतम सुखो का अनुभव कर लिया। उनके समान भाग्यशाली, यशस्वी राजा दुनिया में दूसरा कौन हो सकता है ? कोई यज्ञ, दूसरा कोई पुण्य-कर्म उन्होने बाकी न रखा। सदाचारियो के वह आश्रय-स्थान थे। वह अपने लिए सर्वथा उपयुक्त परम-पद को प्राप्त हुए।"

"हाय ! आप यह क्या कह रही है ?" यो कहकर भरत आसन से गिर पडे। सम्राट की शून्य शैय्या को देखकर भरत फूट-फूटकर रोने लगे। अपने रेशमी उत्तरीय से चेहरे को ढककर बहुत देर तक वह विलाप करते रहे। कभी भूमि पर लोट जाते तो कभी बैठकर रोने लगते। यह आघात उनके लिए असह्य था। तरुण हाथी के समान शरीरवाले, पूर्ण चद्र जैसे मुखवाले, आजानुबाहु भरत पृथ्वी पर ऐसे गिरे, जैसे एक बडा वृक्ष कटकर गिर गया हो।

कैकेयी अपने पुत्र से फिर स्नेहपूर्वक बोली, "मेरे बेटे, यह क्या कर रहे हो ? उठो। इस प्रकार क्लेश करना एक राजा को शोभा नही देता। सबके मान और आदर के पात्र होकर तुम अच्छी पदवी पा गये हो। ज्योतिर्मय सूर्य के समान तुम तेजयुक्त और प्रज्ञावाले हो। तुम्हे धैर्य नही छोडना चाहिए।

उठो, खडे हो, तुम्हे किसी प्रकार की कमी नही है।"

भरत तो एकदम अकलुष मन के थे। कैकेयी की बातें सुनकर भी उन्हे कल्पना न हुई कि क्या-क्या घटनाए होगई है। सिसकते-सिसकते मा से उन्होने पूछा, "मैं तो इसी आशा में था कि पिताजी भाई श्रीराम का युवराजाभिषेक धूमधाम से करेंगे और मुझे उसमें शामिल होने का सौभाग्य मिलेगा। यही आशा लेकर मामा के घर गया था। मै कैसा अभागा निकला! ओह, मुझसे यह सहा नही जा रहा! पिताजी को क्या कष्ट था? उनकी मृत्यु कैसे हुई? मैं पास नही रह पाया। भाई श्रीराम और लक्ष्मण दोनो ने उनकी सेवा की होगी। उनकी मरण-यातना को वे अपने उपचारो से कम कर सके होगे। दोनो बडे भाग्यशाली हैं। मेरे शरीर की धूल को वे कितनी बार कितने प्यार से हाथ फेरकर पोछते थे। उनके स्पर्श से मैं कैसा पुलकायमान हो जाता था। मैं उनके लिए कुछ न कर सका। बडा निकम्मा निकला मै। मा, मा, भैया राम कहा है? अब राम ही मेरे लिए पिता हैं। वही मेरे गुरु होगे। उनके चरणो को पकडकर मैं आशीर्वाद लेना चाहता हू। मेरी प्यारी मा, पिताजी प्राण-त्याग करते हुए क्या कह गये थे? उनके मुह जो वाणी निकली हो, मै उसे वैसी ही सुनना चाहता हू।"

कैकेयी भी भरत को सारी बातें सुना देना चाहती थी। अपनी मनोकामना की पूर्ति ही उसका एकमात्र ध्येय था। पुराने सस्कार के कारण उसको कुछ हिचकिचाहट हुई, किंतु वह एक क्षण के लिए ही। किंतु लोभ ने विजय पाई। बोली, "तुम्हारे पिता श्रीराम कहते-कहते मरे—हे राम, हे लक्ष्मण, हे जानकी! वह यही रट लगाते रहे, मैं बडा अभागा निकला, जो राम, लक्ष्मण और वैदेही को फिर से देखे बिना ही चला जा रहा हू।"

"क्यो, ऐसा क्यो हुआ? राम और लक्ष्मण उस समय कहा थे? उन्हे पिताजी क्यो नही देख पाये?" भरत ने प्रश्न किया। उन्हे इससे और भी दु ख हुआ।

कैकेयी ने सोचा कि सारी बाते बताने का यही अवसर है। बोली, 'मेरे प्यारे भरत, राम तापस के भेष में दडकारण्य वन चला गया। सीता

और लक्ष्मण भी दोनो उसके साथ चले गये।"

यह सुनकर भरत को बडा आश्चर्य हुआ।

"मेरी कुछ समझ में नही आ रहा ? भाई से क्या अपराध हो गया था ? किसी ब्राह्मण का धन उन्होने चुराया था ? किसी निरपराधी को सताया था ? किसी स्त्री के प्रति अनुचित इच्छा दिखाई थी ? राम को दडकारण्य वन क्यों जाना पडा ? किसने उन्हें यह दड दिया ?" भरत ने एक सास में पूछ डाला।

उन दिनो वडे भयकर पाप करनेवाले अपराधियो को ही वन भेजा जाता था।

कैकेयी अव और भी खुलासा करने लगी। उसने कहा, "राम ने कोई बुरा काम नही किया, न किसीकी चोरी की, न किसीको तग किया, न किसीकी स्त्री की तरफ बुरी निगाह डाली। वात यह थी कि राजा राम को युवराज बनाना चाहते थे। उसकी सब तैयारिया होने लगी। मुझे जव इस वात का पता चला तो मैंने राजा से दो वर माग लिये। यद्यपि राजा को मालूम नही था कि मैं क्या मागूगी, राजा ने मुझे वर दे दिये। मेरी पहली माग तुझे युवराज बनाने की थी और दूसरी राम को देश-निकाला देने की। राजा वचनबद्ध हो गये थे। वह उससे पीछे कैसे जा सकते थे ? सीता और लक्ष्मण के साथ राम वन चला गया। उसके वियोग में राजा ने प्राण त्याग कर दिये। अब तुझे यही सोचना चाहिए कि आगे के क्या-क्या काम वाकी हैं। तू धर्म को समझता है। राज्य-भार उठानेवाला है। मैंने जो कुछ किया, तेरे लिए किया है। बुद्धि को स्थिर रख और क्लेश छोड दे। यह अयोध्यापुरी और कोशल राज्य तेरे हाथ में अनायास आ गये हैं। अब कुलगुरु वसिष्ठ के कहने के अनुसार पहले पिता की क्रियाए कर डाल। उसके वाद तेरा राज्याभिषेक होगा। तू वीर क्षत्रिय है। पिता के हाथ से तुझे राज्य मिला है। उसे सम्हालना तेरा कर्तव्य है।"

: ३३ :

कैकेयी का कुचक्र विफल

भरत ने देखा कि उनकी अनुपस्थिति में कितना भयकर काड होगया है। उन्हें कैकेयी पर इतना क्रोध आया कि उसका वर्णन करना कठिन है। बोले, "तुमने यह क्या कर डाला ? मुझे राजगद्दी लेने के लिए कहते हुए तुम्हें लज्जा नही आई ? हाय, मैंने पिताजी और बडे भाई को खो दिया। मैं राज्य लेकर क्या करूगा ? मेरे पिताजी की मृत्यु का कारण तुम ही हो। तुमने ही भाई को राज्य से वहिष्कृत किया है। अव मुझसे कहती हो—'राजा वन जाओ।' मेरे घावो पर नमक छिडक रही हो। तुमसे राजा ने शादी क्यो की ? उन्होने भूल से आग को अपने आचल में वाध लिया। हाय, मेरे पिता को तुमने मार डाला।

"मा कौशल्या और सुमित्रा का अव क्या हाल होगा ? राम तुमपर सदा कितना प्रेम करते थे, उन्हें जगल में भेजने की तुम्हे सूझी कैसे ? वडी मा कौशल्या हमेशा तुमसे अपनी छोटी वहन की तरह वर्ताव करती थी। उनके वेटे को चोर-डाकू की तरह राज्य से निकाल देने की तुम्हे हिम्मत कैसे हुई ? क्या तुम्हे इस वात का विल्कुल पता न था कि मैं राम को कितना चाहता हू।

"दुर्भावना से पागल होकर तुमने यह क्या कर डाला ? तुम्हारी वुद्धि को क्या कहू ? महापराक्रमी मेरे पिता राम-लक्ष्मण को अपना वडा भारी सहारा समझत थे। उन्हें जगल में छोडकर मैं गद्दी पर वैठ जाऊ ? मुझसे यह कैसे हो सकता है ? क्या इसे मैं कभी मान मकता हू ? तुम्हारी इच्छा कभी पूरी नही होगी।

"इतना भयकर कुकर्म करनेवाली को मैं अपनी मा नहीं मान सकता। परपरा से राजकुलो में यही नीति चली आई है कि ज्येष्ठ पुत्र को राजगद्दी

मिलनी चाहिए। उस नीति का तिरस्कार करने की बात तुम्हे सूझी कैसे ?

"तुमने यह भी सोचा कि दुनिया हमें क्या कहेगी ? सभी राजकुलो में तथा हमारे अपने कुल में भी बडे पुत्र के ही राजा बनने की प्रथा है। मैं उसीका पालन करूगा। मैं जगल से अपने बडे भाई को वापस लाऊगा। उन्हें ही राजा बनाऊगा। जीवनभर उनकी सेवा करके आत्म-तृप्ति प्राप्त करूगा।"

भरत इस प्रकार गुस्से से कहने लगे। ज्यो-ज्यो वह बोलते गये, उनके मन का दु ख भी बढता गया। वह कहने लगे—"मा, तुमने यह क्या कर डाला? अब लोग मुझसे घृणा न करेंगे तो और क्या करेंगे ?"

इस प्रकार आवेश में आकर भरत भूल गये कि कैकेयी उनकी मा है और वह उसके पुत्र हैं। यह भावना ही उनके मन से निकल गई। इस कारण वह बडी बुरी तरह से मा की निंदा करने लगे। राम पर उनका अटूट प्रेम, पिता के मरण का दु ख और लोगो की अप्रीति, ये सब एक साथ आ पडने से भरत को जो दु ख हुआ होगा, उसे हम तनिक सोचे और समझने का प्रयत्न करें। इन्ही कारणो से माता के प्रति उनके मुह से निंदा के वचन निकल पडे। कठोर हृदयवाले और पढे-लिखे समालोचको के मापदड से हम भरत की परीक्षा न करें।

भरत अपने क्रोध को दबा न पाये। जोर-जोर से मा को सुनाने लगे—"तुम देश के लिए अहितकारिणी हो। तुम्हें राज्य से बाहर कर देना चाहिए। तुम भ्रष्ट आचरणवाली हो। मुझे तुम अपने कामो के लिए मृतवत् ही समझो। राजा को यमलोक भेज दिया और राम को दडकारण्य में ! अब तुम्हे कौन प्यार कर सकता है ? तुम तो हत्यारी होगई। कुल का नाश कर डाला। तुम नरक में ही जाओगी। मेरे प्यारे पिता जहा होंगे, उस उत्तम स्थान पर तुम न जा सकोगी।

"तुम्हें देखकर ही मेरा शरीर काप उठता है। आज से तुम्हारा-मेरा सबध टूट गया। मेरे नाना राजा अश्वपति की तुम लडकी नही हो। तुम एक राक्षसी हो। सत्य एव धर्म के स्वरूप मेरे भाई राम को तुमने वन भेज दिया।

उसी दु ख में पिता मर गये। मेरे लिए इससे बुरा और क्या हो सकता है ?"

भरत आगे कहने लगे, "राम कौशल्या का एकमात्र बेटा है। मा होकर भी तुम्हें उसपर दया नही आई। तुमने यह नही सोचा कि लडके को जगल में जाते देखकर वह कैसी तडपेगी ? लडका तो मा के शरीर का ही एक अश है। मा-बेटे के इस गहन सबध को जानते हुए भी कौशल्या के प्राणप्रिय पुत्र को तुमने कौन-से हृदय मे घोर जगल में भेज दिया ? तुम्हारे लिए बडे-से-बडा दड भी कम ही होगा।

"सुनने में आता है कि कामधेनु के करोडो पुत्र होने पर भी जब उसने अपने दो पुत्र—बैलो को हल में जोते और एक दुष्ट किसान द्वारा सताये जाते देखा तो वह रो पडी। उसकी आखो के आसू देवेंद्र के शरीर पर गिर पडे। उसकी सुगध से ही देवेन्द्र समझ गये कि ये आसू सुरभि कामधेनु के होने चाहिए। इद्र को भी बहुत दु ख हुआ। करोडो पुत्रवाली सुरभि को जब अपने दो पुत्रो के दु ख से इतना कष्ट हुआ तो एक ही सतानवाली कौशल्या का क्या हाल होता होगा ?

"तुमने सोचा होगा कि मुझे राजा बनाकर मैं और तुम दोनो आराम से दिन बितायेंगे ? पर यह कभी न होगा। तुम्हारे राक्षस स्वभाव को धिक्कार है! तुम्हें सुख के बदले दु ख-ही-दु ख भोगना पडेगा। पिता की क्रियाए करना मेरा पहला काम है। उसके बाद दडकारण्य जाऊगा। राम के चरणो में मस्तक रखकर यह राज्य उनको सौंप दूगा। फिर तुमने मेरे लिए जो पाप का सचय कर रखा है उसे मिटाने के लिए वनवास मैं स्वय करूगा।

"तुमने जो अपराध किया वह बहुत ही भयकर है। उसके लिए कौन-सा प्रायश्चित्त हो सकता है ? अपने-आप गले में तुम फासी क्यो नही लगा लेती ? या अग्नि में कूदकर जल मरो न ? स्वय जीवनभर दडकारण्य में रहने का निश्चय कर सकती हो ? कुछ भी हो, मैं तो राम के पास जाने ही वाला हू। उन्हें वापस राज्य सौंपकर ही मेरे मन को शाति मिलेगी।"

भरत ने क्रोध के आवेश में आकर मा के प्रति बहुत बुरे वचन कह डाले। वह नये पकडे गये जगली हाथी की तरह दीर्घ निश्वास लेने लगे। उनकी

लाल-लाल आखो में आसुओ की धारा ऐसी लगती थी जैसे रक्त बह रहा हो। कबन कहते हैं, भरत बोले, "इस महल मे तुम्हारे पास अब मुझसे नही रहा जाता । मैं मा कौशल्या के पास जाऊगा । उनके चरण कमलो को प्रणाम करके उनके पास अपना दुःख रोकर कुछ सात्वना पाऊगा।"

कैकेयी का स्वप्न इस प्रकार छिन्न-भिन्न होगया। वह भूमि पर लोटकर जोर-जोर से रोने लगी।

× × ×

रामायण के पात्रो में भरत सर्वोत्तम है। रामायण का अति सुदर खड चित्रकूट में राम-भरत मिलाप है। यह एक बडी महत्वपूर्ण घटना है। दुनिया में चाहे कितना ही पाप चलता हो, एकाध ऐसे होते हैं, जिनसे धर्म की रक्षा होती रहती है। लोभ, छल, कपट आदि से पूरित इस दुनिया में कुछ आदमी ऐसे भी होते है, जिनसे ससार में परस्पर विश्वास, धैर्य और प्रेम का स्रोत भी प्रवाहित होता है, जिनसे लोगो को धर्म-मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिलती रहती है। धर्म आखिर कभी नही मिट सकता।

: ३४ :

भरत का निश्चय

सारे अत पुर में भरत के लौटने की खबर फैल गई। कौशल्या अपने पति तथा पुत्र-वियोग के शोक को भूल नही पाती थी। जब उन्होंने सुना कि भरत लौट आया तो सुमित्रा से कहने लगी, "चलो, भरत से मिल आयें।" सुमित्रा के साथ वह कैकेयी के महल जाने को निकल ही रही थी कि इतने में भरत स्वय दु ख से पागल की-सी दशा में माता कौशल्या के पास दौडते आते दिखाई दिये।

कौशल्या ने सोचा कि राजा हो जाने की उत्सुकता में भरत इतनी जल्दी आ पहुचा है,नही तो कैकय राज्य तो यहा से बहुत दूर है, लेकिन उन्होंने भरत को गलत समझा। उन्हें पता था कि कुलगुरु और सचिवो ने ही यह निचय किया था कि भरत को बुलवाकर पहले सम्राट की अतिम क्रियाए सपन्न की जाय, तत्पश्चात् भरत का राज्याभिषेक भी हो। इन कारणो से भरत को देखते ही कौशल्या का पति और पुत्र का वियोग ताजा हो उठा। बोली, "भरत, यह लो राज्य पदवी तुम्हारे लिए तैयार पडी है। अब तुम्हारा रास्ता साफ हो गया। कैकेयी ने तुम्हारे लिए सबकुछ करा दिया है। खूब आराम से राज्य-पालन करना। बाप के लिए तुम जो चिता जलाओगे, उसमें मैं भी कूदकर जल मरूगी और अपने राजा के पास पहुच जाऊगी।"

कौशल्या के ये वचन सुनकर भरत एकदम नीचे गिर पडे। उन्होंने मा के चरणो को पकड लिया। वह कुछ बोल न पाय।

"भरत, मुझे मेरे राम के पास छोड आओ। मुझे और कुछ नही चाहिए।" कौशल्या रुदन करने लगी।

भरत बेचारे दु ख से लगभग बेहोश-से थे। बोले, "मैंने तो कुछ नही किया मा! मुझपर क्रोध मत करो। मुझे तो इस बात का तनिक भी आभास न था कि यहा कैसे-कैसे कुचक्र चलाये जा रहे है। भाई राम के प्रति मेरा प्रेम आपसे

छिपा नही है। क्या आप मानती हैं कि मैं इस कुचक्र मे शामिल था ? यदि इसमें मेरा जरा भी हिस्सा हो तो मेरी सारी विद्या, ज्ञान सबकुछ नष्ट हो जाय और दुनिया के समस्त पापियों के कर्मफलो के दुष्परिणाम मुझे मिलें। मैं सच कहता हू मा, कि इस षड्यन्त्र में मेरा कोई हाथ नही था।"

भरत ने दोनो हाथ ऊपर करके शपथ लेते हुए कहा, "जो कुछ बुरा काड यहा हुआ, उसमें यदि मैंने कोई भाग लिया हो तो मुझे उसके लिए बुरे-से-बुरा दण्ड मिले।" मनुष्यो से नाना प्रकार के अपराध हो सकते हैं, भरत ने उनका वर्णन किया और कहा कि यदि राम को वन भेजने में उनका जरा भी हाथ रहा हो तो उन सब भयकर पापो का जो कोई दण्ड नियत हो उसे भोगने के लिए वह तैयार है।

वास्तव में कैकेयी ने अपने स्वार्थ के कारण जो चाल चली थी, उससे जो परिस्थिति बन गई थी, उसमें लोगो की निगाहो में अपनेको निरपराध साबित करना भरत के लिए कोई आसान बात न थी।

भरत का स्वच्छ मन कौशल्या के कठोर वचनो से बहुत दुःखी होगया। राजा की आज्ञा सुनकर रामचद्र को दु ख नहीं हुआ था, किंतु भरत इसके लिए तैयार न थे कि कोई उनसे कहे कि तूने राम को वन में भिजवा दिया। कौशल्या ने जब यह आरोप उनपर लगाया तो भरत को असह्य चोट लगी। वह जोर-जोर से रोने लगे। वह सोचने लगे—"हमेशा प्यार करनेवाली माता कौशल्या भी अब मुझपर सदेह करने लगी। इससे बुरा मेरे लिए और क्या हो सकता है ?"

किंतु कौशल्या आवेश में आकर ऐसा बोल पडी थी। उन्हें यह समझते देर न लगी कि वास्तव में भरत कितने ऊचे हृदयवाले हैं। कौशल्या को अपने बर्ताव पर पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने भरत के सिर को अपने हाथो में उठाकर प्यार से गोद में रख लिया और बोली, "बेटा, रो मत। तेरा दु ख मुझसे सहा नही जाता। प्यारे पुत्र, हम सब भाग्य के हाथ की कठपुतली है। लाचार हैं। मैं तुम्हारे सद्गुणो को जानती हू। तुम्हें इस लोक में और परलोक में दोनों जगह बहुत ऊचा स्थान मिले।"

भरत को उन्होने आश्वासन और आशीर्वाद दिया। शुरू में भरत पर जो संदेह हुआ था, वह कौशल्या के मन से हट गया। भरत से मिलकर उन्हें कुछ शाति मिली। सोचने लगी कि राम के न होने पर भी भरत तो मेरे पास है। कवन के कहने के अनुसार उस समय कौशल्या ने यही समझा मानो राम ही उनके पास वापस आ गये। उतने ही प्यार से उन्होने भरत को हृदय से लगा लिया।

कौशल्या भरत से बोली, 'मेरे प्यारे भरत, तुम्हारे पूर्वज राजा कई हो चुके है। किंतु धर्म के सामने इतने वडे राज्य को तुच्छ समझनेवाला तेरे जैसा पुरुप आज तक कोई नही हुआ। तू राजाओ का राजा है।" यो कहकर वह फूट-फूटकर रो पडी।

महारानी कौशल्या और भरत का कवि कवन ने अपनी कल्पना-नेत्रो से खूब दर्शन किया। हम भारतवासियो के हृदय में भी वे दोनो सदा वास करें, उनकी सस्कृति हमारे लिए अमर रहे।

उसके वाद मृत राजा की उत्तर-क्रियाए विधिवत् की गई। शोक-विह्वल भरत और शत्रुघ्न को वसिष्ठ आदि गुरुजन आश्वासन देते रहे।

दशरथ के निधन को चौदह दिवस हो गये। तव सभी अमात्यो ने एक सभा की और भरत को झुककर नमस्कार करके वोले, "हमारे प्रतिष्ठावान राजा इस दुनिया से चल दिये। राम-लक्ष्मण भी राज्य के वाहर हैं। अनाथ देश को आप न सम्हालेंगे तो और कौन सम्हालेगा ? इसमें हम कोई अनुचित वात नही देखते, आप इन्कार न करें। अभिषेक के लिए सारी सामग्रिया तैयार रखी है। अन्य सभी प्रवध भी हो चुके हैं। नगर के प्रमुख तथा राजकुल के लोग राह देख रहे हैं कि आप कव गद्दी पर वैठेंगे। हमारी प्रार्थना स्वीकार करें। और देश की रक्षा करें।"

भरत ने जव यह वात सुनी तो उन्होने सव सभा-सचिवो का अभिवादन किया और अभिषेक-सामग्रियो की ओर दृष्टिपात करके आदरपूर्वक उनको नमस्कार किया। फिर शात स्वर में सभासदो को सबोधित करके कहने लगे, "ज्येष्ठ पुत्र का अधिकार छुडवाकर मुझसे राज्य लेने का आग्रह करना हमारे कुलाचार के विरुद्ध वात है। आप सवका मगल हो। आप लोगो की माग ठीक

नही। श्रीरामचद्र मेरे बडे भाई है। वह जहा कही भी होगे मैं वहा जाऊगा और वहीपर उनका अभिषेक कराकर सीता और लक्ष्मणसहित उन्हें वापस अयोध्या ले आऊगा। यह मेरा दृढ सकल्प है। इस काम के लिए हमें बडी सख्या में वन में जाना होगा। आप उस सबकी तैयारी करें। जाते-जाते हम वन का मार्ग ठीक कराते जायगे। मजदूर लोग भी हमारे साथ जायगे। राज-परिवार के सभी लोग चलेंगे। हमारी सेना भी साथ जायगी। हम श्रीराम को वापस ले आयगे। मैंने प्रतिज्ञा की है कि मै राजा नही वनूगा। मेरा यह दृढ सकल्प आप लोग समझ लीजिये।"

भरत के वचनो से सभा में सम्मिलित सभी लोगो को वडे उत्साह और आनद का अनुभव होने लगा। सब भरत का कहना मान गये। एक बृहत् परिवार और सेना के साथ राजकुमार भरत की वन-यात्रा की तैयारी होने लगी। श्रीराम से मिलने की, उन्हें वापस राज्य में लाने की और उनके अभिषेक की सभावना की आशा से लोगो में असाधारण उत्साह पैदा हो गया।

वन-प्रदेश को जाननेवाले, कुए, तालाब की खुदाई करनेवाले, नाव वनानेवाले बढई, यत्रो की जानकारी रखनेवाले, शीघ्रता से वडे-वडे पेडो को काटने, गिराने और मार्ग को सुगम बनाना जिन्हें आता है, ऐसे लोगो का एक विशाल दल तैयार होगया। वे लोग आगे-आगे चलकर मार्ग ठीक करते हुए राजपरिवार के लिए ठहरने आदि की व्यवस्था करते गये।

राजा राम को वापस लाने के उत्साह में सारे कठिन-से-कठिन काम आश्चर्यजनक तेजी के साथ होने लगे। कही पुल बाधे गये तो कही सडकें बनाई गई। ऊची-नीची जमीन समतल की गई। जहा पानी जमा होकर मार्ग दुर्गम हो गया था वहा पानी को बहाकर निकालनेवाले नाले खोदे गये। पीने के पानी की तथा अन्य आवश्यकताओ के सभी प्रबध किय गये। भरत के आदेश से जव ये सव तैयारिया होती रही तब वसिष्ठ और मत्री लोगो ने फिर से एक सभा की। उसमें भरत को बुलाने के लिए भरत के महल में वाद्य-घोष के साथ दूतो को भेजा गया। भरत ने जब देखा कि बाजे-गाजे के साथ उनके लिए बुलावा आया है तो वह बहुत ही दुखी हुए। बोले,

"मैंने कह दिया है कि मैं राजा नहीं हू, फिर यह सब आडवर क्यो किया जा रहा है ? कृपा करके बाजे बद करें।" और फिर भाई शत्रुघ्न से बोले, "देखो तो शत्रुघ्न, मा कैकेयी ने यह क्या कर डाला ? उनकी करतूतों से मुझे कितना कष्ट भोगना पड रहा है ! पिता मर गये। देश अनाथ होगया। वह अब बिना केवट की नाव के समान डगमगा रहा है।"

उधर भरत के निर्मल हृदय से मुग्ध लोग प्रति क्षण उनकी राह देख रहे थे कि कब वह सभा में आयें। जैसे ही वह वहा पहुचे, ऐसा लगा मानो रात्रि में चद्र का उदय हुआ हो। सबको नमस्कार करके भरत अपने आसन पर बैठ गये।

वसिष्ठ आदि गुरु तथा विप्रजन भरत से फिर कहने लगे, "देखिये, आपके पिता और हमारे दिवगत महाराजा ने आपको यह राज्य सौंपा था। श्रीरामचद्र ने प्रसन्नता से आपको राज्य दिया था। आप सकोच न करें। राज्य-भार उठाने के लिए तैयार हो जाय और लोगों की रक्षा करे।"

वसिष्ठ के मुह से यह सुनते ही भरत का मन राम के पास पहुच गया राम की याद से उनकी आखो से आसू बहने लगे। उनका आवेग बढता गया। राजकुमार जोर-जोर से रोने लगे। अब कुलगुरु वसिष्ठ की बात पर उन्हें गुस्सा-सा आया। वह बोले, "मैं कुलीन ढग से बडा हुआ हू और पाला-पोसा गया हू। उच्चकुल के सस्कार मुझे मिले हैं। जो वस्तु मेरी नहीं है, उसकी लालसा मैं कैसे करू ? आप लोगो के मुह से ऐसी बातें सुनकर मुझे आश्चर्य हो रहा है। महाराज दशरथ का पुत्र ऐसा नीच काम कैसे कर सकता है ? श्रीराम राजा के ज्येष्ठ पुत्र हैं। यह राज्य उन्हीका है। श्रीराम राजा के ज्येष्ठ पुत्र होने के अलावा बडे ही धर्मात्मा है और महाराज दिलीप और नहुप के तुल्य हैं। हर प्रकार से सिहासन के लिए वही योग्य हैं। आप लोग मुझसे ऐसा कार्य क्यो करवाना चाह रहे है, जो एक आर्य के लिए हीन है ? श्रीराम जिस दिशा में है, उस दिशा में हाथ जोडकर मैं प्रणाम करता हू। वही राजा होने योग्य है और वही राजा है। मैं नही।"

भरत के उदार निर्मल हृदय से निकले इन वचनों को सुनकर लोगों

के मन पिघल गये। उनके गुण की चारो ओर प्रशसा-ही-प्रशसा सुनाई देने लगी।

भरत ने आगे कहा, "यदि राजा राम मेरी बात नही मानेंगे तो मैं वन में ही रह जाऊगा। वही तप करने लगूगा। अत आप बडे-बूढे लोगो का भी कर्तव्य है कि किसी भी उपाय से श्रीराम को वापस लावें। उनका राज्याभिषेक कराना चाहिए और यह काम आप लोगो के ऊपर ही निर्भर है।"

इसके बाद भरत ने सुमत से कहा कि यात्रा के लिए जल्दी निकलने की तैयारी करें। सारे नगर में फिर से आनद का स्वर सुनाई देने लगा। उन्हें ऐसा लगा, जैसे रामचद्र वापस आगये हो। उनको पूरा विश्वास था कि भरत किसी-न-किसी प्रकार राम को वापस ले ही आवेंगे।

: ३५ :

गुह का संदेह

निपादराज गुह ने देखा कि गगा के सामनेवाले किनारे पर वहुत ही शोरगुल हो रहा है। उन्होने पता लगाया कि एक वडी भारी सेना ने वहा डेरा डाला हुआ है। अपने आदमियो से गुह ने पूछा, "यह किस देश के राजा की फौज होगी ? उसके यहातक आने का क्या कारण हो सकता है ? झडा तो अयोध्या का दिखाई दे रहा है। मालूम होता है, कैकेयी का पुत्र भरत भारी सेना के साथ आया हुआ है। रथ के ऊपर अयोध्याधीशो का कोविदार ध्वज दिखाई दे रहा है। अयोध्या का राजा तो अव भरत हुआ है न ? राज्य उसे अनुचित युक्ति से प्राप्त होगया। अव शायद वह रामचद्र को मारने के इरादे से आया है। हमारे हथियारवद सैनिक तथा सारा निपाद-कुल इकट्ठा हो जाय। अपनी तरफ के गगा-तट की रक्षा में आप सव सावधान होकर खड़े रहे। नावो में भी सशस्त्र सैनिक युद्ध के लिए तैयार रहे। देखते हैं, भरत की क्या मशा है ? यदि उसके दिल में राम के प्रति विरोध न हो तो हम उसको गगा पार करने में सहायता करेंगे, अन्यथा उसे और उसकी सेना को यही रोक दिया जायगा।"

यो कहकर तथा सारा प्रवध करके राजा गुह भरत के लिए भेंट आदि लेकर एक नाव में उनसे मिलने के लिए चल पडा।

उधर सुमत भरत से कहने लगे, "देखिये, सामने राजा गुह आ रहा है। वह रामचद्र पर अपार प्रेम रखता है। अपने परिजनो के साथ वह हमारा सत्कार करने आ रहा है। इस प्रदेश का वही अधिपति है। गुह और उसके आदमी यहा के वनो के कोने-कोने से परिचित हैं। वह हमें अवश्य ही वता सकेगा कि श्रीरामचद्र इस समय कहापर है। इसके आदमी हमें आराम से श्रीराम के स्थान पर पहुचा भी देंगे।"

इतने में निषाद-राज उनके पास पहुच गये। उन्होने भरत को नमस्कार किया और कहने लगे, "आप लोगो के यहा पधारने की मुझे कोई सूचना नही मिली। इसकी कोई चिंता नही। यहा जो कुछ है, सब आप अपना ही समझें। जो सेवा हो, बतायें। मेरा अहोभाग्य है कि आपका तथा राज-परिवार का स्वागत करने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ।" इस प्रकार गुह ने भरत से आदर-सूचक वाक्य कहे।

भरत बोले, "धन्यवाद, आपकी सद्भावना ही काफी है, और हमें क्या चाहिए! मै अपने बडे भाई श्रीराम के पास पहुचना चाहता हू। भरद्वाज-आश्रम कहापर है? वहा पहुचने का मार्ग कौन-सा है? हमें बताने की कृपा करें।"

गुह ने हाथ जोडकर नमस्कार किया और कहा, "मैं अपने आदमियो के साथ आपको श्रीराम के पास ले चलूगा। यह कौन-सी बडी बात है। आपको या आपके परिवार को किसी भी प्रकार की असुविधा न होने दूगा। हा, एक बात है। क्षमा करें। मेरे मन की शका का निवारण कर दें तो अच्छा हो। हे राज-कुमार, आप राम से मिलने आये हैं, यह ठीक है। किंतु इतनी भारी सेना को अपने साथ लाने का क्या उद्देश्य है, क्या यह मैं जान सकता हू?"

भरत गुह के इन शब्दो को सुनकर अपमान और लज्जा से विचलित हो उठे। बोले, "हाय, अब मुझे लोग कैसी-कैसी बातें सुनाते है। लोग मुझे श्रीराम का दुश्मन समझते है। सोचते है, मै उन्हे मारने जा रहा हू। इससे बुरी बात मेरे लिए और क्या हो सकती है? हे गुह, निश्चित रहो। पिता तो मेरे मर गये। अब मेरे पिता राम ही है। किसी भी उपाय से उन्हे मनाकर मैं अयोध्या वापस ले जाना चाहता हू। मेरा यहा आने का केवल यही उद्देश्य है। मेरी बात पर विश्वास करो।"

भरत के चेहरे और बातो से गुह ने जान लिया कि उनका राम पर कितना अगाध प्रेम है। उनसे मिलकर गुह को बहुत ही आनद हुआ। बोला, "राजकुमार, आपके समान उत्तम और कौन हो सकता है? अनायास प्राप्त हुई राज्यश्री को ठुकराने की हिम्मत और किसमे है? इतना बडा

त्याग आप ही कर सकते है। आपकी जय हो।"

शाम हुई। वृहत् राज-परिवार के लिए खाने-पीने, मोने आदि का सारा प्रवध निपादराज ने किया। सब सोने लगे।

गुह से मिलने के वाद भरत का दु ख और भी वढ गया। अत्यत निर्मल स्वभाववाले भरत के मन में रामचद्र के ही विचार आते रहे। उन्हे ज़रा भी नीद नही आई। पिता के मरण का तथा भाई के राज्य से निकलकर वन में जाने का दु:ख उनके मन को जलती हुई आग की तरह तपाने लगा। भरत को वार-वार करवट लेते और लवी-लवी सासें छोडते हुए देखकर गुह ने उनको वहुत समझाया। दोनो राम के भक्त थे। "राम कहा वैठे थे? कहा सोये थे? उन्होने क्या खाया? क्या वोले थे?" इस प्रकार भरत गुह से राम के विषय में ही पूछते रहे। गुह भी भरत को अपने स्वामी की सभी वातें विस्तार और प्रेम से वताने लगे।

गगातट पर इन दोनो भक्तो के मिलने का और राम-चर्चा करने का वर्णन पढना सत-महात्मा लोगो को वहुत ही प्रिय लगता है।

सव कुछ वताकर गुह ने भरत को वह स्थान भी वताया, जहा श्रीराम और सीता धरती पर सोये थे। यह देखकर लक्ष्मण रोने लग गये थे और सारी रात सो नहीं पाये थे। गुह ने कहा, "सारी रात लक्ष्मण ने धनुष-वाण लिये राम-सीता की रखवाली में काटी।"

यह वर्णन सुनकर भरत भी रो पडे। अपनी माताओ को उन्होने वह स्थान दिखाया। कहने लगे, "यहीपर, मेरे कारण से, भैया राम जमीन पर सोये थे। यहा की घास भी कुछ दवी दिखाई दे रही है।"

जव भरत ने गुह से पूछा कि उस दिन राम ने क्या खाया था, तो गुह ने कहा, "राम-सीता ने उस दिन व्रत किया था, मैंने जो भोजन भेजा था, उसे उन्होने लौटा दिया था। लक्ष्मण के हाथ से थोडा पानी पिया था, वस। दूसरे दिन सुवह केशो की जटा वना ली और पैदल ही चल दिये।"

राम को किसी तरह भी वापस लाने के निश्चय से भरत अयोध्या से निकले थे। उस उत्साह में वह दु ख को कुछ भूल-से गये थे। किंतु जगल में गुह

से वार्तालाप करने के बाद, राम के तापसी जीवन का हाल सुनकर, फिर से उनमें उदासी आगई। बोले, "मेरे कारण राम को कितना कष्ट सहना पडा ! हाय ! मैं अभी तक क्यो जीवित हू ! मा को मुझे मुकुट पहनाने की बात क्या सूझी !

"मैं तो जैसे भी हो, श्रीराम को वापस लाकर सिहासन पर बिठाऊगा। आवश्यकता हुई तो चौदह वर्ष का वनवास का व्रत उनकी जगह मैं पूरा करूगा। इससे व्रत भी भग न होगा। राम इसका विरोध कैसे कर सकेंगे ? उन्हें मेरी बात माननी ही पडेगी।"

सुबह होने लगी। भरत उठ गये और शत्रुघ्न को जगाकर बोले, "भाई, उठो ! अभी तक कैसे सो रहे हो ? हम सबको जल्दी से नदी पार करनी है। गुह से कहो कि इसके लिए प्रबध कर दें।"

शत्रुघ्न बोले, "भाई, मैं सो नही रहा। जागा हुआ ही हू। सारी रात मुझे भी श्रीराम के ही विचार आते रहे हैं।"

इतने में गुह स्वय वहा पहुच गये। पूछने लगे, "रात को आप लोगो को नीद ठीक आई कि नही ? आशा करता हू कि आप सबकी थकावट कुछ दूर हुई होगी। आपके परिवार के सब लोग कैसे हैं ? मैं अभी जाकर गगा पार करने का प्रबध किये देता हू।"

गुह की व्यवस्था सचमुच कमाल की थी। छोटी-बडी कई नावें तैयार होगई। सारी सेना, सारे सामान के साथ, नावो में चढकर गगा पार चली। भरत, राजमाताए और वसिष्ठ आदि गुरुजन दूसरी नावो में बैठे। एक बहुत बडे मेले के समान वहा खूब शोर मच रहा था। लोगो में अब नया उत्साह भरा हुआ था। भरत का दृढ निश्चय था कि श्रीरामचद्र को वापस लाना ही है। इसलिए राम-वियोग और राजा के निधन का दुख लोग कुछ भूल-से गये थे। एक भरत का हृदय अब भी व्याकुल था।

वाल्मीकि-रामायण में भरत और अयोध्या के जन-समुदाय के गगापार होने के वर्णन से मालूम होता है कि उस दिन वहा ऐसी हलचल मच रही थी,

जिस प्रकार कि आजकल किसी महत्वपूर्ण उत्सव पर रेल के प्लेटफार्म पर हुआ करती है। जब सारी सेना गगापार हो गई तब भरत एक अलग नाव में बैठे। सबने गगा नदी को पार किया और भरद्वाज मुनि के आश्रम में पहुचे।

× × ×

रामायण की कथा में भरत का चरित्र ही हमारे उद्धार के लिए पर्याप्त है। लोग रामावतार की वास्तविकता पर विश्वास करें या न करें, भले ही रामचरित को ऋषि की कल्पना समझें, किंतु रामायण के सृष्टिकर्त्ता ऋषि वाल्मीकि मदिर में रखकर पूजने के योग्य है, इसमें कोई सदेह नही। भरत जैसे पात्र की सृष्टि करने के लिए कितना ज्ञान, कितनी भक्ति, और कितना वैराग्य चाहिए। हमें क्यो भरत-चरित्र को पढ़कर इतना आनद होता है ? उसका यही कारण हो सकता है कि हम सभी के अत -करणो में ज्ञान और भक्ति का भाव किसी कोने में अवश्य है, यद्यपि हमें उसका पता नही। अन्यथा हम अन्य पशुओ से भिन्न नही होते। शरीर-बल में हमसे भी कही अधिक पशुओ के शिकार होकर हम सब कभी के मिट गये होते।

: ३६ :

भरद्वाज-आश्रम में भरत

भरत और उनके साथी भरद्वाज मुनि के आश्रम को जाते हुए प्रयाग-वन पहुचे। वहा से कुछ दूर उन्हे एक मनोरम उपवन दिखाई दिया। उसके बीच एक पर्णशाला दीख पडी। भरत ने अनुमान लगाया कि वही भरद्वाज मुनि की कुटी होगी। अपने परिजनो और सेना को आश्रम के बाहर ही छोड भरत ने वसिष्ठादि विशिष्ट जनो के साथ आश्रम में नम्रतापूर्वक प्रवेश किया। उन्होने अपने धनुष, बाण और खड्ग आदि उतार दिये और पैदल ही आश्रम में प्रविष्ट हुए। वहा भी अपने अन्य सचिवो को रोककर वह केवल वसिष्ठ ऋषि के साथ कुटिया की ओर चले। वसिष्ठ ऋषि को देखते ही भरद्वाज मुनि अपने आसन से उठे। शिष्यो द्वारा जल मगाकर उन्होने वसिष्ठजी का स्वागत किया। भरत ने ऋषि को प्रणाम किया। वह समझ गये कि यह राजकुमार भरत हैं। उन्होने एक राजकुमार के योग्य उनका आदर-सत्कार किया, कुशल-प्रश्न पूछे। दशरथ के निधन की बात वह सुन चुके थे। इसलिए उसके बारे में विशेष कुछ नही पूछा।

× × ×

'दशरथनदन श्रीराम' वाल्मीकि रामायण के आधार पर लिखा जा रहा है। वाल्मीकि के कथनानुसार भरद्वाज मुनि भी भरत के वहा आने के उद्देश्य पर सदेह करते है। उस सदेह-निवारण के लिए भरत से कुछ प्रश्न पूछते है।

तुलसी-रामायण में इस प्रकार का कोई उल्लेख देखने में नही आता। गोसाईं तुलसीदासजी की रामायण में तो आदि से अततक भक्ति-ही-भक्ति है। गोसाईंजी ने यही माना होगा कि ऋषि लोग सर्वज्ञ होते हैं। वे क्यो भरत पर शक करने लगे ?

पर तमिल कवि कबन ने सर्वत्र वाल्मीकि का ही अनुकरण करने का प्रयत्न

किया है। एकाध जगह उन्होंने भी कुछ थोडा-सा परिवर्तन किया है, वह भी बहुत कम। इसका कारण यह मालूम होता है कि वह टीका करनेवालो को कम-से-कम मौका देना चाहते थे।

सत तुलसीदास की वात दूसरी है। श्रीरामचद्र के ऊपर उनकी अनुपम भक्ति है। राम तो उनके अपने ही थे। उन्हे पूरा अधिकार था कि वह रामायण में जहा चाहें, वहा परिवर्तन कर दें।

जो हो, हमें भी यह वात नही जचती कि भरद्वाज मुनि भरत पर अविश्वास करने लगें। गुह राजा की वात अलग थी। रामायण में इसका यही समाधान मिलता है कि वाद में भरद्वाज मुनि कहते है, "वत्स, तुम्हारे गुणो को मैं खूव पहचानता हू। तुम्हारे उद्देश्य की पवित्रता को सिद्ध करने और लोगो की तुम्हारे ऊपर श्रद्धा वढाने के लिए ही मैंने तुमसे ये प्रश्न किये थे।"

हमारे युग में ऋषियो के प्रति भावना में और वाल्मीकि के जमाने की भावना में भी अतर था। विष्णु के अवतार होने पर भी वाल्मीकि ने श्रीरामचद्र को सामान्य मनुष्य के रूप में ही चित्रित किया है। उसी दृष्टि से राम के ऊपर प्रेम के कारण 'राघवस्नेह बधनात्' भरद्वाज के मन में सदेह होता है। पर उसपर भरतजी की प्रतिक्रिया देखते हैं तो उन्हे भरत की सच्चाई समझ में आ जाती है और तव वह समाधान के शब्द कहते है। वाल्मीकि-रामायण के सभी पात्र अपूर्व गुणसपन्न हैं, किंतु है मनुष्य। उनका तेज प्रात काल के सूर्य के समान वहुत तीव्र नही होता। उनमें मनुष्य-स्वभाव भी ठीक मात्रा में पाया जाता है। लेकिन तुलसी-रामायण के पात्रो का तेज मध्याह्न के सूर्य की तरह प्रखर होता है और खूव चमकता है।

× × ×

भरद्वाज ने भरत से यथोचित कुशल-क्षेम पूछा और वोले, "हे भरत, अपना राजकाज छोडकर तुम्हारा यहा आना कैसे हुआ? तुम्हारी जिम्मेदारी तो अयोध्या में रहने से ही पूरी हो सकती है? तुम्हारा उद्देश्य क्या है? तरुण पत्नी के कहने में आकर दशरथ ने राम को वनवास दे ही दिया। अव राम से तुम्हे कोई अडचन नही हो सकती। अपने राज्य को एकदम निष्कटक बनाने

के उद्देश्य से निकल पडे हो क्या ?"

भरद्वाज मुनि के इन शब्दो को सुनकर भरत की आखो से आसुओ की धारा वह निकली। उनके मुह से शब्द न निकल सके।

"मेरा सर्वनाश हो गया!" भरत बोले—"आप भी मुझपर शक करने लगे ? भगवन्, ऐसा न करे। मुझपर दया करें। मेरी सम्मति या जानकारी के बिना मेरी मा ने जो कुछ किया, उसके लिए मैं लाचार हू। उसमे मेरा कोई दोप नही। मेरा एकमात्र उद्देश्य श्रीराम को अयोध्या वापस ले जाकर, उन्हे राजा बनाना और जीवनभर उनका सेवक बने रहना है। मैं तो आपसे यह जानने के लिए आया हू कि मेरे भाई श्रीराम इस समय कहापर है ? आप मुझे बुरा न समझे।" कहते-कहते भरत फूट-फूटकर रोने लगे।

भरत की दीन दशा से द्रवित होकर भरद्वाज बोले, "हे भरत, मै तुम्हारे अत करण को खूब पहचानता हू। रघुवश में पैदा होकर तुम उससे पृथक् कैसे हो सकते हो ? राम पर तुम्हारी भक्ति अटल रहे। तुम्हारी कीर्त्ति की वृद्धि होती रहे। अब तुम शोक छोड दो। दशरथनदन श्रीराम चित्रकूट मे रह रहे है। आज रात तुम अपने परिवार के साथ मेरे आश्रम में ठहर जाओ। कल सुवह अपने मत्रियो के साथ चित्रकूट जाना। तुम्हारे यहा ठहरने से मुझे बडा ही आनद होगा।"

"स्वामिन्, आपसे मैने अर्घ्यपाद्य तो पा ही लिया। क्या यह काफी नहीं है। मुझे तो उसीमे बडा सतोप हो गया।" भरत ने उत्तर दिया।

भरद्वाज मुनि समझ गये कि भरत उन्हे और उनके शिष्यो को कष्ट नही देना चाहते। मुस्कराकर वह राजकुमार से बोले, "नही-नही, तुम राम्-भक्त हो। राजा दशरथ के पुत्र हो। मेरा धर्म है कि तुम्हारा यथोचित सत्कार करू। तुम अपने परिजनो को बाहर ही खडा क्यो कर आये हो ? उन्हे अदर बुला लो।"

"ऋषि के आश्रम मे शोर करना-कराना उचित नही। इसलिए मैंने उन्हें बाहर ही रोक दिया। मेरे साथ बहुत ज्यादा लोग है। उनके अदर आने और रहने आदि से आपको कष्ट होगा।" भरत ने नम्रता के साथ कहा।

लेकिन भरद्वाज मुनि ने नही माना। उन्होने कहा कि सब-के-सब अदर आ जायें। मुनि की बात भला भरत कैसे टालते! सबको अदर बुला लिया।

हवनशाला में भरद्वाज गये। उन्होने तीन बार मन्त्रोच्चार किया और आचमन करके उन्होने देवासुर शिल्पी विश्वकर्मा और मय का आह्वान किया। यम, वरुण, कुबेर, अग्नि आदि देवताओ को भी बुलाकर उन्होने कहा, "देखिये, मै भरत और उसके परिजनो का स्वागत करना चाहता हू। इनकी सख्या बहुत बडी है। भोजनशाला का निर्माण और सभी प्रबध तुरत हो जाय। सबके ठहरने, सोने और विश्राम करने की व्यवस्था भी करा दीजिये। मै भरत का अतिथि-सत्कार, आप सबकी मदद से, किसी तरह की त्रुटि के बिना, सपन्न करना चाहता हू।"

बहुत पहले विश्वामित्र के लिए ऋषि वसिष्ठ ने जो चमत्कार करके दिखाया था, वही इस समय भी हुआ। किंतु तब दोनो मुनियो के बीच भयकर युद्ध छिड गया था। इस बार वैसा कुछ नही हुआ। राज-परिवार के लिए सुदर भवन तैयार हो गये। गधमाल्यादि मौजूद थे। खाने-पीने की इतनी वस्तुए इकट्ठी हो गई थी कि उनका वर्णन करना कठिन है। कही अप्सराए नृत्य करती थी तो कही गधर्व गान करते थे। उस दैवी ढग के प्रबध की कल्पना करना भी मुश्किल है। भरत के सैनिक खा-पीकर ऐसे मस्त हुए कि वे अब दण्डकारण्य भी जाना नही चाहते थे। न अयोध्या लौटने के लिए ही उनका मन होता था। वे सोचने लगे कि उन्हे भरद्वाज-आश्रम में ही रोज-रोज ऐसा आनद प्राप्त करने का अलभ्य लाभ मिलता रहेगा। उन्हें इस बात का पता न था कि भरद्वाज मुनि ने यह सब तो अपने तपोबल से केवल एक दिन के लिए ही सुलभ किया था, और प्रात होते ही सब लोप हो जायगा।

सुबह हुआ। सबने देखा कि रात की बात सपना होगई थी।

के उद्देश्य से निकल पड़े हो क्या ?"

भरद्वाज मुनि के इन शब्दो को सुनकर भरत की आखो से आसुओ की धारा वह निकली। उनके मुह से शब्द न निकल सके।

"मेरा सर्वनाश हो गया!" भरत वोले—"आप भी मुझपर शक करने लगे? भगवन्, ऐसा न करे। मुझपर दया करें। मेरी सम्मति या जानकारी के विना मेरी मा ने जो कुछ किया, उसके लिए मै लाचार हू। उसमें मेरा कोई दोष नही। मेरा एकमात्र उद्देश्य श्रीराम को अयोध्या वापस ले जाकर, उन्हे राजा वनाना और जीवनभर उनका सेवक बने रहना है। मैं तो आपसे यह जानने के लिए आया हू कि मेरे भाई श्रीराम इस समय कहापर हैं? आप मुझे वुरा न समझें।" कहते-कहते भरत फूट-फूटकर रोने लगे।

भरत की दीन दशा से द्रवित होकर भरद्वाज बोले, "हे भरत, मैं तुम्हारे अत करण को खूव पहचानता हू। रघुवश में पैदा होकर तुम उससे पृथक् कैसे हो सकते हो? राम पर तुम्हारी भक्ति अटल रहे। तुम्हारी कीर्त्ति की वृद्धि होती रहे। अब तुम शोक छोड दो। दशरथनदन श्रीराम चित्रकूट में रह रहे है। आज रात तुम अपने परिवार के साथ मेरे आश्रम में ठहर जाओ। कल सुबह अपने मत्रियो के साथ चित्रकूट जाना। तुम्हारे यहा ठहरने से मुझे वडा ही आनद होगा।"

"स्वामिन्, आपसे मैंने अर्घ्यपाद्य तो पा ही लिया। क्या यह काफी नहीं हैं। मुझे तो उसीमें वडा सतोष हो गया।" भरत ने उत्तर दिया।

भरद्वाज मुनि समझ गये कि भरत उन्हे और उनके शिष्यो को कष्ट नही देना चाहते। मुस्कराकर वह राजकुमार से बोले, "नही-नही, तुम राम्-भक्त हो। राजा दशरथ के पुत्र हो। मेरा धर्म है कि तुम्हारा यथोचित सत्कार करू। तुम अपने परिजनो को वाहर ही खडा क्यो कर आये हो? उन्हें अदर वुला लो।"

"ऋषि के आश्रम में शोर करना-कराना उचित नही। इसलिए मैंने उन्हें वाहर ही रोक दिया। मेरे साथ बहुत ज्यादा लोग हैं। उनके अदर आने और रहने आदि से आपको कष्ट होगा।" भरत ने नम्रता के साथ कहा।

लेकिन भरद्वाज मुनि ने नही माना। उन्होने कहा कि सब-के-सब अदर आ जायें। मुनि की वात भला भरत कैसे टालते। सवको अदर बुला लिया।

हवनशाला में भरद्वाज गये। उन्होने तीन वार मत्रोच्चार किया और आचमन करके उन्होने देवासुर शिल्पी विश्वकर्मा और मय का आह्वान किया। यम, वरुण, कुवेर, अग्नि आदि देवताओ को भी बुलाकर उन्होने कहा, "देखिये, मै भरत और उसके परिजनो का स्वागत करना चाहता हू। इनकी सख्या वहुत वडी है। भोजनशाला का निर्माण और सभी प्रवध तुरत हो जाय। सवके ठहरने, सोने और विश्राम करने की व्यवस्था भी करा दीजिये। मैं भरत का अतिथि-सत्कार, आप सवकी मदद से, किसी तरह की त्रुटि के विना, सपन्न करना चाहता हू।"

वहुत पहले विश्वामित्र के लिए ऋषि वसिष्ठ ने जो चमत्कार करके दिखाया था, वही इस समय भी हुआ। किंतु तव दोनो मुनियो के बीच भयकर युद्ध छिड गया था। इस वार वैसा कुछ नही हुआ। राज-परिवार के लिए सुदर भवन तैयार हो गये। गधमाल्यादि मौजूद थे। खाने-पीने की इतनी वस्तुए इकट्ठी हो गई थी कि उनका वर्णन करना कठिन है। कही अप्सराए नृत्य करती थी तो कही गधर्व गान करते थे। उस दैवी ढग के प्रवध की कल्पना करना भी मुश्किल है। भरत के सैनिक खा-पीकर ऐसे मस्त हुए कि वे अव दण्डकारण्य भी जाना नही चाहते थे। न अयोध्या लौटने के लिए ही उनका मन होता था। वे सोचने लगे कि उन्हें भरद्वाज-आश्रम में ही रोज-रोज ऐसा आनद प्राप्त करने का अलभ्य लाभ मिलता रहेगा। उन्हें इस वात का पता न था कि भरद्वाज मुनि ने यह सव तो अपने तपोवल से केवल एक दिन के लिए ही सुलभ किया था, और प्रात होते ही सव लोप हो जायगा।

सुवह हुआ। सवने देखा कि रात की वात सपना होगई थी।

: ३७ :

राम की पर्णकुटी

दूसरे दिन सवेरे भरद्वाज मुनि ने भरत को बताया, "यहा से कोई ढाई कोस पर मदाकिनी नदी बहती है। उसके दूसरे तट पर एक बहुत ही घना निर्जन वन है। उस वन की दक्षिण दिशा मे चित्रकूट पर्वत है। उसकी तराई में राम-लक्ष्मण ने अपने लिए पर्णशाला बनाई है। उसमें ही सीता, राम और लक्ष्मण का वास है।"

राजा दशरथ की तीनो रानियो ने भरद्वाज ऋषि की प्रदक्षिणा करके नमस्कार किया। तब मुनि ने भरत से कहा, "आप लोगो का परिचय तो करायें।" भरत ने हरेक का नाम बताकर परिचय दिया। बोले—

"यह जो दुखी, उपवास करते रहने से बहुत ही कृश-शरीर हो गई हैं, मेरे पिता की पटरानी कौसल्या देवी हैं। भैया राम की जननी होने से देवेंद्र की मा अदिति के समान हैं। इनको सहारा देकर दाई ओर मुरझाई पुष्पलता के समान शोकमुद्रा में जो खडी हैं, वे हैं महाराज दशरथ की द्वितीय भार्या सुमित्रादेवी। लक्ष्मण और शत्रुघ्न इन्हीके सुपुत्र हैं। यह खडी हैं, मेरी मा कैकेयी, जो हमारे सारे दुखो की जड है। आर्य स्त्री के आवरण में छिपी अनार्या।" यो भरत ने कठोर वचनो से अपनी मा का परिचय दिया।

कैकेयी ने भी लज्जित मुख से, जैसे अन्य दोनो रानियो ने किया था, उसी प्रकार ऋषि की प्रदक्षिणा की और नमस्कार किया।

भरद्वाज मुनि ने भरत को समझाया कि मा के प्रति कटु वचन बोलना अनुचित है। जो कुछ हुआ है, वह ससार के कल्याण के लिए हुआ है।

× × ×

भरत ने माताओ का जैसा परिचय दिया, उसका सुदर वर्णन कबन ने भी दिया है, किंतु कबन ने उसका स्थान बदल दिया है। भरद्वाज-आश्रम के

बदले वह इस घटना को भरत जहा निषादराज से मिले, वहां ले गये हैं।

× × ×

भरत अपनी सेना तथा परिजनो के साथ भरद्वाज मुनि द्वारा बताये गये मार्ग से चित्रकूट की ओर जाने लगे। जब चित्रकूट पर्वत दिखाई देने लगा तो सब उत्साह के साथ आगे बढे। पर्वत की तराई में श्रीराम की पर्णशाला को खोज निकालने के लिए उन्होंने दृष्टि दौडाई। पर्वत के नीचे के भाग में उन्होंने एक स्थान पर कुछ धुआ उठता देखा। उस निर्जन स्थान में वह राम के आश्रम के सिवा और क्या हो सकता है? सब एक स्वर में चिल्ला उठे, "देखो, वह रहा श्रीराम का आश्रम!"

भरत ने साथ के समस्त लोगो को वही रोक दिया। केवल सुमत और वसिष्ठ को अपने साथ लेकर जिधर धुआ दिखाई दे रहा था, उस ओर धड-कते दिल से चलने लगे।

बिगडी हुई को बनाने का दृढ सकल्प करके इधर भरत राम के पास जा रहे थे। उधर चित्रकूट में राम अपनी प्रिया सीता से कह रहे थे—

"सीते, उन पक्षियो की ओर देखो। कैसे मगन होकर क्रीडा कर रहे हैं? उस चट्टान को तो देखो! धातुओ के मिश्रण से उसका रग किस प्रकार नीला, पीला और लाल चमक रहा है! ये कैसी सुदर वन-लताए है! ऐसे फूलो को तुमने कभी देखा है? हमने सोचा था कि वनवास बहुत कठिन होगा। यहा तो हम उलटे आनद का अनुभव कर रहे हैं। साथ ही पिता के वचन-पालन करने का अनुपम सतोष भी हमें है। मुझे यह सोचकर तो और भी खुशी हो रही है कि भाई भरत राजा होने जा रहा है।"

सीता और लक्ष्मण के साथ राम सुखपूर्वक वनवास कर रहे थे। प्राकृतिक शोभा ने उनका मन मोह लिया था। वह मदाकिनी के तट पर जाते उसमें नहाते और नदी के सौंदर्य का आनद लेते हुए सीता से कहते, "प्रिये, कैसी मुलायम रेती है! हस और सारस कैसे आनद से कल्लोल कर रहे है। कमल कैसे खिल रहे हैं! मालूम होता है कि नदी तुम्हारे सौंदर्य से प्रतिस्पर्द्धा कर रही है! कैसा अद्भुत नदी-तट है! जहा पशु पानी पीते हैं, वहा का जल

लाल हो रहा है। क्या कुवेर का सौगधिक सागर इसकी बरावरी कर सक
है ? वह देखो, ऋषि-मुनि स्नान करके सूर्य भगवान की उपासना कर रहे
पेडो से झडकर फूल पानी में गिर रहे हैं। मोतियो जैसा फेन उछालती
मदाकिनी दौडती आ रही है। इन वस्तुओ के सामने नगर में रहना कित
फीका लगता है! हम सचमुच भाग्यशाली हैं! ऋषि, मुनि एव सिद्ध-पुरु
के स्नान-जप आदि का दर्शन नगर में भला किसको मिल सकता है ? इ
पर्वत को हम अयोध्या और इन विहगों को ही अयोध्या की प्रजा समझेंगे
मदाकिनी को सरयू मान लेंगे। लक्ष्मण और तुम मेरे साथ हो। मुझे और कु
नही चाहिए। जब जानवर अपनी प्यास बुझाने के लिए यहा आते हैं, और एक
दूसरे से निर्भीक होकर पानी पीते है, तो उन्हे देखकर मुझे वडा ही आन
आता है। तुम्हारे साथ कदमूल खाकर जगल में घूमते हुए जो खुशी होती है
वह मुझे राजपद पाने या अयोध्या में रहने से नही मिल सकती।"

इस प्रकार श्रीरामचद्र का चित्रकूट में बहुत ही अच्छी तरह सम
व्यतीत हो रहा था।

एक दिन तीनों जने पेड के नीचे बैठकर आनंद से बातें कर रहे थे
एकाएक उन्होने देखा कि आसमान में बडी धूल उडने लगी है। समुद्र की लह
की तरह आवाजें आने लगी। भरत की वडी भारी सेना के घुसते ही जगल
जानवर डर के मारे इधर-उधर भागने लगे। जव राम ने यह हलचल देखी त
लक्ष्मण से कहने लगे, "भाई, सुनो! कही कोई भारी शोर हो रहा है। हाथी
और जगली भैंसे डर के मारे इधर-उधर भाग रहे हैं। देखना, क्या बात
है ? हो सकता है कि कोई राजा शिकार खेलने आया हो या सिंह, व्याघ्र जैसे
घातक जानवर का आक्रमण हुआ हो। देखकर मुझे बताओ, क्या बात है ?"

लक्ष्मण ने एक ऊचे वृक्ष पर चढकर देखा। उत्तर दिशा में एक वडी
भारी चतुरग सेना चली आ रही थी। पेड के ऊपर से ही उन्होने राम को
चेतावनी दी, "भैया, एक भारी सेना ध्वजा फहराती हुई, हाथी, घोडे और
पैदल चलनेवाले सैनिको के साथ हमारी तरफ चली आ रही है। सावधान हो
जाइये। एकदम आग बुझा दीजिये और सीताजी को गुफा में छिपा दीजिये

हम दोनो कवच पहनकर धनुप और वाण लेकर आक्रमण का सामना करने के लिए तैयार हो जाय।"

पर श्रीराम इस समाचार से घवराये नही। वोले, "देखो तो, सही, रथ के ऊपर किस देश के राजा का ध्वज है ?"

लक्ष्मण ने ध्यान से देखा। देखा क्या, देखते ही क्रोध के मारे उनका चेहरा एकदम लाल हो गया। वह आवेश में वोले

"भैया, भरत को राज्य पाने से ही सतोप नही हुआ। अव वह हमें मार डालने को निकल पडा है। भरत का ही रथ है। रथ के ऊपर हमारा कोविदार ध्वज फहरा रहा है। आज मेरे हाथ में कैकेयी का लडका अच्छी तरह आ गया है। उसे मैं जिदा न छोडूगा। अधर्मी को मार डालने में मै कोई पाप नही देखता। वताइये, उस सेना का मुकावला यही से करें, या पहाड के ऊपर से ? आज मैं भरत को मारकर ककेयी की नीच आशाओ को मिट्टी में मिला दूगा। इस वन में खून की नदी वहनेवाली है। हाथी से धकेलकर गिराये जाने पर जैसे एक पेड गिर पडता है, वैसे ही भरत मेरे हाथ से मरकर गिरनेवाला है। मैं इस सेना को भी निर्मूल कर दूगा। इस वन के मृत मास खानेवाले जानवर आज तृप्त होगे।"

क्रोध से उन्मत्त लक्ष्मण यो अपनेको भूलकर न जाने क्या-क्या कहे जा रहे थे।

की धारा ही वह निकली। "भैया,!" कहकर वह एकदम श्रीराम के चरणो में गिर पड़े और फूट-फूटकर रोने लगे।

श्रीराम ने देखा कि भरत शोक और उपवास के कारण एकदम दुर्बल होगये हैं। उन्होने शरीर पर मूल्यवान वस्त्रो की जगह वल्कल पहन रखे हैं। उन्हें पहचानना भी कठिन हो रहा था। भरत को दोनो हाथो से उठाकर रामचद्र ने एकदम छाती से लगा लिया, प्यार किया, बाहो में भर लिया और बोले, "प्यारे भाई, पिताजी को अकेले छोड़कर तुम यहा इतनी दूर कैसे आ गये ? ऐसे दुर्बल क्यो हो रहे हो ?"

भरत के मुह से एक शब्द भी न निकल पाया। राम ने धीरे-धीरे उनसे राज्य के बारे में राजाओ की परपरा के अनुसार कुशल-प्रश्न किये। राज्य-पालन-कार्य का वर्णन करके पूछा कि सब नियमो का पालन हो रहा है न ? भरत ने कोई उत्तर नही दिया। कुछ देर बाद शात होकर वह बोले, "राजा के धर्मों से मेरा क्या वास्ता ? सिहासन पर बैठकर राज्य-धर्म का पालन करना तो भैया, तुम्हारा ही कर्तव्य है। मुझे तुम्हारी चाकरी के अतिरिक्त और कुछ नही चाहिए। हमारे कुल की तथा अन्य राज-कुलो की यही परपरा रही है कि पिता के बाद ज्येष्ठ पुत्र ही राजा बनता है। मेरे साथ तुम अयोध्या वापस चलो और राजमुकुट धारण करके अपने कुल को और प्रजा को सुखी बनाओ। पिताजी तो इस ससार में अपने कर्तव्यो को पूरा करके स्वर्ग को सिधार गये। मैं तो कैकय देश में ही था। तुम्हारे वियोग का आघात पिताजी से नही सहा गया। तुम दुखी न हो और पिताजी की आत्मा के लिए जो तर्पण-सस्कार आदि करना है, वह करना चाहिए। मैंने और शत्रुघ्न ने तो कर लिया है। आखिरी दमतक पिताजी तुम्हारी ही याद करते रहे। तुम्हारे हाथ के दिये हुए तिल और जल से उन्हें शाति मिलेगी।

भरत को पहले कौसल्यादेवी को, फिर गुह और बाद में भरद्वाज मुनि को समझाना पड़ा था कि वह निर्दोष हैं। कहना पड़ा था कि जो कुछ हो गया, उसमें उसका कोई हाथ न था। किंतु राम से मिलने पर भरत को उनका ऐसा समाधान करने-कराने की कोई आवश्यकता ही नहीं हुई। श्रीराम ने तो भरत

के चितातुर मुख को देखा, उनके कृश शरीर को देखा और सब समझ लिया। भरत के हृदय को तो श्रीराम जानते ही थे। भरत भी श्रीराम को अयोध्या ले जाने का कहने के अलावा अपने बारे में कुछ भी न बोले।

पिता की मृत्यु की खबर सुनते ही राम धडाम-से नीचे गिर पडे। कबन का वर्णन है कि राम यो प्रलाप करने लगे —

"आप तो सारी प्रजा के पिता थे। आपकी प्राणज्योति कैसे बुझी ? दया और धर्म के स्वरूप हे मेरे पिता! राजाओ के राजा! आप कैसे स्वर्ग-वासी हुए ? अब सत्य का स्थान कहा रहेगा ?"

दोनो राजकुमारो, सीता और सुमत सबने नदी में जाकर स्नान किया। पिता का ध्यान करके हाथ में जल भरकर तर्पण-क्रिया की। बाद में पर्णशाला लौटे। पिता की याद करके सभी पुत्र एक-दूसरे के हाथ पकडकर खूब रोये। उससे उनका मन कुछ हल्का हुआ।

× × ×

यहापर एक विषय का उल्लेख करना आवश्यक है। वाल्मीकि के अनुसार जब भरत राम से मिले, तब राम ने भरत को राज्यधर्म का एक लबा उपदेश दिया। हमारे ऐतिहासिक और पौराणिक ग्रथो में नीति और धर्मोपदेश के ऐसे प्रसग बार-बार आते है। आधुनिक लेखक कहानियो के लिए तीव्र गति और उत्तेजना आदि को आवश्यक समझते है। पुराने ग्रथो में भी ये बाते पाई जाती है। किंतु साथ ही लोगो के शील को बढानेवाली बातें उनमें बडी उदारता के साथ जोडी जाती है। पुराने ही टीकाकार कहते है कि इस जगह पर वाल्मीकि-रामायण में अध्याय कुछ आगे-पीछे हो गये हैं।

इस राम-भरत के मिलाप का वर्णन वाल्मीकि-रामायण में जैसा है, उससे अधिक स्वाभाविक रूप से कबन की रामायण में दिया गया है। आधुनिक मन पर उसका बहुत अच्छा प्रभाव पडता है। तुलसी-रामायण में तो इस अवसर पर भक्ति की लहरो का ही दर्शन मिलता है। वर्षाकाल की सरिता की तरह वह भक्तिरस से भरपूर है। उलझनो के लिए वहा स्थान है ही नही।

: ३६ :

भरत का अयोध्या लौटना

चारो राजकुमार और तीनो माताए फिर से इकटठे होगये। यह मालूम होते ही उन्हें एक साथ देखने के लिए सभी लोग, जो अबतक आदरपूर्वक बाहर खडे थे, पर्णशाला की तरफ दौडकर आने लगे। खुशी की लहर दौड गई। सबने यही सोच लिया कि श्रीरामचद्र अयोध्या लौटेंगे। इससे उनमें आनद का सागर उमड पडा, और वे एक-दूसरे का आलिगन करने लगे, जैसे आमतौर पर मगल अवसरो पर किया जाता है।

पिता के देहावसान के कारण दोनो राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण तथा पुत्रवधू सीता दु ख-सागर में डूबे हुए थे। परतु जन-समुदाय श्रीराम के दर्शन करके बहुत खुश हो रहा था।

वसिष्ठ तीनो रानियो को रामचद्र की कुटी की ओर ले जा रहे थे। रास्ते में मदाकिनी नदी का उन्होंने दर्शन किया। वसिष्ठ ने जब उन्हे बताया कि राम-लक्ष्मण अपनी जरूरत के लिए वही से पानी भरकर ले जाते होगे तो कौसल्या और सुमित्रा दोनो रो पडी।

"हे सुमित्रे! तुम्हारा बेटा कितना भला है! मेरे लडके के लिए वह रोज यहा से आश्रम तक पानी ले जाता है। अपने बडे भाई के लिए लक्ष्मण क्या नही कर सकता?" कौशल्या ने सुमित्रा से कहा।

नदी के किनारे, जहा राम-लक्ष्मण ने दिवगत पिता को श्रद्धाजलि दी थी, वह जगह उन्होंने देखी। दर्भ की नोक दक्षिण की तरफ रखी हुई थी। श्राद्ध के समय का तिलान्न रखा हुआ था। उससे कौशल्या को अपने पति का स्मरण ताजा हो उठा। "महाराजाधिराज, तुम्हे आखिर यही खाकर सतुष्ट होना पडा, हाय, मै मर क्यो नही गई? तुम कहा चले गये?" यो दशरथ को याद करके और सुमित्रा का हाथ पकडकर कौशल्या रोने लगी।

सब लोग पर्णशाला पहुचे। दैवी तेजवाले राजकुमार घास की कुटिया में बैठे हुए थे। राजमाताए मन में उत्पन्न अनेक प्रकार के आवेगो के कारण कमजोर होकर गिरने लगी थी कि राम-लक्ष्मण ने उन्हे पकड लिया। कौशल्या राम की पीठ पर अपने कोमल हाथ बार-बार फेरने लगी। उन्हें समझ में नहीं आया कि खुशी का अनुभव हो रहा है या दु ख का ? वह बेहोश-सी थीं। सीता को छाती से लगाकर कौशल्या बोलीं, "बेटी, जनक के घर में तुमने जन्म लिया, राजा दशरथ की पुत्रवधू बनकर मेरे घर में आई। बचपन से वैभव के सिवा तुमने कुछ न देखा था। अब किस प्रकार इस घोर वन में और ऐसी झोपडी में वास कर रही हो ? मेरी प्यारी बहू ! मुरझाये हुए कमल की तरह, धूल लगी सोने की मूर्त्ति की तरह, तुझे देखकर मुझसे यह दु ख सहा नही जा रहा। मेरा दिल आग में पडी लकडी की तरह जल रहा है।"

सामने बृहस्पति तुल्य ऋषि वसिष्ठ खडे थे। श्रीराम ने उनके चरण स्पर्श करके प्रणाम किया। उन्हें बिठाकर स्वय भी उनके पास बैठे। विनय के अवतार भरत राम के सामने बैठे। अन्य बधुजन सभी सामने बैठे। सब यही देखना चाहते थे कि भरत के अनुरोध का श्रीराम क्या उत्तर देते हैं।

"भाई भरत, राज्यभार तुम्हारे ऊपर है। उसे छोडकर मृगचर्म और जटा धारण करके क्यो निकल पडे ? मुझे समझाओ।" राम ने भरत से पूछा।

भरत ने दो-तीन बार कुछ बोलने का प्रयत्न किया, पर हिम्मत हार गये। थोडी देर बाद किसी प्रकार अपने दिल को कडा करके बोले, "भैया तुम्हे वन भेजकर उसी खेद में पिता मर गये। मेरी मा ने भी देख लिया कि उसका षडयत्र निष्फल साबित हुआ। अब सारी दुनिया का अपवाद सुनती हुई अति लज्जित होकर वह नरक-यातना भोग रही है। अब सब बात बिगड़ गई है। आपके सिवा उसे कोई ठीक नही कर सकता। अब आप राजमुकुट धारण करने को 'हा' कह दीजिये। इसी काम के लिए हम सब, अयोध्या की सारी प्रजा, सेना, विधवा माताए, सभी यहा आपके पास इकट्ठे हुए हैं हमारी इस छोटी-सी माग को ठुकरायें नही। लोगो के दु ख को दूर कीजिये कुल-धर्म की रक्षा कीजिये। हमारा राज्य अनाथ होकर एक विधवा की तरह

कातिहीन हो गया है। उसको आप ही फिर से समृद्ध कर सकते हैं। चद्रमा जैसे अधकार को हटा देता है, वैसे ही लोगो के म्लान हृदयो को फिर से आप चमका दीजिये। देखिये, ये सारे मत्रिगण खडे हैं। उन सबके साथ मैं आपके पैर पडता हू। हमारी प्रार्थना स्वीकार कीजिये।" यो कहकर भरत ने राम के चरणो को पकड लिया।

श्रीराम ने भरत को बडे वात्सल्य से छाती से लगा लिया और कहा, "भैया, हमने बहुत अच्छे कुल में जन्म लिया है। अच्छी शिक्षा पाई है, माता-पिता ने उचित ढग से पालन-पोपण करके हमें बडा किया है। हमसे बुरे काम होना असभव है। तुमने कोई गलती नही की। व्यर्थ की चिंता मत करो। दु ख छोड दो। अपनी मा को बुरा कहना हमारे शील के विरुद्ध है। इसलिए मा कैकेयी को कोसना बद करो। हमारे पिता जो भी चाहते थे, हमसे करा सकते थे। उन्हें इसका पूरा अधिकार था। वह हमें राजगद्दी पर बिठा सकते थे, तो बनवास भी दे सकते थे। माता-पिता की आज्ञा को हमें आदर और प्रसन्नता से मान लेना चाहिए। मरने से पहले पिताजी ने आज्ञा दी थी कि तुम राज्य-पालन करो। मुझसे कहा था कि चौदह वर्ष वन में बिताओ। हमारा धर्म पिता के वचनो का पालन करना ही है। तुम्हे राज्य-भार सभालना ही चाहिए। उसमें किसी प्रकार का दोष मैं नही देखता। मेरा धर्म जगल में चौदह वर्ष बिताना है। देवेंद्र के समान पिता-जी की अतिम आज्ञा का हम निरादर नही कर सकते। उनकी आज्ञा पूरी किये बिना सारी पृथ्वी का राज्य मिलता हो, तो भी वह मुझे नही चाहिए, उससे मैं प्रसन्न नही हो सकता।"

भरत फिर भी न माने। बार-बार राम से विनती करने लगे कि अयोध्या वापस चले चले। उन्होने कहा कि उनकी अपनी सम्मति के बिना अयोध्या मे जो अनर्थ हो गया है, उसे ठीक करना अब राम का काम है। वह स्वय अपनी भी खूब निंदा करने लगे। तब राम ने उन्हे रोका और कहा कि ऐसा नही करना चाहिए। बोले, "भाई भरत, नियति को हम जीत नही सकते। शोक छोडो। जो कुछ होना था, सो हो गया। अब अयोध्या लौट जाओ।

राज्य का भार सभालो। हम दोनो का कर्तव्य पिता के वचन का पालन करने में ही है। उसके विरुद्ध हम चल नही सकते।"

रामचद्र के अटल निश्चय को देखकर सब लोगो को एक ओर बहुत खुशी हुई, तो दूसरी ओर दु ख भी हुआ। भरत के अनुपम प्रेम, भक्ति और निर्मल हृदय को देखकर सब सोचने लगे, "हम कैसे भाग्यशाली है, जो ऐसे सद्गुणी राजकुमारो को हमने पाया है।"

रामचद्र ने निश्चयपूर्वक कह दिया, "मै तो पिताजी के कहे को पूरा किये बिना न लौटूगा। तुम अपना यह व्यर्थ प्रयत्न छोड दो। देखो, शत्रुघ्न होशियार भाई है। वह तुम्हे राज्य-पालन में मदद करेगा। मेरे पास भाई लक्ष्मण है। तब हमें किस बात की कमी है ? हम चारो पुत्र पिताजी का कहना मानेंगे।"

भरत के साथ जो ब्राह्मण आये थे उनमें एक विद्वान पडित ऋषि जाबालि थे। वह राम और भरत का सवाद सुन रहे थे। वह राम को दुनियादारी की बातें समझाने लगे। "क्यो, बार-बार 'पिता की आज्ञा, पिता की आज्ञा' कहते रहते हो ? सुनो राम, आखिर दशरथ कौन थे ? एक शरीर था, जिसका नाम दशरथ था। वह शरीर तो अब नष्ट हो गया। पचतत्त्व को प्राप्त हो गया। उनका अस्तित्व अब कहा रहा ? उस बीते शरीर मे अब तुम्हारा क्या सबध रहा ? इसे मै मूर्खता कहूगा। सामने जो आराम की वस्तुए है, उनका भोग न करके धर्म, परलोक आदि की बातें करना बेवकूफो का काम है। आज अयोध्या बिखरे केशोवाली विधवा की तरह अनाथ है, दुखी है। जाओ, उसकी रक्षा करो। राज्य-भोगो का उपयोग करो। भरत का कहना मान जाओ। 'पिता की आज्ञा' को भूल जाओ।"

जाबालि की इन बातो से राम को दु ख हुआ। वह बोले, "आपको तो सत्य की कोई परवा नही है। मै आपकी इन बातो से सहमत नही हू। आप नास्तिकवाद की बात करते है। मै तो सत्य को दुनिया की समस्त वस्तुओ से बढ़कर मानता हू। इसलिए आप मुझे समझाने का प्रयत्न छोड दीजिये।"

तब वसिष्ठ ने राम से कहा, "राम, जाबालि नास्तिक नही है। किसी

भी प्रकार से तुम्हे अयोध्या ले जाने की इच्छा से, और भरत का दु ख मिटाने के लिए, उन्होंने यह बात कही है। इसलिए उनपर तुम्हे नाराज नही होना चाहिए और तुम्हे ही राजा होना चाहिए। किंतु पिता को तुमने वचन दे दिया है। उसके महत्व को मैं खूब समझता हू। फिर भी भरत के ऊपर लोकापवाद रहेगा, उसके लिए क्या किया जाय ? तुम तो भरत को प्राणो से भी अधिक चाहते हो। हम सभी इस बात को जानते है। पर भरत तुम्हारी शरण में आया है। तुम उसके विरुद्ध कैसे चलोगे ?"

पर राम अपने निश्चय से तनिक भी न डिगे। तब भरत ने सुमत से कहा, "सुमतजी, दर्भ ले आइये, और उसे यहापर फैला दीजिये। मै उस आसन पर बैठकर आमरण उपवास करूगा।"

सुमत की हिम्मत न हुई। वह रामचद्र की ओर देखने लगे। तब भरत अपने हाथो से घास फैलाकर उसपर बैठ गये।

"भैया भरत, यह सब क्या कर रहे हो ? उठ जाओ। मेरी बात मानो। तुम्हारा कर्त्तव्य अयोध्या लौटकर प्रजा की रक्षा करना है। क्षत्रिय-धर्म के प्रतिकूल काम न करो।" राम ने भरत को दर्भासन पर से उठा दिया।

भरत उठ खडे हुए। एकत्र जन-समुदाय से बोले, "हे अयोध्या के सज्जनो, आप लोगो को क्या हो गया है ? चुप क्यो खडे हो ? श्रीरामचद्र से क्यो नही एक साथ कहते कि वह अयोध्या चलें ? क्या आप लोग यह नही चाहते ?"

तब सबने कहा, "श्रीरामचद्र को हम जानते है। वह सत्यव्रती है। पिता के वचन के विरुद्ध वह कभी नही जायगे। हमारा प्रयत्न व्यर्थ होगा।"

तब श्रीराम बोले, "भाई, मेरे भरत, इन प्रजाजनो की बात मान जाओ। हमारे लोग धार्मिक वृत्तिवाले है। हम दोनो का हित चाहनेवाले है।"

तब भरत ने लोगो के सामने एक सुझाव उपस्थित किया। भरत ने कहा, "यदि आपका यही कहना है कि पिता की आज्ञा किसी तरह से भी पूरी करनी ही होगी, तो उसके लिए मेरे पास दूसरा उपाय है। भैया राम की जगह मैं वनवास-व्रत पालूगा। वह अयोध्या लौटें और राजगद्दी पर बैठकर प्रजा का पालन करें।"

यह सुनकर रामचद्र खूब हँसे। बोले, "प्यारे भाई भरत, कैसी बच्चो-की-सी बात करते हो! हम कोई सौदा थोडे ही कर रहे है जो जैसी अनुकूलता हो, वैसी ही बात पलट दें। व्रतो के साथ यह नही चल सकता। हां, किसी विपदा के समय में या कोई बीमार हो या शरीर से दुर्बल हो तो, बडे भाई का व्रत छोटा भाई लेकर अवश्य पूरा कर सकता है। पर यहा तो ऐसी कोई बात नही है। सज्जनो, क्या आप लोग यह मानते हैं कि मै वनवास का व्रत पूरा करने में असमर्थ हू ? और उसके लिए भरत को आना चाहिए ?"

लोग क्या उत्तर देते ? आखिर भरत से बोले, "भरत सुनो, राम की अनुमति लेकर उनकी ओर से उनके प्रतिनिधिस्वरूप राज्य-सचालन करो। वैसा करने में तुम्हारे ऊपर कोई दोष नही आयगा और सत्य का पालन भी हो जायगा।

श्रीरामचद्र ने प्यार से भरत को अपनी गोद में बिठाया और प्रेम की वर्षा-सी करते हुए बोले, "मेरे भाई, तुम यही समझो कि मैंने तुम्हे राज्य-भार सौंपा है। उसे लेने से इन्कार मत करो। पिता जैसा कह गये हैं, वैसे ही हमें चलना है।"

भरत बोले, "भैया, अब आप ही मेरे पिता और प्रभु है। आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। मेरे ऊपर सदा कृपा बनी रहे। आप अपनी दोनो पादु-काए मुझे दे दें। उन्हे मै आपकी जगह समझूगा। अपने सिर पर रखकर उन्हे अयोध्या ले जाऊगा। चौदह साल तक मैं राजधानी के बाहर रहकर आपको ही राजा समझकर प्रजा की रक्षा का कार्य देखता रहूगा।"

रामचद्र भरत की इस माग से इन्कार न कर सके। अपने पैर की दोनो पादुकाए उन्होने भरत को दे दी। भरत ने प्रणाम करके पादुकाओं को हाथ में लिया और फिर अपने सिर पर रख लिया। भरत पादुका लेकर लौट पडे।

राम से विदा लेकर सब वापस चले। लौटते हुए मार्ग में ऋषि भर-द्वाज से मिले। जब उन्होने सारा वृत्तात सुना तो उन्होंने भरत की बहुत प्रशसा की। बोले, "भरत, तुम्हारा यश कभी नही मिट सकता। दशरथ के पुत्र हो न ? जैसे पानी नीचे की ओर प्रवाहित होकर गिरता है, उसी

भी प्रकार से तुम्हे अयोध्या ले जाने की इच्छा से, और भरत का दु ख मिटाने के लिए, उन्होने यह वात कही है । इसलिए उनपर तुम्हे नाराज नही होना चाहिए और तुम्हे ही राजा होना चाहिए । किंतु पिता को तुमने वचन दे दिया है। उसके महत्व को मै खूब समझता हू। फिर भी भरत के ऊपर लोकापवाद रहेगा, उसके लिए क्या किया जाय ? तुम तो भरत को प्राणो से भी अधिक चाहते हो। हम सभी इस बात को जानते है। पर भरत तुम्हारी शरण में आया है । तुम उसके विरुद्ध कैसे चलोगे ?"

पर राम अपने निश्चय से तनिक भी न डिगे । तब भरत ने सुमत से कहा, "सुमतजी, दर्भ ले आइये, और उसे यहापर फैला दीजिये। मै उस आसन पर बैठकर आमरण उपवास करूगा।"

सुमत की हिम्मत न हुई। वह रामचद्र की ओर देखने लगे। तव भरत अपने हाथो से घास फैलाकर उसपर वैठ गये।

"भैया भरत, यह सब क्या कर रहे हो ? उठ जाओ। मेरी बात मानो। तुम्हारा कर्त्तव्य अयोध्या लौटकर प्रजा की रक्षा करना है। क्षत्रिय-धर्म के प्रतिकूल काम न करो।" राम ने भरत को दर्भासन पर से उठा दिया।

भरत उठ खडे हुए। एकत्र जन-समुदाय से बोले, "हे अयोध्या के सज्जनो, आप लोगो को क्या हो गया है ? चुप क्यो खडे हो ? श्रीरामचद्र से क्यो नही एक साथ कहते कि वह अयोध्या चलें ? क्या आप लोग यह नही चाहते ?"

तब सबने कहा, "श्रीरामचद्र को हम जानते हैं। वह सत्यव्रती हैं। पिता के वचन के विरुद्ध वह कभी नही जायगे। हमारा प्रयत्न व्यर्थ होगा।"

तब श्रीराम बोले, "भाई, मेरे भरत, इन प्रजाजनो की बात मान जाओ। हमारे लोग धार्मिक वृत्तिवाले हैं। हम दोनो का हित चाहनेवाले है।"

तव भरत ने लोगो के सामने एक सुझाव उपस्थित किया। भरत ने कहा, "यदि आपका यही कहना है कि पिता की आज्ञा किसी तरह से भी पूरी करनी ही होगी, तो उसके लिए मेरे पास दूसरा उपाय है। भैया राम की जगह मै वनवास-व्रत पालूगा। वह अयोध्या लौटें और राजगद्दी पर वैठकर प्रजा का पालन करें।"

यह सुनकर रामचद्र खूब हँसे। बोले, "प्यारे भाई भरत, कैसी बच्चो-की-सी बात करते हो! हम कोई सौदा थोडे ही कर रहे हैं जो जैसी अनुकूलता हो, वैसी ही बात पलट दें। व्रतो के साथ यह नही चल सकता। हा, किसी विपदा के समय में या कोई बीमार हो या शरीर से दुर्बल हो तो, बडे भाई का व्रत छोटा भाई लेकर अवश्य पूरा कर सकता है। पर यहा तो ऐसी कोई बात नही है। सज्जनो, क्या आप लोग यह मानते हैं कि मैं वनवास का व्रत पूरा करने में असमर्थ हू? और उसके लिए भरत को आना चाहिए?"

लोग क्या उत्तर देते? आखिर भरत से बोले, "भरत सुनो, राम की अनुमति लेकर उनकी ओर से उनके प्रतिनिधिस्वरूप राज्य-सचालन करो। वैसा करने में तुम्हारे ऊपर कोई दोष नही आयगा और सत्य का पालन भी हो जायगा।

श्रीरामचद्र ने प्यार से भरत को अपनी गोद में बिठाया और प्रेम की वर्षा-सी करते हुए बोले, "मेरे भाई, तुम यही समझो कि मैंने तुम्हे राज्य-भार सौंपा है। उसे लेने से इन्कार मत करो। पिता जैसा कह गये हैं, वैसे ही हमें चलना है।"

भरत बोले, "भैया, अब आप ही मेरे पिता और प्रभु हैं। आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। मेरे ऊपर सदा कृपा बनी रहे। आप अपनी दोनो पादु-काए मुझे दे दें। उन्हे मैं आपकी जगह समझूगा। अपने सिर पर रखकर उन्हे अयोध्या ले जाऊगा। चौदह साल तक मैं राजधानी के बाहर रहकर आपको ही राजा समझकर प्रजा की रक्षा का कार्य देखता रहूगा।"

रामचद्र भरत की इस माग से इन्कार न कर सके। अपने पैर की दोनो पादुकाए उन्होंने भरत को दे दी। भरत ने प्रणाम करके पादुकाओं को हाथ में लिया और फिर अपने सिर पर रख लिया। भरत पादुका लेकर लौट पडे।

राम से विदा लेकर सब वापस चले। लौटते हुए मार्ग में ऋषि भर-द्वाज से मिले। जब उन्होंने सारा वृत्तात सुना तो उन्होंने भरत की बहुत प्रशसा की। बोले, "भरत, तुम्हारा यश कभी नही मिट सकता। दशरथ के पुत्र हो न? जैसे पानी नीचे की ओर प्रवाहित होकर गिरता है, उसी

भी प्रकार से तुम्हें अयोध्या ले जाने की इच्छा से, और भरत का दु ख मिटाने के लिए, उन्होने यह बात कही है। इसलिए उनपर तुम्हे नाराज नही होना चाहिए और तुम्हें ही राजा होना चाहिए। किंतु पिता को तुमने वचन दे दिया है। उसके महत्व को मै खूब समझता हू। फिर भी भरत के ऊपर लोकापवाद रहेगा, उसके लिए क्या किया जाय ? तुम तो भरत को प्राणो से भी अधिक चाहते हो। हम सभी इस बात को जानते हैं। पर भरत तुम्हारी शरण में आया है। तुम उसके विरुद्ध कैसे चलोगे ?"

पर राम अपने निश्चय से तनिक भी न डिगे। तब भरत ने सुमत से कहा, "सुमतजी, दर्भ ले आइये, और उसे यहापर फैला दीजिये। मैं उस आसन पर बैठकर आमरण उपवास करूगा।"

सुमत की हिम्मत न हुई। वह रामचद्र की ओर देखने लगें। तब भरत अपने हाथो से घास फैलाकर उसपर बैठ गये।

"भैया भरत, यह सब क्या कर रहे हो ? उठ जाओ। मेरी बात मानो। तुम्हारा कर्त्तव्य अयोध्या लौटकर प्रजा की रक्षा करना है। क्षत्रिय-धर्म के प्रतिकूल काम न करो।" राम ने भरत को दर्भासन पर से उठा दिया।

भरत उठ खडे हुए। एकत्र जन-समुदाय से बोले, "हे अयोध्या के सज्जनो, आप लोगो को क्या हो गया है ? चुप क्यो खडे हो ? श्रीरामचद्र से क्यो नही एक साथ कहते कि वह अयोध्या चलें ? क्या आप लोग यह नही चाहते ?"

तब सबने कहा, "श्रीरामचद्र को हम जानते हैं। वह सत्यव्रती हैं। पिता के वचन के विरुद्ध वह कभी नही जायगे। हमारा प्रयत्न व्यर्थ होगा।"

तब श्रीराम बोले, "भाई, मेरे भरत, इन प्रजाजनो की बात मान जाओ। हमारे लोग धार्मिक वृत्तिवाले है। हम दोनो का हित चाहनेवाले हैं।"

तब भरत ने लोगो के सामने एक सुझाव उपस्थित किया। भरत ने कहा, "यदि आपका यही कहना है कि पिता की आज्ञा किसी तरह से भी पूरी करनी ही होगी, तो उसके लिए मेरे पास दूसरा उपाय है। भैया राम की जगह मैं वनवास-व्रत पालूंगा। वह अयोध्या लौटें और राजगद्दी पर बैठकर प्रजा का पालन करें।"

यह सुनकर रामचद्र खूब हँसे। बोले, "प्यारे भाई भरत, कैसी बच्चों-की-सी वात करते हो! हम कोई सौदा थोडे ही कर रहे हैं जो जैसी अनुकूलता हो, वैसी ही वात पलट दें। व्रतो के साथ यह नही चल सकता। हा, किसी विपदा के समय में या कोई वीमार हो या शरीर से दुर्वल हो तो, वडे भाई का व्रत छोटा भाई लेकर अवश्य पूरा कर सकता है। पर यहा तो ऐसी कोई वात नही है। सज्जनो, क्या आप लोग यह मानते हैं कि मैं वनवास का व्रत पूरा करने में असमर्थ हू ? और उसके लिए भरत को आना चाहिए ?"

लोग क्या उत्तर देते ? आखिर भरत से वोले, "भरत सुनो, राम की अनुमति लेकर उनकी ओर से उनके प्रतिनिधिस्वरूप राज्य-सचालन करो। वैसा करने में तुम्हारे ऊपर कोई दोष नहीं आयगा और सत्य का पालन भी हो जायगा।

श्रीरामचद्र ने प्यार से भरत को अपनी गोद में बिठाया और प्रेम की वर्षा-सी करते हुए वोले, "मेरे भाई, तुम यही समझो कि मैंने तुम्हे राज्य-भार सौंपा है। उसे लेने से इन्कार मत करो। पिता जैसा कह गये है, वैसे ही हमें चलना है।"

भरत वोले, "भैया, अव आप ही मेरे पिता और प्रभु है। आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। मेरे ऊपर सदा कृपा वनी रहे। आप अपनी दोनो पादु-काए मुझे दे दें। उन्हे मैं आपकी जगह समझूगा। अपने सिर पर रखकर उन्हे अयोध्या ले जाऊगा। चौदह साल तक मैं राजधानी के वाहर रहकर आपको ही राजा समझकर प्रजा की रक्षा का कार्य देखता रहूगा।"

रामचद्र भरत की इस माग से इन्कार न कर सके। अपने पैर की दोनो पादुकाए उन्होने भरत को दे दी। भरत ने प्रणाम करके पादुकाओं को हाथ में लिया और फिर अपने सिर पर रख लिया। भरत पादुका लेकर लौट पडे।

राम से विदा लेकर सव वापस चले। लौटते हुए मार्ग में ऋषि भर-द्वाज से मिले। जव उन्होने सारा वृत्तात सुना तो उन्होंने भरत की वहुत प्रशसा की। वोले, "भरत, तुम्हारा यश कभी नही मिट सकता। दशरथ के पुत्र हो न ? जैसे पानी नीचे की ओर प्रवाहित होकर गिरता है, उसी

भी प्रकार से तुम्हें अयोध्या ले जाने की इच्छा से, और भरत का दु ख मिटाने के लिए, उन्होने यह बात कही है। इसलिए उनपर तुम्हे नाराज नही होना चाहिए और तुम्हें ही राजा होना चाहिए। किंतु पिता को तुमने वचन दे दिया है। उसके महत्व को मै खूब समझता हू। फिर भी भरत के ऊपर लोकापवाद रहेगा, उसके लिए क्या किया जाय ? तुम तो भरत को प्राणो से भी अधिक चाहते हो। हम सभी इस बात को जानते है। पर भरत तुम्हारी शरण में आया है। तुम उसके विरुद्ध कैसे चलोगे ?"

पर राम अपने निश्चय से तनिक भी न डिगे। तब भरत ने सुमत से कहा, "सुमतजी, दर्भ ले आइये, और उसे यहापर फैला दीजिये। मैं उस आसन पर बैठकर आमरण उपवास करूगा।"

सुमत की हिम्मत न हुई। वह रामचद्र की ओर देखने लगे। तब भरत अपने हाथो से घास फैलाकर उसपर बैठ गये।

"भैया भरत, यह सब क्या कर रहे हो ? उठ जाओ। मेरी बात मानो। तुम्हारा कर्त्तव्य अयोध्या लौटकर प्रजा की रक्षा करना है। क्षत्रिय-धर्म के प्रतिकूल काम न करो।" राम ने भरत को दर्भासन पर से उठा दिया।

भरत उठ खडे हुए। एकत्र जन-समुदाय से बोले, "हे अयोध्या के सज्जनो, आप लोगो को क्या हो गया है ? चुप क्यो खडे हो ? श्रीरामचद्र से क्यो नही एक साथ कहते कि वह अयोध्या चलें ? क्या आप लोग यह नही चाहते ?"

तब सबने कहा, "श्रीरामचद्र को हम जानते है। वह सत्यव्रती है। पिता के वचन के विरुद्ध वह कभी नही जायगे। हमारा प्रयत्न व्यर्थ होगा।"

तब श्रीराम बोले, "भाई, मेरे भरत, इन प्रजाजनो की बात मान जाओ। हमारे लोग धार्मिक वृत्तिवाले है। हम दोनो का हित चाहनेवाले है।"

तब भरत ने लोगो के सामने एक सुझाव उपस्थित किया। भरत ने कहा, "यदि आपका यही कहना है कि पिता की आज्ञा किसी तरह से भी पूरी करनी ही होगी, तो उसके लिए मेरे पास दूसरा उपाय है। भैया राम की जगह मै वनवास-व्रत पालूंगा। वह अयोध्या लौटें और राजगद्दी पर बैठकर प्रजा का पालन करें।"

यह सुनकर रामचद्र खूब हँसे। वोले, "प्यारे भाई भरत, कैसी वच्चों-की-सी वात करते हो! हम कोई सौदा थोडे ही कर रहे हैं जो जैसी अनुकूलता हो, वैसी ही वात पलट दें। व्रतो के साथ यह नही चल सकता। हा, किसी विपदा के समय में या कोई वीमार हो या शरीर से दुर्वल हो तो, वडे भाई का व्रत छोटा भाई लेकर अवश्य पूरा कर सकता है। पर यहा तो ऐमी कोई वात नही है। सज्जनो, क्या आप लोग यह मानते हैं कि मैं वनवास का व्रत पूरा करने में असमर्थ हू? और उसके लिए भरत को आना चाहिए?"

लोग क्या उत्तर देते? आखिर भरत से वोले, "भरत सुनो, राम की अनुमति लेकर उनकी ओर से उनके प्रतिनिधिस्वरूप राज्य-सचालन करो। वैसा करने में तुम्हारे ऊपर कोई दोप नही आयगा और सत्य का पालन भी हो जायगा।

श्रीरामचद्र ने प्यार से भरत को अपनी गोद में विठाया और प्रेम की वर्षा-सी करते हुए वोले, "मेरे भाई, तुम यही समझो कि मैंने तुम्हे राज्य-भार सौंपा है। उसे लेने से इन्कार मत करो। पिता जैसा कह गये हैं, वैमे ही हमें चलना है।"

भरत वोले, "भैया, अव आप ही मेरे पिता और प्रभु हैं। आपकी आज्ञा शिरोवार्य है। मेरे ऊपर सदा कृपा वनी रहे। आप अपनी दोनो पादु-काए मुझे दे दें। उन्हे मैं आपकी जगह समझूगा। अपने सिर पर रखकर उन्हें अयोध्या ले जाऊगा। चौदह साल तक मैं राजधानी के वाहर रहकर आपको ही राजा समझकर प्रजा की रक्षा का कार्य देखता रहूगा।"

रामचद्र भरत की इस माग से इन्कार न कर सके। अपने पैर की दोनो पादुकाए उन्होने भरत को दे दी। भरत ने प्रणाम करके पादुकाओं को हाथ में लिया और फिर अपने सिर पर रख लिया। भरत पादुका लेकर लौट पडे।

राम से विदा लेकर सव वापस चले। लौटते हुए मार्ग में ऋपि भर-द्वाज से मिले। जव उन्होने सारा वृत्तात सुना तो उन्होने भरत की वहुत प्रगसा की। वोले, "भरत, तुम्हारा यश कभी नही मिट सकता। दगरथ के पुत्र हो न? जैसे पानी नीचे की ओर प्रवाहित होकर गिरता है, उसी

भी प्रकार से तुम्हें अयोध्या ले जाने की इच्छा से, और भरत का दु ख मिटाने के लिए, उन्होने यह बात कही है। इसलिए उनपर तुम्हे नाराज नही होना चाहिए और तुम्हें ही राजा होना चाहिए। किंतु पिता को तुमने वचन दे दिया है। उसके महत्व को मै खूब समझता हू। फिर भी भरत के ऊपर लोकापवाद रहेगा, उसके लिए क्या किया जाय ? तुम तो भरत को प्राणो से भी अधिक चाहते हो। हम सभी इस बात को जानते है। पर भरत तुम्हारी शरण में आया है। तुम उसके विरुद्ध कैसे चलोगे ?"

पर राम अपने निश्चय से तनिक भी न डिगे। तब भरत ने सुमत से कहा, "सुमतजी, दर्भ ले आइये, और उसे यहापर फैला दीजिये। मैं उस आसन पर बैठकर आमरण उपवास करूगा।"

सुमत की हिम्मत न हुई। वह रामचद्र की ओर देखने लगे। तब भरत अपने हाथो से घास फैलाकर उसपर बैठ गये।

"भैया भरत, यह सब क्या कर रहे हो ? उठ जाओ। मेरी बात मानो। तुम्हारा कर्त्तव्य अयोध्या लौटकर प्रजा की रक्षा करना है। क्षत्रिय-धर्म के प्रतिकूल काम न करो।" राम ने भरत को दर्भासन पर से उठा दिया।

भरत उठ खडे हुए। एकत्र जन-समुदाय से बोले, "हे अयोध्या के सज्जनो, आप लोगो को क्या हो गया है ? चुप क्यो खडे हो ? श्रीरामचद्र से क्यो नही एक साथ कहते कि वह अयोध्या चलें ? क्या आप लोग यह नही चाहते ?"

तव सबने कहा, "श्रीरामचद्र को हम जानते है। वह सत्यव्रती है। पिता के वचन के विरुद्ध वह कभी नही जायगे। हमारा प्रयत्न व्यर्थ होगा।"

तब श्रीराम बोले, "भाई, मेरे भरत, इन प्रजाजनो की वात मान जाओ। हमारे लोग धार्मिक वृत्तिवाले है। हम दोनो का हित चाहनेवाले है।"

तव भरत ने लोगो के सामने एक सुझाव उपस्थित किया। भरत ने कहा, "यदि आपका यही कहना है कि पिता की आज्ञा किसी तरह से भी पूरी करनी ही होगी, तो उसके लिए मेरे पास दूसरा उपाय है। भैया राम की जगह मै वनवास-व्रत पालूगा। वह अयोध्या लौटें और राजगद्दी पर बैठकर प्रजा का पालन करें।"

यह सुनकर रामचद्र खूब हँसे। वोले, "प्यारे भाई भरत, कैसी वच्चों-की-सी वात करते हो! हम कोई सौदा थोडे ही कर रहे हैं जो जैसी अनुकूलता हो, वैसी ही वात पलट दें। व्रतो के साथ यह नही चल सकता। हा, किसी विपदा के समय में या कोई वीमार हो या शरीर से दुर्वल हो तो, वडे भाई का व्रत छोटा भाई लेकर अवश्य पूरा कर सकता है। पर यहा तो ऐसी कोई वात नही है। सज्जनो, क्या आप लोग यह मानते हैं कि मैं वनवास का व्रत पूरा करने में असमर्थ हू? और उसके लिए भरत को आना चाहिए?"

लोग क्या उत्तर देते? आखिर भरत से वोले, "भरत सुनो, राम की अनुमति लेकर उनकी ओर से उनके प्रतिनिधिस्वरूप राज्य-सचालन करो। वैसा करने में तुम्हारे ऊपर कोई दोष नही आयगा और सत्य का पालन भी हो जायगा।

श्रीरामचद्र ने प्यार से भरत को अपनी गोद में विठाया और प्रेम की वर्षा-सी करते हुए वोले, "मेरे भाई, तुम यही समझो कि मैंने तुम्हे राज्य-भार सौंपा है। उसे लेने से इन्कार मत करो। पिता जैसा कह गये हैं, वैसे ही हमें चलना है।"

भरत वोले, "भैया, अव आप ही मेरे पिता और प्रभु हैं। आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। मेरे ऊपर सदा कृपा वनी रहे। आप अपनी दोनो पादु-काए मुझे दे दें। उन्हे मैं आपकी जगह समझूगा। अपने सिर पर रखकर उन्हे अयोध्या ले जाऊगा। चौदह साल तक मैं राजधानी के वाहर रहकर आपको ही राजा समझकर प्रजा की रक्षा का कार्य देखता रहूगा।"

रामचद्र भरत की इस माग से इन्कार न कर सके। अपने पैर की दोनो पादुकाए उन्होंने भरत को दे दी। भरत ने प्रणाम करके पादुकाओ को हाथ में लिया और फिर अपने सिर पर रख लिया। भरत पादुका लेकर लौट पडे।

राम से विदा लेकर सव वापस चले। लौटते हुए मार्ग में ऋषि भर-द्वाज से मिले। जव उन्होंने सारा वृत्तात सुना तो उन्होंने भरत की वहुत प्रशसा की। वोले, "भरत, तुम्हारा यश कभी नही मिट सकता। दशरथ के पुत्र हो न? जैसे पानी नीचे की ओर प्रवाहित होकर गिरता है, उसी

प्रकार तुम्हारे कुल का शील सीधे तुम्हें आकर प्राप्त होगया है। तुम्हारे पिता दशरथ धन्य हैं ! वह मरे नही हैं। तुम्हारे रूप में उन्होने अमरत्व प्राप्त कर लिया है।"

वहा से चलकर वे सब गुह के स्थान पर गये। वहा गुह से विदा ली और गगा पार करके अयोध्या पहुचे। भरत को पिता दशरथ और बड़े भाई श्रीराम के बिना नगर बहुत ही बुरा लगा। अमावस्या की रात्रि की तरह चारो ओर अधकार-सा छाया हुआ लग रहा था। जब भरत कैकेय राज्य से लौटकर अयोध्या में आये थे, उस समय उनके मन में कुछ आतक-सा बैठ गया था। पर अब तो सारी बातें मालूम होगई थी। सब बातो को सोचते हुए उनका हृदय बहुत ही व्यथित हुआ।

वह राजमहल में गये। सूने भवन में माताओं को उतारा। उनसे विदा ली। सभामडप में राजगुरू वसिष्ठ और आमात्य लोग बैठे थे। उनसे भरत ने कहा, "मेरा दु ख कितना भयकर है, यह आप सब जानते हैं। मैं अब नदी-ग्राम में रहकर उस दु ख को सहन करता रहूगा। जैसा मैंने श्रीराम को बताया है, उसी प्रकार वहा से मैं राजकीय कार्यो को करता रहूगा। आप इसका समुचित प्रबध कर दें।"

इसके अनुसार सभी प्रबध कर दिया गया। भरत ने सभा बुलाई और कहा, "यह राज्य राम का है। उन्होने उसे कुछ समय के लिए मेरे हाथो में सौंपा है। गद्दी पर भैया श्रीराम की दोनो पादुकाए रहेगी। उनका दास होकर मै राज्यभार चलाने की प्रतिज्ञा लेता हू।"

सबके सामने भरत ने इस प्रकार प्रतिज्ञा ली।

मन्त्रियो की मदद से नदीग्राम में रहते हुए भरत बहुत ही अच्छे ढग से राज्य का सचालन करते रहे। श्रीराम के व्रत पूरा करके लौटने तक राज्य-पालन करने के कार्य को एकदम अनासक्त रूप से, नि स्वार्थ भावना के साथ, मन को सदा प्रभु के ध्यान में रखकर, लोगो के कल्याण के लिए कर्तव्यो का बहुत ही उचित रीति से पालन किया। तप की व्याख्या भी तो यही है। जितना समय रामचद्र ने वनवास का व्रत लिया, उतना ही समय

भरत ने नदीग्राम में ऐसी ही उत्तम तपश्चर्या करते व्यतीत किया।

× × ×

चित्रकूट में भयकर राक्षसो का वास था। उन सवका वडा नेता रावण था। उसका छोटा भाई था खर। यह राक्षस राम से वहुत द्वेप करता था। इसी कारण से खर और उसके साथी अव वारवार चित्रकूट में आकर ऋपियो को सताने लगे। ऋपि लोग इससे तग आ गये। उन्होने राम से कहा, "अव इस वन में रहना हमारे लिए अशक्य हो रहा है। हम और कही जाकर रह लेंगे। राक्षसो का उपद्रव दिन-पर-दिन वढता चला जा रहा है।" राम ने उन्हें खूव समझाया किंतु तापस लोग डरे हुए थे। चित्रकूट छोडकर वे दूसरी जगह जाकर रहने लगे।

जवसे भरत विदा लेकर गये तवसे श्रीरामचद्र का मन भी कुछ उदास रहने लगा। माताओ की उन्हें वडी याद आने लगी। उसी स्थान में, जहा वे सव मिलकर गये थे, रहने के कारण रामचद्र को उनकी याद वार-वार सताने लगी। जव ऋपि लोग भी वहा से जाने लगे तो राम, लक्ष्मण तथा सीता ने भी और कही जाकर रहने का विचार किया और निश्चय भी कर लिया।

जव मन में चित्रकूट छोडने का निर्णय कर लिया तव तीनो महर्पि अत्रि से मिले। प्रणाम कर उन्हें अपना विचार वताया। महर्पि अत्रि की पत्नी थी महासती अनसूया। सीता ने अनसूया के चरण छुये और उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। "पति के साथ वन जाने को तैयार होकर तथा वन के कप्ट सहन कर दुनिया के लिए तुम मार्गदर्शिनी वनो।" यो अनसूया ने सीता से कहा। सीता को वहुत प्यार किया। अपने स्मरण के रूप में मगल वस्त्र और आभरण हल्दी, कुकुम आदि अनसूया ने सीता को दिये। महापतिव्रता, महासती अनसूयादेवी के आभूपण और वस्त्रो से सीता की शोभा और शक्ति असाधारण और अक्षय रही। सीता इन उपहारो को ग्रहण करके ऋपि-पत्नी से वोली, "मेरे पति श्रीराम मुझपर मा की तरह प्रेम की वर्पा कर रहे हैं। ऐसे पति के साथ मुझे भला किस वात का दु ख हो सकता है!"

इस प्रकार तीनो ऋपि और ऋपि-पत्नी से विदा लेकर वहां से चले।

इसीलिए यहापर है। तुम अपना परिचय तो दो कि कौन हो?"

"अच्छा, तो तुम यह जानना चाहते हो कि मैं कौन हू? लो, बताता हू। मेरे बाप का नाम है जय। माता का नाम शत्हृदा। राक्षस लोग मुझे विराध के नाम से पुकारते हैं। तुम लोगो के शस्त्रो से मेरा कुछ नहीं बिगड सकता। मुझे ब्रह्मा से वर मिला हुआ है। इस लडकी को यहा छोडकर तुम यहा से भाग निकलो।"

विराध की गर्जना से राम की आखें क्रोध से लाल होगईं। "ले, तुझे अभी यमधाम पहुचाता हू।" कहकर उन्होंने एक अति तीक्ष्ण बाण राक्षस के ऊपर चलाया। बाण उसके महाकाय शरीर को भेदता हुआ खून से आग की तरह लाल होकर बाहर निकल गया। किंतु राक्षस जैसा-का-तैसा खडा ही रहा। वह घायल होगया। दर्द से उसका रोष और बढा। सीता को तो उसने जमीन पर उतार दिया और अपने शूलायुध को ऊपर उठा, मुह फाडकर रामचद्र पर टूट पडा। दोनो राजकुमारो ने उस समय राक्षस के ऊपर तीक्ष्ण बाणो की वर्षा कर डाली। उसके समस्त शरीर में तीर लगे हुए थे। राक्षस ने हँसकर अगडाई ली और शरीर को हिला डाला। सारे तीर शरीर से बाहर गिर पडे। राक्षस और जोर से हँसा। शूलायुध को ऊपर उठाकर वह खडा ही रहा। राम-लक्ष्मण दोनो ने दो शरो से शूलायुध को भेद दिया और बडे खड्ग लेकर राक्षस को मारने दौडे। विराध ने दोनो राजकुमारो को सहज ही उठाकर कधे पर चढा लिया और जगल के भीतर भागने लगा। दोनो भाइयो को इस तरह राक्षस द्वारा उठा ले जाते देखकर सीता डर के मारे जोर-जोर से रोने लगी।

राक्षस के कधे पर चढे राम-लक्ष्मण ने देख लिया कि शस्त्रो से विराध का वध होना असभव है। तब उन्होंने अपनी भुजाओ के बल से ही राक्षस के दोनो हाथो को धड से अलग खींचकर फेंक दिया। राक्षस असहाय होकर नीचे गिर पडा। दोनो भाइयो ने मुक्को और लातो से उसपर प्रहार किये। उसे खूब लथेडा। फिर भी उसके प्राण नही गये, यद्यपि पीडा के कारण वह बुरी तरह चिघाडता रहा। वर के प्रताप से मृत्यु जल्दी से आकर उसे शाति

नहीं दे रही थी। उसने अब समझा कि ये साधारण मनुष्य नही है। तेजस्वी पुरुष हैं। तब वह राम से बोला,"भगवन्, अब मैं, समझा। आपका चरण स्पर्श मुझे हुआ है। मेरी गर्दन पर अच्छी तरह खडे हो जाइये। तब मेरा शाप-मोचन होगा। असल में मैं राक्षस-कुल में पैदा नही हुआ था। मै तो गधर्व हू। मेरे वर के कारण ही मुझे कोई मारकर पुराना रूप नही दे सकता था। अब भी मैं मरा नही हू। मेरी मोक्ष का एक ही उपाय है। आप मेरे टुकडे-टुकडे करके भूमि में गाड दीजिये, तभी मेरी मुक्ति होगी, और मै अपने लोक पहुच सकूगा।"

राम-लक्ष्मण ने वैसा ही किया। विराध ने अपना पूर्व रूप पा लिया और गधर्व-लोक चला गया।

विराध को मुक्ति देकर दोनो भाई फिर सीता के पास पहुचे और उन्हें सारा हाल कह सुनाया। फिर तीनो जने वहा से ऋषि शरभग के आश्रम की ओर गये। वहापर देवेंद्र स्वय मुनि से चर्चा करने के लिए देवगणो-सहित आये हुए थे। रामचद्र को देखते ही वह अदृश्य हो गये। राम ऋषि के पास पहुचे और पत्नी सीता तथा अनुज लक्ष्मण के साथ मुनिवर के चरण छुये।

वयोवृद्ध मुनि ने कहा, "हे राम, मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में ही रुका हू। इस शरीर को छोडकर जाने का मेरा समय आगया है। तुम्हे एक बार देख लेने की चाह ने मुझे अभी तक जीवित रखा है। अब मेरी मनोकामना पूरी हो गई। मेरे पुण्य कर्मों के सभी फल तुम्हें मिल जाय।"

श्रीराम बोले, "भगवन्, आपके पुण्य-कर्मो का फल भोगने का मुझे क्या अधिकार हो सकता है? मुझे तो अपने ही सत्कर्मो द्वारा अच्छे फल मिलने चाहिए। मैं तो त्याग-वृत्ति से ही वनवास करने आया हू।"

ऋषि श्रीराम के अवतार-रहस्य को जानते थे। उन्होंने राम से कहा, "मुनि सुतीक्ष्ण तुम्हें यहा रहने के लिए अच्छा-सा स्थान बतायेंगे। उनसे तुम्हें यहा की सारी जानकारी मिल जायगी।"

उसके बाद बूढे ऋषि ने आग जलाई और उसमें प्रवेश करके देह

त्याग दिया। अग्नि की ज्वालाओ में से एक युवक का दिव्य रूप ऊपर की ओर जाता हुआ दिखाई दिया।

जगल के ऋषियो को जब पता लगा कि क्रूर राक्षस विराध का वध हो गया तो बडी सख्या मे रामचद्र के दर्शन के लिए जमा हो गये। श्रीराम को उन लोगो ने विस्तार के साथ बताया कि राक्षसो से उन्हे कैसे-कैसे कष्ट होते रहते हैं। उन्होने कहा, "हे दशरथात्मज, अब तुम्हारे आने से और हमारे बीच में वास करने के कारण हमारा भय मिट गया। अब हम यज्ञ, तप और व्रतादि निर्विघ्न रूप से कर पायेंगे। यह देखो, इधर हड्डियो के ढेर पडे हैं। ये ढेर ऋषियो की हड्डियो के है। राक्षस ऋषि-मुनियो को निर्दयता से मार-कर खा जाते थे। पपा और मदाकिनी नदी के तटो पर वास करनेवाले तापस लोग राक्षसो के उपद्रवो से बहुत ही त्रस्त थे। तुम अब हमारे राजा हो। हमारी रक्षा करना तुम्हारा धर्म है। यदि राजा प्रजा की रक्षा न करे तो वह अधर्मी होता है। गृहस्थ लोग राजा को कर देते हैं। हमारे जैसे विरक्त लोग अपने तपोबल का चौथा भाग राजा को देकर उसे बलवान बनाते हैं। देवेंद्र के समान कातिवाले राम, अपने कष्टो को मुह से बताना कठिन है। हम तुम्हारी शरण आये हैं। तुम हमारी रक्षा करो।"

"गुरुजनो, आप यह क्या कह रहे हैं ? आप लोग जो आज्ञा देंगे, वह मै करूगा। पिता के आदेश से वन में मेरा आना हुआ। यदि मेरे द्वारा आप लोगो को आराम पहुचता हो तो उससे बडा भाग्य मेरे लिए और क्या हो सकता है ? अब आप लोग चिता एकदम छोड दें। राक्षसो को मारकर मैं आप लोगो की सेवा करूगा।"

इस प्रकार रामचद्र ने विनयपूर्वक ऋषियो को आश्वासन दिया। सब बडे खुश हुए। इसके बाद राम, लक्ष्मण और सीता सुतीक्ष्ण के आश्रम की ओर गये। पास ही में एक पर्वत दिखाई दिया। वह एक घने जगल से घिरा हुआ था। राम-लक्ष्मण ने सोचा कि मुनि सुतीक्ष्ण का आश्रम वहीं होना चाहिए। उस वन के अदर तीनो ने प्रवेश किया। वहा उन लोगो ने ऋषियो के सूखने के लिए टगे हुए, वल्कल देखे। ऋषि को ढूढने में उन्हें देर न लगी।

उन्हें प्रणाम करके राम ने कहा, "मेरा नाम राम है। आपके दर्शनार्थ यहा आया हू। मुझे आशीर्वाद दीजिये।"

ऋषि ने राम को गले मे लगा लिया। बोले, "हे धर्मरक्षक, तुम्हारा स्वागत है। तुम्हारे आने से आश्रम में प्रकाश आगया है। समझ लो कि तुम्हीं इस प्रदेश के स्वामी हो, बस, तुम्हारी ही प्रतीक्षा में हम दिन गिन रहे थे। मेरे प्राण भी इसीलिए टिके हुए हैं। मेरे कानो तक बात पहुच गई थी कि तुम राज्य से निकाले गये हो और चित्रकूट में वास करने लगे हो। मेरे सारे पुण्य कर्म के फल तुम्हारे काम में आवें। उससे तुम्हारी धर्मपत्नी सीता को और भाई लक्ष्मण को भी लाभ हो।"

उस जमाने में ऋषि लोग इसी प्रकार आशीर्वाद दिया करते थे। उग्र तपश्चर्या से प्रज्वलित मुखमडलवाले सुतीक्ष्ण मुनि से राम ने कहा, "महर्षि, आपके आशीर्वाद पाकर मैं अच्छे कर्म करने लगूगा। मेरे किये कर्मों के फल का ही मैं अधिकारी हो सकूगा। मैं वनवास के दिन यहा काटना चाहता हू। महात्मा शरभग ने मुझे आपसे मिलकर आशीर्वाद पाने को कहा था। इसी हेतु आपकी सेवा में पहुचा हू।"

ऋषियो से आशीर्वाद पानेवाले लोग भी इसी प्रकार उत्तर दिया करते थे। यह उन दिनो की सभ्यता के अनुसार प्रचलित एक सुदर प्रथा थी।

राम से मिलकर मुनि बहुत प्रसन्न थे। बोले, "राम, तुम यही मेरी कुटिया में ही क्यो नही रह जाते? यहा आसपास कई मुनि लोग वास करते हैं। कद-मूल-फलादि की भी यहा कोई कमी नही। हा, कुछ जगली प्राणियो से ऋषियो को काफी कष्ट होता रहता है। बस, इसके अतिरिक्त और कोई कष्ट यहा नहीं है।"

राम समझ गये कि मुनिवर क्या चाहते हैं।

धनुष में प्रत्यचा चढाकर राम ने कहा, "भगवन्, इस तपोवन से दुष्ट प्राणियो को मै हटा दूगा। मेरा अब यही काम है। आप निश्चिन्त रहे। मेरे पास जो तीक्ष्ण शस्त्र हैं, वे इसी काम के लिए है। हम लोगो का आपकी कुटिया में रहना ठीक नही। उनसे आपके तप में बाधा होगी।

इसलिए क्षमा करें। हम यही पास में रहने के लिए कोई और जगह ढूढ लेंगे।"

उस रात तीनो जने सुतीक्ष्ण ऋषि के आश्रम में ही ठहरे। दूसरे दिन वे बहुत जल्दी उठ गये। उन्होने ठडे और स्वच्छ जल में स्नान किया। हवन करने के पश्चात ऋषि को प्रणाम करके उनसे विदा मागी और कहा, "हे मुनिवर, आपकी कृपा से हमने रात आराम से बिताई। यहा रहनेवाले अन्य तापसो से भी मिलकर हम उनसे आशीर्वाद लेना चाहते हैं। ये सज्जन जो (कुछ तापसी लोग उस समय वहा आ गये थे) हमारे साथ हैं उन लोगो के पास हमें ले जाने को तैयार हैं। धूप चढने से पहले ही चल पडना ठीक रहेगा। हमें आज्ञा दीजिये।" यो कहकर तीनो ने ऋषि को प्रणाम किया।

ऋषि ने भी उन्हे प्यार से आशीर्वाद देकर विदा किया—"और ऋषियो से अवश्य मिलें और उनके भी आशीर्वाद प्राप्त करें। यहा कई तपोसिद्ध महात्मा रहते हैं। यहा का प्रदेश भी बहुत ही सुदर हैं। हिरन और सुदर पक्षियो से यह वन भरा हुआ है। सरोवरो में कमल खूब खिले हुए मिलेंगे। पहाडी झरनो के पास मोर नृत्य करते रहते हैं। हे लक्ष्मण, तुम्हें तो यह सब अवश्य ही बहुत अच्छा लगेगा। भाई और भाभी के साथ खूब घूमना। जब चाहो तब मेरी कुटिया में आ जाना।"

ऋषि से अनुमति लेकर तीनो चल पडे। सीता ने दोनो भाइयो को शस्त्र उठाकर दिये। दोनो ने उन्हें अच्छी तरह से धारण कर लिया। तीनो जनों के चेहरों पर अपूर्व तेज चमक रहा था। महात्मा सुतीक्ष्ण के आशीर्वाद की बडी महिमा थी।

: ४१ :

दण्डकारण्य में दस वर्ष

आरण्यकाड के प्रारभ में ही कवि वाल्मीकि हमें सीता पर आनेवाली विपदाओ की कुछ सूचना दे देते हैं। दडकारण्य में पहुचते ही दशरथनदन श्रीराम ने अपने ऊपर एक नई जिम्मेदारी ले ली। उन्होने ऋषियों की हिंसा करनेवाले राक्षसो को मार डालने का निश्चय किया। धर्मज्ञाता सीता के मन में इस बात से कुछ शका, असतोष और भय उत्पन्न हुआ। वह राम से बोली, "नाथ, हम लोगो ने तापस-वृत्ति ग्रहण की है। पिता के आदेश से चौदह वर्ष वनवास करने आये है। वन में ऋषि-मुनियो की रक्षा करना देश को पालनेवाले राजा का कर्तव्य है। दुष्टो को दड देना क्षत्रिय-धर्म अवश्य है, किंतु यह काम शासन करनेवाला राजा ही अपने ऊपर ले सकता है। हम यहा तप करने और नियम पालने आये है, या राक्षसो की हत्या के लिए? जो हमारे ऊपर आक्रमण करता है, हम उसीको मार सकते हैं। जो हमारे बीच में नही आते, उन्हें मार डालना वनवास-धर्म के विरुद्ध होगा। आपने तो ऋषियो से कह दिया कि दुष्ट राक्षसो की हत्या करूगा, लेकिन मालूम नही यह कार्य हमें कहा ले जायगा!" सीता ने अत्यत मधुर वाणी में अपने प्रियतम से कहा, "मेरे स्वामी, आप नाराज न हो कि मैं कोई टीका कर रही हू। मेरे मन में जो बातें उठी, उन्हे मैंने आपको बता दिया। आप स्वय धर्माधर्म की बात सोच लें, फिर निर्णय करें कि हमें क्या करना चाहिए। अज्ञान और लोभ के वश होकर मनुष्यो से तीन अकृत्य हो जाते है। झूठ बोलना, परस्त्री की अनुचित चाह और तीसरा जो हमारा कुछ बिगाड न करें, उन्हे सताना। असत्य तो आपके निकट आयेगा नही। सत्य के कारण ही आप सारे सुखो को छोडकर वन में रहने आये है। मुझे इस बात का भी पूरा विश्वास है कि आप स्वप्न में भी पर-स्त्री के प्रति बुरा

विचार न करेंगे। मुझे बस तीसरी चीज का ही डर है। अर्थात् जो हमपर आक्रमण नहीं कर रहा हो, उसका वध हम कैसे कर सकते है ? मुझे तो लगता है कि आपने ऋषियो को जल्दी में वचन दे दिया। जो काम शासक का है, वह काम क्षत्रिय होने पर भी हरकोई नही कर सकता। हमने तो चीर, वल्कल, जटा-जूट धारण करके व्रत-नियम ले रखे हैं। अत मुझे लगता है कि आप इस हत्याकाड में उतरें, उससे पहले अच्छी तरह से सोच लें।" जनकसुता श्रीराम से इस प्रकार कहकर चुप हो गई।

अपनी प्रिय पत्नी की इन धर्मयुक्त बातो से राम की सीता के ऊपर प्रीति और भी बढ़ी। वह मधुर स्वर से बोले, "प्रिये, तुम तो राजर्षि जनक की पुत्री हो न ! तुम्हारे विचार अवश्य ऊचे ही होगे। सीते, जो पीडित होकर शरण में आता है उसकी रक्षा करना हर क्षत्रिय का काम है। हमारे आते ही मुनियो ने हड्डियो का ढेर दिखाकर हमसे प्रार्थना की कि दुष्टो का दमन करो। तुमने स्वय ही देखा था। ऋषियो की इस करुण दशा को देखकर मैं चुप कैसे रह सकता हू ? तुमने जो कहा, वह बिल्कुल ठीक है। उसका मैं विरोध नही करता हू। किंतु वास्तव में पीडित सदाचारी ऋषियो की रक्षा करना शासक न होते हुए भी मेरा क्षत्रिय-धर्म है। वे मेरी शरण में आये हैं। मैंने उनकी रक्षा करने का वचन दिया है। अब मैं उनकी न्यायपूर्ण माग से हट नही सकता। वचन-पालन हम तुम दोनो मिलकर करेंगे। तुम मेरी सहधर्मचारिणी हो। मुझसे तुम भिन्न कैसे हो सकती हो ?"

इस प्रकार सीता और राम वार्तालाप करते हुए आगे बढते गये। जोर की ठडी हवा में हमें वर्षा की सूचना मिल जाती है। इस राम-सीता-सवाद से सीता के निर्मल हृदय के आतक से महर्षि वाल्मीकि आगे आनेवाले सकटो का सकेत कर देते हैं। इस सवाद का उल्लेख इसी विचार से उन्होने किया होगा, न कि पृष्ठो की सख्या बढाने के लिए।

× × ×

दडकारण्य में राम, लक्ष्मण एव सीता का दस वर्ष का निवास-काल बड़ी अच्छी तरह बीत गया। वहा अन्य कई ऋषियो की पर्णशालाए थी।

उस तपोमय वातावरण में, उसी प्रदेश में, कही एक महीना, कही तीन महीने, कहीं कई महीने और कहीं-कहीपर कई वर्ष रहकर तीनो ने दस वर्ष आनद से विता दिये। वन का सौंदर्य अवर्णनीय था। वृक्ष और लताएं, कमल के फूलो से ढके सरोवर, पशु-पक्षियो से भरापूरा वन अति मनोहर था।

प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन करने में वाल्मीकि विशेष रुचि और सामर्थ्य दिखाते हैं। वन-वर्णन से परिपूर्ण वाल्मीकि के श्लोक भी वन की तरह ही बहुत गभीर और सुदर हैं।

जव दस लवे वर्ष वीत गये और लगा कि वनवास की अवधि लगभग पूरी होने को है तो राम सोचने लगे कि अगस्त्य मुनि के दर्शन कर आना चाहिए।

ऋषि अगस्त्य भी विश्वामित्र की तरह तीनो लोक में प्रसिद्ध थे। कहा जाता है कि तराजू के एक पलडे में हिमालय से लेकर विन्ध्याचल तक का तमाम ज्ञान एक ओर रखा जाय दूसरी ओर ऋषि अगस्त्य को रखा जाय तो अगस्त्यजी का ही पलडा भारी होकर नीचे जायगा। शिव-पार्वती-विवाह की कई कथाए हैं। उनमें एक कथा में ऐसा वर्णन है कि दुनियाभर के ऋषि इस पुण्य विवाह में शामिल होने के लिए कैलास पर्वत में जव जमा हो गये तो पृथ्वी का भार उत्तर की ओर वहुत अधिक झुक गया। उसका सतुलन ठीक करने के लिए ऋषि अगस्त्य दक्षिण भाग में ही टिके रहे।

एक दूसरी कथा भी है। विंध्य-पर्वत ऊचा-ही-ऊचा वढता जाता था, इतना कि उससे सूर्य भगवान की दक्षिणायन-उत्तरायण की गति में रुकावट पड गई। देवता लोग घवराये। अगस्त्य के पास जाकर उनसे प्रार्थना की कि वह कुछ करें। मुनि विंध्य के पास पहुचे। विंध्य पर्वत ने आदरपूर्वक मुनि को दडवत् प्रणाम किया। मुनि ने झट आशीर्वाद दिया कि उसका आकार उसी प्रकार वना रहे। तवसे विंध्य पर्वत ऊचा न उठकर लवा ही लेटा पडा है।

एक तीसरी कथा है कि वातापि और इल्वल दो वडे दुष्ट राक्षस थे।

उनसे ऋषि लोग काफी परेशान रहते थे । वातापि को ऐसा वर मिला था कि उसके टुकडे-टुकडे भी कर दिये जाय तो भी वह फिर से जुडकर जीवित हो जाता था। इल्वल ब्राह्मण वेष धारण करके ऋषियो के पास पहुच जाता था और उनसे प्रार्थना करता था कि ऋषि उसके घर आकर श्राद्ध-भोजन स्वीकार करें। शास्त्र के अनुसार ऐसी प्रार्थना को कोई इन्कार नहीं कर सकता था। जाना ही पडता था। वहा वातापि बकरे के रूप में होता था। उसे काट-पकाकर इल्वल ब्राह्मणो को खिला देता था। भोजन के पश्चात् इल्वल ब्राह्मणो से पूछता, "आप लोग तृप्त हुए ?" ब्राह्मण कहते "हा, हमारी भूख अब मिट गई।" तब इल्वल पुकारता, "वातापि, बाहर निकल आओ।" और ब्राह्मणो के पेट चीरकर वातापि बाहर निकल आता था। इस प्रकार कई ब्राह्मणो की हत्या इन दोनो राक्षसो ने कर डाली थी । एक बार इल्वल ने इसी प्रकार अगस्त्य को भोजन के लिए बुलाया। अगस्त्य के पेट के अदर वातापि बकरे के रूप में प्रविष्ट होगया। ऋषि समझ गये। उन्हे गणेशजी की उपासना से एक विशेष शक्ति प्राप्त थी। उसकी महिमा से अगस्त्य के पेट में वातापि एकदम चूर्ण होगया।

इल्वल ने भोजन के बाद अगस्त्य मे प्रथा के अनुसार पूछा, "आप तृप्त हुए ?"

"पूर्ण रूप से तुम्हारा भोजन मैंने हजम कर डाला है।" अगस्त्य बोले।

"वातापि, बाहर आओ !" इल्वल ने पुकारा।

अगस्त्य ने हँसकर उत्तर दिया, "तेरा भाई मेरी जठराग्नि में भस्म होगया। वह अब वापस नही आयगा।"

"है, आपने मेरे भाई को मार डाला !" इल्वल अगस्त्य के ऊपर टूट पडा, किंतु उनकी आखो की क्रोधाग्नि से वह जलकर वही भस्म हो गया।

अगस्त्य जहा कही भी होते थे, राक्षसो को वहा पहुचने की हिम्मत न होती थी। इससे उनके आसपास रहनेवाले मुनियो की भी बडी रक्षा होती थी।

राम अगस्त्य के छोटे भाई के आश्रम में गये। वहा मुनि को प्रणाम

करके उनसे आशीर्वाद लिया। उधर से और दक्षिण की दिशा में अगस्त्याश्रम की ओर जाने लगे। दूर से ही देखा कि वहा पशु-पक्षी किसी प्रकार के डर के विना घूम रहे थे। पक्षियो का कलरव सुनाई देने लगा। विप्र लोग पूजा के लिए फूल तोड रहे थे। राम, लक्ष्मण तथा सीता को वहुत ही आनद हुआ। लक्ष्मण से राम ने कहा, "जाओ, मुनि से पूछ आओ कि हम अदर प्रवेश कर सकते है क्या ?"

लक्ष्मण अगस्त्य के एक शिष्य के पास पहुचकर पूछने लगे, "दशरथ के पुत्र राम अपने भाई लक्ष्मण तथा पत्नी जनकसुता के साथ मुनि के दर्शनार्थ आये हैं। वे आ सकते हैं क्या ?"

खवर पाते ही मुनि स्वय वाहर आ गये। राम का आलिगन करके उनका स्वागत किया और सत्कार करके वोले, "आप लोगो के चित्रकूट पहुचते ही मुझे खवर मिल गई थी। मैं जानता था कि आप लोग एक दिन यहा अवश्य आयगे। आप लोगो का व्रत अव पूरा हो जानेवाला है। वाकी के दिन आप लोग यही रहें। यहा राक्षसो का कोई डर नही।"

राम ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया, "आपका कहना विल्कुल ठीक है। किंतु मैं दडकारण्य-निवासी ऋषियो को वचन दे चुका हू। इसलिए उन लोगो के वीच मेरा रहना अनिवार्य है। आपसे आशीर्वाद लेकर उनके पास मुझे वापस जाना ही होगा।"

अगस्त्य मुनि मान गये। उन्होने रामचद्र को प्यार से आशीर्वाद दिया। उन्होने विश्वकर्मा द्वारा निर्मित धनुप, एक अक्षय तूणीर और एक खड्ग राम को उपहार के रूप में दिया। वोले,"राम, इन दैवी शस्त्रो से दुष्ट राक्षसो को मारकर ऋपियो की रक्षा करो।"

श्री रामचद्र ने अगस्त्य मुनि की सलाह से पचवटी में एक पर्णशाला वना कर वनवास के शेप दिन वही विताने का निश्चय किया। मुनिवर से विदा ली। विदा देते हुए ऋपि वोले—"हे राजकुमार राम और लक्ष्मण, मैं आप लोगो को विदा दे रहा हू। जनकनदिनी सीता की खूब रक्षा करें। राजकुमारी सीता जगल में वास करने योग्य थोडे ही है। राम, तुम्हारे ऊपर उसका

जो असीम प्यार है, वही उसको कष्ट सहन करने के लिए शक्ति दे रहा है, नहीं तो स्त्रियो का स्वभाव कष्ट सहन करने का नही होता। स्त्रिया अकसर बिजली की तरह अस्थिर देखने में आती है। उनका स्वभाव अति तीक्ष्ण तथा वायु और गरुड की तरह एक जगह से दूसरी ओर तेजी से पहुचने की शक्ति-वाला होता है। साधारणतया स्त्रियो को भगवान ने इसी प्रकार का बनाया है। किंतु सीतादेवी तो असाधारण गुणवती स्त्री हैं। वह अरुधती के समान पतिव्रता हैं। सीता और लक्ष्मण के साथ तुम जहा भी रहोगे, वह स्थान अपने-आप सुदर वन जायगा। पचवटी बहुत रमणीय प्रदेश है। वह स्वादिष्ट फलो से युक्त है। कदमूल की भी वहा कमी नही रहेगी। गोदावरी तट पर सीता को वहुत ही अच्छा लगेगा। वहा रहकर तुम दोनो भाई सीता की और ऋषियो की रक्षा करना। दशरथ राजा ने तुम्हे जो चौदह वर्ष के वनवास की आज्ञा दी थी वह समय अब पूरा होने को आया। दशरथ ने भी ययाति की तरह अपने ज्येष्ठ पुत्र द्वारा बहुत ही ऊचा स्थान प्राप्त कर लिया है।"

इस प्रकार महाज्ञानी अगस्त्य ऋषि ने सीता को और राम-लक्ष्मण को वारवार आशीर्वाद दिया और पचवटी जाकर रहने की सलाह दी।

: ४२ :

जटायु से भेंट

अगस्त्य ऋषि के बताये रास्ते से तीनो जने पचवटी की ओर चले। चलते-चलते रास्ते में उन्होंने एक महाकाय गिद्ध को देखा। इतना बडा पक्षी उन लोगो ने पहले कभी नहीं देखा था। इसलिए राम-लक्ष्मण ने सोचा कि वह पक्षी रूप में कोई राक्षस होगा। उन्होंने उससे पूछा, "तुम कौन हो?"

गीध ने प्यार से उत्तर दिया, "वत्स, मैं तुम्हारे पिता दशरथ का पुराना मित्र हू।" इसके बाद उसने अपने कुल का परिचय देते हुए कहा, "गरुड़ का छोटा भाई अरुण है, अरुण का बडा पुत्र सपाती है और उसका छोटा भाई मैं हू जटायु।"

जटायु ने आगे कहा, "तुम लोग यहा आराम से रहो। जब तुम शिकार के लिए जाया करोगे और वह सीता अकेली रह जाया करेगी तो मैं उसकी रक्षा के लिए उपस्थित रहा करूगा।"

अपने पिता के प्रिय मित्र जटायु से मिलने पर राम-लक्ष्मण को बडा आनद मिला। ऐसा प्रतीत हुआ, मानो उन्हें जगल में एक बडा सहारा मिल गया। आदर से उन्होंने गिद्धराज का आलिगन किया।

ऋषि वाल्मीकि ने यहा जटायु का इतना ही परिचय थोडे-से श्लोको में दिया है। सीता के लिए उनका रावण के साथ लडना, बुरी तरह घायल हो जाने पर भी राम-लक्ष्मण के आने तक, उन्हें सीता का हाल बताने के लिए किसी तरह प्राणो को रोके रखना, फिर मृत्यु पाना, और उनकी मृत्यु पर राम-लक्ष्मण का विलाप आदि का वर्णन बाद में आता है। परतु मालूम होता है कि कंबन ने जटायु के बारे में प्रारभ के इस सक्षिप्त वर्णन को एक कमी समझा और उसे ठीक करने के लिए अपनी रामायण में उसके लिए काफी स्थान

दिया। कवि के दिव्य चक्षुओ से इस दृश्य को उन्होने खूबी से देखा और अद्भुत ढग से गाया।

हम जरा कबन का वर्णन भी पढें। जटायु को देखकर राजकुमारो को सदेह होता है कि यह प्राणी कोई राक्षस होगा। पास जाकर देखने लगते हैं। उसी समय उन्हें देखकर जटायु भी सोचते हैं कि ये वल्कलधारी तेजस्वी युवक कौन होगे ? स्वर्ग के देवता लगते हैं। फिर सोचते हैं कि मैंने स्वर्ग के देवताओ को अनेक बार देखा है। ये देवता नही मालूम पडते। फिर राम को देखकर उन्हे मन्मथ का शक होता है। और भी ध्यान से जब दोनो राजकुमारो को उन्होने देखा तो अपने परम मित्र दशरथ से उन्हें बहुत मिलता-जुलता पाया। जटायु ने पूछा, "आप लोग कौन हैं ?" राम-लक्ष्मण ने बताया कि हम राजा दशरथ के पुत्र हैं। यह सुनते ही खुशी के मारे जटायु ने अपने विशाल पखो को फैलाकर राजकुमारो का आलिगन किया और पूछा, "मेरे मित्र, तुम्हारे पिता, राजा दशरथ कुशल से तो है न ?"

इसपर दोनो भाइयो ने बताया, "पिता ने बडी हिम्मत दिखाकर सत्य वचन का पालन किया। अब वह इस लोक में नही हैं। परमधाम पहुच गये।"

यह सुनते ही गीधराज मूर्च्छित हो गये। राम-लक्ष्मण की आखो से भी आसू बहकर जटायु के शरीर पर गिरने लगे। आसुओ के गिरने से उनकी मूर्च्छा भग हुई। वह प्रलाप करने लगे, "दशरथ शरीर थे तो मैं उनका प्राण था। यम को चाहिए था कि मुझे ही ले जाते।"

जटायु से मिलने पर राम-लक्ष्मण को ऐसा जान पडा, मानो वे फिर से अपने स्वर्गीय पिता से ही मिल रहे है।

जटायु को लक्ष्मण ने सारा वृतात कह सुनाया। रामचद्र का जटायु ने वार-वार आलिगन किया, उनकी सराहना की। राम वोले, "अपने नगर, वधुजनो और माताओ को छोडकर हम वन में रह रहे है। आज आपके दर्शन से हमें वडा सतोप मिल रहा है।"

जटायु ने राजकुमारो से कहा, "आप लोग जवतक इस वन में हैं, मैं आपकी रक्षा करता रहूगा। जब आप यहा से चले जायगे तो मैं भी अपने

मित्र राजा दशरथ के पास पहुच जाऊगा।"

सीता पास में खडी रही। पक्षिराज के पूछने पर राम ने अपनी पतिव्रता भार्या सीता का परिचय दिया। जटायु बहुत ही प्रसन्न हुए। स्वय साथ जाकर तीनो को अगस्त्य के बताये पचवटी स्थान तक छोड आये।

यह है कवन का खीचा हुआ चित्र। ऋषि वाल्मीकि के वर्णन से हटे विना, जो बातें छूट गई थी, उन्हें वह बता देते है। वाल्मीकि की रामायण को आज लगभग पाच हजार वर्ष हो गये हैं। स्वाभाविक है कि उसके कई पृष्ठ गायब हो गये हो। उस कमी की पूर्ति भक्त कवि कवन कर देते हैं। कुछ कवि ऐसे भी हैं, जो कही-कही अपनी मन-पसद बातें जोड भी देते हैं। हमें इस बात की चिंता नहीं करनी चाहिए।

: ४३ :

शूर्पणखा की दुर्गति

राम, सीता और लक्ष्मण चलते-चलते पचवटी पहुचे। वहा का प्रा
तिक सौंदर्य देखकर तीनो बहुत ही प्रसन्न हुए। राम बोले, "लक्ष्मण, अगर
ऋषि ने हमारे लिए सचमुच बहुत ही बढिया जगह बताई है। यहापर
सीता और तुम्हारे साथ कितने ही वर्ष आनद से बिता सकता हू। ये
पहाड हैं वे न तो बहुत पास हैं, न बहुत दूर। अरे, हिरनो के झुडो को तो देख
पक्षियो के कठो से कैसे मधुर स्वर फूट रहे हैं। नदी का बालूवाला तट कित
साफ-सुथरा और मुलायम है। पानी में तैरकर खेलनेवाले पक्षी कैसे मौज
विचरण कर रहे हैं। सीते, इन फूलो को देखा ? लक्ष्मण, यहापर ठीक ज
देखकर एक अच्छी पर्णशाला बनाना शुरू कर दो।"

और जैसी चित्रकूट में बनाई थी, उससे भी अधिक कला-कौशल
लक्ष्मण ने एक पर्णशाला तैयार कर ली। वाल्मीकि ने इसका खूब विस्तार
वर्णन किया है। पर्णशाला को देखकर रामचद्र बहुत ही आनदित हुए
अपने छोटे भाई पर उन्हें बडा गर्व हुआ और उनकी आखें भीग आईं। बो
"लक्ष्मण, तुम्हारे रहते हुए मुझे पिता के अभाव का पता नही चल पाता।"

महल में पोषित राजकुमार को जगल में पाये जानेवाले साधनो
राज और बढई का काम करना कैसे आया होगा ? अवश्य ही उन दिनो
राजकुमारो की शिक्षा-प्रणाली में ये विद्याए भी शामिल रही होगी।

लक्ष्मण के स्नेह से परिपूर्ण सेवाओ के कारण राम और सीता पचव
में बहुत ही आनद के साथ रहने लगे।

× × ×

शिशिर ऋतु का प्रारभ हुआ ही था एक दिन स्नान तथा सध्यावदन कर
और बरतनो को माजकर पानी भर लाने के लिए वे तीनो गोदावरी-त
पर जा रहे थे। रास्ते में मौसम की सुदरता का वर्णन भी करते जा रहे थे

'मासाना मार्गशीर्षोऽहम्' भगवान् ने अपने मुह मे ही तो इसकी प्रशसा की है। मार्गशीर्ष का महीना था। लक्ष्मण को भरत की याद आ गई। राम से बोले, "भैया, आज मुझे भरत की बहुत याद आ रही है। कितनी बडी त्याग-वृत्ति-वाला है वह! महल के आराम को उसने स्वेच्छा से त्याग करके व्रती का जीवन धारण कर लिया है। आज इस सर्दी में वह सरयू में ठडे पानी से नहा रहा होगा। हमें कितना प्यारा और अच्छा भाई मिला है! उसकी एक-एक बात की मुझे आज याद आ रही है। कितना स्वच्छ हृदय है उसका! उस बेचारे को क्यो इतने कष्ट भोगने पड रहे हैं? उसका स्वभाव बिलकुल पिताजी के-जैसा है। लोग तो कहते है कि लडके मा के ऊपर होते हैं, किंतु दुष्ट कैकेयी और भरत में कोई समानता ही नही है।

राम ने प्यार से उत्तर दिया, "प्यारे लक्ष्मण, मा कैकेयी के विरुद्ध कुछ न कहो। यह उचित नही है। हा, भरत की बातें अवश्य करो। उसके बारे में कितना ही कहो, कम ही होगा। मुझे भी उसकी बडी याद आती रहती है। लगता है, इसी क्षण जाकर उससे मिल लू। लक्ष्मण, मालूम नही, हम कब इस अपने प्यारे भाई से मिल पायेंगे। भरत की अमृत-तुल्य मीठी बोली मेरे कानो में अब भी गूज रही है। हम चारो भाई फिर कब एक साथ होगे?"

गोदावरी के पुण्य-तीर्थ में स्नान करते-करते तीनो को घर की याद आ गई। यह वर्णन पढते हुए हमारा हृदय भी विचलित हो जाता है।

स्नान के पश्चात् रामचन्द्र ने पितरो और देवताओ के लिए तर्पण किया, सूर्य को नमस्कार किया। फिर जटाधारी महादेव के समान तेजस्वी राम अपनी प्रिय भार्या वैदेही और लक्ष्मण के साथ आश्रम लौट आये।

× × ×

प्रात काल का सारा कार्यक्रम पूरा हो चुका था। तीनो शाति से बैठकर इतिहास-पुराणो की बातें करते रहे। रामचन्द्र का मुख-मडल चैत्र महीने के पूर्ण चंद्र की तरह चमक रहा था। वे बातो में लीन थे कि एकाएक राक्षस-कुल की एक स्त्री, रावण की बहन, शूर्पणखा वहा आ पहुची।

रामचद्र के मनमोहक रूप पर वह एकदम मुग्ध हो गई। रामचद्र

देव-पुरुष के समान अति सुदर थे। कुरूपिणी शूर्पणखा का मन विकृत हो गया। काम के आवेग से वह उन्मत्त हो गई। पूछने लगी, "ऋषि के वेश में बठे हुए तुम लोग कौन हो? यह स्त्री तुम्हारी कौन है? तुम लोग तो शस्त्र वाधे हुए हो। राक्षसो के इस जगल में तुम लोगो का आना कैसे हुआ? मुझे साफ-साफ सारा हाल बता दो।"

उस युग की सभ्यता यह थी कि ऐसे अवसरो पर प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर देकर फिर प्रश्नकर्ता के नाम, कुल, कार्य आदि के बारे में पूछताछ की जाती थी। उसी ढग से राम ने कहा, "महा शौर्यशाली सम्राट् दशरथ का मै ज्येष्ठ पुत्र हू। मेरा नाम राम है। यह मेरा छोटा भाई लक्ष्मण है। यह मेरी सहधर्मिणी सीता है। पिता के वचन से हम यहा आये हैं। कृपा करके बताओ कि तुम्हारा क्या नाम है? किस कुल में उत्पन्न हुई हो? देखने से राक्षस-जाति की मालूम हो रही हो। मेरी कुटिया की तरफ किस काम से तुम्हारा आना हुआ?"

शूर्पणखा ने भी उत्तर दिया, "विश्रवस के पुत्र और राक्षसो के अधिपति महापराक्रमी रावण का नाम तुमने सुना होगा। मै उसकी बहन हू। मेरा नाम शूर्पणखा है। मेरे दो भाई और हैं। उनके नाम है विभीषण और कुभकर्ण। दोनो महाबली हैं। इसी जगल में रहनेवाले खर और दूषण भी मेरे भ्राता हैं। उनके शरीर-बल और पराक्रम को यहा हर कोई जानता है, किंतु मैं उनके अधीन नही हू। स्वाधीन हू। मुझसे इस वन के सभी प्राणी डरते हैं। पर राम, तुम्हें तो देखते ही मैं तुम्हारे ऊपर मुग्ध हो गई हू। मुझे तुम अपनी ही समझो। तुम्हारे योग्य पत्नी तो मैं ही हू। चीटी जैसी तुम्हारी इस स्त्री से तुम्हें क्या लाभ? इस भीषण वन में तो मैं ही तुम्हारे लिए उपयुक्त स्त्री हू। तुम्हें सब जगह घुमाऊगी। चाहे जैसा रूप मैं धारण कर सकती हू। तुम्हे घबराने की आवश्यकता नही। तुम्हारे भाई लक्ष्मण को और इस स्त्री को अभी खा-पीकर खत्म कर दूगी। चलो, मेरे साथ चले चलो। सोचो मत। अभी चलो।" यो कामाध शूर्पणखा अपनी राक्षसी पद्धति के अनुसार बोलती गई।

राम के लिए राक्षसी का इस प्रकार का व्यवहार एक नई चीज थी। उन्हें हसी आई। बोले, "हे सुदरी, मुझपर इच्छा रखना तुम्हारे लिए दुःख की वात हो जायगी। मेरी स्त्री तो मेरे पास ही, तुम्हारे सामने ही यह खडी है। दो-दो पत्नियो को सभालना मेरे वस की वात नही। यह देखो, मेरा भाई लक्ष्मण खडा है। अकेला है। रूप में या वल में मुझसे किसी प्रकार कम नही है। तुम्हारे लिए यह हर प्रकार से योग्य हो सकेगा। मुझे छोड दो। इसे पाने का प्रयत्न करो।"

राम को निश्चित रूप से पता था कि लक्ष्मण अपने-आपको सभाल सकता है।

अव राम को छोडकर राक्षसी लक्ष्मण के पास दौडी। देखने मे लक्ष्मण भी राम जैसे ही थे। लक्ष्मण से शूर्पणखा वोली, "चलो, हे वीर पुरुष, मेरे साथ अभी चलो। हम दोनो इस वन में साथ-साथ घूमेंगे-फिरेंगे, मौज करेंगे।"

लक्ष्मण राम से कम न निकले। वोले, "पगली कही की! तू ठहरी राजकुमारी! मै हू एक सेवक। कहा मैं और कहा तू! मेरे साथ अपनेको वाधकर तुझे क्या मिलनेवाला है? राम तुझे वहका रहे है। राम की दूसरी स्त्री वन जा। सीता से तुझे क्या भय? सीता को तो वह भूल जायगे। फिर तू मौज से रहने लगेगी।"

पढे-लिखे लोग चर्चा कर सकते हैं कि प्रेम में उन्मत्त एक स्त्री के साथ राम-लक्ष्मण का यह व्यवहार उचित था या नही। किंतु उन्हें यह सोचना चाहिए कि राम-लक्ष्मण एक स्त्री से नही, किंतु एक अति प्रवल प्रलोभन-रूपी दुष्ट पाशविक आक्रमण से अपनेको वचा रहे थे।

शूर्पणखा को अपने काम से मतलव था। लक्ष्मण के पास से वह राम के पास पहुची। सीता वही खडी थी। उसपर दुष्ट राक्षसी को असह्य चिढ़ हुई। वोली, "इस कीडी-जैसी औरत से क्यो डर रहे हो? पेट तो इसका पिचका हुआ है। इससे क्यो तुम्हारा प्रेम है? तुम्हारे देखते-ही-देखते मैं इसे खा जाऊगी। तुम्हें प्राप्त किये विना मैं मर जाऊगी। इस स्त्री के कारण

ही मेरा काम नही बन रहा है, नही तो तुमने मुझे अबतक अवश्य ही स्वीकार कर लिया होता। लो, इसे अभी समाप्त करती हू।"

यो कहती हुई वह राक्षसी एकदम सीता के ऊपर टूट पडी। राम ने उसे वहीं रोक न लिया होता तो शायद सीता की जीवन-लीला समाप्त हो गई होती। राम ने देख लिया कि अव हास्य-विनोद वद करके राक्षसी को दड दिये बिना काम नही बनेगा। उन्होंने लक्ष्मण से कहा, "इसे कुछ सबक सिखा दो।"

जैसे ही शूर्पणखा फिर सीता को मारने के लिए लपकी, लक्ष्मण ने अपनी तलवार खीचकर शूर्पणखा को घायल कर दिया। लक्ष्मण के प्रहार से उसके नाक और कान कट गये। दर्द और अपमान से जोर से चीखती-चिल्लाती वह राक्षसी वहा से भागकर जगल के भीतर चली गई। शूर्पणखा के मुह से खून की धारा बह रही थी। वह सीधे अपने भाई खर के पास पहुची। वादल के गरज की तरह जोर से 'हाय' करती हुई वह उसकी गोद में गिर पडी।

राक्षस खर अपने अन्य निशाचरो से घिरा हुआ बैठा था। अपनी वहन की दुर्दशा देखकर वह चौंक उठा। वोला, "उठो वहन, सीधी बैठो और बताओ, क्या बात हुई है?"

शूर्पणखा का रोष और बढ गया। वह उठकर खडी हो गई और वोली, "देखो तो, मेरी क्या दशा हो गई है! तुम्हारे रहते हुए इस जगल में राम, लक्ष्मण नाम के दो पुरुषो ने मेरा यह हाल कर डाला है!"

खर ने पूछा, "वहन, जरा विस्तार से बताओ कि ऐसा क्यो हुआ। वे दो पुरुप कौन है? उन्होंने मेरा वैर मोल लेने का साहस कैसे किया? किसे चील और कौवो को अपना मास खिलाने की जल्दी हो रही है? किसने इस काले नाग खर को छेडा है। वह मूर्ख है कहा? मुझे जगह वता दे। अभी जाकर पहले उसकी हत्या करके फिर दूसरा काम करूगा। देख लेना, वहा की धरती अभी उसका, जिसने तुम्हारा रूप विगाड दिया है, खून चूसकर पीनेवाली है।

शूर्पणखा अपने भाई को वताने लगी, "राम और लक्ष्मण दो राजकुमार

हैं। तापसो का वेप धारण करके इस वन में रहने आये हैं। दशरथ के लडके हैं। साथ में राम की स्त्री भी आई है। उस स्त्री को खुश करने के लिए दोनों ने मेरा यह हाल कर दिया। मैं अभी उन लोगो का लहू पीना चाहती हू। भैया, तुम अभी जाओ। उन दुष्टो को मारना ही तुम्हारा पहला काम होना चाहिए।"

खर ने तत्काल अपने चौदह सेनापतियो को बुलाकर आदेश दिया कि उसी क्षण राम-लक्ष्मण को मारकर उनके मृत शरीर ले आवें। जिस औरत की बात शूर्पणखा ने अभी बताई थी, उसे भी खीचकर ले आयें।

खर के चौदह सेनापति राम-लक्ष्मण को मारकर सीता को बलपूर्वक लाने के लिए चल पडे।

खेत में कोई गधा आकर नुकसान करने लगे तो जैसे किसान लोग उसे डडे से पीटकर भगा देते है, उसी प्रकार राम-लक्ष्मण ने शूर्पणखा को पर्ण-शाला से मारकर भगा दिया था। वाल्मीकि ऋषि ने इस घटना का सक्षिप्त रूप में वर्णन करके छोड दिया है। किसी चर्चा के लिए स्थान नही रखा।

किंतु कवि कवन ने इस घटना को एक छोटे-से नाटक का ही रूप दे दिया है। उस नाटक में सभी प्रकार के रस आ जाते हैं। कवन की रामायण में इस भाग को सर्वश्रेष्ठ कहा जा सकता है। वहा शूर्पणखा एक सुदरी युवती का रूप धरकर आती है। नदी-तट पर जब राम और सीता परस्पर मुग्ध होकर वार्तालाप में लगे रहते है, तब वह पहले-पहल राम को देखती है। राम के मनमोहक रूप पर पागल हो जाती है। उसे बहकाने के लिए अपना राक्षसी रूप बदलकर मानव रूप बनाकर बडी नम्रता से राम से वार्तालाप शुरू कर देती है। अपना परिचय देकर नाना प्रकार से राम को बहकाने लग जाती हैं। यहातक कहती है कि सीता एक राक्षसी है। उसका यह असाधारण सौंदर्य सच्चा नहीं है। उसे मारकर मेरे साथ गाधर्व विवाह कर लो। फिर उसका आवेग बहुत प्रबल हो उठता है। सीता को वह जोर से डाटती है। जिस प्रकार बादल से बिजली लिपट पडती है उसी प्रकार सीता घबराकर राम से खूब जोर से चिपटकर खडी हो जाती

है। राम शूर्पणखा को वहा से निकल जाने को कहते हैं, उसे चेतावनी देते हैं कि यदि तुम हटोगी नहीं तो लक्ष्मण कुछ-न-कुछ कर बैठेंगे।

इसके बाद सीता को लेकर राम पर्णशाला में आ जाते हैं। शूर्पणखा रातभर वही छिपी रहती है। सुबह उसने राम को पर्णशाला से बाहर सध्यावदन करने के लिए आते हुए देखा। वह सोचने लगती है कि यह बहुत ही अच्छा अवसर है, सीता को मारकर राम की दृष्टि से उसे हटा दूगी तो मेरे कार्य की सिद्धि हो जायगी। वह सीधे पर्णशाला में घुसती है। बाहर खडे लक्ष्मण पर उसका ध्यान नही जाता। जैसे ही वह सीता को पकडने गई, लक्ष्मण ने ललकारकर उसे रोका। तब वह सीता को छोडकर लक्ष्मण पर जा टूटी। लक्ष्मण अपनी तलवार खीचकर उसकी नाक-कान काट देते हैं और राक्षसी घोर हाहाकार करती हुई अपने असली राक्षस-रूप में अपने कुटुबवालो के पास पहुचती है। कहती है, "हे मेरे भाई रावण, हे राक्षसो के देव रावण, हे मेरे भतीजे इद्रजित, तुम लोगो के जीते-जी मेरे ऊपर यह कैसा अन्याय हो गया! देखते क्यो नही! तुम लोग सब मर गये क्या!" इस प्रकार चिल्लाती हुई वह खर के दरबार 'जनस्थान' में पहुचती है।

यह कवि कबन का वर्णन है। आधुनिक पडित श्रीरामचद्र के कुछ कार्यों की टीका करते हुए कहते हैं कि राम का बाली को मारना शूर्पणखा के रूप को विकृत करना, इत्यादि काम न्याय-विरुद्ध थे। हमारे देशवासियों की बुद्धि काफी तेज है, इसमें कोई शक नही, किंतु उनमें प्रेम और भक्ति-पूर्ण ज्ञान की बडी कमी है। राम में वे दोष देखते हैं तो भले ही देखें। राम से भी बढ़कर वे अपना जीवन यदि बिताना चाहते हो तो अवश्य वैसा करें, राम के अच्छे गुणो का अनुसरण करें। जो अवगुण वे राम में देखते हो, उन्हें स्वय न करें। इसमें किसीको कोई आपत्ति नही हो सकती। रामचद्र और रामभक्त ऐसे सपूर्ण सदाचारियो से सदैव प्रसन्न रहेंगे।

: ४४ :

खर का मरण

'जनस्थान' से खर के चौदह सेनापतियों को साथ लेकर शूर्पणखा राम की कुटिया के सामने राम-लक्ष्मण से बदला लेने आ पहुची। सेना-पतियों से उसने कहा, "देखो, वे खडे हैं राम और लक्ष्मण, आदमी के बच्चे, जिन्होंने मेरी नाक काट डाली। नष्ट कर डालो इन दोनो को।"

राम ने लक्ष्मण को सीता की रक्षा में तत्पर रहने की आज्ञा दी और स्वय धनुष-बाण तैयार करके सामने आकर खडे हो गये।

युद्ध-धर्म का पालन करते हुए उन्होने आक्रमण के लिए आनेवालों को अपना परिचय दिया और पूछा, "आप लोग यहा क्यो आये हैं? हमने तो ऋषियो की रक्षा करने और उनकी हिंसा करनेवाले राक्षसो को मारकर हटाने का व्रत लिया हुआ है। यदि आप लोग अपने प्राण बचाना चाहते हैं तो यहा से एकदम चले जाय।"

राक्षसो ने भी उसी प्रकार तेजी से उत्तर दिया और दोनो में घोर युद्ध छिड गया। जरा-सी देर में खर के सारे सेनापति राम के अचूक बाणो के शिकार हो गये।

शूर्पणखा अपने भाई खर के पास दुबारा पहुची और विलाप करने लगी। जमीन पर लोटी हुई अपनी बहन से खर कहने लगा, "काल के दूतो जैसे वीर राक्षसो को मैंने राम को मारने के लिए भेज दिया है। अबतक राम उनके हाथों कभी का मारा गया होगा। अब तुम क्यो रो रही हो? जबतक मैं जिदा हू, तुम्हारा कौन क्या बिगाड सकता है? आसू पोछ लो और उठ खडी होओ।"

शूर्पणखा उठ खडी हुई और रोना-धोना बद करके बोली, "भाई, मैं कहा इन्कार करती हू? तुमने जरूर चौदह वीरो को भेजा था, किंतु इस समय तो वे राम की कुटिया के सामने मरे पडे हैं। उनकी लाशें वहा हैं। मेरी बात का

भरोसा न हो तो तुम आओ और देख लो। यदि तुम्हें अपने कुल का मान रखना हो तो इसी क्षण निकल पड़ो और राम से युद्ध में विजय प्राप्त करो, वरना समझ लो हमारे कुल का नाश हो गया।"

शूर्पणखा की बातें खर के हृदय में शूल की तरह चुभ गईं।

"बहन, एक तुच्छ मनुष्य से तुम क्यो इतना डरने लगी हो! लो, यह मैं चला। एक ही क्षण में तुम उस आदमी का खून पी सकोगी।"

"सुनो भैया, तुम अकेले मत जाओ, अपनी सेना को साथ ले चलो।" शूर्पणखा ने कहा।

और एक भारी राक्षस-सेना के साथ रथ में बैठकर खर निकल पड़ा। जाते-जाते सबने अनेक अपशकुन देखे। लेकिन खर ने हँसकर अपने सैनिको से कहा, "इन अपशकुनो को देखकर आप लोग घबरायें नही। आपने आज तक कभी मुझे हार खाते देखा है? हम उस कीड़े के समान मनुष्य राम को दबाकर ही मार डालेंगे।"

उसके सैनिक, जो कुछ डर गये थे, खर के इन उत्तेजना देनेवाले वचनो से धीरज और उत्साह पाकर फिर आगे बढ़े। सेना का शोरगुल सुनकर राम-लक्ष्मण फिर युद्ध के लिए तैयार हो गये। राम लक्ष्मण से बोले, "लक्ष्मण, समझ लो कि 'जनस्थान' के राक्षसो का समय आ गया। अब इनसे निपट लेना होगा। तुम सीता को किसी गुफा में बैठाकर शस्त्रो से सज्जित होकर द्वार पर खड़े रहो। वहा सीता की रक्षा का ही ध्यान रखना। मैं अकेला इन राक्षसो को देख लूगा। तुम मेरी चिंता न करना। तुम जल्दी ही सीता को लेकर यहा से चले जाओ।"

राम ने कवच पहन लिया और युद्ध के लिए तैयार होकर पर्णशाला के बाहर खड़े हो गये। लक्ष्मण बड़े भाई की आज्ञानुसार सीताजी को पर्वत की एक गुफा में छिपाकर उनकी रक्षा में तत्पर हो गये।

ऊपर आकाश-मडल में देव, गधर्व, सिद्ध और चारण राम-राक्षस-युद्ध देखने के कुतूहल से आकर जमा हो गये। उन्होने स्वस्ति वचनो द्वारा रामचद्र की विजय की कामना की।

ऋषि-गण हैरान हो गये। सोचने लगे कि अकेले राम इतने वली राक्षसो का मुकावला कैसे कर सकेंगे ! धनुष को लेकर अमित कातिमान् श्रीराम ऐसे खडे थे, मानो पिनाकपाणी भगवान रुद्र स्वय खडे हो।

राक्षस-सेना तेजी के साथ वहा आ पहुची। उनके सिहनादो मे और धनुषो की टकारो से वहा का वायुमडल भर गया। राक्षस लडाई के समय के वाजे और ढोल वजाते आ रहे थे। जगली जानवर डर के मारे इधर-उधर भागने लगे। आकाश को जैसे वादल घेरे लेते है, उसी प्रकार धनुर्धारी रामचद्र को राक्षस-सेना ने घेर लिया।

देखते-देखते घमासान युद्ध छिड गया। राक्षसो के शरो मे रामचद्र का सारा शरीर घायल हो गया। देवताओ को अव सचमुच चिता होने लगी कि राम ऐसे विशाल राक्षसो मे कैसे वच सकेगे !

पर राम के वाणो से हजारो राक्षस मरकर गिर पडे। खर का भाई दूषण स्वय राम पर आक्रमण करने लगा। राम अद्भुत तत्परता के साथ चारो ओर वाण छोड रहे थे। यह देख पाना अशक्य था कि कव वह वाण को तूणीर से निकालते और कव उसे छोड देते थे। जैसे तेजोमय सूर्य की चारो ओर किरणें निकलती है, रामचद्र के आठो ओर मे चमकते हुए वाण राक्षसो की ओर जा-जाकर गिरते थे। उनके अचूक प्रहारो से आहत होकर राक्षस सैनिक रथो से मरकर गिरते। उनके रथो का वुरा हाल हो गया। रथ को खींचने-वाले घोडे और सेना के हाथी घायल होकर पृथ्वी पर गिरते जाते थे। राम के वाण आकाश-मार्ग से जाकर राक्षसो के शरीरो को वीधकर उनके खून से लथपथ हो अग्नि-ज्वाला के समान चमकते हुए वाहर आते थे। सारी राक्षस-सेना नष्ट हो गई। काल-भैरव के समान राम मैदान में अव भी खडे थे।

राक्षस दूषण ने अव भी राम को जीतने की आशा न छोडी। सेना की एक नई टुकडी के साथ उसने राम पर आक्रमण किया, लेकिन राम के वाणो से उसका रथ टूट गया और घोडे और सारथी हताहत हो गये। तव नीचे खडे होकर उसने दडायुध मे राम के ऊपर प्रहार करने का यत्न किया। पर

राम के अचूक बाणो ने उसकी दोनो भुजाओ को काट डाला और मरते हुए हाथी की तरह राक्षस पृथ्वी पर गिरकर निष्प्राण हो गया।

दूषण को मरा देखकर उसकी सेना के बचे हुए सारे सैनिक एक साथ राम को मारने दौडे, लेकिन वे भी एक-एक करके राम के कोदड से निकले बाणो के शिकार हो गये।

इस प्रकार सुप्रसिद्ध राक्षस खर की सारी सेना नष्ट हो गई। जिस ओर से युद्ध का कोलाहल सुनाई दे रहा था उधर अब सन्नाटा छा गया। सारी भूमि राक्षसो की लाशों, टूटे शस्त्रो और रथो से पटी पडी थी। राक्षसो में अब खर और त्रिशिर ये दो बच रहे थे। महा क्रोध से खर राम से द्वद्व-युद्ध करने चला, लेकिन त्रिशिर ने उसे रोका और कहा, "पहले मुझे जाने दो। मैं राम को मार गिराऊगा। यदि मैं भी दूषण की तरह लडते-लडते मर गया तब तुम आना।"

यो कहकर तीन सिरवाला राक्षस त्रिशिर रथ में बैठकर राम के पास पहुचा और उनपर आक्रमण करने लगा। रामचद्र पर उसने बाणो की वर्षा कर डाली, पर राम ने बडी चतुराई से उन बाणो को रोक लिया और जवाब में अपने बाणो का प्रयोग किया। हाथी और सिह की तरह दोनो एक-दूसरे पर गरज के साथ प्रहार करने लगे। अत में त्रिशिर भी खून की फुहारें छोडता हुआ नीचे गिरकर मर गया।

खर का दर्प धूल में मिल चुका था। फिर भी राम के साथ लडने का उसका निश्चय दृढ ही रहा। इधर-उधर बचे कुछ राक्षस हिरनो की तरह भागने लगे थे। उन्हें खर ने रोका और रथ में बैठकर राम के साथ युद्ध करने निकल पडा। दोनो में घोर युद्ध छिड गया। दोनो के बाणो से आकाश ढक गया। खर महाकाल की तरह रथ पर चढकर रामचद्र पर शरो की वर्षा करता गया। रामचद्र एक क्षण के लिए अपने धनुष के सहारे खडे रहे कि इतने में खर के बाण उनके कवच पर आकर गिरे। कवच टूटकर उनके शरीर से अलग गिर पडा। अब उनका अति सुदर शरीर एकदम खुल गया। तब राम ने विष्णु-धनुप उठाकर उससे बाणो का प्रयोग प्रारम

कर दिया। वह दैवी धनुष था और चलानेवाले थे श्रीराम। खर का रथ टूटकर एक ओर जा गिरा। उसके हाथ से धनुष भी टूटकर गिर पडा। वह गदा से राम का मुकाबला करने लगा। देवता बहुत घबराये। हाथ जोडकर श्रीराम की रक्षा के लिए प्रार्थना करने लगे।

राम ने अपने सामने खडे खर से कहा, "हे खर, निर्दोष लोगो को सताना ही तेरा काम रहा है। हे दुष्ट, क्या तू नही जानता कि कितना ही बलिष्ट क्यो न हो, दुष्ट व्यक्ति को एक-न-एक दिन मरना ही पडता है। व्रत पालनेवाले कितने ही निरीह तापसो को आज तक तूने मार डाला है। उसका फल तू आज पायगा। अपने पाप-कर्मो से तू जन-समुदाय का वैरी बन गया है। अपना नाश आज निश्चित समझ ले। तेरा अत देखने के लिए उन ऋषियो की आत्माए, जिनकी तूने हत्या की है, ऊपर आकाश में आकर इकट्ठी हो गई हैं। तेरे जैसे कुकर्मियो को मार डालने का मैंने प्रण किया है और तू मेरे साथ लडने आया है। अच्छी बात है, भले ही तू मुझसे लड ले, लेकिन देखूगा कि मेरी मार से तू कैसे बचता है?"

खर भी चुप न रहा। बोला, "हे मानवी कीडे, दशरथ के बच्चे, नीच मनुष्य होकर तुझमें इतना दर्प है! सीधे-सादे गरीब राक्षसो को मारकर तू घमड में फूल गया मालूम होता है। यदि तू सच्चा वीर होता तो अपनी बडाई आप कभी न करता। अच्छे कुल के क्षत्रिय कभी आत्म-प्रशसा नही करते। व्यर्थ बकवास छोड दे, और चल, लड ले मेरे साथ। तेरी वीरता का तो आज ही पता चल गया, जब तूने स्वय अपने मुह से ही अपनी तारीफ की। जगल की घास जब जलने लगती है तो उसकी ज्वाला बहुत चमकने लगती है, हालाकि जरा-सी देर में वह मिटनेवाली ही होती है। तेरा भी अत इसी प्रकार अब निकट ही है, ऐसा समझ। तभी तो तू यो बकने लगा है। मैं तुझे मारकर ही छोडूगा। अब शाम भी होनेवाली है। युद्ध के लिए ज्यादा समय नही बचा है। तुरत लडने को तैयार हो जा। देर न कर। जितने राक्षसो की तूने हत्या की है, मैं उन सबका बदला लिये बिना थोडे ही रहूगा।"

यो कहकर राक्षस खर ने अपनी गदा को तेजी से घुमाते हुए राम के

ऊपर फेंका। पराक्रमी राम ने अपने बाणो से उस गदा के दो टुकडे करके नीचे गिरा दिया।

"हे राक्षस, शात हो जा। आज तेरा मरण निश्चित है। आज से यहा-पर ऋषि-मुनियो को आराम हो जायगा। यहा की धरती तेरे खून को चूसनेवाली है।" राम बोले।

राम इस प्रकार कह ही रहे थे कि खर ने पास के एक बहुत बडे साल वृक्ष को जड से उखाड डाला और दात पीसते हुए उसे राम के ऊपर जोर से फेंका, पर राम ने उस विशाल वृक्ष को भी अपने बाणो से टुकडे-टुकडे कर डाला। अबतक राम आत्म-रक्षा करते रहे थे। अब उन्होने देखा कि खर को मारना ही होगा। उन्होने राक्षस पर बाणो की वर्षा कर दी। राक्षस बहुत घायल हो गया। उसके शरीर से खून की धारा बहने लगी। घावो की पीडा से क्रुद्ध होकर राक्षस राम पर एकदम टूट पडा। राम जरा रुके। उनके लिए धनुष चलाने की जगह न रही थी। वह कुछ कदम पीछे हटे और राक्षस खर की छाती पर इद्र बाण चला दिया।

खर वही गिरकर तत्काल मर गया। देवताओ मे जयघोष उठा। उन्होने श्रीरामचद्र पर पुष्पो की वृष्टि की। इतने थोडे समय में 'जनस्थान' के खर-दूषणादि समस्त राक्षसो का सामना करके उन्हें मारकर जो चमत्कार दिखाया, उसके लिए श्रीरामचद्र की उन्होने भूरि-भूरि स्तुति की। ऋषि-मुनियो के मन में शाति हुई। राम को एक-एक ने आकर गले लगा लिया और आशीर्वाद दिया। पर्वत की गुफा से लक्ष्मण भी सीता को बाहर लाकर राम से बडे प्यार से मिले।

"देवी सीता और अनुज लक्ष्मण की आखो से आसुओ की धारा बहने लगी। इससे रामचद्र के राक्षसो के रुधिर से सिंचित पैर धुल गये।" यह सत कवन की कल्पना है।

कोई पूछ सकता है कि राम ने अकेले इतने राक्षसो के आक्रमण को कैसे रोका होगा? हम सब जानते हैं कि अपने बछडे को बचाने के लिए गो-माता जब मनुष्यो की भीड में हुकार करती हुई सीग मारने दौड़ती है तब

सव लोग डर के मारे इधर-उधर भाग जाते हैं। सच्ची भावना हृदय में हो तो वहा असाधारण वल और उत्साह की शक्ति अपने-आप आ जाती है। परमात्मा स्वय आर्तो की रक्षा के लिए लग जाय तो क्या चमत्कार नही हो सकता ?

वाल्मीकि और कवन ने राम के रूप में किये गये परमात्मा के अद्भुत चमत्कारो के वर्णन जगह-जगह किये हैं। कही-कही राम स्वय अमानुषिक शक्ति का प्रदर्शन करते हैं, कही-कही दैवी प्रसादो के कारण वह सफलता पाते हैं। यह सव होते हुए भी कवियो ने राम को अपनेको ईश्वर समझकर कुछ कहते या करते नहीं दिखाया है। राम ने सदा अपनेको एक क्षत्रिय-वीर ही समझा और उसके अनुसार धर्म और सत्य का पालन किया। अपन को उन्होने एक धर्मनिष्ठ, तत्पर और असीम शक्तिवाला जितेंद्रिय ज्ञानी पुरुष ही सिद्ध किया है।

: ४५ :

रावण की बुद्धि भ्रष्ट

रामचद्र से डरकर और अपने प्राण बचाने के लिए कुछ राक्षस भाग निकले थे। उनमें से एक का नाम था अकपन। वह सीधा लका में रावण के पास पहुचा। रावण से कहने लगा, "जनस्थान में हमारे परिवार के लगभग सब-के-सब लोग मारे गये। जनस्थान अब रहा नहीं। मैं किसी तरह अपनेको बचाकर आपको समाचार देने के लिए आया हू।"

यह सुनकर रावण आग-बबूला हो गया। पूछने लगा, "वह कौन है, जिसने मेरे सुदर जनस्थान का सत्यानाश कर डाला ? वह यम था क्या ? या अग्नि, अथवा स्वय विष्णु ने यह काम किया ? मैं यम को मार सकता हू। अग्नि और सूर्य दोनों का एक साथ नाश करूगा। वायु को चलने से रोक दूगा। मेरे रहते हुए जनस्थान की सुदरता बिगाड़ने की हिम्मत किसे हुई ? मुझे अभी बताओ !"

राक्षसेंद्र का क्रोध देखकर अकपन थर-थर कापने लगा। बोला, "मुझे अभयदान दें, महाराज ! आपको सारा हाल बताऊगा।"

उसने रावण को सारा वृत्तात इस प्रकार सुना डाला, "अयोध्या का राजकुमार राम बड़ा पराक्रमी और वीर है। सिंह के समान गभीर और यशस्वी मनुष्य है वह। उसके समान आजतक दूसरा कोई नही हुआ। पच-वटी में खर और दूषण दोनो भाई उसके साथ लड़ाई में मारे गये।"

यह सुनकर रावण काले नाग की तरह आवेश में आ गया। बोला, "क्या बक रहा है तू ? कौन है वह राम ? क्या देवगणो के साथ इद्र उसकी सहायता के लिए आये थे ?"

"राजाधिराज, यही तो खूबी है। राम के साथ दूसरा कोई नहीं था। हमारी सारी सेना तथा दलपति खर और दूषण को अकेले राम ने मार डाला।

उसके बाणो ने विषैले पचमुखी सर्प की भाति किसीको भी न छोडा। सबको मारकर शात हुए।" यो कहकर अकपन ने श्री रामचद्र के पराक्रम का विस्तृत वर्णन किया। अत में कहा कि आजकल राम अपने छोटे भाई लक्ष्मण के साथ वन में वास कर रहा है। युद्ध में राम ने किसीकी मदद नहीं ली।

अकपन के वर्णन से रावण का क्रोध और भी भडक उठा। उसने कहा, "देखता हू, मेरे साथ वह कीडा कैसे लडता है ! मै इसी क्षण वहा पहुचता हू।"

अकपन ने रावण को रोककर कहा, "नही, आप वहा न जाय। राम एक अद्भुत पराक्रमी व्यक्ति है। उससे लडकर विजय पाना किसीके लिए भी सभव नही हो सकता। आपसे भी नही हो सकेगा। आपने मुझे अभय वचन दिया है, इसलिए साफ-साफ बताने की धृष्टता करता हू। राम को मारने का एक ही उपाय है। राम के साथ उसकी स्त्री है। ओह, उसकी सुदरता का मैं क्या वर्णन करू ! तीनो लोको में वैसी सुदर स्त्री शायद ही कही देखने में आयगी। किसी उपाय से उसे उठा लाओ। राम उसके वियोग से तडपकर मर जायगा, इसमें कोई शक नही। पत्नी पर उसका प्यार बहुत ही अधिक है—प्राणो से भी बढकर। मेरी बात मानें। आप युद्ध करने न जाय। मेरे बताये हुए उपाय से राम का प्राण-हरण करें।"

अकपन के मुह से देवी सीता के सौंदर्य का वर्णन सुनकर रावण के मन में सीता को पाने की कामना पैदा हो गई और वह बढने लगी। उसने कहा, "अच्छा, अकपन, तेरी बात मान लेता हू। कल ही रथ पर चढकर सीता का हरण करने यहा से निकल पडूगा।"

× × ×

दूसरे ही दिन रावण खच्चरोवाले अपने रथ पर बैठकर आकाश-मार्ग से पचवटी की ओर चल पडा। उसका रथ सोने का बना हुआ था। बादलो के बीच में से जब वह गुजरता था तब बिल्कुल चाद जैसा दिखाई देता था। रावण पहले अपने सबधी मारीच के पास गया। मारीच ने एक आश्रम बना रखा था। उसीमें वह रहता था। रावण को अपने घर पर

एकाएक आया देखकर मारीच उठ खडा हुआ और राजा का यथोचित सम्मान करके पूछा, "आपका यो अचानक कैसे आना हुआ ?" रावण ने उत्तर दिया, "प्रिय मारीच, मै तुम्हारी शरण में आया हू । मेरा काम तुमसे ही बनेगा । तुम्हे शायद अबतक मालूम हो गया होगा कि जनस्थान का नाश हो गया । वहा की हमारी सारी सेना नष्ट-भ्रष्ट हो गई । यह सब दशरथ के लडके राम ने किया है । उसका बदला लिये बिना मै नही रह सकता । उसकी स्त्री सीता को उडा लाने की मै सोचता हू । उसके लिए बस मुझे उपाय बताओ । ऐसे कार्यो में तुम्हारी बुद्धि खूब चलती है ।"

मारीच ने उसे ऐसा करने से रोकते और समझाते हुए कहा,

"रावण, तुम्हारे किस बैरी ने मित्र का बहाना करके तुम्हे ऐसा काम करने के लिए प्रोत्साहित किया है ! यह तो तुम अपने लिए सर्वनाश का द्वार ही समझो । ऐसा काम कभी मत सोचना । जिस किसीने भी तुम्हे सीता के हरण करने की सलाह दी है, वह अवश्य ही राक्षस-कुल का अत चाहनेवाला होगा । भला कोई जान-बूझकर साप के मुह में हाथ डालेगा ? तुम वापस घर लौट जाओ, अपनी पत्नियो के साथ आराम से रहो । राम की स्त्री को पाने की पागलपनभरी इच्छा मत करो । बुरी तरह मारे जाओगे । राम के क्रोध को छेडोगे तो हमारा एक भी व्यक्ति यहा जीवित न रह सकेगा ।"

दशग्रीव रावण ने मारीच की बात मान ली । वह वापस लका चला गया । उसे मारीच की बात ठीक लगी । सभव है कि उसे याद आ गया हो कि जब ब्रह्मा से उसने अमरत्व का वरदान मागा था तब उसने मनुष्य के हाथ से अमरत्व नही मागा था । हो सकता है कि जनस्थान में खर-दूषण आदि का जो बुरा हाल हो गया था, उसका विचार करके भी कुछ सचेत हो गया हो, किंतु विधाता ने बात यही समाप्त न करनी चाही ।

रावण अपने सिहासन पर बैठा हुआ था । उसकी काति घी से प्रज्वलित अग्नि की भाति चमक रही थी । अबतक उसने किसीसे भी हार नही खाई थी । देवासुरो के युद्ध में शामिल होते रहने के कारण उसके शरीर में कई घावो के निशान थे । कभी चक्रायुद्ध से, कभी हाथियो के दातो से हुए घावो से उसके

शरीर की शोभा और भी वढ गई थी। उसके वल-पराक्रम या कुकर्मो की कोई सीमा न थी। देवताओ को सताने में, यज्ञ-हवनो को विगाडने में अथवा पर-स्त्रियो पर जोर-जवरदस्ती दिखाने मे उसका कोई सानी न था। देवासुर गण उसके नाममात्र से कापने लगते थे। दूसरो के दु ख में उसे आनद आता था। उसके ऐश्वर्यों का क्या कहना था! राजा कुवेर से वढ-चढकर धन-सपदा उसके पास थी और वह लका में विना मृत्यु के भय के मनमानी रीति से राज्य करता रहा। उसके दस मुख थे। उन दसो मुखो पर लवी-लवी आखें थी। उसके शरीर के अन्य अग भी ठीक हिसाव से वने थे और वलयुक्त थे। वहु-मूल्य वस्त्रो तथा आभूपणो से सुसज्जित होकर दरवार में वह वैठा था। उसके दोनो ओर उसके सचिवगण अपने-अपने आसनो पर वैठे थे। एकाएक सवको ऐसा लगा, मानो भूकप आ गया हो। भूकप जैसी भयकर शूर्पणखा भडभडाती हुई सीधे सिंहासन के सामने अपने भाई रावण से अपना दुखडा रोने चली आ रही थी। उसकी नाक और दोनो कान कटे हुए थे। वैसे भी वह वहुत कुरूपा तो थी ही, पर नाक काट जाने से और भी भद्दी लग रही थी।

सवके सामने ही वह अपने भाई रावण को फटकारने लगी, "अरे मूर्ख रावण, तू तो वडा प्रसन्न दिखाई दे रहा है। मालूम होता है कि अपनी धन-दौलत, और आमोद-प्रमोद के सिवा तुझे और किसी वात की चिंता ही नही है। अपने में ही मस्त जान पडता है। पर तू कोई सामान्य व्यक्ति नही, जो अपनी सपत्ति के घमड में फूलकर वैठा रहे। तू तो राजा है! और राजा को चाहिए कि वह आनेवाली विपत्ति को पहले से ही मालूम कर ले और उसे रोके। तू तो सिर पर आफत आने पर भी वडे निश्चित भाव से वैठा हुआ है। अपने ही आराम में मस्त रहनेवाले राजा को प्रजा कभी नही चाहेगी। तुझे इस वात का घमड हो गया है कि ब्रह्मा ने तुझे देवासुर-दानवो से अमरत्व का वरदान दे दिया है। पगले कहीं के, उसीसे सतुष्ट न हो जा। यदि तू अपने राज्य की देखभाल में उदासीनता दिखायगा तो तेरा राज्य कभी नहीं टिक सकता। तुझे सदा अपने भेदियो द्वारा राज्य के कोने-कोने की खवरो से जानकारी

रखनी चाहिए, नही तो तेरे राज्य का अवश्य ही सत्यानाश हो जायगा। तुझे इसका बिल्कुल पता नही कि जनस्थान में तेरे राज्य में, क्या-क्या हो गया! बडे आराम से सिहासन पर बैठा हुआ तू मौजकर रहा है और वहापर तेरा बंधु बाधव कोई भी नही बचा। समझ ले कि अब तेरा भी समय आ गया। शत्रु तो तुझे मारने के लिए दाव देख रहे है। तेरे सचिवो को हो क्या गया है? ऐसे अविवेकी मत्री मैंने आज तक नही देखे। क्या तुझे मालूम है कि हमारे बधु, जिनसे वैरी सदा कापते रहे, और जो तेरी आज्ञा से जनस्थान की देखभाल करते थे, आज मरे पडे है? जरा तो सोच। जनस्थान की हमारी सेना का आज नामोनिशान नही रहा। राम नामक एक मामूली-सा आदमी है। उसने अकेले ही, बिना रथ के, बिना हाथी के, यह असभव-सा काम कर डाला है। तुझे यह सुनकर शर्म नही आती क्या? देख तो तेरी बहन का क्या हाल हो गया! फिर भी यह नहीं पूछ रहा कि यह सब कैसे हुआ! अब तो ऋषि-मुनियो को राम ने अभय-दान दे दिया है। तुझसे अब वे डर-कर छिपेंगे नही। अबतक तू यही समझता रहा है कि तेरे-जैसा पराक्रमी तीनो लोको में कोई हो नही सकता। पर अब वह बात नही रही। तेरे नाश का समय आ गया। अब प्रजा का तुझपर से भरोसा हट जायगा। जैसे जीर्ण वस्त्रो को लोग उतारकर फैंक देते हैं, वैसे ही अब प्रजा तुझसे थककर तुझे राज्य से भगा देगी।

"राजा वही है जो अपने गुप्तचरो द्वारा राज्य की सारी बातो से परिचित रहता है और आलस्य-रहित होकर समय पर जो काम करना चाहिए, उसे करता रहता है। पर तेरे गुप्तचर निकम्मे हैं। तुझे इस बात की बिल्कुल परवा नही है कि राक्षसो का क्या हाल हो रहा है! तुझे गुस्सा भी तो नही आ रहा। जिस राजा को क्रोध नही आता, वह राजा कैसा?

"खर, त्रिशिर और दूषण को मारनेवाले राम के एक स्त्री है। उसका नाम है सीता। वह अकेली राम के साथ रह रही है। उसकी सुदरता का क्या बखान करू? देव-गधर्व, यक्ष, किन्नर, मनुष्य आदि में मैंने उसके-जैसा रूप आज तक नहीं देखा। तेरे लायक स्त्री वही है। जैसे ही मैंने उसे देखा,

मुझे सूझा कि यह तो मेरे भाई के ही योग्य है। मेरा तो राक्षस-स्वभाव ठहरा। मन में किसी बात की इच्छा पैदा हुई नही कि तत्काल उसे पाने के प्रयत्न में जुट गई। तेरे लिए मैंने सीता को उडा लाने का प्रयत्न किया। पर राम का भाई लक्ष्मण पास ही खडा था। उसने एकदम तलवार खीचकर मेरी यह हालत कर दी। मेरा ऐसा अपमान तेरे कारण ही हुआ है। अब तुझे वदला लेने की सूझती हो तो इसी क्षण मेरे साथ निकल पड।

"यदि अपनी बहन के लिए कुछ नही करना चाहता तो भी, अपने ही लिए सीता को पाने का प्रयत्न तो तू अवश्य ही कर। भला यह कैसे हो सकता है कि सीता-जैसी सुदरी रावण के अतिरिक्त और किमीकी भार्या बनकर रहे? यदि तू सीता को उठा लायगा तो वही राम के लिए योग्य दड होगा। उससे हमारे मृत वीरो की आत्माओ को भी कुछ सात्वना मिल सकेगी। अपनी शक्ति को तू भूल गया जान पडता है, पर सीता को पाना तेरे लिए बहुत ही सरल काम है। अपने कुल का जो अपमान हुआ है, उसका बदला चुकाने का यही मौका है। खर, दूषण और त्रिशिर का वध हो गया है, इसका विचार कर। मेरा जो अपमान हुआ, उसे तू अपना ही समझ। अपनी सगी बहन के अपमान पर भला तू चुप कैसे रह सकता है? अपने गौरव की तू रक्षा कर।"

शूर्पणखा ने अपना लबा व्याख्यान समाप्त किया।

रावण का दिमाग सारी बातें सुनकर चकराने लगा। जबसे उसने सीता का वर्णन सुना तबसे उसका चित्त और कही लगा ही नही। उसने सभा विसर्जित कर दी और एकात में जाकर सोचने लगा। मारीच ने जो सलाह दी थी, वह भी उसे याद आई। खूब सोच-विचारकर अत में वह एक ही निर्णय पर पहुचा। वाहनशाला में गया और सारथी से वाहन तैयार करने को कहा। बोला, "एक जगह जाना है। बहुत जल्दी पहुचना जरूरी है। किसी-को बताना नही।" पैशाचिक मुखवाले मोटे-ताजे खच्चरो को सोने के रथ में जोतकर सारथी ने रावण के आकाशगामी वाहन को सामने खडा कर दिया। रावण उसपर सवार होकर नदी, पहाड, समुद्र और नगरो को पार

करता हुआ गगन-मार्ग से जाने लगा। नीचे वसतकालीन प्राकृतिक दृश्यो से उसकी कामवासना तीव्र होती गई।

वह मारीच के आश्रम में पहुचा। नियम और आचार से युक्त जटा-वल्कल-धारी मारीच का उसने यथोचित अभिवादन किया। मारीच रावण का सबधी था। मारीच ने प्रश्न किया, "हे राजा, बिना किसी प्रकार की सूचना दिये दुबारा मेरी कुटिया में कैसे पधारे ?"

रावण भी वाक्पटु तो था ही। उसने कहा, "मारीच, मैं भारी सकट में फसा हू। तुम्ही मेरी रक्षा कर सकते हो। तुम्हारी शरण में आया हू। मेरी अनुमति से मेरे दोनो भाई जनस्थान में राज करते थे, यह तो तुम जानते हो। इतने दिनो से अपने लोगो के साथ वे शातिपूर्वक वहा राज्य कर रहे थे, पर हाल ही में राम नाम के एक आदमी ने खर, दूषण, त्रिशिर और उनकी सारी सेना का खात्मा कर दिया है। एक मामूली आदमी ने बिना रथ, बिना किसी वाहन और बिना किसी बाहरी सहायता के हमारे सारे कुल का नाश कर डाला। कहते है कि दडकारण्य में ऋषि लोग चारो ओर अब बेखटके घूम रहे हैं। यह भी सुनने में आता है कि राम को उसके पिता ने राज्य से भगा दिया है। वेश उसने तापसो का बना रखा है और अपनी पत्नी के साथ जगल में रहता है। इद्रिय-निग्रह तो क्या करता होगा। बडा नीच और दुष्ट मालूम होता है। क्रूर भी बडा है। बिना किसी कारण के मेरी बहन की उसने नाक काट डाली! इससे बुरी चीज और क्या हो सकती है? बेचारी शूर्पणखा मेरे पास आकर रोने लगी। यह सब देखते हुए भी यदि मैं चुप रहू तो मै राजा कैसा? मैं राम से बदला लिये बिना न रहूगा। दडकारण्य से उसकी स्त्री को अवश्य ही उठा लाऊगा। अब यह मेरा धर्म हो गया है। तुम्हे मेरी मदद करनी होगी। तुम हो ही, मेरे दो भाई और हैं। फिर मुझे डर किस बात का? शौर्य, बल, युक्ति और माया में तुम्हारी बराबरी कौन कर सकता है? इसीलिए मैं तुम्हारे पास आया हू। इन्कार मत करना। मेरी बात सुनो। तुम एक सुनहरे हिरन का वेश बनाओ। तुम्हारी सुनहरी छाल में चादी की चमकती बिदिया होगी। बहुत ही लुभावना रूप धरकर राम की कुटिया के

आसपास घूमा करना। तुम्हारी मनमोहक चाल और आखो को देखकर सीता को तुम्हें पकडकर अपने पास रखने की इच्छा होगी। वह तुम्हे पकड लाने के लिए राम और लक्ष्मण को, अवश्य अपने पास से भेज देगी। बस उसी समय उसका हरण कर लेने का मुझे अवसर मिल जायगा।

"सीता अनुपम सुदरी है। उसे खोने के शोक में राम दुर्बल हो जायगा। ऐसी हालत में मैं उसे आसानी से मारकर वदला ले लूगा और प्रसन्न होऊगा।"

मारीच ने रावण की बात सुनी। उसका गला सूख गया। मुह से बोल न निकल पाया। रावण की ओर देखता भर रहा। मारीच को रामचद्र की शक्ति का अनुभव पहले ही हो गया था और उसने अपना जीवन सुधार लिया था। तप एव व्रतादि के पालन से उसमें भगवद्-भक्ति आ गई थी। उसने देखा कि रावण गलत दिशा में जा रहा है। वह सोच में पड गया कि रावण के गले में यम का फदा पड चुका है। बस खीचने भर की देर है। रावण ने अपने कुल के गौरव, राज्य-नीति, शूर्पणखा के प्रति अन्याय आदि की कई बातें कही थी, किंतु सच यह है कि उसका मन एक ही चीज में अटका हुआ था। सीता को किसी-न-किसी प्रकार उडा लाना। मारीच यह समझ गया।

× × ×

हम शूर्पणखा की वृत्ति को भी देखें। कामोन्मत्त हो जाने से उसके ऊपर सकट पडे। उसके नाक-कान काटकर उसे कुरूप बनानेवाला तो असल में लक्ष्मण था। फिर भी वह लक्ष्मण से नही चिढी। उसका राम के प्रति मोह था। सीता के कारण उसकी इच्छा सफल नही हुई। उसने अपने को यो समझाया कि सीता न होती तो राम उसका हो जाता। सीता के गर्व को भग कर उसने बदला लेना चाहा। रावण के दुर्बल मन को वह खूब अच्छी तरह जानती थी। सीता के सौंदर्य का वर्णन करके रावण के मन में उसने बहुत बडा प्रलोभन पैदा कर दिया। और भी उसने हजार बातें कही थी, किंतु वे तो योंही थीं। पर अत में उसने रावण के मन में काम-वासना जागृत करानी चाही और अत में वह उसमें सफल हुई। रावण उसके बिछे जाल में फस गया।

: ४६ :

माया-मृग

मारीच रावण की बातें सुनकर थोडी देर चुप रहा। फिर बोल
रावण, राक्षसो के राजा, तुम्हारी बातें मैंने सुन ली। उससे मुझे बडा
हो रहा है। मन को अच्छी लगे, ऐसी सलाह देना बहुत आसान हो
किंतु अप्रिय सलाह देने का साहस प्राय कोई नही करता। यदि कोई
तो सलाह लेनेवाला उसका पालन नही करता। जो हो, मैं हित की दो
कह देना चाहता हू। मैं नही चाहता कि तुम्हारे सामने तुम्हे जो अच्छी
वैसी बातें करके, तुम्हे गलत सलाह दू और अपनेको बचा लू।

"राम के बारे में अभी तुमने कुछ बातें कही। ऐसा मालूम होता
तुम्हे भ्रम हुआ है। मूर्खो की बातें सुनकर धोखे में मत आओ। राम
ही उत्तम गुणोवाला वीर पुरुष है। उसका क्रोध मोल लोगे तो तु
सारा कुल और लकापुरी का नाश अवश्यभावी ही समझना। कही ऐस
नही है कि ब्रह्मा ने सीता को तुम्हारे नाश के लिए ही बनाया हो ?
तुम्हारी बातें जरा भी पसद नही आई। ससारभर के राक्षस तुम्हारे
मर मिटेंगे। जिसने तुम्हे ऐसा काम करने के लिए प्रोत्साहित किया
अवश्य ही तुम्हारा कोई दुश्मन होगा।

"राम ने कोई गलती नही की थी, जिससे उसे राज्य छोडना प
तुमने जो कुछ उसके बारे में कहा है, सब गलत है। उसके पिता ने अपनी
को वचन दे दिया था। उसका पालन राम के वन गये बिना हो नहीं स
था। राम ने अपनी इच्छा से राज्य-त्याग कर वनवास का व्रत लिया है
धर्म का अवतार और इद्रियो को वश में रखनेवाला है। देवो में इद्र के स
राम मनुष्यो में अग्रगण्य है। ऐसे महान् व्यक्ति की पत्नी पर तुम कैसे
निगाह डाल सकते हो ? यह असभव बात है। सीता कभी तुम्हारे वश में

होगी। सूर्य को बहकाकर उसका तेज कही चुराया जा सकता है ? जनक-सुता देवी सीता की पवित्रता पर तुम हाथ नही लगा सकोगे। ऐसी धृष्टता की वात मन से दूर कर दो, नही तो तुम जलकर राख हो जाओगे। राम के वाणो की वलि मत वनो। राम को अपने लिए क्यो काल वनाना चाह रहे हो ? वह सीता-रूपी अग्नि की रक्षा कर रहा है। उसे छेडकर सर्वनाश की ओर मत जाओ।

"और सुनो। विना सोचे-समझे क्यो किसी काम में हाथ डाल रहे हो ? राम को युद्ध में तुम कदापि नही जीत सकते। मेरा कहना मान जाओ। मैं भी किसी जमाने में अपने देहवल के दर्प में वहुत अत्याचार करता फिरता था। ऋषियो को मारकर उनका मास खाता रहता था। एक समय ऋषि विश्वामित्र के यज्ञ को विगाडने के लिए पहुचा था। उस समय राम वालक ही थे। ऋषि उन्हें अपने यज्ञ की रक्षा के लिए वुला लाये थे। यज्ञ की अग्नि को मैं वुझाने लगा तो मेरे ऊपर राम का एक ऐसा वाण लगा कि मैं क्या वताऊ। उसके वेग से मैं वहुत दूर समुद्र-तट पर जा गिरा। वहापर काफी समय तक वेहोश पडा रहा।

"राम को अपना दुश्मन मत वनाओ। तुम्हें कमी किस वात की है ? अपार धन के तुम स्वामी हो। भोगो में मस्त राक्षसो को क्यो व्यर्थ में मरण की ओर घसीटते हो ? सीता को पाने की झूठी लालसा में आकर वैभव-शालिनी लका को क्यो खडहर वना देना चाह रहे हो ? मैं तुम्हारी वातें सुनकर अभी से राक्षसो के आर्तनाद और जलती लका की कल्पना कर रहा हू। देखो, अव भी समय है। सर्वनाश से अपनेको और अपनी पत्नियो को वचा लो। तुम्हारी पत्निया एक-से-एक वढकर सुदर हैं। सीता पर अपना मोह छोड दो।"

मारीच ने रावण को हिताहित की वहुत-सी वातें वताई, पर रावण कहा माननेवाला था ! उसे मारीच का उपदेश पसद नही आया। जैसे रोगी को दवाई नही भाती, उसी प्रकार रावण को भी मारीच के सदुपदेश अच्छे नहीं लगे। शूर्पणखा ने उसके मन में सीता के प्रति जो विकार पैदा कर दिया

था। अत मारीच की बातो पर उसने ध्यान ही नही दिया। कहने लगा, "कोई राजा जब किसीसे सलाह मागे तो उसे सलाह देना उचित ही है, पर मैं तुमसे सलाह लेने थोडे आया हू ! मैंने एक काम करने का मन में निश्चय कर लिया है। उसमें मुझे तुम्हारी मदद चाहिए, सलाह नही। फिर तुम यह भूल गये कि मैं तुम सबका राजा हू। मै जो चाहू, वही मुझे मिलना चाहिए।

"यह समझ लो कि मैं अपना विचार नही बदलूगा। मेरा जैसा पराक्रमी यदि राम जैसे अधम एव मूर्ख मनुष्य से, जो अपने राज्य से भागा हुआ हो, बराबरी का युद्ध करे तो वह बडी शर्म की बात होगी। इसी कारण मैं राम के सामने खडा होकर नहीं लडना चाहता। राम की पत्नी का हरण करके राम के दभ को ठीक करना ही उसके लिए योग्य सजा होगी। अब मुझे उपदेश देना बद करो और मै जो कह रहा हू वह करने में लग जाओ।

"सुनो, तुम एक सुदर से मृग का वेश बनाकर सीता का ध्यान अपनी ओर खीचो। बस, यही मै तुमसे चाहता हू। सुवर्ण की कायावाले मृग को पकड लाने के लिए सीता राम को अवश्य भेजेगी। तब तुम राम को बहुत दूर तक भगा ले जाना। तुम छल-विद्या में निपुण हो। जब बहुत दूर निकल जाओ तो बिल्कुल राम की आवाज में खूब जोर से पुकारना, "हे सीते, हे लक्ष्मण !" राम की ऐसी आवाज सुनकर सीता बहुत घबरायेगी। सोचेगी कि राम किसी विपदा में फस गया है। वह राम की मदद के लिए लक्ष्मण को भेज देगी और मेरा दाव लग जायगा। मैं तत्काल सीता को उठाकर ले जाऊगा और लका में छिपा दूगा। तुम्हे यह काम करना ही होगा। बोलो— 'हा' या 'नही'। यदि 'नही' कहोगे तो मै अभी तुम्हारा सिर उडा दूगा।"

मारीच ने देख लिया कि रावण किसी प्रकार से माननेवाला नही है। उसने सोचा कि अब रावण का अत बहुत निकट है। तो फिर इस पाखडी के हाथ से क्यो मरू ? दुश्मन के हाथो मरनेवाला अमर पद पाता है। राम राक्षस-कुल का वैरी है। उसी पुण्यात्मा के हाथो मरना अधिक अच्छा होगा। इस प्रकार निराश होकर मारीच रावण से बोला, "ठीक है। जैसा तुम कहते

हो वैसा ही करूगा, क्योकि तुम्हारी वात न मानू तो तुम मुझे मार ही डालने-वाले हो। इसलिए जव मरना ही निश्चित है तो राम के हाथों ही मरना पसद करूगा। यह न सोचना कि उसके वाद तुम वहुत दिन तक जीवित रहोगे। तुम भी मरनेवाले हो। तुम्हारी लका भी खत्म होने वाली है। तुम्हारे इस वैभव से किसीको ईर्ष्या हुई है। उसके कारण ही तुम्हे ऐसा काम करने की वुरी सलाह दी गई है। और तुमने भी उस सलाह को मान लिया! लेकिन मेरा क्या? मैं तो मरने को तैयार हो गया। चलो, जहातक ले जाना चाहो, मै तैयार हू!"

रावण वहुत खुश हो गया। मारीच का आलिगन करके वोला, "हा भई, अव तुम सही रास्ते पर आये।"

× × ×

दोनो जने गगनगामी रथ पर सवार हुए और रथ दडकारण्य की ओर आकाशमार्ग से चलने लगा। कई नगरो, पहाडो, नदियो और राज्यो को उन्होंने पार किया। फिर वे दडकारण्य के ऊपर उडने लगे। केले के वाग के वीच राम का छोटा-सा आश्रम उन्हें दिखाई देने लगा।

रावण ने विमान को नीचे उतारा और मारीच को वताया, "देखो, वह राम का आश्रम मालूम होता है। जैसा मैंने वताया है, वैसे ही करो। सव याद है न?"

मारीच तवतक अपना असली रूप छिपाकर माया-मृग वन गया था।

उस मायामृग के रूप का क्या वर्णन करें। उसके अग-अग में विशेपता थी। रग-विरगे इद्र-धनुप की भाति उसका शरीर दमकता था। सोना, चादी, हीरा और माणिक आदि के समान उसकी खाल चमकने लगी। "कनकदेह मनिरचित" ऐसे अदभुत लावण्यवाले हिरन को कभी किसीने देखा न था। आश्रम के वहुत पास जाकर आगे-पीछे, इधर-उधर वह छली-मृग घूमने लगा। कभी चलता, तो कभी वैठता। कभी उछलकर भागने लगता तो कभी चुपके-से घास चरने लग जाता। अन्य मृगो के झुड में कभी-कभी शामिल हो जाता, तो दूसरे असली मृग उसे सूघकर कुछ शका करने

लग जाते। उस समय वह चतुराई से अलग हो जाता।

सीता अपने आश्रम में फूल तोड रही थी। एकाएक उनकी दृष्टि इस कपटी हिरन पर पडी। उसके रूप और लावण्य से वह ऐसी मुग्ध हो गईं कि अपनी आखें उसपर से हटा न सकी। मृग भी अब इधर-उधर दौडकर, खडे होकर, देखकर अपनी छवि विशेष रूप से प्रदर्शित करने लगा।

"राम, जल्दी से आना, लक्ष्मण तुम भी आओ। जरा देखो तो सही! हमारे आश्रम के बिल्कुल पास ही कैसा सुदर हिरन खेल रहा है। कहीं भाग न जाय! जल्दी आओ दोनो।"

राम-लक्ष्मण दौडकर आये और मायामृग को देखकर विस्मित हो गये।

लक्ष्मण को कुछ सदेह हुआ, उनको यहातक लगा कि यह राक्षस कही मारीच ही न हो! क्योकि बहुत वर्ष पूर्व मारीच हिरन का रूप धरकर छिपा रहता था और जो जगल में शिकार खेलने आते थे उन्हें मारकर खा जाया करता था। लक्ष्मण ने कहा, "इस मृग का रूप स्वाभाविक नही मालूम पडता। यह अवश्य ही कृत्रिम है। इसमें कुछ छल हो सकता है।"

लक्ष्मण की बात पर सीता ने ध्यान न दिया। उस माया-मृग पर से सीता की दृष्टि अथवा मन किसी दूसरी चीज पर खीचना असभव था। सीता राम से कहने लगी, "सुनिये, किसी तरह भी इस मृग को पकड लाइए। इससे यहा आश्रम में हमारा दिल बहल जायगा। आजतक हम लोगो ने अपने राज्य में अथवा वनो में जितने प्राणी देखे, उन सबसे अधिक सुदर है यह। वह देखिये, कैसा मन लुभानेवाला रग है उसका! कैसे-कैसे करतब दिखा रहा है!

"अब तो हमारे अयोध्या लौटने के अधिक दिन नहीं रहे हैं। मैं सोच ही रही थी कि यहा से कौन-सी अनोखी वस्तु अयोध्या ले जाय। बस, अब इस मृग को मैंने देख लिया। भरत भैया को मैं इसे भेंट करूगी। उन्हें यह बहुत ही पसद आयगा।"

सीता ने देख लिया कि मृग को पकड लाने के लिए लक्ष्मण को बिल्कुल

उत्साह नही है, इसलिए उन्होने सीधे राम से ही कहना शुरू किया कि किसी-न-किसी उपाय से उस मृग को वह अवश्य पकड लावें।

हमारे वधु-वाधवो में से जव कोई हमारा काम करने से इन्कार कर देता है, तो वह हमें चाहे कितना ही प्यारा क्यो न हो, हम उसपर क्रोध करने लग जाते हैं। सीता लक्ष्मण से चिढने लगी। राम से वोली, "देखिये, उसके शरीर से सोना चमक रहा है। चादी की विंदिया कितनी सुदर लग रही हैं। यह पकडने में भी न आये तो भी इसपर वाण चला दीजिये। इसका चर्म ही हम अयोध्या ले चलेंगे। नीचे विछायेंगे तो कितना सुदर लगेगा! देखो, वह भाग रहा है! यहा से निकल जाय उससे पहले या तो जीवित अथवा मरा यह मृग मुझे जरूर चाहिए। उसके सींग देखे आपने? मुझपर अप्रसन्न न हो। मेरी प्रार्थना स्वीकार करें।"

सीता की असाधारण इच्छा देखकर राम ने सोचा—क्या हानि हो सकती है? यह यदि सच्चा मृग हो तो हम सवको आनद ही मिलेगा। यदि कोई राक्षस छल कर रहा हो तो उसे मार डालूगा। सीता की एक मामूली-सी इच्छा क्यो न पूरी करू? यह सोच लक्ष्मण से वोले, "भाई लक्ष्मण, मेरे धनुप-वाण लाकर देना। चिंता न करो। सीता की रक्षा ध्यान से करते रहना। यदि कोई राक्षस हमें धोखा देना चाह रहा होगा तो जैसे वातापि को अगस्त्य ने खत्म किया था, वैसे ही मैं भी इसे सीधे यमलोक पहुचा दूगा। यदि वैसा न हो और यह सच्चा मृग ही हो तो और भी अच्छा।"

लक्ष्मण की तनिक भी इच्छा न हुई। फिर भी वडे भाई के आदेश का उल्लघन कैसे करते? चुपचाप धनुप-वाण लाकर राम के हाथ में पकडा दिया।

राम ने लक्ष्मण से एक वार फिर कहा कि सीता का अच्छी तरह ध्यान रखना। वन में कभी भी कुछ हो सकता है। खूब सावधान रहना। ऐसा कह-कर रामचद्र वहा से हिरन के पीछे-पीछे चलने लगे। मायामृग ने पहले तो विल्कुल पास रहकर राम को धोखा दिया। जव उसे पकडने की राम की आशा वढ गई तो वह उन्हें खूव दूर खीचकर ले गया, जैसे नियति आदमी को

कही-का-कही ले जाती है।

कभी वह धीरे-धीरे कदम उठाता था तो कभी रुककर राम की ओर देखता था। कभी अपने चारो खुरो को पेट से चिपकाकर खूब जोर से छलाग मारता हुआ जगल के भीतर छिप जाता था और थोडी देर छिपकर फिर किसी ऊची जगह पर खडे होकर दिखाई देने लगता था। कभी इतना निकट आ जाता कि राम सोचते कि बस अब इसे हाथ से ही उठा लूगा। पर दूसरे ही क्षण वह बहुत दूर भाग जाता। इस प्रकार काफी समय बीत गया। मारीच ने अपने मन को मृत्यु के लिए तैयार कर लिया था। राम पीछा करते-करते थक गये। उन्होने सोचा कि अब तो इसपर तीर चला ही देना चाहिए। यह हाथ तो आता ही नही। जैसे ही राम का बाण हिरन के लगा, वह बडे जोर से, बिल्कुल श्री रामचद्र की आवाज मे चिल्ला उठा, "हाय सीता ! हाय लक्ष्मण !" उसका मायारूप नष्ट हो गया। उसकी जगह बहुत ही लबे-चौडे शरीरवाला राक्षस, जिसके शरीर से खून की धारा बह रही थी नीचे गिरा और तडपकर मर गया।

अब राम चौके। सोचने लगे, "लक्ष्मण ने बिल्कुल ठीक कहा था। यह तो बडा धोखा हो गया ! अब मेरी आवाज सुनकर सीता चिता के मारे पागल हो जायगी। फिर भी कोई डर नही। लक्ष्मण तो उसके पास है ही। लक्ष्मण के रहते किसी बात का भय नही। मेरे लक्ष्मण जैसा दूसरा कौन हो सकता है ! उसके जैसा सहायक और किसको मिल सकता है ! सचमुच मै बडा ही भाग्यवान हू।"

बेचारे राम यो मन मे लक्ष्मण के प्रति अभिमान और प्रेम का अनुभव करने लगे, किंतु हाय, उसी समय लक्ष्मण आश्रम मे सीता के मुह से बहुत ही कडुवे वचन सुन रहे थे ! सब कुछ विधाता का खेल था ! और राम को किसी बात का पता न था !

: ४७ :

सीता-हरण

सीता ने राम की आवाज सुनी और सुनी—"हा सीते, हा लक्ष्मण !" की पुकार। उसने सोच लिया कि हो-न-हो, राम किसी भयकर विपत्ति में फस गये। आधी में जैसे केले का पेड कापता है, सीता चिता से वैसे ही काप गई। लक्ष्मण से बोली, "लक्ष्मण, सुन रहे हो कि नही ? खडे क्यो हो, दौडकर देखो, भाई को क्या हुआ है।" उनका डर बढता गया। लक्ष्मण से फिर बोली,"मेरे प्रियतम की पुकार है। लक्ष्मण जाओ, देखो कि उन्हें क्या हुआ। उन्हे कुछ हो जायगा तो मै मर जाऊगी। जल्दी जाओ, देर न करो।"

लक्ष्मण चुपचाप खडे रहे।

"मेरे पति किसी विपदा में फसे हैं। कितनी जोर-से चिल्ला उठे थे। क्या तुमने सुना नही ? जाते क्यो नही ?" सीता ने फिर पूछा।

लक्ष्मण फिर भी चुप ! वह राक्षसो की अनेक कपट विद्याओ को समझते थे।

"तुम्हारे भाई राक्षसो के बीच फस गये हैं। दौडकर उन्हे बचाने के बदले यहा क्यो खडे हो ?" वैदेही ने लक्ष्मण से कडककर पूछा।

जानकी के क्रोध का पार न रहा। वह चिल्लाकर बोली, "अरे सुमित्रा के लडके, तू मेरा वैरी बन गया क्या ? अबतक इतना ढोंग करता रहा ! मालूम होता है कि तू इसी प्रतीक्षा में था कि कब राम मरता है, और कब उसकी स्त्री तुझे मिलती है ! अरे दुष्ट ! राम का आर्तनाद सुनकर भी पत्थर की तरह यहा खडा है ! हे पापी लक्ष्मण, अब मैंने तुझे पहचाना है !"

शूल से भी तीखे इन शब्दो को सुनकर लक्ष्मण ने हाथो से अपने कानो को बद कर लिया।

सीता तड़प रही थी। आसुओ से उनका सारा शरीर भीग गया था।

लक्ष्मण धीमी आवाज में और कुछ रुक-रुककर मिथिलेश कुमारी, राम की देवी सीता से बोले, "हे वैदेही, देव, असुर, राक्षस और मनुष्यो में तुम्हारे पति श्रीराम जैसा पराक्रमी कोई नही। तुम यह जानती ही हो। राम का कोई कुछ नही बिगाड़ सकता। वह अभी विजयी होकर लौटते हैं। मेरी बात पर विश्वास करो। तुमको मैं अपनी मा समझता हू। अपनी बुद्धि को खोओ मत। डरो भी मत। हमारे राम को कोई राक्षस, कोई पक्षी, कोई जानवर या कोई पिशाच मार नही सकता। तुम मेरे बारे में बुरा-भला न कहो। मा, राम के बल को मैं जानता हू। तीनो लोको में राम को कोई नहीं जीत सकता। जरा धीरज धरो। भैया अभी लौटते हैं। मरे हुए हिरन को लेकर वह आयेंगे। उन्हें तुम अवश्य देखोगी। यह आवाज, जो अभी सुनाई दी, भैया की नही थी। मेरी बात मानो, यह किसी राक्षस का छल मालूम होता है। तुम धोखे में न आओ। घबड़ाना छोड़ो। राम ने तुम्हें मुझे सौंपा है। तुम्हें अकेली छोड़कर मैं यहा से नही जा सकता। यह असभव है। जनस्थान के सारे राक्षसो का भैया राम ने अकेले ही खात्मा कर दिया है। उसीका बदला लेने के लिए राक्षस लोग तरह-तरह के जाल बिछा रहे हैं। हमें सावधान रहना चाहिए। मैं फिर से कहता हू, यह आवाज भैया की नहीं थी, किसी राक्षस की थी।"

पर सीता कहा माननेवाली थी! गुस्से से लाल-पीली आखें करके ऐसे बुरे शब्द, जो कभी मुह से निकालने न चाहिए थे, लक्ष्मण को सुनाने लगी, "अरे दुष्ट, अब बहाना करने लगा है! भाई को जान-बूझकर मरने दे रहा है। हे नीच, पापी, तेरे-जैसे पर मैंने और मेरे पति ने विश्वास किया! अब तू खुश हो रहा है। सोचता है कि मैं तेरे वश में हो गई! अब मैं समझी कि हमारे साथ तू क्यो वन चला आया। हे पापी, यह तुझे किसने सिखाया? जरूर भरत ने ही बताया होगा। तुम सब मेरे पति के दुश्मन हो, दुश्मन! यह नही सोचा कि मैं कभी तेरी ओर आख उठाकर भी नहीं देखूगी। मैं राम की भार्या हू। उनके मरने के बाद एक क्षण भी जीवित न

रहूगी। यह तू देख लेना।"

स्वभाव में आग के समान रोषवाले लक्ष्मण हाथ जोडकर बोले, "हे मा, हे देवि, जनक-नदिनी, तुम्हारे मुह से ये कैसे शब्द सुन रहा हू। ऐसा लग रहा है, मानो कोई गरम लोहे की शलाका मेरे कानो में घुसेड रहा है। तुम जो मेरे बारे में सोचती हो, वह एकदम असत्य है, झूठ है। देवताओ की कसम, मुझपर शक न करो। आज मैंने तुम्हारे अदर स्त्रियो की बुद्धिहीनता देखी है। मेरे ऊपर आरोप लगाने की तुम्हें खूब सूझी! मालूम होता है, कोई बडा अनर्थ होनेवाला है। तुम्हारे मुह से ये जो अनुचित शब्द निकले, उसका फल तुम्हें मिले बिना कैसे रहेगा?"

यह सुनकर सीता ने डाटकर कहा, "राम की आवाज जिस दिशा से आई, वहा जाता है या नही? व्यर्थ की बातें क्यो बनाता है? तू नही जाता तो मैं अभी मर जाऊगी। आग जलाकर उसमें कूद पडूगी, गले में फासी लगा लूगी, गोदावरी में डूब मरूगी, पहाड से नीचे कूदकर जान दे दूगी, जहर पीकर प्राण दे दूगी। सोचता क्या है?"

सीता फिर चीखने-चिल्लाने लगी। यह लक्ष्मण को असह्य हो गया। सीता को नमस्कार करके बोले, "मा सीते, मैं जाता हू। तुम्हारे कहने से भैया की आज्ञा का उल्लघन करके, तुम्हे अकेली छोडकर चला जा रहा हू। तुम्हारा मगल हो। वन के देवता तुम्हारी रक्षा करें। हाय, ये बुरे शकुन क्यो दिखाई दे रहे है। मेरे मन में ऐसी घबराहट क्यो हो रही है? मैं कुछ कह नही पा रहा हू। मैं वापस आकर तुम्हे भैया के साथ देख सकूगा कि नही? तुम ही मुझे धकेल रही हो तो मैं जाता हू।"

लक्ष्मण चल पडे। जाते-जाते अनेक बार मुड-मुडकर पर्णशाला की ओर देखते गये।

× × ×

राजकुमार लक्ष्मण सारे वैभव और सुख के जीवन को त्याग करके बडे भाई के साथ वन चले आये थे। सीता के भयकर आरोपो से उन्हें जो

सताप हुआ, उसका वर्णन करना कठिन है। उनका दिल टूट गया। जिस रास्ते से राम गये थे, उसी रास्ते वह चल पडे।

रावण तो ताक में बैठा ही था। झट काषाय वस्त्र धारण किया, हाथ में भिक्षापात्र लिया और हृदय में नीच-पाप-विचार रखकर मुह से वेदमत्रो का उच्चारण करता हुआ राम की पर्णशाला के द्वार पर पहुचा।

सीता, अकेली कुटिया के द्वार पर, राम का ध्यान करती हुई खडी थी। रावण ने देवी को देखा। देखा क्या, उसकी बहन शूर्पणखा ने जो विकार उसके मन में पैदा कर दिया था, वह सीता के सौंदर्य को देखते ही विकराल रूप में बढ गया। उस नीच ने तय कर लिया कि वह सीता का अपहरण करके ही रहेगा।

काषाय वस्त्रधारी, हाथ में कमडलु और त्रिदड लिये, परिव्राजक, कपटी सन्यासी सीता की कुटिया के सामने आकर खडा हुआ। राजा जनक की पुत्री ने शास्त्रो में बताये गये शिष्टाचार के अनुसार आगतुक का सत्कार किया। उसको बैठने के लिए आसन दिया और उसके सामने फल और कद एक पत्ते पर रख दिये।

उस काल में शिष्टाचारो का पालन करना अनिवार्य कर्तव्य समझा जाता था। उससे कोई चूकता न था।

कपटी सन्यासी देवी सीता के बिछाये आसन पर बैठ गया। बैठकर वैदेही को भली प्रकार निहारने लगा। सीता के प्रति उसकी वासना बढती गई।

राक्षस होने पर भी सीता के प्रति रावण की चाह केवल पाशविक न थी। महापापी होने पर भी, कच्चा मास खानेवाले कुल में पैदा होने पर भी, उसने यही सोचा कि पहले सीता की सम्मति लूगा, उससे विवाह करूगा और उसे अपने हृदय की और सारे वैभवो की रानी बनाऊगा। ऐसी सुदर रमणी राम के साथ वनवास करते हुए क्या सुख पाती होगी! मुझ जैसे पराक्रमी और कुबेर से भी अधिक धनी राजा जब इससे शादी करने की प्रार्थना करे तो वह इन्कार भी क्यो करेगी? वह तो खुशी से मान जायगी। राम के लिए यही उपयुक्त दड होगा।

मूर्ख तथा घमडी रावण ने सीता को भी उन सामान्य स्त्रियो की तरह ही समझा था, जो उसके धन को देखकर मोहित होकर उसके वश हो गई थी।

आसन पर बैठकर पत्ते पर जो फलादि रखे गये थे, उन्हें चखते हुए रावण निर्लज्ज भाव से सीता के सौंदर्य की प्रशसा करने लगा। बोला, "हे सुदरी, तुम कौन हो ? डरावने राक्षसो से और जानवरो से भरे इस वन में अकेली कैसे रहती हो ?"

शिष्टाचार के अनुसार सीता भी प्रश्नो के उत्तर तो देती जाती थी। पर उनका एक-एक क्षण प्रतीक्षा में बीत रहा था कि दोनो राजकुमार कब लौटते है! राक्षस भी धीरे-धीरे अपना परिचय देता जा रहा था। उसने अपना नाम बताया और अपने कुल की महिमा का गान करने लगा। अपनी शक्ति और ऐश्वर्य का उसने विस्तृत वर्णन किया। अपनी खूब प्रशसा करके वह अब राम के बारे में हलकी बातें करने लगा। अत में उसने कहा, "हे कामरूपिणि, तुम मेरी रानी बन जाओ। हम तुम बडे आराम से लका में रहेगे।"

देवी सीता ने समझ लिया कि वह अचानक कितनी बडी विपत्ति में फस गई है। वह महापतिव्रता और धर्मिष्ठा थी। राजर्षि जनक की पुत्री थी। इस कारण घबराई नहीं, उल्टे गरजकर रावण से बोली, "हे नीच, दुष्ट, मरने आया है क्या ? जान बचानी हो तो दूर हो जा, इसी घडी निकल जा यहा से।"

राक्षस-राज रावण को ऐसी बातें सुनने की आदत नही थी। उसे बडा गुस्सा आया। सन्यासी का वेश वहीं उतार फेंका और अपने असली विकराल रूप में उठ खडा हुआ। सीता के केशो को एक हाथ में पकड लिया और दूसरे हाथ से उन्हें उठाकर तैयार खडे रथ में बिठाकर आकाश-मार्ग से जाने लगा।

"हाय मेरे नाथ! हे राम, तुम कहा हो ? हे लक्ष्मण, हे उत्तम भक्त मैंने क्यो हठ करके तुम्हे भेज दिया ?" सीता जोर-जोर से चिल्लाकर रोने

लगी । राक्षस ने उन्हें एक हाथ से पकड रखा था ताकि गिर न पड़े । हरेक पेड-पत्ते को, पशु-पक्षियो को पुकार-पुकारकर कहने लगी—"तुम राम को बता देना कि सीता को रावण आकाश-मार्ग से उड़ा ले जा रहा है ।" गीधराज जटायु एक पेड पर अर्ध-निद्रा में बैठा हुआ था । उसने तेजी से भागते हुए रथ को देख लिया । सीता की आवाज भी सुनी और पहचानी । सीता ने भी जटायु को देखा ।

"हे पक्षिराज, तुम क्या कर सकते हो ? लका का राजा रावण मुझे पकडकर ले जा रहा है । इस क्रूर राक्षस के पास तरह-तरह के हथियार है । तुम उसके साथ मुकावला करोगे तो तुम्हे वह खत्म कर देगा । इसलिए मुझे बचाना तुम्हारे लिए शक्य नही है । मेरे राम को बता देना कि रावण सीता को ले गया ।" यो दीन स्वर में सीता जोर से चिल्लाई ।

जटायु ने भी रथ में बैठे रावण को देखा । बोला, "हे लकेश, रुक जाओ । मेरी बात सुनो । मैं भी एक जमाने में तुम्हारी ही तरह एक राजा था । इस-लिए मेरा कहना मानने में तुम्हारे गौरव की कोई हानि नही हो सकती । तुम यह जो कर रहे हो, वह सर्वथा निंदनीय है । विशेषकर एक राजा के लिए तो ऐसा करना बिल्कुल अनुचित है । अबलाओ की रक्षा करना राजाओ का काम होता है । एक राजकुल की स्त्री का तुम अपहरण कैसे कर सकते हो ? सीता को छोड दो, नही तो उसके क्रोध से तुम भस्म हो जाओगे । तुम्हें मालूम नही, सीता कौन है । तुमने काले नाग को अपनी गोद में बिठाया है । काल का पाश ही तुम्हारे गले में पडा है, यह समझो । अरे दुष्ट, अब भी तू बच सकता है । अपने से न सभाला जा सकनेवाला बोझ तूने अपने कधे पर उठा लिया है । तू उसके नीचे दबकर मर जानेवाला है । जहर पीकर कोई जिंदा रह सका है भला ! मैं बहुत ही बूढा हू । तू नौजवान है और कवच पहने हुए है । तेरे पास हथियार भी हैं । किंतु मेरे जीवित रहते तू वैदेही को कदापि नहीं ले जा सकता । जब राम आश्रम में नही थे तब छिपकर तूने यह नीच काम किया । तुझे राम पर क्रोध हो तो उनसे लड । पर मैं जानता हू, तू कायर है । तो आ, मेरे साथ लड । मेरे जीते-जी राम

की पत्नी को तू नहीं ले जा सकता। तू रथ में बैठकर अपनेको सुरक्षित समझता है क्या ? तेरे दसो सिरो को काट-काटकर मै नीचे गिरा सकता हूं। जरा ठहर तो।"

बाधा आ जाने से रावण को बडा गुस्सा आया। उसने झट पक्षी पर आक्रमण कर दिया।

राक्षस और गीधराज के बीच घोर युद्ध छिड गया। ऐसा लगता था, मानो आधी और बादलो में सग्राम हो रहा हो। पखवाले पर्वत के समान जटायु ने अपनी सारी शक्ति लगाकर युद्ध किया। रावण बहुत ही तेज बाणो की वर्षा जटायु पर करता रहा। गीधराज ने बाणो की परवा न करके रावण के शरीर को अपने पजो से फाड डाला। बाणो की चोट की असह्य वेदना सहन करता हुआ गीध राक्षस के साथ लडता रहा। एक तरफ उसकी शारीरिक वेदना, दूसरी तरफ सीता का रोता-बिलखता चेहरा। गीधराज के हृदय में भी बडी वेदना हुई। अपने सीमित शरीर-बल को वह जानता था। आखिर कितनी देर रावण से लड सकता था ! अपनी सारी शक्ति उसने लगा दी। रावण के शरीर को अपने नखो से चीर डाला, पखो से उसके रत्नजटित मुकुट को नीचे मिट्टी में गिरा दिया, पजो मे उसके धनुष को तोड दिया।

रावण ने दूसरा धनुप उठाया और बाणो की बौछार कर दी, पर पक्षिराज ने उसके दूसरे धनुप को भी तोड डाला और पखो को जोरो से फडफडाकर अपने शरीर पर लगे बाणो को निकाल फेंका।

लेकिन जटायु जान गया था कि अब उसकी मृत्यु निश्चित है। एकबारगी अपनी सारी शक्ति लगाकर उसने रथ पर आक्रमण कर दिया। रावण का रथ चकनाचूर हो गया। सारथी आहत हो गया। पैशाचिक मुखवाले खच्चर भी जटायु की चीर-फाडो से मर गये। रावण रथ से नीचे गिर पडा। अब उसके पास न रथ था, न सारथी। यह देखकर भूतगण भी 'वाह, 'वाह' करके गीधराज की सराहना करने लगे।

वृद्धावस्था और बेहद थकावट के कारण जटायु से सास भी नहीं ली

जा रही थी। वह क्षणभर के लिए रुका। रावण ने इस मौके का लाभ उठाया और बिना रथ के ही सीता को लेकर आकाश में उडकर जाने लगा। यह देख जटायु गरजा, "अरे! दुष्ट, चोर, नीच, भाग जाना चाहता है। तेरी तो मौत ही आ गई है। ले, भागने से पहले मेरे साथ लडते-लडते अपने भाई खर की तरह मर। तभी अच्छी गति पायगा। कायर और चोर की तरह भाग मत।"

ऐसा कहकर जटायु रावण के कंधे पर चढ़ बैठा। अपनी चोंच से और पंजो से रावण का उसने बुरा हाल कर डाला। रावण के तो बीस भुजाएं थी। उनमें से कुछ भुजाओ से उसने सीता को पकड रखा था। शेष भुजाओ से जटायु को हटाने का प्रयत्न करता जाता था। जटायु ज्यो-ज्यो उसकी भुजाओ को काट-काटकर गिराता था, त्यो-त्यो नई-नई भुजाए उगती जाती थी। बहुत समय तक इस प्रकार की लडाई होती रही। आखिर रावण ने अपनी कमर में लटकती हुई तलवार से जटायु के पंखो को और टांगो को निर्दयता से काट डाला। बेचारा बूढा पक्षी अब क्या कर सकता था! अधमरा होकर नीचे गिर पडा।

जानकी उछलकर पक्षिराज के पास गई। बडे प्यार से उसका आलिंगन किया और, बोली, "हे गीधराज, तुम तो मेरे पिता के समान थे। राम ने भी तुम्हें अपने पिता दशरथ का ही दूसरा रूप समझा था। हाय, मेरे कारण तुम्हारी यह गति हो गई।" सीता जटायु की दशा देखकर बडी दुखित होकर रोती हुई बोली, "राजा दशरथ के समान ही तुमने युद्ध किया।" लेकिन रावण बडा खुश हुआ। वह सीता को पकडने दौडा। बेचारी वैदेही इधर-उधर भागने की चेष्टा करने लगी। पेडो के तनो को पकडकर राम और लक्ष्मण को पुकारने लगी। रावण ने उन्हें जबरदस्ती पकड लिया और गगन-मार्ग से लंका की ओर उड चला।

रावण के शरीर का रंग काले बादलो की तरह था। उसके साथ सीता का रूप बिजली की तरह चमक रहा था। जिस समय रावण सीता को उठाकर उडता जा रहा था, ऐसा प्रतीत होता था मानो घने जंगल में दावानल

शुरू हो गया हो। देवी सीता के शरीर की कांति से उडता हुआ रावण एक अनर्थ-सूचक धूमकेतु की तरह दिखाई देता था।

इस प्रकार देवी सीता का रावण के हाथो अपहरण हुआ। उस समय भगवान् सूर्य का तेज कम हो गया। सब जगह अधकार छा गया। सभी प्राणी रो रहे थे। "हाय, धर्म का नाश हो गया। सत्य का लोप हुआ। नीति, न्याय, दया, धर्म, अब कुछ न रहा।" इस प्रकार की बातें सबके मुह से निकल रही थी।

नीचे खडे वन के मूक प्राणियो की आखो से भी आसुओ की धारा बहने लगी।

गगन-पथ से रावण निर्दय भाव से माता सीता को लेकर तेजी से अपने विनाश की ओर जा रहा था। देवी के केशो से फल नीचे गिर रहे थे। मालूम होता था, मानो वह रावण की सारी सपत्ति के गिरकर लोप हो जाने की पूर्व-सूचना हो।

: ४८ :

सीता का बंदीवास

बहुत रोने और क्रोध के कारण सीता की आखें लाल हो गई थी। उन लाल-लाल नेत्रो से उहोने रावण को देखा और बोली, "अरे नीच, अपने पराक्रमो का तूने खूब बखान किया है। अपने नाम और कुल की खूब महिमा गाई है। अपनी शूरता का भी बडा सुदर प्रदर्शन किया। अरे म्लेच्छ, शरम नही आ रही तुझे अपने कृत्य पर। जब आसपास कोई न था, मौका देखकर एक अबला को तू उठाकर भाग आया। तेरी वीरता मैंने देख ली। डर के मारे राम के सामने न आकर तू चोरी से मुझे उठाकर ले जा रहा है।

"अरे धूर्त्त, तेरा पराक्रम यही है कि एक बूढे पक्षी को, जो मेरी रक्षा करना चाहता था, तूने मार डाला। यह भला किसी वीर का काम हो सकता है। इसे तो तेरे जैसा कायर ही कर सकता है। धिक्कार है तुझे और तेरे कुल को।

"तूने जरा सोचा भी है कि इस प्रकार मुझे ले जाने का क्या परिणाम हो सकता है ? तू तो अब यही समझ ले कि तेरी आयु समाप्त हो गई है। जल्दी ही मेरे प्रियतम के शर तेरे प्राणो को हर लेंगे। एक बार तू मेरे स्वामी के सामने आ जाय तब देख लेना कि क्या होता है। यह कभी मत सोच कि तू राम से बच सकेगा। तेरा नाश अवश्यभावी है। अपने इस कार्य से तुझे कोई लाभ न होगा। मुझे पाने की तेरी आशा किसी भी हालत में सफल नहीं हो सकेगी। मै प्राण दे दूगी, पर तेरे वश में कभी नही आऊगी। मेरे प्यारे राम के क्रोध से तू बच नही सकता। शीघ्र ही तू नरक-लोक की वैतरणी नदी को देखनेवाला है। समझ ले कि आग में तपाई गई लोहे की तप्त मूर्ति तेरी प्रतीक्षा कर रही है। उसका तू आलिगन करेगा। लोहे के काटोवाला पेड

भी तबतक यमलोक में तेरे लिए तैयार होगा। देखते-देखते ही जनस्थान के चौदह सेनानायकों के चौदह हजार सैनिकों को मेरे स्वामी ने मार गिराया था। तुझे वह थोड़े ही छोड़ देंगे।"

इस प्रकार देवी सीता लंकाधिपति रावण को डाटती थी, धमकाती थी, और चेतावनी देती जाती थी कि उसके कुकर्म का क्या नतीजा निकलनेवाला है, किंतु रावण ने सीता की एक न सुनी। आकाश में वह तीर की तरह तेजी से वैदेही को लिये भागा जा रहा था।

कई पहाड़ों के ऊपर से रावण गुजरा। कई नदियों को उसने पार किया। एक पहाड़ के ऊपर जानकी ने कुछ लोगों को देखा। झट उन्होंने अपना उत्तरीय उतारकर उसमें अपने कुछ आभूषणों को बांधकर ऐसे पटक दिया कि वह उन लोगों के बीच ही में गिरे। उन्होंने सोचा कि राम अवश्य उन्हें ढूंढते हुए उस तरफ आयेंगे और इन आभूषणों तथा उत्तरीय को अवश्य पहचान लेंगे। उन्हें यह भी पता चल जायगा कि कोई उन्हें उसी मार्ग से ले गया होगा। पहाड़ के ऊपर कुछ वानर थे। सीता ने उन्हें देख लिया। वानरों ने भी जोर-जोर से रोती-बिलखती सीता को देख लिया।

रावण पंपा नदी के ऊपर से उड़ा और लवण सागर को पार करके लंकापुरी पहुंचा। मनोव्यथा से तड़पती सीता को लेकर उसने अपने अंतःपुर में प्रवेश किया। उस मूर्ख ने अपने मन में सोचा होगा कि बस, ले आया सीता को। अब तो वह मेरी ही है। पर उस मूर्ख को यह पता न था कि काल भगवान् को ही वह अपने महल के अंदर ले जा रहा है।

पिशाचियों जैसी डरावनी राक्षसियों को बुलाकर रावण ने कहा, "देखो, इसकी अच्छी तरह रक्षा करना। मेरी अनुमति के बिना कोई भी, स्त्री या पुरुष, इसके पास न पहुंचे। यह जो कुछ भी मांगे, फौरन लाकर देना। वस्त्र, आभूषण, सोना आदि चाहे कितने ही मूल्यवान हों, इन्कार न करना। इसके चित्त को खूब प्रसन्न रखना। मेरे मान और सत्कार से कम इसका न किया जाय। यदि मुझे पता चला कि इसे किसीने किसी प्रकार से भी तंग किया है तो तत्काल ही उसे मरवा डालूंगा। सावधान रहना।"

सीता को अंतःपुर के एक भाग में इस प्रकार बंदी करके रावण सोचने लगा कि अब आगे क्या किया जाय। अपने विश्वस्त और चतुर गुप्तचरों को बुलाकर उसने आदेश दिया कि वे निडर होकर जनस्थान पहुंचें और राम के एक-एक कार्य का पता रखें। उसे अपना परम शत्रु समझें। किसी-न-किसी प्रकार से उसे मार डालना होगा। जबतक राम जीवित रहेगा, मैं चैन की नींद नहीं ले सकूंगा।"

सीता ने यह देख लिया था कि वह जिस प्रदेश में है, उसके चारो ओर समुद्र है, किंतु उन्हें यह अंदाज न हो सका कि पंचवटी और इस प्रदेश में कितनी दूरी है। उनका दृढ विश्वास था कि उनके प्राणप्रिय राम किसी-न-किसी प्रकार उन्हें इस कारावास से छुडा लेंगे। दुःख की अति भयंकर अवस्था में भी राम के प्रति अपनी श्रद्धा के कारण ही वह जीवित रह पाई। उन्होंने यह भी देखा कि रावण का व्यवहार एकदम पाशविक न था। उससे भी सीता को कुछ थोडी-सी सांत्वना मिली।

अपने गुप्तचरो को जनस्थान में राम की चहल-पहल पर निगाह रखने के लिए भेजकर रावण फिर अंतःपुर में सीता के पास पहुंचा। शोकमग्ना बेचारी वैदेही के आंखो से आंसुओ की धारा बह रही थी। रावण ने देखा कि उसकी राक्षस-दासियां अपना काम सावधानी से कर रही हैं। उसने सोचा कि जब सीता उसका वैभव पूरी तरह से देख लेगी तो अवश्य राम को भूल जायगी और उसकी रानी बनना स्वीकार कर लेगी।

राक्षसियो ने सीता को रावण के विशाल राज-भवन में खूब घुमाया। विभिन्न प्रकार की विशिष्ट वस्तुएं दिखाईं। रावण के समान संपन्न राजा दुनिया-भर में कोई दूसरा नही था। सीता को सभी कुछ उन लोगों ने दिया। उसके ऐश्वर्य की किसी और के ऐश्वर्य से तुलना नहीं हो सकती थी। जहां देखो, वहां मोती, प्रवाल, सोना और माणिक बिखरा पडा था। राजमहल के द्वार, खिडकियां और आसन सोने के बने थे। अद्भुत मणियां उनमें जडी थी। बहुमूल्य रेशमी आवरण सब जगह दिखाई देते थे। महल की कारीगरी मन को चकित करती थी। नाना प्रकार व नाना आकार के

मडप, विमान और चबूतरे थे। दास-दासियो की गिनती करना असभव था। राज्याधिकार और अपरिमित धन से जो कुछ पाना सभव था, वह सब लका-विपति रावण के भवन में सीता ने देखा किंतु पतिव्रता का मन किसी भी वस्तु की ओर आकर्षित न हुआ। रावण ने अपनी सपूर्ण सपत्ति सीता को दिखा डाली। अपनी विशाल सेना भी दिखाई।

पर सीता की निगाह में तो रावण बहुत ही निम्न कोटि का व्यक्ति था। उसके विषय में अपनी राय वह पहले ही बता चुकी थी। फिर भी मूर्ख रावण उन्हें अपना सैन्य-बल विस्तार से समझाते हुए कहने लगा, "सीते, मेरी हरेक चीज की तुम्ही मालकिन बनोगी। सबकुछ अपना ही समझो। मेरी अनेक पत्निया है। उन सबकी तुम पटरानी बनो। मेरा प्रेम तुम्हारे ऊपर न्योछावर है। मेरी प्रार्थना स्वीकार करो। मेरी पटरानी बन जाओ। चारो ओर समुद्र से सुरक्षित लका अजेय है। यहा किसीका भी प्रवेश नही हो सकता। देवासुरो में कोई भी मेरे समान वीर नही है। यह सबकोई जानते है। राज्य से निर्वासित एक अनाथ मनुष्य से भला तुम्हे क्या सुख मिलनेवाला है? तुम्हारे रूप के लिए तो मै ही योग्य हू। अपने यौवन को क्यो व्यर्थ गवा रही हो? राम को फिर से देखने की आशा छोड दो। तुम उससे अब कभी नहीं मिल पाओगी। यह निश्चय समझो। राम लका के पास कभी भी नही पहुच सकता। मेरा सारा राज्य तुम अपना समझो। मै और मेरे अधीन सारे देवगण तुम्हारे दास बनकर रहेंगे। मै तुम्हारा पटरानी का अभिषेक करा दूगा। तुम किसी भी प्रकार की कमी अनुभव नहीं करोगी। आज तक तुमने जो कष्ट अनुभव किये वे अपने किसी पूर्व-कर्मों के कारण थे। अब तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल हो जानेवाला है। लका का परिपालन तुम्हारे हाथों से होगा। कुबेर को जीतनेवाले लकाधिपति की प्रधान भार्या बन जाओ। हम दोनो पुष्पक विमान में बैठकर जहा की इच्छा होगी, वहां की सैर करेंगे। देखो, अपने सुदर बदन पर शोक की रेखाए न पडने दो। तुम्हें अब खूब प्रसन्न रहना चाहिए।"

रावण का अनर्गल प्रलाप सुनकर सीता और भी दु:खित हुई। अविरल

अश्रु-धारा उनकी आखो से वह चली। अपने आचल से उन्होने अपना मुह ढक लिया।

"सीते शरमा रही हो क्या? अरे, इसमें शरम की कौन-सी बात है? तुम मुझे पति मानने लगो। इसमें कोई पाप नही है। नियति के अनुसार परिस्थिति को स्वीकार करने में कोई दोष नही। शास्त्र में ऐसा ही बताया गया है। हे सुदरी! तुम्हारे चरणो पर अपना मस्तक रखकर मैं यह माग कर रहा हू। मुझपर दया करो। मैं तुम्हारा दास हू। राक्षसेंद्र महाराजा रावण अपने वैभव को भूलकर तुमसे याचना कर रहा है। आज तक मैंने कभी ऐसा किया नही।"

यो रावण सीता के सामने गिडगिडाने लगा। वह सोचता था कि सीता अवश्य मान जायगी। बुद्धि स्थिर हो तो कैसी भी विषम परिस्थिति में मनुष्य अपनेको बचा सकता है। शोक-पीडित सीता को अब रावण से बात करने में डर न रहा। एक तिनके को उन्होने अपने और रावण के बीच रखकर और उसकी ओर दृष्टि करके वह रावण से बोली, "अरे दुष्ट, तू जानता है, मैं कौन हू? तीनो लोको में राजा दशरथ का नाम सुविख्यात है। सत्य और धर्म के विधान के अनुसार राजा दशरथ ने वर्षो तक राज्य का पालन किया। उनके ज्येष्ठ पुत्र राम की मैं पत्नी हू। देवता के समान बली राम मेरे नाथ हैं। पुरुषो में वह सिह हैं। वह और उनके अनुज लक्ष्मण तुझे मारकर ही छोडेंगे। तू जानता नही क्या कि खर, दूषण और जनस्थान के अन्य राक्षसो का कैसा बुरा हाल हुआ? जैसे गरुड एक क्षण में सर्प को मार डालता है, मेरे स्वामी श्रीराम ने जनस्थान की तेरी सारी सेना को खत्म कर दिया। तूने देव और असुरो से अमरत्व पाया है, यह मैं जानती हू, किंतु मेरे पति से तू बच नहीं सकता। तुझे मिला वरदान श्रीरामचद्र के आगे काम न देगा। यज्ञ के समय खभे से बधे बकरे के समान तेरी स्थिति है। बचकर निकल कहा सकता है? राम चाहे तो समुद्र को भी सुखा सकते हैं। चद्रमा को आसमान से नीचे उतार सकते हैं। मुझे छुडाने के लिए वह सबकुछ करेंगे। यह तू सच मान। तेरे पाप से तू और तेरी लका नष्ट हुए बिना न रहेगी।

"मेरे पराक्रमी पति दडकारण्य में राक्षसो के वीच में ही रहते थे। उन्हें कभी डर का अनुभव नही हुआ। कोई राक्षस लडने आता था तो उसे तुरत मार डालते थे। तू क्या यह जानता नही है? तभी तो श्रीराम की अनुपस्थिति में चोरी से मुझे उठा लाया है। इसका फल तू अवश्य भोगेगा। तू अव कदापि नहीं वच सकता। तेरा विनाश-काल आ गया। तभी तो तेरी वुद्धि विपरीत हुई है।

"तू चाहता है कि मैं तुझे चाहने लगू। यह कभी नही हो सकता। हस कौए को कभी चाह सकता है? दुराचारी हवन-कुड के पास कैसे जा सकेगा? मुझे अपनी प्राण-रक्षा की चिंता नही रही। तेरी होने की अपेक्षा मैं अपना प्राण त्याग कर दूगी। मै तेरी वात कभी नही मानूगी।"

यह सुनकर रावण स्तव्ध हो गया, लेकिन फिर विचारकर वोला, "अच्छा, यह वात है तो तुम्हे मैं वारह महीने की अवधि देता हू। तवतक अपने मन को वदलने का प्रयत्न करो और मेरे साथ विवाह कर लेने का निश्चय कर लो, नही तो मेरेलिए भोजन वनानेवाले, वारह महीने पूरे होते ही, अगले दिन सुवह को भोजन में तुम्हे पकाकर मेरे लिए ले आवेंगे।"

इस प्रकार सीता को डराकर रावण सीता की राक्षसी दासियो को अलग वुलाकर कहने लगा, "इस स्त्री का घमड वहुत वढा-चढा है। किसी तरह इसे ठीक करना होगा। इसे अशोकवन में अकेली रखो। डराकर, धमकाकर, प्यार से, किसी भी प्रकार से इसे मनाने का प्रयत्न करो। हथिनी को वश में करने के लिए जिस तरह कई प्रकार के उपाय करने पडते है, उसी प्रकार भाति-भाति के उपायो से इसका मन भी वदलना पडेगा।"

इतना कहकर गुस्से के साथ रावण अत पुर से वाहर निकला और महलो की ओर चला गया।

राजा की आज्ञानुसार राक्षसी दासिया सीता को अशोक-वाटिका में ले गईं। यह रावण के महल का वहुत ही सुदर उद्यान था। पेडो पर कई प्रकार के पक्षी आकर वैठते थे। फूलो को देखकर जी खुश हो जाता था। नाना प्रकार के फल पेडो में लटक रहे थे। वहा सीता को एकात में

रख दिया गया। चारो तरफ अति भयकर राक्षसियो का पहरा था। उस कारावास में सीता सदा राम के ध्यान में इसी आशा के सहारे कि पराक्रमी राम और लक्ष्मण एक-न-एक दिन अवश्य लका पहुचेगे, और उसे छुडायेंगे, प्राण धारण किये दिन काटती रही। उन्हें पूरा विश्वास था कि राम दुष्ट रावण से बदला लिये बिना न रहेगे और वह फिर से राम के साथ आनद का जीवन व्यतीत कर सकेगी। राक्षसी दासिया वैदेही से कभी तो बहुत मीठी-मीठी बातें करती और कभी धमकातीं, डराती थीं, पर सीता ने उनके बहकावे में अपनेको कभी न आने दिया। इस प्रकार एक दिन नही, दो दिन नही, जनकसुता रामवल्लभा सीता ने महीनो तक कारावास में अनाथ और दुखी होकर दिन बिताये।

वानर-वीर हनुमान का समुद्र लाघकर सीता के पास पहुचना, सीता को दुखी देखकर गुस्से में उनका लकापुरी को जला देना और सीता को यह कहकर, कि "राम अवश्य ही आयेंगे, आप धीरज न खोयें", आश्वासन देना आदि कथा हम आगे पढ़ेंगे।

हमारे देश की सभी दुखी स्त्रिया देवी सीता की ही अश हैं। हमारे देश के पुरुषो को चाहिए कि वे हनुमानजी की तरह दुखी बहनो की मदद करें, उनके दुख को हल्का करने का प्रयत्न करें।

राम-लक्ष्मण को छोडकर अब हम बहुत दूर आ गये हैं। इसलिए हमें उनके पास चलना चाहिए।

: ४९ :

शोक-सागर में निमग्न राम

रामचद्र ने देखा कि वह धोखा खा गये। माया-मृग वास्तव में मारीच निकला। सीता के मन को लुभाकर उसने उनको बहुत दूर ले जाकर थका डाला था। जब राम के अचूक बाण से वह मरा तब उसके असली रूप का पता चला। मरते-मरते भी राक्षस ने चालाकी की। बिल्कुल उन्हीकी आवाज में आर्तनाद करके लक्ष्मण और सीता के नामो को पुकारते हुए वह मरा। राम इस कारण और चिंता में पड गये। सोचने लगे, "यह तो भारी धोखा हो गया। यदि लक्ष्मण यह समझकर कि मैंने ही विपत्ति में पडकर उसे पुकारा है, सीता को अकेली छोडकर चला आया तो अनर्थ हो जायगा। कही सीता को उठा ले जाने या उसे खा जाने के लिए ही राक्षसो ने यह कपट-भरी चाल न चली हो। सीता ने मेरी आवाज सुनकर लक्ष्मण को अवश्य ही मेरे पास दौडाया होगा। सियार बुरी तरह से चिल्ला रहे हैं। पक्षी और पशुओ के ढग भी अमगलसूचक प्रतीत हो रहे हैं। मेरे मन में धैर्य की जगह कपन हो रहा है। मुझे लगता है कि कुछ-न-कुछ अनिष्ट होनेवाला है।"

राम यो चितामग्न होकर जल्दी-जल्दी कदम उठाकर आश्रम की ओर जाने लगे। सामने से उन्होने लक्ष्मण को आते हुए देखा। बोले, "बस, मैंने जो सोचा था, वही हुआ!

"लक्ष्मण, यह तुमने क्या किया? सीता को अकेली छोडकर कैसे चले आये? अबतक तो निशाचर उसे अवश्य निगल गये होगे। तुमने बडी भारी भूल कर डाली! अब जानकी बच नही सकती।"—राम ने कहा। वह बहुत ही घबरा गये। बोले, "यदि वैदेही को मैं आश्रम में नही पाऊगा तो प्राण त्याग कर डालूगा। तुम अयोध्या लौटना और परिवारवालो को सारा हाल बताना। हाय, मेरी माता कौशल्या कितनी तडप उठेंगी! कैकेयी खुश होगी।

राक्षस लोग हमसे बदला लेने की ताक में ही थे। अबतक उन लोगो ने अवश्य ही सीता को मारकर खा लिया होगा। तुम क्यो उसे अकेली छोडकर चले आये ? मारीच के बहकावे में तुम क्यो आये ? अब मैं क्या करूगा ? अपनी सीता को अब नही देख पाऊगा। राक्षसो ने मेरे ऊपर विजय पा ली। मेरा मर जाना निश्चित समझो। तुम्हारे ऊपर मैंने भरोसा रखा। मैंने सीता को तुम्हें सौंपा था। तुमने बुरा किया, लक्ष्मण, बहुत बुरा किया।" राम के दु ख और घबराहट का कोई पार न था।

लक्ष्मण आसूभरी आखो से भाई की ओर देखकर बोले, "भैया, मैं लाचार हो गया। हम दोनो ने 'हा सीते! हा लक्ष्मण!' की पुकार सुनी। बस, सीता डर के मारे पागल-सी हो गईं। तडपने लगी। मुझे कहने लगी, 'जा, अभी राम के पास एकदम चलाजा। जल्दी-से निकलता है कि नही ?' मैंने उनको लाख समझाया कि यह राम की आवाज हो ही नही सकती। भैया को कोई जीत नही सकता। यह राक्षसो का धोखा है। भैया राम लडते-लडते ऐसा आर्त्तनाद कभी नही कर सकते। दीन होकर पुकारने में उनका मान कैसे टिक सकता है ? आदि-आदि, किंतु देवी सीता ने मेरी एक न मानी। मुझसे कहने लगी, 'तू राम का दुश्मन है, जो उनको मरने दे रहा है। तू चाहता है कि मैं तेरी हो जाऊ।' भैया, सीता ने मुझपर बडे गभीर आरोप लगाये और मुझे डराने लगी कि अगर उसी क्षण मै वहा से न निकल पडा तो किसी-न-किसी प्रकार से वह आत्म-घात कर लेगी। मैं लाचार हो गया। भैया, आप ही बताइये, मैं क्या करता ? मजबूर होकर वहा से मुझे चला आना पडा।"

राम ने उत्तर दिया, "लक्ष्मण, मैं तुम्हारी सफाई से सतुष्ट नही हू। सीता ने चाहे कुछ भी कहा हो, तुम्हें उसके पास से हटना नही चाहिए था। वह स्त्री ठहरी। डरना और उसके कारण कुछ-का-कुछ बोल देना उसके लिए स्वाभाविक था। तुम्हे उसका कहना नही मानना था। बडी भारी भूल हो गई। मैं नही सोचता कि अब हमें सीता मिलनेवाली है।"

दोनो भाई आश्रम की ओर तेजी से चले। सारे रास्ते दोनो ने अप-

शकुन देखे । जब-जब राम अपशकुन देखते तो कहते, "सीता सुरक्षित नही मालूम पडती ।"

दोनो भाई आश्रम पहुचे । कुटिया सचमुच खाली थी । राम का हृदय टूट गया ।

एक तरफ मृग-चर्म पडा था । दूसरी ओर चटाई पडी थी । सूनी कुटिया को देखकर राम फूट-फूटकर रोने लगे । पर्णशाला की आसपास की सारी जगह में राम ने सीता को ढूढा, नाम ले-लेकर पुकारा, पर सीता वहा हो तब न ? राम की पुकार का उत्तर कहा से आता ? पेडो के पत्ते और फूल भी मुरझा से गये थे ।

"हाय, मैं क्या करू ? मेरी प्रियतमा को कोई क्रूर राक्षस खा तो नही गया ? उसे राक्षस तो कही नही उठा ले गया ? शायद नदी-तट पर पानी भरने गई हो । चलो, देखते हैं ।" यो तरह-तरह की बाते सोचते हुए राम-पागल-से हो गये । सोचा कि शायद मुझे चिढाने के लिए कही पेडो की आड में छिप गई होगी । वह सारे पेडो के पास जा-जाकर देखने लगे । भ्रात-चित्त मनुष्य की तरह बनकर हरेक प्राणी को और पेड को सबोधित करके पूछने लगे, "हे अशोक वृक्ष, हे ताड वक्ष, तुमने तो अवश्य देखा होगा कि मेरी सीता को क्या हुआ ! बताओ, कहा है जानकी ?

"हे व्याघ्र, तुम्हे किसका डर है ? वह देखो, हाथी और हिरन डर के मारे कुछ कहना नही चाहते ! पर तुम तो बहादुर हो । बताओ, तुमने मेरी सीता को किसी तरफ जाते देखा ? 'हे खग-मृग, हे मधुकरश्रेनी, तुम्ह देखी सीता मृगनैनी' ?"

राम स्वय जोर-से रोकर कहने लगे, "सीता, तुम कही छिपी हो ।" मैं जानता हू । देख लिया मैंने तुम्हें । आ जाओ । बस, बहुत हुआ ।" यो राम चिल्लाते थे । कई-कई बार घूमकर उन्होंने सारा प्रदेश छान डाला, पर सीता न मिली ।

"लक्ष्मण, मेरी सीता कही नही मिल रही । उनके एक-एक अग को राक्षसो ने नोच-नोचकर खा डाला मालूम होता है । मुझसे अब यह दु ख नही

सहा जाता । मैं क्या करू ? मैं अब जीवित नही रह सकता । पिता दशरथ की तरह मैं भी मर जाऊगा । उनके पास पहुचूगा । पिता कहेंगे, 'राम, तुमने चौदह वर्ष का वनवास कहा पूरा किया ? पहले कैसे आ गये ?' तब मैं उन्हें क्या उत्तर दूगा ? हाय !" राम दल-दल में फसे हाथी की तरह चिल्लाने लगे ।

राम की ऐसी अति करुण दशा देखकर लक्ष्मण को असह्य वेदना हुई । वह उन्हें समझाने लगे, "भैया, इस तरह रोना आपको शोभा नही देता ! चलिये । फिर ढढ़ते हैं। सारा जगल छान डालेंगे। आप जानते है, सीता को वन में घूमना, गुफाओ में घुसकर देखना बहुत ही अच्छा लगता है । पानी को देखकर झट तैरने-नहाने लग जाती हैं । कही सुदर फूलो की खोज में चली गई होगी । हमारी परीक्षा लेने के लिए वह ऐसा कर सकती है। चलिये, ढूढते है । रोइये मत ।"

दोनो ने फिर से नदी, पहाड, पेड, सरोवर आदि सारी जगहें ढूढ डाली ।

× × ×

लक्ष्मण राम को अच्छी तरह समझाते रहे, किंतु उनको समझाना बहुत कठिन था । कभी सज्ञा-शून्य स्थिति में, कभी रोते हुए, कभी असबद्ध बाते करते हुए राम की दशा बहुत बुरी हो गई थी । इस शोक को सहना उनके लिए बडी भारी बात थी ।

"लक्ष्मण, मैं क्या मुह लेकर अयोध्या लौटूगा ? लोग मुझे देखकर कहेगे—'देखो, यह कैसा आदमी है । सीता को लेकर चला था । उसकी रक्षा भी न कर पाया ! राक्षसो को उसे खाने दिया और आप सही-सलामत लौट आया । जनक राजा के सामने मैं अपना मुह दिखाने योग्य न रहा । तुम अकेले अयोध्या लौट जाओ । माताओ का ध्यान रखना । मेरी ओर से भरत को आलिगन करके कह देना कि अव वही राजा रहेगा। राम की आज्ञा है । राज्य-पालन अब भरत को ही करना पडेगा ।"

राम किसी तरह भी शात न हुए । लक्ष्मण का प्रयत्न असफल रहा । उनके मन में निश्चय हो गया कि राक्षसों ने सीता को खा लिया । तरह-

तरह की कल्पनाए करते और उसका विस्तार से वर्णन करते वह वरावर रोते रहे।

"मैंने घोर पाप किया होगा, नही तो मैं क्यो ऐसी विपदाओ में फसता ? मेरे भाग्य में यही लिखा था कि प्रिय पत्नी को, जो मेरे साथ वनवास करने आई थी, राक्षसो को उनके आहार के रूप में देना पडे। मेरे जैसा पापी, अभागा, दुनिया में दूसरा कौन होगा ?"

राम का इस प्रकार का विलाप लक्ष्मण से सहा नही गया। वोले, "भैया, आप इस तरह शोक-विह्वल हो जाय, यह ठीक वात नही। मन को स्थिर रखिये। हिम्मत लाइए। धीरज खोकर आदमी कोई पुरुषार्थ नही कर सकता। मन को एकदम दु ख के सागर में छोड देने से भला कोई लाभ मिल सकता है ? विधि को पुरुषार्थ से जीतने का प्रयत्न करे। अपने मन से निराशा और अधैर्य को हटा दीजिये। तभी कोई सिद्धि होगी। वीर पुरुषो का अनुकरण करे। चलिये, हम और ढूढते है।"

इस स्थल पर कवि ने रामचद्र को विलकुल एक साधारण मानव के रूप में चित्रित किया है, यद्यपि वाल्मीकि ने स्थान-स्थान पर उनकी दैवी विभूतियो का भी चित्रण किया है। पर एक उच्च हृदयवाला व्यक्ति जव अपनी अत्यत प्रिय पत्नी को अचानक किसी जगल में खो दे तो उसपर जो प्रतिक्रिया हो सकती है, वही हम दशरथ-नदन श्रीराम में देखते है। लक्ष्मण को उन्हे वरावर समझाना पडा।

× × ×

रामायण-ग्रथ से हमें सामान्य धर्म का पाठ मिलता है। यहापर पत्नी पर धर्मयुक्त प्रेम का पूरा दर्शन हमें मिल जाता है। इससे हमें पता लगता है कि पति का पत्नी पर उतना ही सच्चा और प्रगाढ प्रेम होना चाहिए, जितना कि पत्नी का पति पर होता है।

इस खड की आध्यात्मिक व्याख्या भी की जा सकती है। कोई आत्मा पथभ्रष्ट हो जाय तो परमात्मा को कितना क्लेश पहुचता है। सीता के वियोग को इसीका चित्र माना जा सकता है।

कोई विवाद कर सकता है कि परमात्मा को क्लेश कहा से होता है ? यदि हम स्वीकार कर लें कि सबकुछ उसीकी लीला है, तो टीका-टिप्पणियों की आवश्यकता नही रहती। पाप, पुण्य, भक्ति आदि सभी वस्तुए उसीमें समाविष्ट हैं। हम सबको प्रभु उसी प्रकार प्यार करता है, जैसे प्रियतम अपनी प्रियतमा को करता है। हम रास्ता भूल जाय तो हमारा नाथ अवश्य चिंता करेगा। यह भी उसीकी लीला है ।

: ५० :

पितृ-तुल्य जटायु की अंत्येष्टि

दोनो भाइयो ने जगल में कोई जगह शेष न छोडी, पर कहीं भी सीता का पता न लगा। किंकर्तव्यविमूढ होकर राम कभी गोदावरी नदी को, कभी देवताओ को, कभी पचभूतो को नाम ले-लेकर पुकारते थे और अपना दुखडा रोते थे। पचभूत और देवता भी रावण से डरे हुए थे। इसलिए किसीने राम को कुछ भी बताने की हिम्मत न की।

राम ने देखा कि एक हिरनो का झुड दक्षिण की तरफ भाग रहा था। उसे उन्होंने एक सकेत समझा। अनुमान किया कि वे कहना चाहते है कि सीता दक्षिण की ओर ही कहीपर है। दोनो भाई दक्षिण की ओर चले। रास्ते मे इधर-उधर कुछ फूल विखरे पडे थे। रामचद्र ने एकदम उन फूलो को पहचान लिया। बोले, "ये फूल तो मैंने अपने हाथ से तोडकर सीता को दिये थे। ये अवश्य मेरी सीता के केशो से ही गिरे है।" निशान पाने पर उन्हे पहले बडी खुशी और उत्साह हुआ, पर दूसरे ही क्षण मन में भय हुआ—"सीता कहाँ गई होगी ? उनका क्या हुआ होगा ?" जहापर पुष्प पडे थे, उसके आसपास की सारी जगह दोनो भाइयो ने देख डाली। उन्हें वहा राक्षस के बडे-बडे पैरो के चिन्ह दिखाई दिये। सीता के भी पदचिन्ह थे। सीता के आभूषणो से निकले सोना और मणिमुक्ता भी इधर-उधर बिखरे पडे थे। राम ने उन्हे पहचान लिया।

"देखो, लक्ष्मण, मालूम होता है कि सीता डरकर इधर-उधर भागी है। राक्षस ने उसे बुरी तरह सताकर खा लिया।" राम को जो दुःख और घबराहट हुई, उसका वर्णन करना कठिन है।

आगे उन्हे और भी चीजें देखने को मिलीं। टूटे रथ के कई भाग जगह-जगह पडे थे। राक्षस का मुकुट और उसके आभूषण भी छिन्न-भिन्न रूप में पडे

थे। "इसका क्या अर्थ हो सकता है ?" दोनो भाई सोच में पड गये।

एक जगह बडा भारी धनुप टूटा पडा था। एक कवच भी नीचे गिरा हुआ दिखा। रथ की पताका फटी हुई दिखाई दी। सारथी का निर्जीव शरीर एक ओर को पडा था। खच्चरो की लाशें भी पास में पडी थी। इसमें अब कोई शक न रहा कि वहा कोई वडी लडाई हुई थी।

राम ने लक्ष्मण से कहा, "दो राक्षसो के वीच सीता के लिए युद्ध हुआ लगता है।"

राम के मन में सीता के प्रति भयकर कल्पनाए आने लगी। डर ने अव क्रोध का रूप ले लिया। "मेरी सीता की रक्षा करने के लिए कोई देवता नही आया। देख लिया मैंने इस दुनिया को ! अव मै इससे निवट लूगा। देखता हू, मैंने जिन-जिन अस्त्रो का प्रयोग सीखा है, वे सब अब काम आवेंगे।" इस प्रकार दु ख में राम भले-बुरे का विचार करने की शक्ति खो वैठे।

लक्ष्मण ने स्थिति सभाली। वह वडे भाई को समझाकर कहने लगे, "भैया, भारी दुःख आ पडने पर मनुष्य वुद्धि खो बैठता है। फिर भी आपको यह शोभा नही देता कि अपने स्वाभाविक कल्याणकारी गुणो को एकदम भूल जाय। दुनिया से क्रुद्ध होकर और उसका नाश करने की बात आपको कैसे सूझी ? आप वैसा कर नही सकते। किसी एक से पाप हुआ तो उसके लिए सारी मानव-जाति को कैसे दड दे सकते हैं ? भैया, जरा-जरा-सी बात पर आवेश में आ जाना तो मेरी कमजोरी है। आप हमेशा मुझको समझाते आये हैं। सच्चा मार्ग वताते आये हैं। क्षमा करना, यद्यपि मैं आपसे उम्र में छोटा हू, मुझे आज आपको समझाना पड रहा है। भैया, देखिये अव आपको मन में धीरज रखना ही पडेगा। दुनिया का नाश करने की बात भूल जाइये। दुनिया ने हमारा क्या विगाडा है ? पहले हम इसका पता तो लगावें कि हमारा असली दुश्मन कौन है। फिर जो कुछ करना उचित होगा, अवश्य करेंगे।"

इस तरह छोटे भाई, अपने वडे भाई को, प्यार से, वुद्धिमत्ता से और विनय से समझाते रहे। राम को लक्ष्मण के वचनो से कुछ शाति मिली। वह आगे वढे। दोनो ने देखा कि वहा पृथ्वी पर गीधराज जटायु निश्चल अधमरे-से

पडे है। उनके पख कट गये थे, मरण के वह बिल्कुल समीप पहुच गये थे, इसलिए राम ने उन्हे दूर से न पहचाना। राम ने सोचा कि कोई राक्षस अपना रूप बदलकर उन्हें धोखा देने के लिए इस प्रकार हिले-डुले बिना पडा है। मारीच के छल के अनुभव के बाद राम का इस प्रकार शका करना स्वाभाविक था।

"वह देखो, यह राक्षस सीता को खाकर नीचे पडा है। मारो उसे।" और उसपर राम तीर चलाने ही वाले थे कि इतने में गृद्धराज ने राम से दीन स्वर में बोले, "भैया, मुझे मत मारो। मेरे शरीर में ये प्राण अब कुछ क्षण के लिए ही टिकनेवाले है। जिस देवी की खोज में तुम वन के कोने-कोने में फिर रहे हो, उसे लकाधिपति रावण उठाकर ले गया है। मेरे प्राणो को भी उसी पापी ने हरा है। जब मैंने देखा कि सीता को पकडकर वह रथ में बैठा हुआ उडा जा रहा है, तो मैंने उसे रोका, उसके साथ युद्ध किया। उसके धनुष और रथ को मैंने चूर-चूर कर डाला। उसके सारथी को भी मैंने मार गिराया। तुमने उसकी लाश और टूटे रथ को रास्ते में देखा ही होगा। मैं जब थककर जरा आराम लेने लगा, तो उस दुष्ट राक्षस ने मेरे पखो को काट डाला और मुझे नीचे गिरा दिया। मै फिर कुछ न कर पाया। मेरे देखते-देखते वह सीता को लेकर आकाश में उडता हुआ चला गया। बस, तुम्हे यही सब बताने के उद्देश्य से प्राणो को किसी तरह रोके रहा हू। अब मैं चला।"

जटायु की बाते सुनकर राम ने झट धनुष उतारकर फेंक दिया और जटायु से प्यार से लिपट गये। दोनों राजकुमार अब अपनेको न सभाल सके। बालक के समान जोर-जोर से रोने लगे।

"लक्ष्मण, मुझसे बढकर अभागा कोई दूसरा भला हो सकता है। अपना देश छोडकर जगल में आया, वहा अपनी प्यारी पत्नी वैदेही खो गई और जगल में पिता के सदृश प्यार करनेवाले जटायु भी, मेरे ही कारण, मृत्यु को प्राप्त हुए। सीता को खोने के दुःख की अपेक्षा जटायु के मरण की वेदना मेरे लिए किसी प्रकार भी कम नही है। मेरा भाग्य ही खोटा है। मै मरने के लिए आग में कूद पडू तो मेरा दुर्भाग्य पानी का रूप लेकर उस आग को बुझा

डालेगा। समुद्र में गिर पड़ू तो उसका पानी सूख जायगा। मैं बड़ा पापी हूं। तभी तो मुझे एक के बाद एक दुःख देखने पड रहे हैं। मुझे यही डर लग रहा है कि कही तुम्हें भी एक दिन न खो दू।"

इस प्रकार विलाप करते हुए राम ने जटायु को प्यार से अपने हृदय मे लगाकर रखा और पूछा, "मेरी सीता को तुमने देखा था ?"

जटायु में अब बोलने की शक्ति खत्म हो चली थी। फिर भी अत्यत क्षीण स्वर में उसने बताया, "राम, घबराओ नही। तुम अवश्य सीता को फिर से पाओगे। उसको किसी प्रकार की हानि नही हो सकती। धीरज धरो।" इतना कहकर वीर जटायु ने एक बार खून की उलटी की और हमेशा के लिए शात हो गये।

सीता को खोने मे राम और लक्ष्मण दोनो ने ही गलती की थी। उनके सोचने में कुछ कमी रह गई थी, उसीके परिणामस्वरूप सीता की चोरी हुई।

× × ×

अयोध्या में जब राजा दशरथ मरे थे तब दोनो भाई वन में थे। उनकी दाह-क्रिया भरत-शत्रुघ्न ने की।

सीता की रक्षा के लिए अपनी चोच, पख और पजो के सिवा दूसरे किसी प्रकार के शस्त्र के बिना जटायु ने रावण से युद्ध किया और ऐसा करते हुए प्राण त्याग दिये। जटायु को पिता से भिन्न न समझकर राम और लक्ष्मण ने उस पक्षिराज की अत्येष्टि-क्रिया विधिवत् की। इससे दोनो के मन को कुछ शाति मिली। इस प्रकार गृद्धराज जटायु ने मुक्ति पाई। जटायु भगवद्-भक्तो में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। यह स्वाभाविक है। सामान्य पक्षी होकर भी धर्म की रक्षार्थ उसने महाबली राक्षस के साथ, प्राणो की चिंता किये बिना, युद्ध किया। उस समय सीता-माता का हृदय ममता और करुणा से भर गया था। उसकी कल्पना की जा सकती है। तब इसमें आश्चर्य की कोई बात नही, जो पक्षिराज जटायु भक्तो में आज भी अग्रगण्य माने जाते है। वैष्णव सत भरत और जटायु दोनो को ही एक ही कोटि का समझते हैं और उनकी वदना करते है।

इसके बाद तो कई घटनाए घटती है। रावण के साथ राम-लक्ष्मण का बडा ही भयकर युद्ध छिडता है। रावण को मार कर दशरथ-नदन उसके गर्व का भग कर देते है। किंतु देवी सीता तब अशोकवाटिका में बदिनी थी। उन्होने युद्ध का वर्णन औरो से सुना था, आखो से देखा नही था। हा, जटायु को एकदम निशस्त्र होकर, निडरता के साथ आखिरी दम तक लडते हुए उन्होने स्वय अपनी आखो से देखा था। जटायु की भक्ति की तुलना करना सरल नही। जय हो सत जटायु की!

× × ×

"भाई लक्ष्मण, सूखी लकडियो की चिता बनाओ। तबतक मै पत्थर घिसकर अग्नि तैयार करता हू। पिता दशरथ की दाह-क्रिया हम नही कर पाये। जो कार्य हमसे रह गया था वह हम अब करेगे।" राम ने लक्ष्मण से कहा।

"हे जटायु, हवन की अग्नि मे आहुति देकर यज्ञ करनेवाले शील पुरुषो को जो गति मिलती हो, वह तुम्हे मिले। तपस्वी और वानप्रस्थियो की जो सद्‌गति निर्दिष्ट है, वह तुम्हे प्राप्त हो। दानी लोग जिस पुण्यलोक मे जाते हो, वहा तुम्हारा स्थान हो। हे परममित्र, हमारे पितातुल्य पक्षिराज, युद्ध मे पीछे न भागनेवाले वीर पुरुषो की गति तुम्हारे लिए भी हो।" यो प्रार्थना करके दोनो राजकुमारो ने जटायु के लिए उदक क्रियाए की। कर्त्तव्य-पालन से राम के मन मे कुछ समय के लिए सीता के विरह का दुःख कम हुआ, मन मे शांति का अनुभव हुआ।

× × ×

भारतवर्ष के बालक-बालिकाओं के लिए रामायण केवल एक कहानी नही, हमारे लिए हमारे जीवन की घटनाओ से भी अधिक वास्तविक है। हमारे जीवन के लिए रामायण की बाते उतनी ही आवश्यक है, जितनी पेड-पौधो के लिए सूर्य की किरणें। हजारो नर-नारी रामायण पढकर आतरिक शाति और शक्ति पाते है। अपने जीवन को बदलते है। हमे चाहिए कि जटायु का उदाहरण सामने रखकर दुखी बहनो की सेवा करे।

राम यद्यपि अवतारी थे, पर सामान्य मनुष्य से भिन्न न थे। दुःख के समय आसू बहाते थे, प्रलाप करते थे। ईसाइयो के पुराण में भी हम यही देखते हैं। ईसामसीह को जब सूली पर चढा कर कीलें ठोक दीं तो प्रभु को उस अवस्था में बहुत देर तक रहना पडा। तब वे असह्य पीडा के कारण परमात्मा को पुकार कर रो पडते हैं—"हे मेरे भगवन, तुम मेरी रक्षा नही करोगे ?"

अवतारी पुरुष अन्य सामान्य मनुष्यो की तरह ही स्वय भी शारीरिक कष्ट पाते हैं। उनका शरीर-धर्म दूसरो से भिन्न नही रहता।

: ५१ :

सुग्रीव से मित्रता

इस प्रकार जीवन में राम-लक्ष्मण को एकाएक कई सकटो का सामना करना पडा, जिनकी उन्हे कभी कल्पना न थी। विधाता के निर्णयो के सामने अपनेको लाचार देखकर कभी-कभी हिम्मत हारकर वे दुखी हो जाते थे। तब एक-दूसरे को आश्वासन देते हुए फिर मन को समझा लेते थे और आगे चल पडते थे।

दोनो भाई वन के रास्ते से दक्षिण की ओर चलते गय। अचानक उन्होंने देखा कि वे एक भयकर राक्षस के चगुल में फस गये हैं। राक्षस का शरीर तो दिखाई देता था, पर उसके न पैर थे, न सिर ही कहीं दिखाई देता था। बडा-सा पेट आगे निकला हुआ था। कधे की जगह से दो बहुत ही लबे हाथ लटक रहे थे, जिसके पजो में दोनो राजकुमार फस गये। वह राक्षस एक ही स्थान पर, हिले-डुले बिना रहकर अपने हाथो को लबा करके उनके भीतर फसनेवाले शेर-चीते आदि जानवरो को पेट के अदर डाल लेता था और हजम कर जाता था। पेट में ही उसका मुह था। ऊपरी भाग में एक आंख थी। उसका आकार अत्यधिक घृणा और डर पैदा करनेवाला था। ऐसे भय-कर राक्षस के हाथो में वे फस गये। थोडी देर तक उनकी समझ में न आया कि क्या करना चाहिए। राम ने लक्ष्मण से कहा, "लक्ष्मण, इस क्रूर राक्षस का एक हाथ तुम काट दो, दूसरा मैं काटकर गिराये देता हू।"

दोनो ने वैसा ही किया। दोनो हाथो के कट जाने से राक्षस बेबस हो गया। उस राक्षस का नाम था कबध। कबध बोला, "अपने कुकर्मों के कारण मुझे शाप मिला था कि इस प्रकार कुरूप बनू। पर इद्र ने कहा था कि जब कोई मेरी दोनो बाहो को काटकर जला देगा तो शाप-मोचन हो जायगा। इसलिए, हे राजकुमार, तुम दोनो महाराज दशरथ के पुत्र मालूम होते हो।

तुमने मेरी बाहे काट दी । यह बहुत अच्छा किया । अब मुझे जला और दीजिये, जिससे मैं शाप से छुटकारा पा जाऊ ।"

राम और लक्ष्मण ने कवध को उसके कहे अनुसार जला दिया। अग्नि के बीच से वह अपने असली मगल और सुदर रूप में निकल आया। उसके लिए ऊपर से एक विमान आया। उसमें चढकर वह स्वर्ग की ओर जाने लगा। जाने से पहले उसने राजकुमारो से कहा, "आप लोग सीता को अवश्य पावेंगे। पपा नदी के तट पर चले जाइये। वहा ऋष्यमूक पर्वत पर वानरो का राजा सुग्रीव रहता है। उसके भाई बालि ने उसे राज्य से भगा दिया है। सुग्रीव कष्ट में है। उससे मित्रता कर ले। आप लोगो की कार्य-सिद्धि के लिए सुग्रीव के साथ मैत्री कर लेना अनिवार्य है।" इतना कहकर वह दिव्य पुरुष आकाश-मार्ग से स्वर्ग को चला गया।

दोनो भाई पपा नदी को लक्ष्य करके चलते गये। वह प्रदेश अति मनोहर था। वहापर मतग मुनि की शिष्या शबरी नाम की बहुत ही वृद्धा सन्यासिनी से मिले। उसका आतिथ्य उन दोनो ने स्वीकार किया। शबरी बडी ज्ञानवान स्त्री थी। राम के अवतार-रहस्य का उसे पता था। राम के आगमन की प्रतीक्षा मे ही बैठी थी। बडे यत्न से मीठे-मीठे जगली फल उसने राम के लिए इकट्ठे कर लिये थे। राम का स्वागत करके उनके चरणो पर मस्तक रखकर और प्रणाम करके वह मुक्ति पाना चाहती थी।

शबरी के दिये मीठे, सादे फलो को दोनो भाइयो ने बडे प्रेम से खाया।

शबरी ने विस्तार से वर्णन करके उस प्रदेश के बारे में दोनो भाइयो को बताया। फिर उसने आग जलाई और उसमें प्रवेश करके अपना शरीर छोड दिया।

वहा से राम-लक्ष्मण पपा सरोवर पहुचे। सन्यासिनी शबरी के मिलने से और सरोवर में स्नान करने से दोनो की थकावट दूर हुई। मन में नवीन उत्साह का अनुभव हुआ। राम ने कहा, "लक्ष्मण, मेरे मन में अब विजय की आशा पैदा हुई है। अब हमारा पहला काम वानरो के राजा सुग्रीव को खोजना होगा। चलो, उसी कार्य में लग जाय।"

दोनो पपा नदी की ओर वढे। पपा सरोवर और पपा नदी दोनों की शोभा वसंत-काल के प्रभाव मे अत्यत वृद्धि पर थी।

प्राकृतिक सौंदर्य ने राम की वियोग-वेदना को और उत्तेजित कर डाला। हर सुदर वस्तु को देखकर राम यही सोचने लगे कि सीता यहापर होती तो उसे कितना आनद आता। सदा तटस्थ बुद्धिवाले राम को इस प्रकार अधीर देखकर लक्ष्मण उनको समझाते थे, "भैया, घबराओ नहीं। हम सीता को अवश्य ढूढ लेगे, चाहे वह देवो की मा अदिति के गर्भ में ही क्यो न छिपाकर रखी गई हो। रावण हमसे बच नहीं सकता। उसे मारकर हम सीता को छुडा लायेंगे। आप यो हिम्मत न हारे। यह आपको शोभा नही देता। सतत प्रयत्न से हम अवश्य सफलता प्राप्त करेंगे। अत्यधिक प्रेम के कारण मन का धैर्य खोना स्वाभाविक है। किंतु अधैर्य हमारा शत्रु बन जायगा। अधैर्य और शोक को मन से निकालकर मन मे उत्साह लाइये। मै आपको क्या समझा सकता हू? उत्साह कार्य-सिद्धि के लिए सर्वोत्तम साधन है। इसलिए इस समय आप शोक और अधैर्य लानेवाले प्रेम को भी भूल जाय और आगे के काम के लिए मन में उत्साह भरे।"

इस प्रकार छोटे भाई वडे भाई को उपदेश देने लगे। शेषनाग महाविष्णु की रक्षा मे तत्पर रहता है। मान्यता यही है कि शेषनाग की तरह ही लक्ष्मण दशरथ-नदन श्रीराम की रक्षा मे सदा तत्पर रहते थे।

× × ×

अब हम 'किष्किंधा काड' में आते है।

सुग्रीव ने पपा के तट पर आते हुए रामचद्र को देखा। उन्हे तीर-कमान लिये और इधर-उधर घूमते देखकर सुग्रीव तथा उसके साथी वानरो को डर लगने लगा। सुग्रीव अपने भाई वालि द्वारा राज्य से भगा दिया गया था। ऋष्यमूक पर्वत पर वालि नहीं आयगा, यह समझकर सुग्रीव कुछ साथियो के साथ वहा रहने लगा था। राम को देखकर सुग्रीव ने सोचा कि वालि अपना रूप बदलकर आया है या किसी क्षत्रिय राजा से मित्रता करके उनको लडने के लिए भेजा है। सभी वानर मृत्यु के डर से बेचैन हो गये।

हनुमान सुग्रीव का मुख्य मत्री था। उसने कहा, "सुग्रीव, यह बालि नही है। मुझे तो ये दोनो राजकुमार बालि के मित्र भी नही मालूम होते। व्यर्थ क्यो घबरा रहे हो ? मैं उन दोनो के पास जाकर मालूम करता हू कि ये किस उद्देश्य से यहा आये है।"

सुग्रीव को हनुमान की बात पसद आई। उसने राम के पास जाकर पता लगाने के लिए हनुमान को अनुमति दे दी और कहा, "सावधानी से बात करना और चतुराई से मालूम कर लेना कि वे कौन हैं और यहा क्यों आये हैं। वे किसी व्यक्ति की खोज में मालूम होते है। इसीलिए मुझे सदेह हो रहा है कि वे यहा से मुझे खोज निकालने के लिए और मार डालने के लिए बालि की ओर से न भेजे गये हो।"

एक ब्राह्मण का रूप बनाकर हनुमान राम-लक्ष्मण के पास पहुचे। जैसे ही हनुमान ने राम के दर्शन किये, उसके मन पर एक प्रकार की अनिर्वचनीय भावुकता छा गई। अत्यत आल्हाद का अनुभव हुआ। वह दोनो भाइयो से कहने लगा, "हे मोहन रूपवाले राजर्षियो, आप दोनो कोई देवता है क्या? व्रती तापस दिखाई दे रहे हैं। यहापर तप करने आये है क्या ? इस दुर्गम जगल में आने का क्या प्रयोजन है ? मुझे कृपा करके बतलाइए कि आप कौन है ? आप दोनो के शुभागमन से इस प्रदेश की शोभा पहले से बढ गई है। आपके अति सुदर शरीर के तेज से जगल के हम प्राणियो में कुछ डर-सा पैदा हो गया है। आपका पराक्रम अपने-आप प्रदर्शित हो रहा है। देखने से तो लगता है कि आप कोई प्रभावशाली राजा हैं। तब तापसो का भेस क्यो धारण किये हुए है ? जटा, चीर-वल्कल और तीर-कमान-धारे आप दोनो का यहा कैसे आना हुआ ?

"आप मेरे प्रश्नो का उत्तर क्यो नही दे रहे हैं ? यहापर सुग्रीव नामक वानर-राजा अपने राज्य से भागकर आया हुआ है और इस वन में छिपा है। उसका मैं मुख्य मत्री हू। मुझे हनुमान कहते हैं। वायु का मै पुत्र हू। राजा की आज्ञा से ब्राह्मण के रूप में आप लोगो का परिचय पाने के लिए आया हू।"

हनुमान ने इस प्रकार बहुत ही विनयपूर्वक उनसे बाते की। राम ने लक्ष्मण से कहा, "लक्ष्मण, मुझे हनुमान की बातो पर विश्वास होता है। उसकी बातो में बडी शिष्टता है। शुद्ध भाषा का प्रयोग करता है। वेदो का अध्ययन किया हुआ और व्याकरण-शास्त्र पढा हुआ प्रतीत होता है। दूत इसीको कहना चाहिए। जिस राजा के पास ऐसा दूत हो तो उसे किस बात की कमी हो सकती है? हम जिसकी खोज में थे, वह स्वय हमारे पास पहुच गया है। सुग्रीव को हम खोज रहे थे और सुग्रीव ने हमारे पास इस दूत को भेजा है। इसका उचित रूप से स्वागत करो और अपनी सारी बाते बताओ।"

हनुमान के साथ राम-लक्ष्मण की खूब बाते हुई। उन्होने अपने कष्टो की बाते बताई। इस बातचीत के परिणामस्वरूप लक्ष्मण को हनुमान पर विशेष प्रीति हो गई। राम को भी लक्ष्मण ने यह बात बताई। हनुमान से वह बोले, "मेरे बडे भाई वैभवशाली राजा दशरथ के सबसे बडे पुत्र हैं। उन्हे राज्य छोडकर जगल आना पडा। तुम्हारे राजा सुग्रीव से उन्हे अपने एक काम में सहायता चाहिए। शाप के कारण दैत्य-रूप पाया हुआ एक गधर्व हमारे द्वारा शाप-मुक्त हुआ था। उसने हमें बताया कि वानरराज सुग्रीव से हम मैत्री करे। उसकी मदद से राक्षस के कारागार में पडी सीता को फिर से पा सकेगे। इसीलिए सुग्रीव की खोज में हम यहा आये है और तुम्हारे राजा से मैत्री की आशा रखते है।"

हनुमान लक्ष्मण से बोले, "सुग्रीव भी अपने बडे भाई वालि से बहुत पीडित हुआ है। अपना राज्य और पत्नी को खोकर वह बडा दुखी है। अब वह अवश्य राज्य और पत्नी को फिर से पा लेगा। आप लोगो से मित्रता करके हमारा राजा सुखी हो जायगा। उनके बदले में वह आप लोगो की कार्य-सिद्धि में अवश्य सहायता करेगा।"

तीनो जने बडे प्रसन्न-चित्त से राजा सुग्रीव के पास पहुचे। मार्ग मनुष्यो के चलने-जैसा न था। छलाग मार-मारकर बदरो की भाति उसे पार किया जा सकता था। इसलिए हनुमान ने अपना निजी वानर-रूप धारण कर

लिया और राम और लक्ष्मण को अपने कधो पर बिठाकर कूदते हुए ले गया।

सतो के मन आपस में सरलता से मिल जाते है। आपस में मैत्री-भाव अनुभव करने के लिए उन्हें बरसो के साथ ही आवश्यकता नही रहती। जैसे ही मिलते है, एक दूसरे को समझ लेते हैं और गहरे मित्र बन जाते हैं।

हनुमान की भक्ति और सेवा रामचद्र प्राप्त करें, यह तो पहले ही से निश्चित वात थी। इसलिए पहली भेंट के समय ही दोनो जनो के हृदयो में परस्पर विश्वास और प्रेम का उदय हो गया। बहुत दिनो के बाद मिलने पर प्रेमी जन जिस उमग से एक दूसरे से आलिगन करते है, वैसे ही उमग के साथ हनुमान राम-लक्ष्मण को अपने कधो पर चढाकर ले गया।

ऋष्यमूक पर्वत पर राम-लक्ष्मण को ले जाने के वाद हनुमान ने सुग्रीव को वताया कि राम-लक्ष्मण आये हुए है और आपसे मिलना चाहते हैं। राजकुमारो का उसने सुग्रीव को परिचय भी दिया। बोला, "राम महा बुद्धिमान और सभी अच्छे लक्षणो से युक्त राजकुमार है। इक्ष्वाकु-वश में उत्पन्न हुए है। सुप्रसिद्ध राजा दशरथ के पुत्र हैं। पत्नी और छोटे भाई के साथ पिता की आज्ञा से वन में वास करने आये हैं। जब दोनो भाई आश्रम में नही थे और सीता अकेली रह गई थी तब रावण उसे उठाकर ले गया। उसे खोजने के लिए राम आपकी मदद चाहते है। आपकी सहायता पाने के लिए राम सब तरह से अधिकारी हैं। इन राजकुमारो की मित्रता पाकर आपको भी बहुत लाभ होगा।"

सुग्रीव ने एक सुदर मनुष्य का रूप धारण करके श्रीराम से बाते की। राम की ओर उसने अपना हाथ बढाया और कहा, "हे राजकुमार, मै ठहरा एक वानर। यदि मेरे साथ दोस्ती चाहते हो तो यह रहा मेरा हाथ, उसको ग्रहण करो।"

श्रीराम ने सुग्रीव के हाथ को ग्रहण किया और उसे आलिगन में बाध लिया।

हनुमान ने जल्दी मे अग्नि प्रज्वलित की। अग्नि की पूजा करके और उसकी प्रदक्षिणा करके दोनो ने मैत्री की शपथ ली। दोनो ने कहा, "सुख में, दु ख में, हम समान हिस्सा लेंगे, हमारी मैत्री सदा स्थिर रहेगी।"

पेड की दो बडी-बडी डालो का उन लोगो ने आसन बना लिया और एक पर राम और सुग्रीव तथा दूसरी पर हनुमान और लक्ष्मण बैठकर वार्तालाप करने लगे। सुग्रीव अपना सारा कष्ट राम को सुनाने लगा, "वालि के डर के मारे बेचैन हू। इस वन में भटकता हुआ उसकी निगाह से बचता हुआ रहता हू। क्या तुम वालि को मारकर मेरा राज्य और मेरी पत्नी दोनो मुझे वापस दिला सकते हो?"

"अवश्य, तुम निश्चित रहो। वालि मेरे बाणो से बच नही सकता।" राम ने कहा।

जब राम और सुग्रीव के बीच ये बाते हो रही थी, अशोक-वाटिका में सीता की और राक्षसो के राजा रावण की बाई आख फडकने लगी।

बाई आख का फडकना स्त्रियो के लिए शुभ और पुरुषो के लिए अशुभ समझा जाता है।

सुग्रीव ने देखा कि राम सीता के वियोग से बहुत ही उदास है। उसने राम को आश्वासन देते हुए कहा, "हनुमान ने मुझे सारा हाल विस्तार से सुना दिया है। तुम अब चिंता करना छोड दो। हम सब मिलकर सीता को अवश्य खोज निकालेंगे। भले ही लकेश ने उसे चाहे कही भी छिपाकर क्यो न रखा हो। इस बात में तुम जरा भी शका न रखो। यह कार्य शीघ्र ही हो जायगा। हम सब मिलकर तुम्हारे लिए यह काम कर देंगे।

"हमलोगो ने एक बार देखा था कि एक राक्षस एक स्त्री को लेकर आकाश-मार्ग से उडता हुआ जा रहा था। वह स्त्री बडी छटपटा रही थी। 'हे राम, हे लक्ष्मण' इस प्रकार वह चिल्ला रही थी। हमें भी उसने देखा। अपने उत्तरीय में कुछ आभूषण बाधकर उसने हमारी ओर फेंके। हम-ने उन्हें वैसा ही उठाकर रख छोडा है। अभी तुम्हे दिखाते है। तुम्हारी स्त्री के होंगे तो तुम अवश्य पहचान लोगे।"

यह सुनते ही राम ने कहा, "अभी तक तुमने मुझे यह क्यो नही बताया। जल्दी से उन चीजो को दिखाओ। जल्दी करो।"

वानरो ने सीता की फेंकी हुई छोटी-सी पोटली को पर्वत की गुफा में छिपा रखा था। उसे वहा से निकालकर लाये और राम के सामने रख दी। सीता के वस्त्र को पहचानकर राम दु ख से छटपटाने लगे। उस बधी हुई छोटी-सी पोटली को देखकर और रावण के हाथो में फसी हुई सीता को याद करके राम के मन में असह्य व्यथा का अनुभव हुआ।

उन्होने आखें बद कर ली। लक्ष्मण से बोले, "भाई, तुम्ही पोटली को खोलकर देख लो। मुझसे यह न होगा।"

लक्ष्मण ने कपडे की गाठ खोलकर आभूषणो को देखा। सीता के पैरो के नूपुरो को उन्होने झट पहचान लिया और बोले, "भैया, यह तो भाभी के ही हैं। मैंने पहचान लिये। उनके चरणो को स्पर्श करके प्रणाम करते समय इन नूपुरो का मै प्रतिदिन दर्शन करता था।"

कवि लोग लक्ष्मण के इन वचनो पर मुग्ध हैं।

उसके बाद राम ने अपनी प्राणो से प्यारी पत्नी के गहनो को एक-एक करके उठाया, देखा और आखो से लगाते गये। अनेक प्रिय स्मरण सजीव हो उठे। लक्ष्मण से बोले, "लक्ष्मण घास पर गिरने के कारण एक भी चीज बिगडी या टूटी-फूटी नही है, वैसी-की-वैसी है।"

उनका प्रबल दु ख क्रोध में बदलने लगा। एकदम आवेश में आकर राम बोले, "जिस राक्षस ने मेरी सीता का अपहरण किया है, उसके घर का द्वार यम के प्रवेश के लिए खुल गया समझो। उसका और उसके सारे कुल का एकदम नाश करके छोडूगा।"

राम के क्रोधावेश को देखकर सुग्रीव घबरा गया।

दोनो ने परस्पर अग्नि-देवता को साक्षी रखकर मैत्री की शपथ ली थी। फिर भी यह बात स्पष्ट नही हुई थी कि पहले राम का कार्य होगा या सुग्रीव का। राम के क्रोध और दु ख को सुग्रीव ने अब ठीक से पहचाना। राम के साथ चर्चा करना उसने हानिकारक समझा। यदि पहले सीता को ढूढने

के काम में लग जाय तो पता नही तबतक वालि क्या-का-क्या कर डालेगा। फिर अधिकार वालि के हाथ मे रहने से सुग्रीव की शक्ति भी बहुत सीमित हो जाती थी। इसलिए उसने सोचा कि अपने और राम दोनो के हित में पहले वालि पर विजय पाना और राज्य को प्राप्त करना अत्यावश्यक है। राम की मन स्थिति को और नीति-शास्त्र को भली प्रकार समझते हुए उसने विचारपूर्वक व्यवहार करने का निश्चय किया। राम से उसने कहा, "राम, मैं इस समय यह नही जानता कि रावण का बल कितना है, वह कहा रह रहा है या उसने सीता को कहा छिपाया है। फिर भी मैंने तुमको वचन दे दिया है कि किसी-न-किसी प्रकार से रावण को मारने का और सीता का पता लगाने का उपाय करेंगे। इस बात में तुम तनिक भी शका न करो। दुःख छोड दो। धैर्य धारण करो। ऐसे कामो में सफलता प्राप्त करने के लिए धीरज रखना अत्यावश्यक है। राक्षस-कुल का हम सब मिलकर नाश करेंगे। निराशा छोड दो। तुम्हारी ख्याति सारे ससार में फैलनेवाली है।

"मुझे देखो, मैं भी अपनी पत्नी खोकर बैठा हू। राज्य से भगाया गया हू। मेरा घोर अपमान हुआ है। फिर भी अपने मन के आवेगो को रोककर उचित समय की राह देखते हुए बैठा हू। मै ठहरा एक तुच्छ वानर। यदि मुझसे ऐसा हो सकता है तो तुम्हारे लिए दुःख को रोकना कौन-सी बडी बात है? अब रोना बद करो। तुम जितेंद्रिय हो। मन में स्थिरता लाना तुम्हारे जैसो के लिए सरल काम होना चाहिए, नही तो, जैसे प्रचड हवा में नाव समुद्र में डूब जाती है, उसी प्रकार हम भी डूब जायगे। शोक-मग्न होकर हमसे कोई भी काम नही हो सकेगा। इसलिए मेरे परम मित्र, मै तुमसे प्रार्थना करता हू कि मन से शोक हटाओ और उसकी जगह धैर्य धारण करो, नही तो हम अपने कार्य में असफल हो जायगे। मैं तुम्हे उपदेश देने योग्य अपने को नहीं समझता। एक मित्र के नाते तुम्हे समझा रहा हू। बस।"

सुग्रीव के हितकर वचन रामचन्द्र को उचित लगे। उन्होंने अपने आसू पोछ लिये और सुग्रीव का प्यार से आलिगन किया। सीता के वस्त्र और आभूषणो को देखने से उनका जो दुःख उमड पडा था, उसे उन्होंने रोक लिया

और अपने मन में दृढता ले आये। बोले, "हे सुग्रीव, तुम-सा मित्र पाकर अपनेको मैं बडा भाग्यशाली समझता हू। तुम जैसा कहोगे, उसी प्रकार मैं करूगा। सीता को ढूढने के उपायो को भली प्रकार सोचना। तुम्हारे काम को भी मैं अपना ही काम समझकर करूगा। मेरी बात को प्रतिज्ञा समझो। मैं आज तक कभी झूठ नही बोला हू, न आगे कभी बोलूगा। हमारी मित्रता सदा स्थिर रहेगी। तुम्हारा कष्ट दूर करने के लिए मुझे क्या करना चाहिए, यह बताओ। सकोच मत करो। जो कहोगे, तुम्हारे लिए मैं वही करूगा।"

राम के वचनो से सुग्रीव और उसके सचिवो को अपार आनद हुआ। उन सबने यही सोचा कि उनके दुःख के दिन समाप्त हुए और सुग्रीव का फिर से राजा बन जाना निश्चित है।

: ५२ :

सुग्रीव की व्यथा और राम की परीक्षा

सुग्रीव ने राम को अपने और अपने बडे भाई वालि के बीच में हुए विरोध के बारे में सारी बातें विस्तार से कह सुनाई। बोला, "मेरा बडा भाई वालि वानरो का राजा है और किष्किधापुरी में राज करता है। बडा पराक्रमी है। उसपर मेरी बडी भक्ति और प्रेम था। मै युवराज था। वालि और मायावी नामक असुर में बहुत पुराना झगडा था। एक दिन रात के समय मायावी किष्किधा में घुस आया और वालि को युद्ध करने के लिए ललकारा।

"रात में मायावी की गर्जना खूब जोर से सुनाई दी। वालि उस समय सोया हुआ था। गर्जना सुनकर वह उठ बैठा और मायावी से लडने के लिए बाहर निकल पडा। मै भी उसके साथ चल पडा। चादनी रात थी। हम दोनो को एक साथ आते देखकर मायावी भागा और एक गुफा में घुस गया। उसका पीछा करता हुआ वालि भी उस गुफा के अदर चला गया। मै अदर जाने लगा तो वालि ने मुझे रोक दिया और कहा, 'मै अकेला ही उस दुष्ट को मार डालूगा, तुम गुफा के द्वार पर खडे रहो।' इतना कहकर वालि भीतर चला गया। कई दिनो तक वह बाहर नही आया। मुझे बडी चिंता होने लगी। फिर भी वही खडा रहा। एकाएक एक साथ कई असुरो का भयानक शोर भीतर से मैंने सुना, साथ ही खून की धारा गुफा के अदर से बाहर बह निकली। मैंने सोच लिया कि वालि को मायावी और उसके साथी असुरो ने घेरकर मार डाला। मुझे डर लगा कि अब वे मुझे भी मारने के लिए बाहर निकलेंगे। सो एक बहुत बडे पत्थर से मैंने गुफा का द्वार बाहर से बद कर दिया और डर से तथा दुखी मन से किष्किधा लौट आया। मैंने किसी से यह नहीं कहा कि वालि मर गया। चुपचाप राजकीय कार्यों को देखता-

भालता रहा। वानर-प्रजा बड़ा आग्रह करने लगी कि मुझे अब राजा बन जाना चाहिए। बहुत दिन हो गये, बालि वापस नही आया और राज्य का बुरा हाल हो रहा था। उनके बार-बार आग्रह करने पर मैं मान गया।

"उसके कुछ समय बाद मायावी और उसके साथियो को मारकर बालि वापस आया। उसने जब गुफा का द्वार बद देखा तो मेरा नाम लेकर कई बार पुकारा। मै तो वहा था नही। इसलिए द्वार खोलनेवाला कोई न था। गुस्से में आकर उसने पत्थर को लात मार-मारकर धकेला और बाहर निकला। मुझे वहा न पाकर वह किष्किधा में आया। वहा आकर उसने देखा कि मैं उसकी राजगद्दी पर बैठकर राज कर रहा हू। फिर क्या कहना था। गुस्से में आकर उसने मुझे बड़ी गालिया दी। मैंने उसको सारा हाल बताया और कहा कि मैंने तो यही सोच लिया था कि असुर ने तुम्हें मार डाला है और प्रजा के बार-बार अनुरोध करने पर ही मैं राजा बना। अब तुम आगये हो तो गद्दी तुम्हारी है, सभालो। मैं सदा की तरह तुम्हारा सेवक बना रहूगा। इतना कहकर मैं उसके चरणो में गिर पडा। बालि को मेरी बात पर विश्वास न हुआ। उसने यही सोचा कि मैंने जान-बूझकर गुफा का द्वार बद कर दिया और कपटपूर्वक राजा बन गया हू। उसने मुझे राज्य से भगा दिया और धमकी दी कि राज्य के अदर अगर कभी अपनी सूरत दिखाई तो जान से मारा जाऊगा। उस समय शरीर पर जो कपडे थे, उन्हीको पहने मैं राज्य से बाहर भाग आया। जगलो और पहाडो पर भटकता हुआ अपनी जान बचा रहा हू। मेरे पास अब कुछ नहीं रहा है। बस, ये चार वानर मेरे साथ है। क्रोध में आकर मेरी बातो पर अविश्वास करता हुआ, मेरा भाई मुझपर घोर अन्याय कर रहा है। उस क्रूर व्यक्ति से मेरी रक्षा करो।"

सुग्रीव की दयनीय स्थिति देखकर राम के हृदय में उसके प्रति बडी दया उपजी। वह बोले, "मैंने तुम्हें सहायता करने का वचन दे दिया है। उसका मैं अवश्य पालन करूगा। तुम तनिक भी चिंता न करो। तुम्हारा भाई तुम्हारा शत्रु बन गया है। मेरे बाणो से वह अब मरेगा। यह निश्चित समझो।"

× × ×

वालि और सुग्रीव की कथा से यह सोचने-समझने को मिलता है कि असल में तो हम न वालि को दोषी ठहरा सकते है, न सुग्रीव को। क्रोध में बुद्धि मद हो जाती है। क्रोध के वश में आकर हम सत्य को पहचान नही सकते। बुद्धि का भ्रष्ट हो जाना विनाश की ओर जाना होता है। शास्त्र यही कहता है। वालि का नाश इसका अच्छा उदाहरण है। सुग्रीव ने बडी विनय से सच्ची बातें अपने भाई को बताई थी। किंतु अत्यधिक क्रोध से वह विवेक खो बैठा था।

सुग्रीव ने भी जल्दी मे यह मान लिया कि उसका भाई मर गया। उसे यह डर लग गया कि असुर उसे भी मार डालेंगे। इसी कारण उसने गुफा का द्वार बद किया। उसने राज्य का लोभ नही किया। प्रजा ने जब बहुत जोर डाला तब माना। फिर फस गया। बिना सोचे-समझे जल्दी मे आकर कुछ भी कर डालने से हम अनर्थ कर डालते है। सुग्रीव का अनुभव भी इसका अच्छा उदाहरण है।

दूसरो की चीज पर कभी लोभ न करना चाहिए। इस लोभ को दबाना आसान नही। इसमें सपूर्ण सफलता पाने के लिए बहुत ही सावधानी की आवश्यकता होती है। भरत को भी तो अयोध्या की सारी प्रजा ने और मत्रियो ने कहा था कि वह राजगद्दी ले ले, किंतु भरत ने दृढता के साथ इन्कार कर दिया था। यह भरत का अनुपम श्रेय है। सुग्रीव लोभ के वश में आ गया और परिणामस्वरूप उसने बहुत दुख पाया।

रामायण के प्रत्येक खड से हमें कुछ-न-कुछ सीख मिलती है। कही वह साफ दीखती है, कही भक्ति से सोचने-समझने पर जीवन में अनुकरण करने योग्य शिक्षा दिखाई दे जाती है।

× × ×

पत्नी और राज्य को फिर से पाने की तीव्र इच्छा सुग्रीव को सताने लगी, पर उसके लिए उसे कोई रास्ता दिखाई नही दे रहा था। वालि का पराक्रम एक पहाड की तरह उसका रास्ता रोककर खडा था।

हनुमान सुग्रीव से बार-बार कहता कि अब राम के साथ मैत्री हो जाने से वालि को जीतना बहुत ही आसान हो गया है, फिर भी सुग्रीव के मन की

शका मिटी नही। वह बालि को एक प्रकार से अजेय समझता था। उसके लोहे के समान शरीर का राम भी कुछ नही बिगाड सकेंगे, सुग्रीव का यही विश्वास था।

इतने पर भी उसकी एकमात्र आशा अब रामचद्र पर ही आधारित थी। उसने सोचा कि रामचद्र की शक्ति की परीक्षा क्यो न की जाय। लेकिन राम से सीधे यह प्रस्ताव करने में उसे सकोच हुआ। वह व्यवहार-कुशल था। उसने राम को धीरे-धीरे बालि के शारीरिक बल के बारे में बताना शुरू किया, "रामचद्र, तुम्हारा आश्वासन पाकर मेरे मन में अब शाति हुई। तुम्हारा छोडा हुआ बाण तीनो लोको का नाश कर सकता है। बालि उसके सामने भला कैसे टिक सकेगा ? फिर भी महान् पराक्रमी बालि के बारे में मैं जो कुछ जानता हू, तुम्हें बता देना मेरा कर्तव्य है। बडे सवेरे उठकर एक ही मुहूर्त्त में बालि चार समुद्र-तटो पर जाता है और सध्यावदन करके लौटता है। पहाडो के बडे-से-बडे पत्थर को हाथ में लेकर गेंद की तरह उछालकर खेला करता है। जगल के बडे-बडे वृक्षो को घास की तरह जड से उखाडकर फैंक देता है।

"एक समय की बात मैं बताता हू, सुनो। दुदभि नाम का भैंसे के रूप-वाला एक असुर था। उसको एक हजार हाथियो के बल का वरदान मिला था। उतना अधिक बल पा जाने पर वह सोचने लगा कि उसका प्रयोग कैसे किया जाय। उसने समुद्र को युद्ध के लिए ललकारा। सागरराज ने उससे कह दिया कि मै तेरे साथ युद्ध नही कर सकता। तू अपने बराबर के व्यक्ति से लड। उत्तर दिशा में हिमवान् के साथ टक्कर ले। दुदभि उत्तर दिशा में हिमवान् के पास पहुचा। और युद्ध करने को कहा। हिमवान् ने उससे कह दिया, 'भाई, मुझसे क्यो लडता है ? मेरे पास तो अनेक ऋषि-मुनि ठहरे हुए हैं। उन भले और भोले लोगो के साथ मेरा दिन-रात का सहवास रहता है। मैं भला लडना कहा जानू ?" तब दुदभि ने हिमवान् से कहा, 'तू नही लड सकता तो अपने समान किसी दूसरे बलशाली को बता जो मुझसे लड सके।' हिमवान ने उत्तर दिया, 'हे महिषासुर, दक्षिण में तेरे जैसा ही

वलवान् वानरराज वालि है। तुझमें हिम्मत हो तो उसे अपने साथ युद्ध करने के लिए निमत्रण दे।'

"दुदुभि वहा से किष्किधा पहुचा और जोरो से उछल-कूद करने लगा। वडे-वडे पेड़ो को उसने तोड गिराया। किले के द्वार को अपने वडे-वडे सीगो से गिराते हुए उसने गरजकर वालि को ललकारा 'सव कहते है कि तुझमें वडा वल है, तो वाहर निकल और मेरे साथ युद्ध कर।'

"वालि उस समय अत पुर में आराम से सो रहा था। असुर की गर्जना सुनकर जग पडा और महल के वाहर निकल आया। साथ में उसकी पत्निया चली आई। वालि ने असुर से कहा, 'दुदभि, क्यो व्यर्थ में शोर मचा रहे हो। जान वचानी हो तो अभी चले जाओ यहा से।'

"वालि की तिरस्कारपूर्ण वातो से दुदभि को वडा गुस्सा आया। वोला, 'अपनी स्त्रियो के सामने क्यो वढ-चढकर वातें वना रहा है। मै तो तेरे साथ युद्ध करने आया हू। वकवास करना वद कर। अभी तो मालूम होता है तू सोकर उठा है। मदिरा का नशा तेरे दिमाग से उतरा नही है। मै दिन-चढते तक ठहरूगा। तवतक तू तैयार हो जा। और जो कुछ भोगादि की इच्छा हो पूरी कर ले। सवसे विदा लेकर मेरे सामने आ जाना। मैं तुझे युद्ध में समाप्त करनेवाला हू।'

"दुदुभि की वातें सुनकर वालि जोर से हँस पडा। अपनी स्त्रियो को उसने अदर चले जाने को कहा और फिर राक्षस से वोला, "अरे दुदुभि, मै नशे में नही हू। यही समझ ले कि युद्ध करने के लिए उत्तेजक पेय पीकर आया हू। मेरे साथ युद्ध करना चाहते हो! तो हो जाओ तैयार!' और यो कहकर वालि ने दुदुभि की पूछ को पकडकर उसके शरीर को जोरो से घुमाकर उसे दूर फेंक दिया। असुर के मुह से खून निकलने लगा। लेकिन इतने पर भी वह दौडता हुआ लौटा और वालि से भिड गया। लेकिन वालि ने अपने मुष्टि-प्रहारो से उसे मार डाला। उस मरे भैंसे को उठाकर ऐसे जोर से फेंका कि वह एक योजन दूर जा गिरा और उसके शरीर से खून के छीटे हवा में उडकर मतग मुनि के आश्रम में जा गिरे। मतग मुनि को

इसका पता चल गया कि यह कैसे हुआ होगा। उन्हें बडा क्रोध आया। उन्होने बालि को शाप दिया कि 'हे बालि, घमड के मारे मुरदार शरीर को फेंककर उसके खून से तूने आश्रम को अपवित्र किया है। इसलिए इस आश्रम में यदि तू प्रवेश करेगा तो उसी क्षण तेरी मौत हो जायगी।' इसी कारण से बालि यहा आने की हिम्मत नही करता है और मैं यहापर आश्रय लेकर रह रहा हू। इन बडे-बडे साल-वृक्षो को जब बालि हिलाता है तो इनके सारे पत्ते झडकर गिर पडते हैं। ऐसे बलिष्ठ भाई के शत्रु बन जाने के कारण मैं बहुत ही भयभीत हू।"

लक्ष्मण समझ गये कि सुग्रीव को अब भी पूरा विश्वास नही हुआ है कि राम बालि को मार सकेंगे। इसलिए उन्होने सुग्रीव से कहा, "हे सुग्रीव, तुम राम के बल की परीक्षा ले सकते हो।"

सुग्रीव ने कहा, "नही, राम के भुजबल को मैं भली-भाति जानता हू। मैंने तो राम की शरण ले ली है। राम अवश्य ही मेरी रक्षा करेंगे। लेकिन जब बालि के पराक्रमो का ध्यान आता है तो मेरा शरीर कापने लग जाता है।"

श्रीराम ने सुग्रीव की श्रद्धा और बालि से उसका डर देखकर सोचा कि उसे अपनी शक्ति का कुछ प्रमाण देना आवश्यक है। तभी वह निश्चित हो पायगा।

वही पास में ही दुदुभि का शव एक पहाड की तरह पडा हुआ था। अपने अगूठे से राम ने उसे उछाला तो वह दस योजन दूर पर जा गिरा।

फिर राम ने अपने धनुष की प्रत्यचा को कान तक खीचकर एक बाण छोडा, जिसने सुग्रीव के बताये हुए शाल वृक्ष को तथा उसके पीछे एक कतार में खडे छह वृक्षो को भेद दिया। भेदकर वह अद्भुत बाण फिर वापस रामचद्र के तूणीर में प्रवेश कर गया।

श्रीरामचद्र की शस्त्र-कला के इस आश्चर्यजनक प्रदर्शन से सुग्रीव का सदेह पूर्णतया मिट गया। अब उसको विश्वास हुआ कि राम का बाण बलि के वज्र शरीर को भेद सकेगा। वह बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने राम को

साष्टांग प्रणाम किया और बोला, "हे राम, मैंने आपका पराक्रम देखा। इन्द्र के नेतृत्व में सारे देवगण भी आकर आपपर आक्रमण करें तो भी आप विजयी होओगे। वालि तो आपके सामने कुछ भी नही है। आज मैं निश्चित हुआ। बस, आप शीघ्र-से-शीघ्र वालि को मारकर मेरी रक्षा कीजिये। चलिये, आज ही किष्किधा को चल पड़ें।'

राम-लक्ष्मण दोनो मान गये और किष्किधा के लिए निकल पडे। सुग्रीव आगे गया। राम एक पेड की आड मे खडे होकर देखने लगे कि क्या हो रहा है।

सुग्रीव ने जोर से गर्जना की। वालि उसे सुनकर बडे रोष के साथ किले के अंदर से बाहर आया। दोनो भाई कमर कसकर भिड गये। जोरो से मुष्टियुद्ध चला।

जब इस प्रकार दोनो भाई लड रहे थे, राम द्विविधा में पड गये। उनकी समझ में नही आया कि दोनो में कौन वालि है और कौन सुग्रीव। दोनो की एक जैसी वेश-भूषा और एक जैसा ही रूप। राम ने अपना प्राणघातक बाण नहीं चलाया।

इसी बीच वालि से सुग्रीव बुरी तरह पिट गया। उसे बडी निराशा हुई कि राम ने कुछ नहीं किया। किसी तरह वह जान बचाकर ऋष्यमूक पर्वत पर भाग आया। वालि ने भी कहा, "चल भाग जा, आज तो मैंने छोड दिया।"

और फिर वह अपने किले के अदर चला गया।

सुग्रीव का बुरा हाल हो रहा था। राम और लक्ष्मण उसके पास पहुचे। राम पर सुग्रीव बहुत नाराज था कि उसे धोखा दिया गया। इसलिए राम की ओर उसने आख उठाकर भी नहीं देखा। नीचे की ओर देखते हुए राम से बोला, "राम, तुम्हें पहले ही से कह देना था कि तुम वालि को मारना नही चाहते। मुझे तुमने वालि के साथ भिडने को क्यो भेज दिया?"

राम ने प्यार से उत्तर दिया, "प्रिय मित्र, शात हो जाओ, मेरी बात ध्यान से सुनो। मैंने इसी कारण से बाण नहीं छोड़ा कि मैं तुम दोनो में से

जान नही सका कि बालि कौन था और तुम कौन थे। तुम दोनों का बिल्कुल एक जैसा रूप-रग और आकार है। हाव-भाव भी एक-सा है। कपडे और आभूषण भी एक ही प्रकार के है। तुम ही बताओ, मै किसके ऊपर बाण चलाता? यदि बालि समझकर तुम्हें मार डालता तो मेरा क्या हाल होता? उस हालत में मै एक पापी और मूर्ख ही सिद्ध होता। इसलिए हे सुग्रीव, मेरे ऊपर क्रोध न करो। लक्ष्मण, फूलो की वह पतली डालें लाओ और उसे सुग्रीव के गले में माला की तरह बाध दो। और सुग्रीव, अब तुम जाओ, निडर होकर बालि को फिर से ललकारो। अब मै गलती नही कर सकता। हमारी आज विजय होगी।"

सुग्रीव के मन का समाधान हो गया। उसका उत्साह फिर ताजा हो गया। लक्ष्मण ने उसके गले में पुष्पलता की डाल को खूब अच्छी तरह से बाध दिया। सुग्रीव अब और भी अधिक सुदर लगने लगा। वह किष्किधा के द्वार पर फिर जा पहुचा। राम-लक्ष्मण भी उसके पीछे-पीछे गये।

: ५३ :

वालि का वध

शाम होनेवाली थी। सुग्रीव दुवारा गर्जना करता हुआ नगर के द्वार में घुसा और वालि को युद्ध के लिए ललकारा। वालि आराम से सो रहा था। चौंक उठा। थोडी देर तक तो वह समझ न पाया कि मामला क्या है। फिर उसे पता चला कि सुग्रीव फिर से लडने आया है। गुस्से से वालि के चेहरे का रग वदल गया। सुग्रीव को मार डालने का निश्चय करके वह महल से निकल पडा। इतनी जोर से वह कदम वढाता चला कि लगता था, मानो पृथ्वी फट जायगी।

वालि की पत्नी तारा ने उसे रोकते हुए कहा, "नाथ, आज युद्ध के लिए मत जाओ। कल जाना।"

तारा वालि की पटरानी थी। वहुत ही तीक्ष्ण बुद्धिवाली और पति को बहुत चाहनेवाली। प्यार से वालि को आलिगन करते हुए उसने कहा, "जल्दी क्या है? कल के लिए युद्ध को टाल दो। शत्रु से कल निपट लेना। मुझे सुग्रीव के दुवारा आने में उसकी किसी चाल का सदेह हो रहा है। अभी तुम्हारे जाने में खतरा है। मुझे एक अजीव तरह का डर मालूम हो रहा है। सुग्रीव तो अच्छी तरह पिटकर, शर्मिंदा होकर भागा था। अब उसमें फिर से आने की हिम्मत कहा से आगई? जरूर कोई-न-कोई वात है! विना सोचे-विचारे इस समय तुम्हारा अकेले निकल पडना उचित नही। प्राणनाथ, मेरी वात को दरगुजर न करो। आज मत जाओ। सुग्रीव की ललकार में जरूर कोई छल है। मुझे तो यही लगता है कि उसे कोई वडी भारी सहायता मिली है। उसीके वल पर वह दुवारा आया है। इसमें कोई सदेह नहीं। हमारे प्रिय पुत्र अगद की भलाई का विचार करो। मै सच वता रही हू। योही नही कह रही हू। तुमको तो पता नही, लेकिन हमारे भेदियो ने अगद को एक

बात बताई थी और अगद ने वह मुझसे कही थी । अयोध्या का एक वीर राजकुमार हमारे प्रदेश में आया हुआ है। उसका सब कोई आदर करते हैं। उस के साथ तुम्हारे भाई सुग्रीव की बडी दोस्ती हो गई है । इसीलिए अब वह शक्तिशाली और धैर्यवान बन गया है। तुम यह भी तो सोचो कि आखिर सुग्रीव में भी कौन-सी बुराई है ? वह गुण-सपन्न और वीर है। तुम्हारा भाई है। उससे विरोध करके हमें क्या लाभ हो सकता है। मैं तो कहती हू कि सुग्रीव के साथ सधि कर लो। तुम्हारे लिए वह उत्तम सहारा बनकर रहेगा। तुम दोनो की इसीमें भलाई है। मेरी बात मान लो।"

बालि को असमय का यह उपदेश बिल्कुल अच्छा न लगा। समुद्र की लहरो की तरह उसका क्रोध उमड रहा था। अपनी पत्नी की बातो में वह औचित्य नही देख पाया। उसे तो काल की डोरी खीच रही थी। उसीकी ओर वह जा रहा था। तारा जैसी अति सुदरी अपनी पत्नी को वह समझाने लगा, "प्रिय, छोटे भाई के द्वारा अपना यह अपमान मैं कैसे सहन कर सकता हू ? एक वीर युद्ध के लिए ललकारे जाने पर चुप नही रह सकता। उसकी अपेक्षा प्राणत्याग कर देना अच्छा है। राम की बात तुमने मुझसे अभी कही। ठीक है। वह धर्मवान है। पाप से डरनेवाला है। अन्यायपूर्ण काम वह नही कर सकता। मुझे मत रोको। तुम अदर जाओ। सुग्रीव को मै जान से नही मारूगा। मै तो उसके गर्व को चूर करना चाहता हू। बस, मेरे ऊपर प्रेम के कारण तुम्हें जो ठीक लगा, वह तुमने बताया सो ठीक है। मैं सुग्रीव को भगाकर शीघ्र ही वापस तुम्हारे पास आता हू। घबराओ मत। मेरे लिए मगल कामना करके मुझे आशीर्वाद देकर विदा नही करोगी ?"

कवि वाल्मीकि ने बालि के उत्तम स्वभाव का सुदर चित्रण किया है।

अश्रुपूर्ण नेत्रो से तारा ने पति की प्रदक्षिणा की। मगल-वचन कहे और बालि की आयु के लिए प्रार्थना करके वापस में अत पुर चली गई।

उसे और उसकी दासियो को अदर भेजकर, गुस्से के साथ जैसे साप अपने बिल से निकल पडता है, बालि सुग्रीव की ओर तेजी से लपका और उसके पास पहुचकर बोला, "अरे, सुग्रीव तुझे मरना है क्या ? इस मुष्टि

से अपनी जान बचानी हो तो भाग जा यहा से।"

सुग्रीव ने भी उसी ढग से जवाब दिया। दोनों भिड गये। एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे। खून की धारा बहने लगी। पेडो को जड से उखाड-उखाडकर वे एक दूसरे पर फेंकने लगे। प्रारभ में दोनो का बल समान था, पर बाद में सुग्रीव हारने लगा।

राम यह देख रहे थे। जब उन्होंने देखा कि सुग्रीव में शक्ति नही रही और यदि सहायता न मिली तो वह मर ही जायगा तब वालि के वक्षस्थल को ताककर उन्होंने अपना अचूक बाण छोड दिया। जिस प्रकार शाल-वृक्षों को उन्होंने भेद दिया था, उसी प्रकार उनके बाण ने वालि के वज्र समान वक्षस्थल को भेद दिया। किसी भारी उत्सव के अत में सजा हुआ ध्वजस्तभ जैसे नीचे पडा रहता है, वैसे ही वालि की देह नीचे लुढककर गिर पडी। राम के बाण से आहत वालि कुल्हाडी से गिराये गये जगली वृक्ष की तरह जब गिर पडा तब उसने चारो ओर निगाह दौडाई। वह देखना चाहता था कि उसके प्राण को हरनेवाला बाण किधर से आया है? उसी समय राम और लक्ष्मण हाथ में धनुष धारण किये हुए उसके पास पहुचे। उसके प्राण निकल रहे थे। बहुत ही धीमे स्वर में, बडे यत्न के साथ वह बोल पाया, "राम, तुमने यह क्या किया? तुम्हारे कुल और यश के योग्य तुम्हारा यह काम नही है। मैं जब दूसरे के साथ लड रहा था और जब मेरा ध्यान उसीमें था, तब छिपकर मेरे ऊपर बाण चलाना तुम्हें शोभा देता है? तुम्हारे बारे में मैंने यही सुना था कि तुम करुणामय हो। निर्दोष हो। इद्रियों को वश में रखकर जीवधारियों पर समान प्रेम रखनेवाले हो। धर्म, क्षमा, धृति और शातिप्रिय हो। राम, इनमें से एक भी गुण तुम्हारे अदर नही पाया। तुमने अधर्म कर डाला। मेरी पत्नी ने मुझे चेतावनी दी थी। मैंने मूर्खता की, जो उसकी बात न सुनी। मुझे यह नही मालूम था कि तुम ढोंगी हो। मैं अपने भाई के साथ लड रहा था। तुम्हारा मैंने क्या बिगाडा था? पेड की आड में छिपकर यह घोर अन्याय का काम राजकुल में उत्पन्न भला तुम्हारे योग्य था? एक निरपराधी को तुमने मार डाला। तुम कैसे राजा होने योग्य हो?

दशरथ के पुत्र होने की क्षमता तुममें नही है। मेरी मृत्यु एक अधर्मी के हाथो हो गई। मैं जानता हू, तुम कभी मेरे सामने लड नही सकते थे। अगर मुझसे कहा होता तो एक दिन में तुम्हारी सीता को मैं तुम्हारे पास पहुचा सकता था। सुग्रीव को प्रसन्न करने के लिए तुमने मुझे मार डाला। रावण को रस्सी से बाधकर, खीचकर मै तुम्हारे सामने खडा कर सकता था। उसने मैथिली को कही भी छिपा रखा हो, मै उसका पता लगवा सकता था। मरना सभीको एक-न-एक दिन अवश्य है, किंतु मैं अधर्म से मारा गया। इसमें तुम्हारी भूल साफ दिखाई देती है।"

इस प्रकार देवेंद्रकुमार वालि ने राम को काफी खरी-खोटी सुनाई। मरणासन्न बालि का मुखमडल तेज से चमक रहा था। उसके वक्षस्थल पर इद्र का दिया हुआ हार सुशोभित था। उस दिव्य माला से, राम के बाण और उस बाण से हुए घाव से बालि की काति और भी बढ गई थी। अस्त होते हुए सूर्य की किरणो से प्रकाशमान बादलो की भाति उसका शरीर शोभायमान हो रहा था। मिट्टी में गिर पडने पर भी वह बडा सुदर था। कवि वाल्मीकि ने इस दृश्य का वर्णन बहुत ही सुदर ढग से किया है। प्राण जाते समय शूरो की काति हमेशा से अधिक तीव्र हो जाती है।

रामचद्र ने बालि के आरोपो को सुना। वह क्या उत्तर दे सकते थे? वाल्मीकि रामायण में लिखा है कि राम ने वालि को ठीक-ठीक उत्तर दिये और बालि का उससे समाधान हो गया। किंतु मुझे वह नीरस मालूम हुआ। इसलिए उन श्लोको को मैं छोड रहा हू। पडितो से इसके लिए क्षमा-याचना करता हू। मनुष्य-जन्म लेने के बाद कुछ-न-कुछ विशेष दुख और अपवाद का पात्र हरेक को होना ही पडता है। भगवान राम के लिए यह घटना वैसा ही एक अनुभव है। वैसे तो सुग्रीव ने भी वालि को घायल कर ही दिया था। उसपर राम का बाण उसे लगा था। अब मरणावस्था थी। इन सब को किसी तरह सहन करते हुए वालि बोला, "जो हुआ सो हो गया, राम! मेरे लिए एक काम अवश्य करना। मेरा बेटा अगद मुझे बहुत ही प्यारा है। मेरे मर जाने से वह दुखी होगा। सुग्रीव और तुम उसका ध्यान रखना।

उस बालक को मैं तुम्हें सौंपकर जा रहा हूँ। उसकी रक्षा करना अब तुम्हारा कर्तव्य है। तालाब में पानी के सूख जाने से जैसे कमल की लता मुरझा जाती है, मेरा अगद मेरे बिना वैसे ही सूख जायगा। मेरी पत्नी तारा से कोई बुरा-भला न कहे। सुग्रीव का व्यवहार अगद के प्रति सम्मानपूर्ण होना चाहिए। बस, मेरे लिए इतना काम कर देना। स्वर्ग में वीर लोग मुझे बुला रहे हैं।"

इतना कहकर वानरो का राजा महाबली वालि मूच्छित हो गया। यह बात तो सच थी कि वालि को कोई सामने युद्ध करके जीत नही सकता था। राम से भी यह अशक्य था। जैसे रावण को देवगण नही मार सकते थे, उसी प्रकार वरदान के कारण वालि की भी ऐसी ही स्थिति हो गई थी।

× × ×

कबध ने अपने शाप-मोचन के समय राम से कहा था कि वह सुग्रीव से दोस्ती करें। उसकी सहायता से सीता को फिर से पाना सभव हो सकेगा। फिर भी यह सवाल तो रहता ही है कि वालि की हत्या करने की क्या आवश्यकता थी ?

सुग्रीव से कोई अक्षम्य अपराध नहीं हुआ था। फिर भी अपने शरीर-बल के घमड से वालि सुग्रीव को बहुत सताने लगा था। सुग्रीव ने जब राम से इस बात की शिकायत की तब राम ने उसे अभयदान दे दिया था। ऐसी अवस्था में वालि को मारना अनिवार्य हो गया था। उसको मारना उसी ढग से हो सकता था, जिस ढग से राम ने मारा। अपनी प्रियतमा की एक साधारण इच्छा की पूर्ति के लिए राम को माया-मृग के पीछे जाना पड़ा। उसके बाद राम को एक सकट के बाद दूसरे सकट का सामना करना पड़ा।

मेरी अल्प बुद्धि इस विषय पर इससे आगे कुछ नही सोच पाती है।

: ५४ :

तारा का विलाप

किष्किधापुरी में जब लोगो ने सुना कि वालि एक धनुषधारी पुरुष द्वारा मारा गया तो सब बडे भयभीत हो गये। इधर-उधर भागकर छिपने लगे। जब रानी तारा ने यह देखा तो वह लोगो को समझाने लगी, "तुम यह क्या कर रहे हो ? आज तक जब कभी लडने का अवसर आता था तो तुम लोग वालि के आगे-आगे जाया करते थे। आज इस प्रकार क्यो भाग रहे हो ? तुम लोगो का कुछ नही बिगडा है। राम ने तो सुग्रीव को राजा बनाने के लिए वालि को मारा है। तुम लोगो पर उसका कोई प्रभाव नही पड सकता। सब अपनी-अपनी जगह पर टिके रहो।"

अपने दु ख को दबाकर रानी ने प्रजा के दिल से आतक हटाने के लिए शब्द कहे। और फिर वह अत पुर से निकलकर, वालि जहा चोट खाकर मरणासन्न अवस्था में पडा था, वहा जाने लगी। वानरो ने अपनी रानी को रोककर कहा, "हम पहले कुमार अगद का राज्याभिषेक करके उसे राजा घोषित करेंगे। गढ को सुरक्षित करेंगे। वैरी सुग्रीव को और उसके साथियो को दुर्ग के अदर नही घुसने देंगे।"

किंतु तारा ने वानरो को फिर समझाया, "मेरे स्वामी अब नही रहे। मुझे किसी पद का अब मोह नहीं रहा। मुझे उनके पास ले चलो।"

तारा सीधी वालि के पास पहुची। अपने प्राणप्रिय की दीन अवस्था उससे देखी नही गई। वालि अभी निष्प्राण नही हो गया था। कुछ क्षण शेष थे। वह बिल्कुल हिल-डुल नही रहा था। तारा चीख उठी, "हाय, मेरे शूर-वीर स्वामी, कितनो को आजतक तुमने हराया था, पर आज तुम मुझे छोड-कर चले जा रहे हो ! मैं अब कैसे जिऊगी !"

वह वालि की देह से लिपटकर रोने लगी। उसका दिल फटा जा रहा था।

उसके शोक में शामिल होने के लिए वालि का पुत्र अगद भी आ पहुचा। यह सब देखकर सुग्रीव के मन में अब सचमुच ही बड़ा पश्चात्ताप होने लगा।

× × ×

हम अपने अनुभवो मे देखते है कि दुनिया में द्वेप के कारण, बदला लेने के उद्देश्य से और लोभ के कारण जितने कार्य किये जाते है, उनका अतिम परिणाम दु ख,क्लेश और निराशा में ही ले जाकर पहुचाता है। अपने सकुचित मनोभावो पर हमें बाद में दु ख होता है, किंतु पहले हमें यह ज्ञान नही होता।

× × ×

तारा रोती ही गई,"हाय मेरे सर्वस्व, तुम्हारे साथ मैं भी मर जाऊगी। मेरा अगद क्यो अनाथ हुआ ?"

हनुमान तारा को आश्वासन देने का प्रयत्न करता रहा। बोला, "महारानी, आप शोक करना बद करें। वालि बड़ी ऊची पदवी पानेवाला है। अब अगद के युवराजाभिषेक की तैयारी होनी चाहिए। वालि की अतिम क्रियाए उचित रूप से होनी चाहिए। अपने मनको अब इन कामो में लगाइये।"

"अब मुझे किसी बात का उत्साह नही रहा। उत्तर-क्रिया करना और अगद की सुरक्षा आदि सब काम अब सुग्रीव को देखने हैं। एक हजार अगद भी मेरे प्रियतम के बराबर नही हो सकते। जिस किसी लोक में मेरा पति जायगा, मैं उसीके पीछे-पीछे वहा जाऊगी। उसीमें मेरी प्रसन्नता रहेगी।' तारा ने दुखित स्वर में कहा।

उस समय वालि ने जरा आखें खोली और सुग्रीव को बुलाकर बड़ी क्षीण आवाज में बोला, "सुग्रीव, हम दोनो राज्य को भोगते हुए आराम से रह सकते थे, किंतु दुर्भाग्य से वैसा हो न पाया। उसमें मेरा दोप अधिक था। उसकी चर्चा से अब कोई लाभ नही। अगद मेरे लिए और तारा के लिए प्राणो से भी अधिक प्यारा है। उसे मैं तुम्हें सौंपकर जा रहा हू। तुम जैसा

ही वह भी बहादुर है। तुम मेरे स्थान में रहकर उसकी रक्षा करना। बस, मैं तुमसे और कुछ नही चाहता।

"मेरी प्यारी तारा बहुत ही बुद्धिमान है। वह जो कुछ कहती है, वह सच निकलता है। बडी सूक्ष्म बुद्धिवाली है। राज-काज के विषय में तथा अन्य विपयो में उसकी सलाह हमेशा लिया करना।

"यह लो, मेरे गले की इद्र की दी हुई माला। इसे मैं तुम्हें देता हू। उसकी पूरी शक्ति अब तुम्हें मिलती रहेगी। मैं अब चला। तुम्हारे प्रति अब मेरे मन में किसी प्रकार का द्वेष नही रहा। तुम्हारा मगल हो!

"बेटा अगद मेरे पास तो आओ। सुग्रीव के साथ अच्छा व्यवहार करना। प्रेम और साहिष्णुता न खोना।"

अपने पुत्र को बालि ने उपदेश दिया।

जगली पेड को काटकर गिराये जाने पर उसके ऊपर द्रुम-लताए जिस प्रकार लिपटी रहती हैं, उसी प्रकार तारा बालि के शरीर के साथ लिपटी रही।

नील ने बालि के वक्षस्थल में लगे हुए बाण को धीरे-से बाहर निकाला। पहाड के झरने की तरह बालि के घाव से रुधिर की धारा बहने लगी। बालि के प्राण उसी क्षण निकल गये।

तारा के अतर से एक करुण चीख निकल पडी। अगद से बोली, "बेटा, अपने पिता को प्रणाम करके अतिम विदा ले लो।" और फिर रो पडी—"क्या मैं सचमुच आज से विधवा हो गई? मुझसे यह कैसे सहन होगा? प्रियतम, देखो हमारा अगद खडा है। अपना मुह खोलकर उससे कुछ न बोलोगे?"

तारा का दु ख देखा नही जाता था। उसका विलाप सुना नही जाता था।

यह सब देखकर सुग्रीव को बहुत ही दु ख हुआ। उसे लगा कि अपराधी वह स्वय है। वह सोचने लगा "मेरे मन के भीतर सदा लोभ बसा हुआ था। उससे मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। ठीक तरह से सोचे बिना मैंने गुफा का द्वार बद कर दिया और बडे भाई की सारी सपत्ति अपनाकर आराम से रहने लग गया। मैंने ही उसके क्रोध को बढाने का काम किया था। तब भी

बालि ने मुझे जान से नही मार डाला। केवल राज्य से भगा दिया था। मुझे छिपकर जीने दिया था। मैंने तो उसे मार डालने का षड्यत्र करके अत मे मरवा ही डाला। मेरे जैसा पापी दूसरा कोई भी नही हो सकता। मरते समय भी उसने मुझे अपना राज्य दे दिया। उससे बढकर, देवेंद्र की दी हुई शक्तिमाला मुझे अपने हाथो से दी! कैसा उदार हृदयवाला उच्च-कोटि का था मेरा भाई। मै बडा नीच हू। अपने भाई को मैने मरवा डाला!"

इस प्रकार सच्चे पश्चात्ताप से सुग्रीव प्रलाप करने लगा।

हमें पता लगे बिना ही हमारे भीतर के काम अर्थात् लोभ मे हमारी चिंतनशक्ति का लोप हो जाता है। बुरे निर्णयो पर हम पहुच जाते हैं। बालि के मरने के बाद सुग्रीव यह समझ पाया। अपने अत करण के लोभ से यह सब हो गया यह समझने में उसे देर न लगी।

× × ×

सस्कृत भाषा में 'काम' शब्द का हर प्रकार की इच्छा के लिए प्रयोग किया जाता है। वह हमारा बडा भारी शत्रु है। उसे जीते बिना हमें ज्ञान की प्राप्ति कदापि नही हो सकती। इसलिए गीता में तृतीय अध्याय के अतिम सात श्लोको द्वारा भगवान् कृष्ण समझाते हैं—"जहि शत्रु महाबाहो कामरूप दुरासदम्।" काम के कारण सुग्रीव की बुद्धि भ्रष्ट हुई। बालि ने अपनी विवेक-बुद्धि क्रोध के कारण खो डाली। क्रोध में आकर उसने सोच लिया कि सुग्रीव ने जान-बूझकर गुफा के द्वार पत्थर से बंद कर दिया। और गद्दी पर बैठकर मौज करने लगा। बालि का क्रोध बढता गया। सुग्रीव को राज्य से बाहर निकालकर भी उसका क्रोध शात न हुआ। 'मन्यु' अर्थात् क्रोध के कारण उसने कई अनुचित काम किये।

हमें चाहिए कि हम अपने मन-रूपी दुर्ग के अदर इन काम और क्रोध-रूपी दुश्मनों को कभी प्रवेश न करने दें। तभी हमारी रक्षा हो सकती है।

सनातनी लोग वर्ष-मे-एक साल में एक बार "कामोऽकार्षीत्, मन्युरकार्षीत्, नारायणाय नम (काम अकार्षीत्—काम ने मुझे खीचकर धोखा देकर पाप कराया, मन्यु अकार्षीत्—क्रोध के द्वारा मैं बहकाया

गया, मुझसे क्रोध ने पाप कराया') इस प्रकार जप करते हैं और क्षमा के लिए प्रार्थना करते है। यह विधि सबके लिए अनुकरणीय है।

× × ×

राम कुछ हिचकिचाहट के साथ विलाप करती हुई तारा के पास पहुचे। मन में साहस लाकर वह ऐसा कर सके।

तारा के मुख के भावो में कोई अतर नही आया। बोली, "हे वीर, जिस बाण से मेरे पति को तुमने मारा, उसीसे मुझे भी मार डालो, ताकि मैं भी अपने प्रियतम के पास पहुच जाऊ। स्वर्ग में भी मेरा पति मेरे बिना सुखी नहीं होगा। स्त्री-हत्या के पाप से न डरो। एक वियोगिनी स्त्री को उसके पति के पास पहुचाने का पुण्य ही तुम्हें मिलेगा। तुमने मेरे पति को जिस ढग से मारा, वह धर्मयुक्त न था। उसके बदले में अब तुम मुझे अपने पति के पास पहुचा दोगे तो वही तुम्हारे लिए प्रायश्चित्त होगा। मै अपने वालि के बिना कैसे जिऊगी?" ये वचन शूर वानर की पटरानी के सर्वथा योग्य थे।

× × ×

वाल्मीकि रामायण में यहापर कहा गया है कि तारा राम की अवतार-महिमा को समझती थी। परपरागत विश्वास यही है कि वालि की पत्नी तारा, लक्ष्मण की मा सुमित्रा की तरह एक ज्ञानी स्त्री थी। अपने पति की हत्या करनेवाले पर प्रारभ में तारा को घृणा और क्रोध हुआ था, किंतु राम के जब उसे दर्शन हुए तो उसका मन साफ हो गया।

हम इन वर्णनो को कहानी समझकर पढेंगे तो हमें कुछ रस नहीं मिलेगा। भक्ति-मार्गवालो को यह सब बहुत ही स्वाभाविक मालूम होता है। गोस्वामी तुलसीदासजी बताते है कि शिवजी पार्वती से कहते हैं, "उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत राम गोसाईं।" हम असल में कठपुतली के समान ही हैं, हमें प्रभु अपने मन के अनुसार नचाता है।

दुनियादारी के ढग से सोचा जाय तो भी तारा ने बडी बुद्धिमानी से अपने क्रोध को रोका। जो काम अब सभालने को था, उसे सभाला। बडी तीक्ष्ण बुद्धिवाली, राजनीति समझनेवाली तारा ने देखा कि वालि तो

अब रहा नही। किसी प्रकार से, दैवेच्छा से ही सही, सुग्रीव को राम की मैत्री मिल चुकी है। अगद के लिए सुग्रीव के साथ विरोध करना विनाश की ओर जाना है। नीति-शास्त्र के चार उपायो में तारा ने अब 'साम' का ही प्रयोग किया। भावावेश में आकर उसने सहिष्णुता नही खोई। राम को कटु वचन नही सुनाये। अगद के लिए उसने मार्ग सुगम बनाया।

वालि की उत्तर-क्रियाए बडे सम्मान के साथ की गई। मगलस्नान कराकर किष्किधावासियो ने सुग्रीव को राज-मुकुट पहनाया और अगद को युवराज घोषित किया।

× × ×

वर्षा-काल का प्रारभ हुआ। सुग्रीव और उसके साथी किष्किधा में मौज से दिन बिताने लगे। राम और लक्ष्मण पर्वत की एक गुफा में रहने लगे। नदियो में बाढ आ जाने के कारण जगली मार्गो में आना-जाना असभव-सा हो गया था। इसलिए सीता को ढूढने का काम कुछ समय के लिए रुक गया। करने के लिए कुछ भी काम न होने के कारण राम सीता की बहुत अधिक याद करने लगे और याद में दुखित होने लगे। लक्ष्मण बार-बार राम को समझाते रहे कि वर्षा ऋतु पूरी हो जाय तबतक धीरज रखें।

चाहे जीवन में बडे-से-बडे दु ख का भी सामना करना पडे तो भी समय एक ऐसा वरदान है, जिससे मनुष्य अपने दु ख को भूलकर अन्य कार्यों में प्रवृत्त हो जाता है। यदि हम दु ख को कभी न भूलते तो दु ख के ऊपर दु ख पहाड की तरह बढता चला जाता और हम उसके नीचे दबकर नरक-यातना भोगते रहते। इसी नियम के अनुसार सुग्रीव और उसके साथी, तारा आदि सबके सब वालि के वियोग को भूलने लगे और आराम से किष्किधा में उनके दिन बीतने लगे।

केवल हनुमान के मन में चिता लगी रही। राम के कार्य को वह नही भूला था। सुग्रीव को उचित समय पर याद दिलाने की राह वह देख रहा था।

वर्षा ऋतु बीत गई। आकाश अब शुभ्र दिखाई देने लगा। बादल हट

गये। पक्षीगण अपने-अपने आश्रय-स्थानो से वाहर आकर वोलने लगे। बुद्धिमान तथा धर्मपथ में रहनेवाला मारुति सुग्रीव के पास पहुचा।

राज्य के सभी कार्य सुग्रीव ने मन्त्रियो को सौंप दिये थे। वह निश्चिंत होकर अंतःपुर में भोगो में लिप्त हो गया था। उसके पास जाकर हनुमान ने विनय से अपनी वात निवेदन की। वह जानता था कि प्राणी कितने भी वुद्धिमान और भले हो, ऐश-आराम में मस्त हो जाने पर अपना कर्तव्य भूल जाते हैं।

: ५५ :

क्रोध का शमन

हनुमान ने सुग्रीव से निवेदन किया, "आपको अपने पूर्वजो का राज्य मिल गया। आपका अधिकार अव स्थायी रूप से स्थापित हो गया, पर एक काम अभी शेष है। वह यह कि मित्रो को प्रसन्न करके उनकी मैत्री को और सुदृढ़ वना लेना चाहिए। तभी आपकी प्रतिष्ठा वनी रहेगी और राज्य का वल वढेगा। मित्रो को आपने जो वचन दिये है, अपने आराम का त्याग करके भी उनका पालन करना आवश्यक है। तभी आपके प्रति उन लोगो का आदर-भाव हो सकता है। समय से पहले ही मित्रो का काम करके आपको दिखा देना चाहिए। विलव से काम विगडता है। उसका आनद चला जाता है। वे लोग आपके दिये हुए वचन की याद दिलादें, उससे पहले ही आप उनके कार्य में लग जाय, इसीमें श्रेय है। वुद्धिमत्ता भी उसीमें है। आप सवकुछ समझते हैं। हमें यह कभी नही भूल जाना चाहिए कि राम ने हमारे लिए कितना वडा उपकार किया है। हमें चाहिए कि अव उनके काम में एकदम लग जाय। इसकी प्रतीक्षा में न वैठे रहें कि वह खुद हमें याद दिलायें। वर्षा ऋतु वीत चुकी है। अव विलव का हमारे पास कोई कारण नही रहा। सीता के ढूढने के कार्य में हम सवको अव लग जाना चाहिए। राम ने काफी सहिष्णुता दिखाई है। अव हमें और देर न करनी चाहिए। राम ने आपके शत्रु को मारा था। उस काम में काफी खतरा था। उसमें उनको अपवाद का भी सामना करना पडा। फिर भी उन्होंने अपने वचन का पालन किया। हमें भी अपने दिये हुए वचन के अनुसार राम की पत्नी की खोज में निकल पडना चाहिए।"

वडे विनय के साथ सुग्रीव को हनुमान ने नीति समझाई। सुग्रीव को भी हनुमान की वात उचित लगी। ठीक समय पर याद दिलाने के लिए उसने

मारुति को धन्यवाद दिया और सेना इकट्ठी करने की आज्ञा दी ।

फिर सुग्रीव ने नील को बुलाकर आदेश दिया, "सारी दुनिया में सीता की खोज करो । सीता मिलनी चाहिए । चतुर वानरो को एकदम बुला लो । जो एकदम नही आ जाते, उन्हें कठोर दड भोगना पडेगा ।" ऐसा आदेश देकर सुग्रीव फिर अपने अत पुर में चला गया ।

उधर राम और लक्ष्मण ने सोचा था कि वर्षा ऋतु के समाप्त होते ही सुग्रीव सीता को ढूढने के लिए चारो दिशाओ में अपने सैनिको को भेज देगा । दोनो भाई आतुरता के साथ प्रतीक्षा में थे कि कब वर्षा ऋतु समाप्त होती है।

वर्षा-काल निकल गया । सारा वन-प्रदेश फिर से खिल उठा । राम सीता की और भी याद करने लगे —"मालूम नही मेरी प्यारी सीता कहापर है और कितने कष्ट में है । मेरे साथ रहकर उसने दडकारण्य को एक उद्यान समझा था । कभी किसी चीज की शिकायत नही की । यह वानर राजा तो अपने अत पुर में मदिरा और स्त्री के चगुल में मस्त पडा है । मुझे तो वह बिलकुल भूल ही गया लगता है । बडा नीच प्रकृति का मालूम होता है । लक्ष्मण, अभी किष्किधा जाओ और सुग्रीव से मिलो । उससे पूछो कि मामला क्या है ? बालि जहा पहुचा है, वही उसे भी जाने की इच्छा हो रही है क्या ? उससे कहना कि मैंने यह पुछवाया है । कहना कि वह उपकार को भूल जाने से अधोगति पानेवाला है । यह भी उससे कहना कि वर्षा के चार महीने राम ने चार युग की तरह बिताये हैं । तू और तेरे साथी भोगो में मस्त होकर राम के क्रोध को उत्तेजित कर रहे है । और इस प्रकार नाश की ओर जा रहे हैं ।" इतना कहकर आवेश मे राम ने लक्ष्मण को सुग्रीव के पास भेजा ।

लक्ष्मण राम के शोक और क्रोध को लेकर सुग्रीव के पास जाने ही वाले थे कि राम ने कुछ विचार किया । लक्ष्मण के स्वभाव को वह अच्छी तरह जानते थे । इसलिए उन्हें अपने पास बुलाकर कहा, "सुग्रीव के साथ बात करते हुए कटु शब्दो का प्रयोग न करना । कुछ भी हो, हमने उसके साथ मित्रता की है । उसकी भूलो को उसे समझाओ । क्रोध को शात रखकर बातचीत करना ।"

लक्ष्मण ने मान तो लिया, किंतु उनके मन में भी बडा गुस्सा भरा हुआ था। वह किष्किधा के द्वार पर पहुचे।

सशस्त्र और कोपमुद्रा में लक्ष्मण को देखकर वानर भयभीत हुए। वह किले की रक्षा करने के लिए उद्यत हो गये। वानरो के उस व्यवहार से लक्ष्मण का गुस्सा और बढ गया। कुछ वानर सुग्रीव के पास दौडे गये और बोले, "राजन्, लक्ष्मण बडे गुस्से के साथ तीर-कमान लेकर आया हुआ है। हमारे रोकने पर भी रुका नही। नगर के अदर आ गया है।"

वानरेंद्र सुग्रीव भोग मे लिप्त था। वानरो ने उससे जो कहा, उसका मतलब वह समझ ही नही सका।

इस बीच वानर सैनिको की सुरक्षा की व्यवस्थाए खूब जोरो से होने लगी, जो लक्ष्मण की क्रोधाग्नि में घी का काम कर रही थी। रुकावट की चिंता न करके लक्ष्मण नगर के अदर घुस गये। सद्भाग्य से पहले-पहल अगद को उन्होने देखा। उसे देखकर उनका क्रोध कुछ शात हुआ। बडे प्यार से अगद से उन्होने बातें की, "वत्स, वानरराज सुग्रीव को बताना कि राम के दुःख से दुखी उनका भाई लक्ष्मण राजा से भेंट करना चाहता है।"

अगद तत्काल सुग्रीव को सदेश सुनाने गया, पर नशे में चूर सुग्रीव को वह सचेत न कर पाया। मत्रियो को बुलाकर वह सलाह करने लगा कि अब क्या किया जाय। हनुमान और दूसरे मत्री फिर सुग्रीव को बार-बार समझा-कर उसे होश मे लाने का प्रयत्न करने लगे।

सुग्रीव बोला, "मैंने क्या भूल की है? राम-लक्ष्मण मुझसे क्यो नाराज हो गये है? यह किसी शत्रु का काम है। अवश्य किसीने मेरे विरुद्ध राम के कान भर दिये है।"

हनुमान ने सुग्रीव को समझाया कि गलती वानरो की तरफ से अवश्य हुई है। वर्षा ऋतु समाप्त हो जाने पर भी किसीने राम के पास पहुचकर यह नही पूछा कि वह कैसे है? उनके किये हुए उपकार को हमने याद नही रखा। उनके दुःख में सहायता करने की वानरो ने जो प्रतिज्ञा की थी उसे हम भूले नही तो भी विलब तो कर ही दिया। इसलिए उसके लिए राम से हमें क्षमा

मागनी चाहिए ।"

सुग्रीव ने लक्ष्मण को महल में लाने के लिए अपने सेवको को भेजा। लक्ष्मण नगर के भीतर से होकर राज-भवन के अत पुर के द्वार तक पहुचे। नगर की विशेषता और शोभा से लक्ष्मण बडे विस्मित हुए। अत पुर के द्वार पर खडे होकर उन्होने अदर से आनवाले बाजो की और हँसी-विनोद की आवाजें सुनी। उन्हें इससे बहुत चिढ हुई। स्त्रियो से भरी जगह में प्रवेश करने में उन्हें सहज ही सकोच हुआ। अपने आगमन की सूचना देने के लिए उन्होने धनुष की प्रत्यचा खीचकर टकार किया।

यह टकार कोई मामूली न था। उसकी गूज से सारी किष्किधापुरी हिल गई। सुग्रीव घबरा गया। उसने तारा से कहा कि वह पहले जाकर लक्ष्मण से मिले।

× × ×

तारा लक्ष्मण के पास पहुची। व्यवहार-कुशलता, बात करने के ढग तथा रूप-लावण्य में तारा की तुलना किसीसे नही हो सकती थी। वह लक्ष्मण के सामने आई और बोली, "सुग्रीव ने गरीबी और शत्रु के भय से आक्रात होकर बरसो बिताये हैं। उसकी प्रतिक्रिया ही यह समझ लीजिये। वह अब मदिरा और अन्य भोगो में चूर पडा है। आप लोगो की सहायता से उसे सब कुछ मिल गया है। गलती उसकी अवश्य है, किंतु वह अक्षम्य नही। आप उसपर क्रोध न करें। अब उसकी बुद्धि-भ्रष्ट की-सी अवस्था है। प्रज्ञावान होकर आप उसकी त्रुटियो को सहन करें। वह आपको दिये हुए वचन को भूला नही है। चारो तरफ से सैनिको को इसी काम के लिए बुला भेजा है। सीता को ढूढने का काम सफलता से हो जायगा। इसमें आप तनिक भी शका न करें। राजकुमार आप अदर पधारें और राजा से मिलें।"

लक्ष्मण का क्रोध शात हुआ। वह तारा के साथ अदर गया। उसके सौम्य मुखमडल को देखकर सुग्रीव बहुत प्रसन्न हुआ। अपने आसन से उतरकर सामने आया और लक्ष्मण का उचित रूप से स्वागत किया। हाथ जोडकर बोला, "मुझसे कोई अपराध हुआ हो तो, राजकुमार, मुझे क्षमा करें। राघवेंद्र

की मैत्री और शूरता के बिना मैं तो कही का न रहता। यह राजगद्दी मुझे राम के कारण ही मिली हुई है। उसे मैं कभी भूल नही सकता। मैं जानता हू कि मेरी सहायता के बिना ही राम रावण को हराने की शक्ति रखते है। मैं और मेरी सारी सेना राम के नेतृत्व में राम के पीछे-पीछे जायगी। रावण अब बच नही सकता। मुझसे जो विलम्ब हो गया, उसके लिए क्षमा चाहता हू।"

सुग्रीव की बातो से लक्ष्मण बहुत प्रसन्न हुए बोले, "सुग्रीव, तुम तो बहादुरी में राम के बराबर हो। ऋष्यमूक चलो, राम से मिलकर उनके साथ कुछ ऐसी बातें करो, जिससे वह अपना दुःख भूल सकें।"

× × ×

सुग्रीव और लक्ष्मण एक ही पालकी में बैठकर राम के पास पहुचे। सुग्रीव ने राम से कहा कि सीता को ढूढने की सारी प्रारभिक तैयारिया हो गई है। राम को सतोष हुआ। सुग्रीव से बोले, "तुम्हारे जैसा मित्र पाना बडा दुर्लभ है। वर्षा जैसे पानी बरसाकर और सूर्य जैसे अधेरी रात को हटाकर लोगो के दिलो को आल्हादित करते है, उसी प्रकार मित्र प्रतिफल की अपेक्षा किये बिना, सहायता करता है। अब तुम्हारी सहायता से हम रावण पर अवश्य विजय पायेंगे।

जब राम इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय सुग्रीव की आज्ञा से वानर-समूह दूर के वन, पहाड और समुद्र-तटो से वहापर आकर जमा होने लगे। उनसे उठी धूल से आकाश छिप गया। अधेरा-सा हो गया।

बदर तरह-तरह के रगो के और भिन्न-भिन्न आकारो के थे। उनमें विभिन्न प्रकार के रीछ भी थे। असख्य गिनती में सब आकर जमा होने लगे। सबको ठहराने की व्यवस्था सुग्रीव को करनी पडी। जिसको जो बताना था, वह भी सुग्रीव ने किया। सुग्रीव ने आठ सेनापतियो को चुना। उनके साथ सैनिको को लगाकर आठो दिशाओ में सीता को ढूढने की आज्ञा दी।

× × ×

यहापर एक बात समझाने की आवश्यकता है। पुराने समय में यह प्रथा थी कि कुछ राजकुलो में तथा अन्य कुछ जातियो में भाई के मरने के

बाद उसकी पत्नी को, छोटा या बडा भाई, जो कुटुब का मालिक हो, अपना लेता था। समय और आवश्यकताओ के अनुसार प्रथाए चल पडती है। इसलिए हमें इन बातो को पढते समय सकुचित मनोभाव नही रखना चाहिए। वाल्मीकि की कथा के अनुसार बालि की पटरानी तारा सुग्रीव की रानी बन गई थी। वानर-जाति की रूढि के अनुसार और अगद की भलाई के उद्देश्य से अथवा लोकापवाद से बचने के लिए तारा ने यह किया होगा। हम इसपर नाक-भौ क्यो सिकोडें। विधुर कितनी ही बार विवाह कर ले, हम उसमें आपत्ति नही देखते। वाल्मीकि के कथानुसार बालि के मरने के बाद तारा सुग्रीव के अत पुर की रानी बन गई और सुग्रीव और अगद दोनो की अपनी सुतीक्ष्ण बुद्धि द्वारा भली प्रचार देखभाल करने लगी।

किंतु कबन की रामायण में तारा का दूसरे प्रकार का चित्र है, जो हमें बहुत पसद आ सकता है। वहा तो तारा वैधव्य-व्रत और नियमो को पालती हुई निर्मल चारित्र्यवाली राजमाता के रूप में ही चित्रित की गई है।

कबन का यह चित्र एकदम निराधार नही है। वाल्मीकि रामायण में ही बाद में सुदर-काड (सर्ग १३, श्लोक २८) मे यह कहा गया है कि जब सारी जगह ढूढने पर भी सीता नही मिली तो हनुमान की समझ में नही आया कि अब क्या किया जाय। यदि वह किष्किधा पहुचकर यह कह दे कि सीता नही मिली तब क्या-क्या हो सकता है, इसका विचार वह करने लगा। वाल्मीकि कहते है, "हनुमान सोचने लगा कि सीता को न ढूढ पायेंगे तो सुग्रीव का मरना निश्चित है। सुग्रीव मर गया तो उसकी पत्नी भी अवश्य मर जायगी। जबसे बालि मरा है तब से दु ख से दिन पर-दिन तारा भी क्षीण होती चली जा रही है, और जिदगी से अब ऊब गई है ? फिर कैसे जीवेगी ?"

पीडिता भर्तृशोकेन रूमा त्यक्ष्यति जीवितम्।
वालिजेन तु दु खेन पीडिता शोक कर्शिता॥
पचत्वं च गते राज्ञि तारा अपि न भविष्यति।

सभव है कि इस श्लोक के आधार पर से ही कबन ने पटरानी प्राज्ञी तारा को वाल्मीकि से कुछ भिन्न रूप में चित्रित किया हो।

: ५६ :

सीता की खोज प्रारंभ

"राम, यह लाखों-करोड़ों की सेना जो तुम देख रहे हो, समझ लो कि वह तुम्हारी ही है। अद्भुत् बलवाले इन सैनिकों को अपने ही सेवक समझकर इनसे जो काम चाहो ले सकते हो। तुम्हारा काम करने की ये पूरी शक्ति और इच्छा रखते हैं।" सुग्रीव ने कहा।

आनद-मग्न होकर राम ने अपने मित्र को गले से लगा लिया। बोले, "सुग्रीव, पहले तो हमें इस बात का पता लगाना होगा कि सीता जीवित है या नही। यदि जीवित है तो रावण ने उसे कहा छिपाया है। रावण इस समय कहापर है, यह भी हमें मालूम हो जाना चाहिए। जब इन बातों का हमें पता लग जाय तब फिर सोचेंगे कि आगे क्या करें। सेना को जो कुछ आदेश देना होगा वह तुम दोगे, मैं या लक्ष्मण नही दे सकते, क्योंकि राजा तुम हो। इस कार्य में तुम निपुण भी हो। मेरा और लक्ष्मण का अहोभाग्य है कि तुम्हारे-जैसा मित्र मिल गया।"

सुग्रीव ने सेनापतियों को आदेश दिया कि वे कोई भी जगह बिना देखे न छोडें। अलग-अलग सेनापति बडी सेना के साथ अलग-अलग दिशाओं मे निकल पडें और सफलता प्राप्त करके ही लौटें। देर न लगावें। सभी सेनापतियों को इस प्रकार सीता को ढूंढने के काम में नियुक्त कर सुग्रीव ने हनुमान को अलग बुलाकर कहा, "हे पवन-सुत, मैंने वानरों को सीता की खोज में भेज तो दिया है, किंतु मैं इस कार्य की सिद्धि के लिए केवल तुम्हारे ही ऊपर भरोसा रख रहा हूं। यह कार्य तुम्हारे सिवा और किसीसे नहीं हो सकता। अपने पिता वायु-भगवान से तुम्हें अति तीव्र गति प्राप्त हुई है। तुम अपने पिताजी के समान तेजस्वी भी हो। हे हनुमान, तुम्हारे समान दूसरा कोई नही। बल, पराक्रम, बुद्धि, ज्ञान और उपाय, ये सभी गुण

तुम्हारे अदर विद्यमान हैं। वस अव सीता को ढूढने का यह काम तुम अपने ही ऊपर समझो।"

रामचद्र की भी हनुमान पर विशेष आस्था थी। उन्होंने सोचा कि कैसा भी विघ्न आ पडे, हनुमान किसी-न-किसी प्रकार से उसे दूर कर देगा। उगली से अपनी मुद्रिका उतारकर रामचद्र ने हनुमान के हाथ में देते हुए कहा, "हे मारुति, मेरी यह अगूठी अपने साथ ले जाओ। तुम इसे मेरी वैदेही को दिखाओगे तभी वह विश्वास कर सकेगी कि तुम मेरे दूत हो।"

विरह और शोक-मतप्त दशरथ-नदन श्रीराम को पूरा विश्वास था कि मारुति अवश्य सीता से मिलेगा और उससे सान्त्वना के कुछ शब्द कहेगा। इसीलिए उन्होंने अपनी नामाकित अगूठी हनुमान के हाथ में दे दी। उस दृश्य का वर्णन करना कठिन है। पवन-सुत ने वडी भक्ति के साथ उसे लिया। श्री राम के चरणो में माथा रखकर प्रणाम किया और उनसे आज्ञा लेकर चल पडा।

सव सेना-नायको को सुग्रीव की कडी आज्ञा थी कि कही भी हो, सीता को अवश्य ही ढूढ़ना होगा। एक महीने के अदर ही राजा के पास सीता की खवर पहुचनी चाहिए। छत्तो से जैसे मधु-मक्खिया निकल पडती हैं, उसी प्रकार वानर उस प्रदेश से सभी दिशाओ में चल पडे।

शतवली उत्तर दिशा में गया, विनत पूरव की ओर अपनी सेनासहित कूदता हुआ चल पडा, सुषेण पश्चिम की तरफ और हनुमान, अगद और तारक दक्षिण दिशा में। एक से वढकर दूसरे को राम के कार्य में उत्साह था। वडे कोलाहल के साथ वे चल पडे। जव इस प्रकार सव निकल गये तव राम ने सुग्रीव से पूछा, "मित्र सुग्रीव, जव तुम अपने सेनानायको को दुनिया के सभी भागो का वर्णन करके वहा पहुचने की आज्ञा सुना रहे थे, सुनकर मैं आश्चर्य-चकित रह गया। उससे पता लगा कि तुमने तो सारी दुनिया का भ्रमण किया है। तुमने यह सव कव किया था? मुझे सुनाओ।"

"राम, वालि मुझे एक भी जगह टिकने नहीं देता था। जहा भी जाकर

क्या किया जाय?' सबके मन में चिंता होने लगी। वे अब बहुत दूर दक्षिण में चले गये थे।

भूख और प्यास से बेचारे वदर बहुत थक गये। तब एकाएक उन लोगो की नजर एक गुफा द्वार पर पडी, जहा से नाना प्रकार के पानी के पक्षी वाहर आ रहे थे। उनके शरीर पर कमल का पराग लगा हुआ था और कमल की सुगधि भी आ रही थी। उससे सबने यह निष्कर्ष निकाला कि गुफा के भीतर अवश्य कोई जलाशय होना चाहिए। प्यासे तो सब थे ही, अदर घुस पडे। गुफा के भीतर घोर अधकार था। एक दूसरे का हाथ पकडकर भीतर काफी दूर तक चलते गये। उनमें से कई वानर 'हाय, वडी प्यास लगी है' कहकर अति दीन स्वर में पुकारने लगे। तभी एकदम कुछ प्रकाश-सा दिखाई दिया। प्रकाश वढता गया। कुछ और आगे जाने पर वहापर एक वडा ही मनोहर उद्यान मिला। उसके वाद वहापर आश्चर्य-चकित करनेवाले वडे-वडे भवन दिखाई दिये। सडकें लवी-चौडी थी। वहा वहुत ही अद्भुत एक नगर दिखाई दे रहा था। सोना, चादी और धन-धान्य के ढेर लगे थे।

वही एक जगह एकवहुत वूढी तपस्विनी वल्कल धारण किये कृष्णाजिन पर समाधि लगाकर वैठी थी। उसे देखकर सवको कुछ डर-सा लगने लगा।

हनुमान ने हिम्मत की। वोला, "मा, आपको नमस्कार करता हू। आप अपना परिचय दे सकती है ? इस विचित्र गुफा के वारे में और अपने वारे में हमें कुछ वताइये। हम वहुत ही भूखे और प्यासे है। पानी की आशा में इस गुफा के अदर घुस कर आये है। यहा के सोने के महलो से हमें कुछ डर-सा लग रहा है।"

तपस्विनी वोली, "हे वानर, इस गुफा में प्रवेश करके यहा पहुचना आसान काम नही। तुम लोग कैसे आ गये ? यहापर अच्छा ठडा पानी वहुत है। पी लो। स्वादिष्ट फल भी कई प्रकार के हैं। पेटभर के खाओ। तुम लोगो की थकावट दूर हो जायगी। और यह जो अद्भुत भवन तुम देख रहे हो, सव दानवो के विश्वकर्मा मय के वनाये हुए है। उसने यह कला

शुक्राचार्य से सीखी। इस निर्माण-कला में वह वहुत निपुण है। यहापर वह कई वर्ष रहा। वाद में इद्र और मय के वीच युद्ध हुआ। उसमें मय मारा गया। इद्र ने इस भवन को अपनी प्रेयसी हेमा नाम की अप्सरा को दे दिया। हेमा मेरी सखी है। इस भवन की और वागो की वही मालकिन है। आजकल हेमा देवलोक गई हुई है। आप लोग कहा से आये है? भूखे-प्यासे क्यो फिर रहे है? पहले कुछ खा पी लीजिये, फिर वताइये।"

तपस्विनी वृद्धा ने वानर-समह को खूव खिलाया-पिलाया। सवने पहले तो पानी पिया और फिर पेट भर फल खाये। खूव ताजगी आ गई। वाद में हनुमान ने तपस्विनी स्वयप्रभा को अपना सारा वत्तात कह सुनाया।

"महाराज दशरथनदन श्रीराम अपनी पत्नी सीता और छोटे भाई के साथ किसी कारण से राज्यपदवी को छोडकर वनवास कर रहे थे। एक दिन एक राक्षस सीता को उठाकर ले गया। उसको ढूढते हुए राम और लक्ष्मण, हम जहा थे, वहा आये। वानरेंद्र सुग्रीव और राम के वीच में मित्रता हो गई। हम लोगो को सुग्रीव ने सीता को ढूढने के काम में लगाया है। हमें उसके लिए जो समय दिया गया है वह अव पूरा होने को आ गया है। सुग्रीव वडा कठोर शासक है। अवधि के भीतर हम उसकी आज्ञा का पालन न करेंगे तो वह हमें मार डालेगा। हमें इधर से वाहर निकलने का मार्ग वताइये। यहीपर हमारा काफी समय निकल गया है।"

तपस्विनी ने उत्तर दिया, "वाहर से जो भी आदमी यहा आता है, वह जिंदा वाहर नही निकलता। इस गुफा की यही विशेषता है। फिर भी तुम लोगो के कार्य की मैं सफलता चाहती हू। अपने तपोवल से तुम लोगो को यहा से वाहर निकाल दूगी। सव आखें वद कर लो।"

सव वानरो ने आखें मूद ली। खोली तो साध्वी के तपोवल से सवने अपनेको दक्षिण सागर के किनारे पाया।

: ५७ :

निराशा और निश्चय

वानर-वीरो ने समुद्र-तट के चारो ओर निगाह डाली। उन्हें पता चला कि वर्षा के वाद, सर्दी का मौसम भी समाप्त हो रहा है। वसत का प्रारभ था। इस विलव से वे वडे घवराये। अगद वोला, "सुग्रीव ने जो समय दिया था वह तो कभी का खतम हो गया। अव हम क्या करें ? अव इतनी देर बाद सीता की भी कोई खवर लिये विना किष्किधा पहुचे तो सुग्रीव कम-से-कम मुझे तो मार ही डालेगा। मुझे वह दिल से तो चाहता नही है। राम के डर से उसने मुझे युवराज वना दिया है। वहा जाकर उसके हाथ से मैं क्यो मरू ? मेरी तो यही राय है कि यहीपर प्रायोपवेशन करके प्राण छोड दू।"

कइयो को युवराज अगद की यह वात पसद आई। पर सेनापति तारक को यह ठीक न लगी। वह वोला, "नही, व्यर्थ ही हम क्यो मरें ? चलो, सवके-सव वापस तपस्विनी स्वयप्रभा की गुफा में ही चलते है। वहा आराम से हमारे दिन कट जायगे। किसी चीज की वहा कमी नही है। वहापर सुग्रीव की भी पहुच नही हो सकती। आगे की जिंदगी आराम में वितायेंगे।"

पर हनुमान को यह वात पसद नही आई। वह वोला, "तारक, तुम्हारी वात अनुचित है। क्या अपने परिवार को किष्किधा में छोडकर इतनी दूर गुफा में खा-पीकर मौज करोगे ? उसमें कौन-सा मानसिक आराम तुम्हें मिलेगा ? सुग्रीव को अगद पर कोई रोप नही है। वास्तव में सुग्रीव वहुत ही भले स्वभाव का है। उससे हम डरें नही। मान लें कि वह हमें प्राणदड दे देगा। पर गुफा के भीतर भी तो राम-लक्ष्मण की सहायता से उसकी पहुच हो सकती है। हम सवने लक्ष्मण को क्रोधावस्था में देखा है। मैं तो कहता हू कि हम सुग्रीव के पास ही वापस चलें। उससे ही क्षमा प्रार्थना करेंगे।"

अगद ने यह प्रस्ताव नही माना। वोला, "हनुमान का कहना ठीक नहीं।

सुग्रीव मुझपर तनिक भी दयाभाव नही दिखायेगा। मुझे तो मारकर ही छोडेगा। सुग्रीव बडे ही क्रूर स्वभाव का है। मेरे पिता वालि को उसने जिस प्रकार मरवाया था उसी प्रकार कोई-न-कोई बहाना लेकर मुझे भी मारने का प्रयत्न करेगा, ताकि उसका रास्ता साफ हो जाय। प्रतिज्ञा को भूल जाना उसका स्वभाव है। राम को दी हुई प्रतिज्ञा की उसे याद थी? लक्ष्मण के धनुष के डर से उसका दिमाग दुरुस्त हुआ। मेरी मा तो बेचारी दुखी हो गई। उसके डर के कारण और मेरे भविष्य की आशा से वह सुग्रीव के दबाव में आ गई है। वह मुझे प्राणो से भी अधिक चाहती है। मेरे ही लिए वह जीवन धारण किये हुए है। हाय, जब वह सुनेगी कि मै भी मर गया तो उसका क्या हाल होगा? लेकिन "किष्किधा जाकर मरू, उससे तो यही मरना अच्छा है।"

ऐसा कहकर उसने भूमि पर दर्भ को फैलाया, देवताओ का स्मरण किया और प्राणत्याग का सकल्प करके पूर्व दिशा की ओर मुह करके बैठ गया।

युवराज अगद को प्रायोपवेशन करते देखकर सभी वानर जोरो से रोने लगे और अगद का अनुकरण करते हुए सब-के-सब उपवास का सकल्प लेकर बैठ गये।

इन निराश वानरो के समूह को गीधो के सरदार सपाति ने पास की एक पहाडी की चोटी से देखा। सपाति बहुत बूढा हो गया था। उसमें अब उडने की शक्ति नही रह गई थी। आहार की खोज में न जा सकने के कारण वह भूखा था। वानरो की बातें उसने सुनी। चीलो को तो मुर्दे का मास बहुत ही भाता है। उसे बडी खुशी हुई कि इतने प्राणी एक साथ मर रहे है। बहुत समय तक के लिए उसे अब खाने की चिता नही रहेगी।

उसी समय वानर भी आपस में वार्तालाप करने लगे—कैकेयी के कारण दशरथ मरा। राम को वनवास करना पडा। वनवास के कारण सीता को रावण उठा ले गया। वीर जटायु ने सीता को बचाने के लिए अपने प्राण दे दिये। यदि थोडी देर और जटायु जीवित रहकर रावण को युद्ध में जुटाये रहता तो राम-लक्ष्मण वहा पहुच जाते और सीता को बचा लेते। जटायु

तो मर गया, पर उसका परिणाम यह हुआ कि हमें भी मरना पड रहा है।"

इस वात को सुनकर सपाति चौंक पडा। बोला, "हैं यह क्या कहा! मेरा भाई जटायु कव मरा?" इस विषय में और जानने की उसे इच्छा हुई।

सपाति वहुत वूढा था। गरुड के छोटे भाई अरुण के दो पुत्र थे। एक का नाम था सपाति, दूसरे का जटायु। जवानी में दोनो भाइयों ने ऊपर की ओर उडान की स्पर्धा की। उडते हुए सूर्य का ताप वढने लगा। लगा कि जटायु उससे जलने ही वाला है। तव सपाति ने जटायु को वचाते हुए अपने पखो को फैला दिया। इससे जटायु वच गया, लेकिन सपाति के पख जल गये। वह नीचे पहाडी के ऊपर गिर पडा। फिर उड न सका। तभीसे जैसे-तैसे उसका जीवन चल रहा था।

"हे वानर, क्या तुम मेरे प्यारे भाई जटायु के वारे में वात कर रहे हो? तुम लोग कौन हो? जटायु क्यो और कैसे मरा? दशरथ का लडका वन में क्यो रहने लगा? उसकी स्त्री को रावण क्यो ले गया? मुझे सब वातें विस्तार से वताओ।" सपाति ने पूरी ताकत लगाकर चिल्लाकर कहा।

वानर प्राण त्याग करने वैठे थे। गीध उन्हें खाने की प्रतीक्षा में था। किंतु हुआ कुछ और ही।

वानर-समूह के कुछ लोग सपाति की पुकार सुनकर उसके पास उछल कर पहुच गये। पक्षी को धीरे-धीरे चलाकर नीचे ले आये। उसे जटायु का सारा हाल सुनाया। पक्षी ने अपनी भी कथा सुनाई। अगद ने किष्किधा में जो कुछ हुआ, सव सपाति को वताया और पूछा कि श्रीराम के लिए अव क्या और कैसे किया जाय। सपाति की आखो की शक्ति जैसी-की-तैसी थी। सैकडो कोसो दूर तक उसकी दृष्टि की पहुच थी। उसने कहा, "मुझे जरा देखने दो।"

सपाति ने दूर दक्षिण में लकाद्वीप तक निगाह दौडाई। उसने लकापुरी देखी। वानरो को लका का वर्णन सुनाया। रावण के वैभवो को देखकर उसका वर्णन किया। राक्षसियों के वीच जानकी को भी देखा और कहा कि सीता राक्षसियों के वीच घिरी वैठी है।"

वानर चिल्लाने लगे, "तब तो सीता की खबर हमें मिल गई ! हमें अब अपनी जान खोने का डर नही रहा ।" और सब-के-सब उछल-कूद मचाने लगे ।

सपाति की वर्षों की वेदना दूर हो गई । उसको यह वर मिला हुआ था कि जब वह श्रीराम के कार्य में सहायता करेगा तो उनके नये पख उग आयेंगे । वह सच निकला । जैसे-जैसे वह वानरो को बातें बताता गया, उसके अग पर नये-नये पर उगते गये । उसका दूसरा ही रूप हो गया । पखो को फिर से पाकर सपाति समुद्र के किनारे उडकर जा पहुचा । वहा जाकर उसने अपने मृत भाई जटायु के लिए उदक-क्रियाए की और मन में सतोष प्राप्त किया ।

× × ×

सपाति के कहने से वानरो को सीता के स्थान का, जो रावण की लकापुरी थी, पता चल गया । किंतु वे सोचने लगे कि राजा सुग्रीव को इतने से सतोष नही हो सकता । प्रत्यक्ष देखे बिना केवल कही-सुनी बातो से कैसे विश्वास किया जा सकता है ? सीता को लका में जाकर देख आने पर ही सपाति की बताई बात के सच-झूठ का निर्णय हो सकता है । समुद्र को लाघे बिना यह काम असभव था । अगद सोच में पड गया कि अब क्या किया जाय । विशाल सागर को देखकर वानर घबराये कि इसे कैसे पार किया जा सकेगा ?

युवराज अगद बोला, "चाहे कैसा भी कार्य हो, उसकी सिद्धि के लिए भले ही बडी-बडी कठिनाइयो का सामना करना पडे, तो भी साहस को नही खोना चाहिए । अधैर्य विनाश का मूल है ।"

फिर अगद ने अपनी सेना के अग्रगण्य वानरो से कहा कि वे अपनी-अपनी शक्ति का वर्णन करें । वह बोला,

"हे वानर वीरो, आप लोगों की सामर्थ्य मैंने राजा सुग्रीव के मुह से सुनी है । इसमें कोई शक नही कि आप सभी बहुत ही तेज और वीर्यवान है । हमारा काम महत्वपूर्ण है । सीता से मिले बिना हम किष्किधा लौट

नहीं सकते । वैसा करना बडी शरम की बात होगी । फिर इसमें जान खोने की भी सभावना है । आप सब एक-एक करके बतावें कि कौन कितनी ऊचाई में और कितनी दूरी की छलाग मार सकते हैं ।"

यह सुन गज नामक वानर ने नम्रता से कहा, "मैं दस योजन कूद सकता हू ।" गवाक्ष बोला, "मैं बीस योजन आसानी से जा सकता हू ।" तीसरे सेनापति ने कहा, "मैं तीस योजन ।" इस प्रकार कई वानर बोलते गए । अत में जो सबसे पराक्रमी माना जाता था, वह जाबुवान बोला, "अब तो मैं बूढा होने लगा हू । किसी जमाने में मैं बडा बलिष्ट था । अब मुझमें जवानी की ताकत नही रही । फिर भी राजाज्ञा है । राज-काज है । इस बुढापे में भी कुछ करके दिखाना चाहता हू । मैं नब्बे योजन तो अभी भी कूद सकता हू । पर सभव है, लका पहुचने के लिए यह पर्याप्त न हो । मुझे इस बात का खेद हो रहा है कि मैं बूढा क्यो हुआ ।"

इसपर अगद बोला, "मैं शत योजन लाघकर लका अवश्य पहुच जाऊगा । किंतु मेरी शक्ति वापस आने तक समाप्त हो सकती है । इसीलिए डर रहा हू ।"

जाबवान बोला, "युवराज, तुम्हें अपनी शक्ति के बारे में शका नही होनी चाहिए । अपने पिता बालि के समान तुम्हारा पराक्रम है । किंतु तुम राजा के स्थान के लिए नियुक्त हो गये हो । ऐसे कामो में उतरना जोखिम का काम है । उससे तुम्हें बचना चाहिए । तुम हम सबसे काम लो । इसीमें कुशलता है । जो प्रजा की रक्षा में रहता है, उसे युद्ध में अथवा अन्य इसी प्रकार की परिस्थितियो में, सावधानी से कदम उठाना चाहिए । मेरे विचार में वायूपुत्र हनुमान जो मौन धारण किये दूर बैठा है, इस कार्य के लिए सर्वथा समर्थ है ।"

इतना कहकर जाबुवान ने हनुमान को पास आने के लिए सकेत किया । सभी चिंतित वानर आतुरता से जाबुवान की बातें सुनने लगे । जाबुवान बोला, "हे वीर हनुमान, तुम सभी शास्त्रो को जानते हो । आगे आओ ! हम सब तुम्हें राजा सुग्रीव के ही बराबर समझते हैं । हम सबमें अधिक बली

तुम्ही हो। पक्षियो के राजा गरुड को समुद्र पार करते हुए मैने देखा है। विनता-सुत गरुड के पखो में जो शक्ति है, वही तुम्हारी भुजाओ में है। तीव्र गति में तुम गरुड से पीछे नही हो। तुम्हे शायद अपनी शक्ति की पहचान अभीतक नही हुई। तुम्हारे जैसा पराक्रमी ढूढने पर भी नही मिल सकता। तुम्हारी मा अजना देवलोक की अप्सरा थी। एक समय पर्वत की तराई में वह आनद से विहार कर रही थी। अति रूपवती तुम्हारी मा को देखकर तुम्हारे पिता वायु भगवान उनपर मुग्ध हो गये थे। वायु के स्पर्श का अपने अगो पर अनुभव करके तुम्हारी पतिव्रता मा ने डाटकर कहा था, 'कौन हो तुम दुष्ट ? मेरा अपमान करना चाहते हो ?' तब वायु भगवान ने उससे विनयपूर्वक कहा, 'देवि, मैने स्थूल शरीर से तुम्हारा आलिगन नही किया। इस कारण तुम्हारी पवित्रता भग नही हुई। अब भी दूर ही खडा हू। हमारे मानस-सबध से ही तुम्हारे एक पुत्र का जन्म होगा। वह मेरे ही समान अतुल वीर, बली और बुद्धिमान होगा।' यह कहकर वायु ने अजना का समाधान किया।"

जाबुवान आगे बोला, "हे हनुमान, जब तुम छोटे बालक ही थे, सूरज को तुम एक फल समझकर हाथ में पकडने के लिए ऊपर की ओर आकाश में लपके। तुम्हें इस प्रकार ऊपर की ओर जाते देखकर देवेंद्र को डर लगने लगा कि यह कहा जा रहा है। तुम्हारे ऊपर उसने अपना वज्रायुध चला दिया। तुम उसकी चोट से नीचे गिर पडे और उससे तुम्हारा दाया गाल दब गया। इससे तुम्हारे पिता वायु भगवान् को बहुत गुस्सा आ गया। उन्होने अपनी गति रोक ली। समस्त जीव-जगत छटपटाने लगे। सबका दम घुटने लगा। तब देवो ने वायु से प्रार्थना की कि वह शात हो जाय। तुम्हारे पिता का समाधान कराने के लिए ब्रह्मा और इद्र दोनो ने मिलकर तुम्हे यह वरदान दिया कि तुम चिरजीव बनो। किसी भी हथियार से तुम्हारी मृत्यु नही हो सकती। केवल स्वेच्छा से शरीर-त्याग हो सकता है। इस प्रकार अजना और वायु के तुम मानस-पुत्र हो। वायु के समान बली, पराक्रमी, गतिवान और बुद्धिमान हो। तुम्हारे अदर एक अनोखी विशेषता और है। हे आंजनेय, वह

यह कि अपने निरुपम वाहुवल का तुम कभी दुरुपयोग नहीं करते। राम-काज की सफलता तुम्हारे सिवाय और किसीसे हो नही सकती। हे विनय-शील कपिवर, समुद्र को लाघना तुम्हारे लिए वायें हाथ का खेल है। इस वानर-सेना की रक्षा अव तुम्हारे हाथो में है। तुम अव अपनी शक्ति को आजमाओ। तुम्हारी विभूति वढे। मारुति, मैं जवान था तव मैंने इक्कीस वार पृथ्वी की परिक्रमा की थी। मैंने चारो दिशाओ से औषधिया लाकर सागर में मिलाई थीं। पर अव मैं वृढा हो गया हू। तुम्हारे सिवा वानरों की रक्षा और किसी-से नही हो सकती। हे पवन-सुत, अपनी शक्ति तुमने पहचान ली होगी। अत अव विलव न करो। त्रिविक्रम की तरह एक छलाग में समुद्र के उस पार पहुच सकते हो। हमारी चिंता मिटाना अव तुम्हारे ही हाथ है। तुम्हारी शक्ति एव शरीर दोनों की वृद्धि हो।"

इस प्रकार जावुवान ने हनुमान को उसकी शक्ति का ज्ञान कराया। उससे हनुमान के अदर सोया हुआ बल जागृत हो उठा।

वर्षाकाल के समुद्र के समान हनुमान का शरीर वढने लगा। वानरो के देखते-देखते हनुमान का आकार वेहद वढ गया। साथ ही असाधारण तेज भी उसमें आ गया। सचमुच अव मारुति त्रिविक्रम महाविष्णु के समान लगने लगा। वानर-समूह को वडा अचभा हुआ। और सवके-सव खुशी से नाचने-कूदने लगे।

इससे आगे अव रामायण की कथा का मुख्य नायक हनुमान ही हैं। प्रभु के लिए सर्वस्व छोडकर सेवा में लीन हो जानेवालो में गरुड का नाम प्रथम है। वह कभी भी प्रभु से अलग नही होता। वैष्णव सत गरुड के वाद हनुमान को ही वह स्थान देते हैं। हनुमान किस प्रकार मा सीता की मनोव्यथा को मिटाता है, लकेश की पुरी को जला देता है, फिर अपने स्वामी को यह अमृत-तुल्य सदेश कि "मैंने सीता को देखा", सुनाता है, इसका वर्णन हम आगे सुदर काड में पढेंगे।

: ५८ :

हनुमान का समुद्र-लंघन

नम्र स्वभाव के कारण अबतक हनुमान को अपनी शक्ति का पता न था। जाबुवान के बताने से वह अब अपनी शक्ति को पूरी तरह पहचान पाया। राम के कार्य को सफलतापूर्वक कर दिखाने का उसने मन में सकल्प कर लिया। जाबुवान मे बोला,

"अच्छी बात है। अभी मै उछलकर आकाश-मार्ग से लका में जाकर उतर पडूगा। सीता को ढूढ लूगा। उनसे मिलूगा। आप लोग शका न करें। अपने पैरो से भूमि को जोर से दबाकर इस महेंद्र पर्वत से मैं उछलूगा। सोचता हू कि यह पर्वत मेरा दबाव सहन कर सकेगा।" इतना कहकर हनुमान महेंद्र पर्वत पर चढा।

वहा अपनी पूरी ताकत लगाकर, पैरो को जोर से दबाकर, कुछ देर तक चलता रहा। पर्वतवासी प्राणी उसीसे घबराने और भयभीत होकर पर्वत छोडकर भागने लगे। पहाड पर से हनुमान ने समुद्र का निरीक्षण किया, मन को एकाग्र किया और सोचने लगा—"रावण द्वारा अपहृत देवी सीता का दर्शन मैं अवश्य करुगा। गगनपथ से इस समुद्र को अभी लाघूगा।" इस प्रकार मन में दृढ सकल्प करके आजनेय ने सूर्य, इद्र, वायु, ब्रह्मा तथा भूत-गणो का ध्यान किया, उनका अभिवादन किया। पूर्व की ओर मुह करके एक बार फिर अपने पिता वायु भगवान का ध्यान करके प्रणाम किया और अपने शरीर को और भी बढा लिया।

हनुमान ने अपने हाथो से पहाड पर तीव्र प्रहार किया। पैरो को जोर से दबाया। इससे पहाड पर के पेडो के फूल झडकर नीचे गिर गये। मत्तगज के गालो से जैसे मद-जल बहने लगता है, हनुमान के पैरो के दबाव से पहाड के भीतर से पानी बाहर निकलकर बहने लगा। नाना रग की धातुए पहाड के

चारो ओर विखर गई। गुफाओ के अदर से जानवर बाहर निकल आये। विषैले साप अपने फन फैलाकर दात पीसने लगे। सापो के इस प्रकार दात पीसने से आग की चिनगारिया निकलने लगी।

भावावेश से हनुमान के रोगटे खडे हो गये। खूब जोर से गरजकर, पूछ को जमीन पर पटककर, उसके पृष्ठ भाग को बदन के साथ समेटकर उसने श्वास को रोका, कानो को मोडकर, अपनी शक्ति को एकत्र किया, और जोर से एक छलाग लगाई। गरुड की-सी तीव्र गति से आकाश-मार्ग से पवन-सुत जाने लगा। उसके इस प्रकार छलाग लगाने के वेग से पहाड के बडे-बडे वृक्ष जड से उखड गये, पुष्प-वृष्टि करते हुए वे पेड हनुमान जिस रास्ते से गया था, उसी रास्ते कुछ दूर उडकर गिर पडे। ऐसा प्रतीत होता था, मानो अपने प्रियजन को, थोडी दूर तक साथ जाकर, वे विदा कर रहे हो।

ऐसी कथा है कि पहले जमाने में पर्वतो के पख होते थे। वे उडा करते थे। उनके गर्व को तोडने के लिए जब देवेंद्र ने उनके पखो को काट डाला तब वे जाकर समुद्र में गिरने लगे। इसी प्रकार महेंद्र गिरि के वृक्ष भी उखडकर, समुद्र में जा गिरे। उनके रग-बिरगे फूलो से समुद्र तारागणो से आच्छादित आकाश के समान लगने लगा।

गगन में उडते हनुमान के पजे पचमुखी नाग की तरह दीखते थे। ऐसा लगता था, मानो वह आकाश को निगलता हुआ जा रहा है। उसकी तेज आखें दावानल की तरह दिखाई देती थी। मारुति की रक्त वर्ण नाक सध्याकाल के सूर्य के समान थी। उसका दीर्घकाय शरीर धूमकेतु की भाति लगता था। हनुमान के गमन के वेग से हवाए परस्पर टकराई। उसकी छाया समुद्र में उसके साथ-साथ चलती हुई ऐसी प्रतीत होती थी, जैसे कोई वडा भारी जहाज समुद्र पर जा रहा हो। वादलो के वीच छिपता और बाहर निकलता हुआ हनुमान चाद की तरह लगने लगा। गधर्वो ने उसपर पुष्पवृष्टि की। देवर्पियो ने आशीर्वाद दिया।

भगवान वाल्मीकि के हनुमान के पहाड पर से उछलकर आकाश में

उडने के इस वर्णन से हमें प्रतीत होता है कि वह दृश्य आजकल के वडे भारी विमान के वादलो के ऊपर से उडने-जैसा रहा होगा।

साहसी, चतुर और वुद्धिमान हनुमान को इस यात्रा में कई विघ्नो का सामना करना पडा। विघ्नो का सफलता के साथ सामना करते हुए वह उडता ही गया। एक वार उसने देखा कि समुद्र के भीतर से अचानक एक भारी पर्वत ऊपर की ओर वढता चला आ रहा है और उसका मार्ग रोकने लगा है। हनुमान के वक्षस्थल के साथ टकराने से हवा से जैसे वादल हिल जाता था वैसे ही वह पर्वत भी हिल गया। यह था मैनाक पर्वत। वह वोला, "हे वायु-पुत्र, मेरा नाम मैनाक है। समुद्र-राज के आदेश से रामदूत के स्वागत के लिए आया हू। सगर-कुल में राम उत्पन्न हुआ है। सगरो के कारण ही समुद्र की वृद्धि हुई है। मेरे ऊपर उतर जाओ और कुछ विश्राम करो। आराम करने के वाद दुगुनी शक्ति से फिर उड़ सकोगे। इद्रदेव जव सारे पर्वतो के पखो को काट गिराने लगा था तव मैं समुद्र में घुसकर छिपा रह गया था। अपने आश्रयदाता समुद्र के कहने से तुम्हारी मदद के लिए आया हू। तुम्हारे पिता वायु ने मुझे समुद्र तक उडकर आने में मदद की थी। उसके लिए भी मैं कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हू। थोडी देर मेरा आतिथ्य ग्रहण करो। उससे मुझे और समुद्र-राज दोनो को वहुत ही आनद होगा।"

हनुमान ने कहा, "भैया, तुम्हारे प्रेम-भरे वचनो से मुझे वडा सतोप हो गया, पर मैं किसी भी कारण से वीच में रुक नही सकता। मैंने यही सकल्प कर लिया है। मुझे क्षमा करना।"

इतना कहकर मैनाक के ऊपर हनुमान ने स्नेह से हाथ फेरा और रुके विना ही आगे वढ चला।

कुछ समय वाद एक वडी राक्षसी हनुमान के सामने आकर वोली, "महीनों से मैं भूखी हू। तेरी ही राह देख रही थी। मेरे मुह के अदर प्रवेश कर जा।" यह कहकर उसने गुफा-द्वार के समान अपना मुह फाड लिया।

हनुमान वोला, "मैं राम के कार्य से जा रहा हू। मुझे मत रोक।"

वह अपना शरीर बढाता गया। तदनुसार राक्षसी ने भी अपना मुह बढाया। क्षणभर में हनुमान ने अपने देह को अणु के परिमाण में छोटा कर लिया और उस असुर स्त्री के मुह में प्रवेश करके बाहर निकल आया और बोला, "मा, मैंने तुम्हारा कहना मान लिया, अब मुझे जाने दो।"

असल में वह स्त्री नाग-माता थी। बोली, "अवश्य जाओ। देवताओ के कहने से मैंने तुम्हारी परीक्षा ली थी कि तुम अपनी इच्छानुसार अपना रूप बदल सकते हो या नही। मैं प्रसन्न हू। तुम जिस कार्य से जा रहे हो, उसमें सफलता पाओगे।"

हनुमान आगे बढ़ता ही गया। अब उसे एक विचित्र अनुभव हुआ। किसी अज्ञात कारण से वह आगे न बढ पाया। आधी में फसी नाव की तरह उसकी गति रुक गई। उसे पता लगा कि कोई बाहरी शक्ति उसे अपनी ओर खीच रही है। वायु-पुत्र ने चारो ओर दृष्टि दौडाई। नीचे एक विकराल रूप को उसने समुद्र में देखा। वह राक्षसी हनुमान की छाया को खीचकर निगलने के प्रयत्न में थी। बोली, "आ जा, भूख के मारे मर रही थी, अब तुझे खाकर मैं खुश होऊगी।" तुरत ही उसके पेट में पहुचकर उसका शरीर चीरता हुआ हनुमान बाहर निकल आया।

इस प्रकार अपने शारीरिक तथा बुद्धि-बल से हनुमान कई विपत्तियो को पार करके लका-द्वीप के समीप आ गया। अब उसे द्वीप का हरियाली, कदली और नारियल के पेडो से भरा प्रदेश साफ दिखाई देने लगा। लका-द्वीप के बाग-बगीचे, नदिया सब उसे दिखाई पडने लगे। इसमें कोई शक न था कि वह प्रदेश बहुत ही समृद्ध था। अब नगर की शोभा भी सामने आई। उसे लगा, मानो वह देवेंद्र की पुरी अमरावती में आ गया है। वह सोचने लगा, "जहा मुझे पहुचना था वहा तो आ ही गया। अब राक्षसो की दृष्टि से अपनेको बचाकर सीता की खोज में लगूगा।" यह विचार करके वायु-पुत्र ने अपने विशाल रूप को बदल लिया। बहुत ही सामान्य रूप में लका के एक पहाड पर वह आकाश से उतर पडा।

: ५९ :

लंका में प्रवेश

बडे उत्साह के साथ हनुमान लका-द्वीप पर उतरा और विचार करने लगा—

"समुद्र पार करके मै यहा पहुच तो गया हू, पर इसीसे मेरा काम पूरा नही हो जाता। त्रिकूट पर्वत पर बसी यह लकापुरी बडी अद्भुत मालूम हो रही है। ऐसा लग रहा है, मानो यह आसमान में लटक रही हो। ऐसी सुदर नगरी की कल्पना भी भला किसे हो सकती है ? कितना धन, कितनी दौलत, कितना सौंदर्य और रक्षा के कैसे-कैसे प्रबध। अमरावती या भोगवती इससे बढ़कर नही हो सकती। मकान और उद्यान, दुर्ग और प्राचीर आदि को देखते हुए साफ दीखता है कि लकेश को जीतना सरल काम नही है। मैंने तो यह समुद्र लाघ लिया, किंतु हमारी वानर-सेना से यह काम कैसे सभव होगा ? यदि मान लिया जाय कि सेना पहुच भी गई तो भी इस किले पर आक्रमण किस प्रकार से हो सकेगा ? शस्त्रधारी राक्षसो से सुरक्षित लका को साम, दाम, दड, भेद आदि किसी भी तरकीब से जीतना असभव-सा लग रहा है। पर पहले देख लू कि सीता अभी जीवित भी है या नही। बाद में और बातें सोची जा सकती है। नगर के अदर किस प्रकार प्रवेश करू ? मुझे तो यहाके कोने-कोने में खोज करनी होगी। कही भी कुछ गलती हो गई तो सारा काम बिगड जायगा। राम का काज कैसे बिगडने दिया जा सकता है ?

"दिन में अगर प्रवेश करूगा तो तुरत राक्षस लोग देख लेंगे। रात में ही अदर जाना ठीक होगा। पर किस रूप में जाना उचित रहेगा ? अपने को बहुत ही मामूली और छोटे-से शरीर का बना लूगा, ताकि राक्षसो का ध्यान ही मेरी ओर न जाय।"

इस प्रकार भली-भाति सोच-विचारकर हनुमान ने अपने शरीर को

एक बिल्ली जितना छोटा बना लिया। छोटी आकृति को ही उसने नगर के मकानो, बाग-बगीचो के आदि के अदर और बाहर जाने के लिए उपयुक्त समझा। कुछ देर पहले जिस किसीने महाकाय वायुपुत्र को देखा था, वह अब यदि इस छोटे से वदर के रूप में उसे देखता तो आश्चर्यचकित ही रह जाता।

सूर्य के अस्त होने पर हनुमान दुर्ग-द्वार की ओर बढा। चादनी रात थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो मारुति की सहायता करने के लिए चद्रमा ने प्रकाश फैला दिया था। हनुमान उत्साह से परिपूर्ण था। अबतक उसने नगर की खूबी दूर से ही देखी थी। चारो ओर ऊची-ऊची और मजबूत दीवारें थी। नगर की लबी-चौडी सडकें, ऊचे विशाल भवन, सजावट के तोरण, ध्वजा इत्यादि सोने, चादी और मणियो से चमक रहे थे। समुद्र की ठडी-ठडी सुहावनी हवा चल रही थी। लका तो जैसे वैभव के शिखर पर थी। देवेंद्र की अमरावती या कुबेर की अलकापुरी से लका किसी भी प्रकार कम नहीं दीख पड रही थी। उसे देखकर वायुपुत्र हनुमान को एक ओर विस्मय होता था तो दूसरी ओर चिंता होती थी कि इस नगरी पर कैसे आक्रमण किया जायगा ?

जब हनुमान इस प्रकार चिंता-मग्न हो रहे थे, उसी समय नगर की रक्षा करनेवाली एक शक्तिशाली राक्षसी ने भयकर रूप से हनुमान को डाटकर रोका और बोली, "अरे वदर, तू कौन है ? कहा से आया है ? सच-सच बता।"

"मै एक मामूली बदर हू। इस सुदर नगर को देखने की इच्छा से चला आया हू। घूम-घामकर वापस चला जाऊगा।" हनुमान ने नम्रता से उत्तर दिया।

पर लका-देवी ने गुस्से में आकर हनुमान के गाल पर कसकर एक तमाचा लगाया। आजनेय चुप न रह सका। उसने भी राक्षसी के गालपर अपनी ताकत आजमा दी। लका-देवी से वह पीडा न सही गई। नीचे गिर पडी और बोली, "किसीने मुझे बताया था कि जिस दिन तुम एक वदर से मार खाकर नीचे गिरोगी, उसी दिन से लका का पतन होने लगेगा। मालूम होता है कि वह समय

आ गया है। अब रावण के अत्याचार भी वढने लगे हैं। देवो ने जैसा वताया था, मैं सोचती हू कि उसीके अनुसार अब लका का विनाश होनेवाला है।"

इतना कहकर लकादेवी एक तरफ हट गई। वानर अव नगर-प्राचीर के ऊपर चढकर नगर के अदर कूद गया। पुराने युद्ध-शास्त्र के अनुसार जब शत्रु किसी नगर में प्रवेश करते थे, तव सीवे पैर को पहले अदर नही रखते थे। हनुमान ने भी अपने बाए पैर को नगर में पहली बार रखा और लका में प्रवेश किया।

राजवीथि पुष्पो से सुसज्जित थी। हनुमान उधर से ही होता हुआ गया। एक छत से दूसरी छत पर कूदता हुआ वह आगे वढने लगा। मकान सव एक-से-एक वढ़कर सुदर थे। सडकें भी वहुत अच्छी थी। सजावट खूब थी। आनद से होनेवाला कोलाहल सुनाई दे रहा था। कही राक्षसो के घरो से वेदाध्ययन का स्वर आ रहा था। कही मत्रो का उच्चारण हो रहा था। सडको पर शस्त्र-धारी सैनिको का पहरा था। वहा धार्मिक वृत्तिवाले लोग भी थे। कइयो की शक्लें वडी डरावनी थी। सिपाही और योद्धाओ के हाथो में वडे विचित्र प्रकार के अस्त्र थे। सवने कवच धारण किये हुए थे। कुछ लोग वहुत सुदर थे। कुछ महाकुरूप। किसीका वर्ण गोरा था तो किसीका एकदम काला, कुछका गेहुआ। कुछ लोग वहुत ही ऊचे थे, कुछ लोग वहुत ही नाटे। कुछ साधारण आकार के।

स्त्रियो में कुछ वडी रूपवती थी। वे अपने प्रियतमो के साथ आनद में लीन थी। कइयो का शरीर ऐसा लगता था, मानो तपा हुआ सोना हो। कुछ भवन में बैठी अपने नायको से वातें कर रही थी। कुछ युवतिया निद्रा-ग्रस्त थी। कुछ तरुणिया मधुर कठ से गा रही थी, कुछ भाति-भाति के वाद्य बजा रही थी। ऐसी सैकडो नारिया हनुमान की दृष्टि में आई, किंतु शोक-मग्ना, राम के ध्यान में डूबी जानकी वहा नही दिखाई दी। इसलिए लका की सुदरियो को देखकर हनुमान के मन में उदासी छा गई।

एक राक्षस के घर में हनुमान घुसा, देखा कि जानकी वही इधर-उधर न छिपाई गई हो। राजमहलो में उसे वहुत ही विशाल शस्त्र-शालाए दिखाई

दी। वहा जगी हाथी तथा उत्तम जाति के घोडे देखने में आये। स्त्रियो और बाजे-गाजे से पूर्ण इन महलो को देखने के बाद हनुमान ने पर्वत के समान ऊचा राजा का महल बाहर से देखा। महल के सामने हाथी-घोडे खडे थे। सैनिक चक्कर लगा रहे थे। वहा जैसी सजावट थी, वैसी और कहीं नही थी। हनुमान ने निश्चय किया कि यही रावण का निवास-स्थान तथा अत पुर होगा। वह विशाल भवन लकापुरी के बीच एक जाज्वल्यमान आभूषण की तरह चमक रहा था। हनुमान चुपके-से उस भवन के अदर घुस गया।

भूस्वर्ग के समान उस भवन में कलापूर्ण चित्रो से मडित कई मडप थे। विहार करने के स्थान थे। राजभवन के उद्यान तो देखते ही बनते थे। यह सब देखकर हनुमान के आश्चर्य की सीमा न रही। फिर सहसा उसे वैदेही का स्मरण हो आया। सोचने लगा कि इन वैभवो से मेरा क्या मतलब ? मुझे तो वैदेही अभीतक कही दिखाई नही दी।

अब वह रावण के महल के विशेष विभागो में पहुचा। उसे देखकर क्षण-भर के लिए सदेह हुआ कि कही भूल से वह देवलोक में तो नही आ पहुचा है। वहा तो सोना-चादी, रत्न-मणियो का कोई पार न था। अद्भुत चित्र और कला से परिपूर्ण स्तम्भ, बडे-बडे मडपो को सहारा दिये खडे थे। बीच में रावण का पुष्पक विमान था। कुबेर को जीतकर रावण ने उस विमान को अपने पास लाकर रखा था। वह विमान वसिष्ठ की कामधेनु की भाति ही शक्तिशाली था।

पुष्पलताओ से भरे उद्यान की तरह रावण का अत पुर लावण्यमयी युवतियो से भरा था। रावण के बल और शक्ति से आश्वस्त होकर वे सब मस्त और सतुष्ट सोई हुई पडी थी। हनुमान सीता की तलाश में हरएक के चेहरे को ध्यान से देखता गया। सब-की-सब बडी प्रसन्न दिखाई दे रही थी। हनुमान ने सोचा कि उनमें से कोई भी सीता नहीं हो सकती। सीता कभी रावण के वश में नही आई होगी। उसे यहापर ढूढने का मेरा प्रयत्न मूर्खता-पूर्ण है। वहासे वह एक दूसरे बडे कमरे में आया। वहा बडे कीमती पलग बिछे थे। कमरे के बीच में हीरे-मोती, हाथीदात और सोने के काम का एक बहुत

ही सुदर मच था। उसपर राक्षसेंद्र रावण मेरु-पर्वत की तरह सोया हुआ था। उसका शरीर बहुत ही गभीर था। बडा सुदर लगता था। हनुमान उसे देखकर एक क्षण को काप गया। हटकर एक ओर को खडा हुआ और ध्यान से उसे देखने लगा। उसके हाथ हाथी की सूड की तरह थे। ऐरावत हाथी के दात, वज्रायुध और विष्णु-चक्र से हुए घावो से उसका वक्षस्थल सुशोभित हो रहा था। उसके शौर्य-भरे रूप मे हनुमान भी आकर्षित हुए बिना न रहा।

रावण के आस-पास कई स्त्रिया निद्रा में पडी थी। वाद्य उनके पास थे। रावण के पलग के पासवाले उसी प्रकार के दूसरे पलग पर सबसे अलग एक बहुत ही लावण्यमयी स्त्री सो रही थी। हनुमान ने उसके चेहरे के उत्तम भावो को देखा। सोचा कि यह सीता होगी। सीता को आखिर ढूढ ही लिया, ऐसा सोचकर वह उछलने लगा। किंतु दूसरे ही क्षण उसने विचार किया—"मैं कैसा मूर्ख हू। रामवल्लभा सीता रावण के कमरे में इस तरह मीठी नीद लेकर कैसे सो सकती है! यह सीता नही। मैंने एक क्षण के लिए भी इसे सीता समझा, यह कैसा अनुचित कार्य किया।" उसे बडा दु ख हुआ कि अभीतक सीता क्यो नही मिली! "राक्षस ने उसे मार तो नही डाला? शायद मेरा यह सोचना बिल्कुल व्यर्थ हो।"

अत पुर की एक भी जगह हनुमान ने बिना देखे न छोडी। शयन-कक्ष, भोजनशाला, मद्यपानशाला, नृत्य-नाटक-मडप, आदि सभी जगहो में उसने देखा। कही भी सीता न थी। उसे दु ख हुआ कि सकोच छोडकर स्त्रियो के कमरे में घुसने पर भी सीता नही मिली। मद्यपानशाला से बाहर निकलकर वह बगीचे में आया। वहा के मडपो में और लता-गृहो में भी सीता नही दिखाई दी।

"अब तो मुझ कोई आशा नही रही। एक जगह भी मैंने नही छोडी। सीता का कोई पता नही लग रहा। पर उसे ढूढे बिना वापस कैसे जाऊ? बस, मैं यही प्राण छोड देता हू पर नही, अधीर होना कायरो का काम होता है। फिर एक बार ढूढता हू।" इस प्रकार सोचकर हनुमान फिर अपने

काम में लग गया। एक अगुल जगह भी उसने न छोडी। बद किवाडो को खोलकर देखा। वहा अति कुरूपिनी और अति सुदर राक्षस और मानव-स्त्रियो को देखा। सुदर मानव-स्त्रियो को रावण जगह-जगह से उठा लाया था, किंतु जनक-सुता नही मिली। हनुमान फिर सोच में पडा।

"किष्किधा लौटकर लोगो से क्या कहूगा ? यदि राम को लगा कि सीता को फिर से पाने की आशा नही रही तो उनका क्या हाल होगा ? प्रयत्न में असफल होकर सुग्रीव के पास पहुचू, उससे अच्छा तो यही है कि यही शेष जीवन बिता दू। उससे अच्छा तो यह है कि आत्महत्या ही क्यो न कर लू ? सपाति ने तो कहा था कि सीता लका में है। क्या वह झूठ हो सकता है ? या उसके बाद राक्षसो ने उसे मार डाला ? अब मैं क्या करू ?"

मारुति चितासागर में डूब गया। तभी उसने देखा कि वहा एक अलग-सा बना बडा बाग है। जिसके चारो ओर ऊची-ऊची दीवार है। उसमें वह अभीतक नही गया था।

"यह जगह मैंने अबतक नही देखी। यहापर सीता अवश्य होगी।" हनुमान ने सोचा। उसने राम, लक्ष्मण और सुग्रीव का ध्यान किया और देवताओ को नमस्कार किया।

हनुमान के मन में एक प्रकार का निश्चय हो गया कि हो-न-हो, उस एकात उपवन में ही सीता बदी होगी।

इद्र, यम, वायु, सूर्य, चद्र और मरुतगणो को हनुमान ने याद किया। फिर अशोकवाटिका की दीवार पर चढकर देखा। अदर एक बडा ही मनोहर उपवन उसे दिखाई दिया।

: ६० :

आखिर जानकी मिल गई

वाटिका की चहारदीवारी पर चढे हनुमान को एक असाधारण आनद का अनुभव हुआ। हो सकता है, सीता के स्थान पर पहुच जाने से उसका मन प्रसन्नता से खिल गया हो। अब हनुमान को लगा कि वैदेही उसे अवश्य मिल जायगी।

वसत ऋतु का प्रारभ था। वाटिका के वृक्ष तथा द्रुम-लताए रग-विरगे फूलो से लदी थी। पुष्पो की महक हवा के साथ चारो ओर फैल रही थी। हनुमान दीवार से एक घने पत्तोवाले पेड पर कूद गया। वजन से वृक्ष हिला। डालो पर बैठे मोर, कोयल आदि पक्षी मधुर कठ से बोल रहे थे। नीचे वृक्षो के आस-पास हिरन खेल रहे थे। पेड के हिलने से उसके फूल झरकर गिरे। हनुमान का शरीर उनमे ढक गया। उपवन के प्राणियो ने जब पुष्पो से ढके बदर के समान एक नवीन आकृति को देखा तो सोचा कि वसत देवता सवेरे-सवेरे उपवन में सैर करने आ पहुचे है।

पेड पर से हनुमान ने वाटिका के सौदर्य को निरखा। उसे बडा विस्मय हुआ। जगह-जगह कृत्रिम झरने थे। खिले कमलो से पूर्ण तालाब थे, जिनके किनारो पर कारीगरी किये हुए मूल्यवान पत्थर लगे थे। पहाडियो से पानी के झरने गिर रहे थे। झरनो का पानी नदी के रूप में बह रहा था, जिनके किनारे पक्षी कल्लोल कर रहे थे। पेडो के नीचे सोने के चबूतरे बने हुए थे। पेडो की डालियो में सोने-चादी की छोटी-छोटी घटिया बधी हुई थी। जब हवा से डालिया हिलती थी, तब घटियो की मधुर ध्वनि सुनाई पडती थी। एक ऊचे घने वृक्ष पर, जिसके नीचे सुनहरा चबूतरा था, हनुमान पत्तो में अपने शरीर को छिपाकर बैठ गया। सोचने लगा—"यदि मैथिली जीवित होगी तो यहापर एकात में श्रीराम का ध्यान करने के लिए अवश्य आयेगी।

मैने राम-लक्ष्मण के मुह से कई बार सुना है कि सीता को वन-उपवन में घूमना बहुत पसद है। इसलिए सीता यहापर आये विना नही रह सकती। सवेरे-सवेरे सध्या-वदन करने के लिए भी यहा इस झील के किनारे आ सकती है।" ऐसा सोचते हुए हनुमान ने चारो ओर निगाह दौडाई और नीचे की ओर देखा। अरे यह क्या ? वहा तो एक मानुषी बैठी है। उसकी काति से आखें चका-चौंध हो जाती है। उसके शरीर पर एक पुराना पीला वस्त्र था। धुए से आच्छादित वह्नि की भाति उसका सुदर वदन दु ख से घिरा हुआ था। वह बार-बार दीर्घ नि श्वास छोडती थी। उपवास के कारण उसकी देह बहुत ही कृश हो गई थी। ऐसा लगता था, मानो शुक्ल पक्ष की प्रथमा का चद्रमा हो। चारो ओर उसे घेरकर राक्षस-स्त्रिया बैठी थी। अब हनुमान को सदेह न रहा कि यही देवी सीता हैं।

देवी के कातियुक्त वदन पर शोक की रेखाए थी। अपने झुड से अलग, शिकारियो से पीछा की गई हिरनी की तरह वह डरी हुई दिखाई दे रही थी। काले लबे केश खुले हुए थे। क्लेश और चितायुक्त, चिथडे जैसे कपडो में, उपवास और दु ख से दुर्बल शरीरवाली उस मानुषी को राक्षसियो के बीच में देखकर हनुमान को पक्का भरोसा हो गया कि यही सीता हैं। आभूषण और अलकार के बिना, शोकमग्ना सीता बादलो से ढके चाद की भाति वहा बैठी थी।

राम की सहायता के विचार से वानरो ने सारे भू-मडल में सीता की खोज की थी। उस कार्य में आज हनुमान सफल हुआ। उसके सतोष और आनद का ठिकाना न था, किंतु उसकी सारी खुशी देवी की शोकातुर मानसिक अवस्था को देखकर लुप्त हो गई। जैसे-जैसे आजनेय सीता को देखता गया, वह उसे अधिकाधिक सुदर लगने लगी। मारुति सोचने लगा, "अब मैं समझा कि राम इतने दुखी क्यो है ? ऐसी सुदरी पत्नी को खोकर कौन शांत रह सकता है ? मुझे तो यही आश्चर्य लगता है कि राम अबतक जीवित कैसे हैं ! दोनो की कमी अद्भुत जोडी है ?" हनुमान विरहातुर श्रीराम का स्मरण करने लगा।

उसी समय झील में जसे राजहस तैरता आ रहा हो, निर्मल आकाश में चद्रमा ऊपर चढता हुआ, वायु-पुत्र की मदद को आ गया। तरु-पल्लवों में अपनेको छिपाकर हनुमान बैठा रहा। सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिए। सीता को उसने एक बार और देखा। बीच समुद्र में आधी से डावाडोल नौका की तरह सकट में फसी जानकी को देखा। फिर उन्हीकी पहरेदार राक्षसियो को देखा। उनकी कुरूपता देखी नही जाती थी। किसीकी एक ही आख थी, तो किसीका एक ही कान। किसीके एक भी कान न था, किसीके नाक नदारद। किसीके सिर में बाल ही न थे तो किसी-किसीके अनेक जटाए लटक रही थी। किसीके बडे-बडे लटकते उदर थे। किसीके होठ ऊटो के-से थे। कोई कुबडी थी, तो कोई ताड के पेड की तरह लबी थी। किसी-किसीका चेहरा सुअरो का-सा था, तो किसीका शेर, भैंस, बकरी और गीदडो जैसा। सबके हाथों में तरह-तरह के हथियार थे। उनके बीच में वैदेही बैठी थी। उसका एकमात्र हथियार उसका शील था। मा सीता को इस प्रकार दीन दशा में देखकर पवनसुत बडा दुखी हुआ। उसने श्रीराम-लक्ष्मण का ध्यान किया।

अभी पूरी रात नही बीती थी। वेद-घोषो और सुप्रभात के गीतो से लकेश को निद्रा से जगाया गया। उठते ही उसे सीता का ध्यान आया। वह सीधा उपवन की तरफ आया, जहा सीता बदी थी।

उसके साथ उसकी परिजन स्त्रिया भी आई। कोई सुगधित द्रव्य लिये खडी थी, कोई चमर झल रही थी, कोई छत्र पकड रही थी। कोई सुगधित तेलवाले दीप हाथ में लिये खडी थी। रावण साफ-सुथरा सफेद उत्तरीय ओढे हुए था और सुदर आभूषणो से अलकृत था। मन्मथ जैसा रूपवान वह लग रहा था। उसके आगे-पीछे स्त्रिया चली आ रही थी। उनके नूपुरो की रुनझुन हनुमान के कानो में पडी। उसने देखा कि राक्षसो का राजा सीता के पास चला जा रहा है। अपने शरीर को उसने पत्तो से अच्छी तरह ढक लिया।

बल, पराक्रम और तेजवाले राक्षसेंद्र को अपनी ओर आते देखकर सीता हवा में हिलते केले के पत्तो की भाति भय के मारे काप उठी।

: ६१ :

रावण की याचना : सीता का उत्तर

शोक-सागर में निमग्न सीता का एकमात्र आधार पति का सतत स्मरण और धर्म के प्रति उसकी निष्ठा थी। उसीके सहारे किसी तरह सीता के प्राण बचे हुए थे।

रावण सीता के पास पहुचा और उससे बोला, "हे सुदरी, मुझसे क्यो शरमा रही हो ? क्या तुम नही जानती कि मैं तुम्हे कितना चाहता हू ? मैं तुम्हारे प्रेम की भीख मागने आया हू। मुझसे डरो मत। तुम जबतक अपने हृदय से मुझे न चाहोगी, मैं तुम्हे हाथ न लगाऊगा। मेरी यही अभिलाषा है कि मै तुम्हे जितना चाहता हू, उतना ही तुम भी मुझे चाहने लगो। दुखी क्यो होती हो ? तुम्हारे समान रूपवती इस भूमडल में दूसरी कोई नही। इस तरह आभूषणो का त्याग करके, मलिन वस्त्र धारण करके तथा केशो को बिखरे-उलझे रखकर धरती पर लेटी रहना ठीक नही। अब ये व्रत और उपवास छोड दो। हे नारी-रत्न, अपने सौंदर्य और यौवन को यो व्यर्थ न गवाओ। अब तो तुम मेरे घर आ गई हो। तुम्हे किसी प्रकार का कष्ट हो तो मुझसे सहन न होगा। ये सारी भोगादि की वस्तुए तुम्हारे लिए ही है। पूर्ण-चद्र के समान तुम्हारे मुखपर से अपनी दृष्टि को मै कही और हटा नही पा रहा हू। तुम्हारे शरीर के जिस किसी भाग को देखता हू तो मेरी निगाह वही टिक जाती है, वहा से हट नही पाती। तुम्हारी जैसी सुदरी को यो क्लेश नही करना चाहिए। तुम मुझे अपना पति स्वीकार करो और खूब आराम से रहो। डरो मत। चिता छोडो। तुम्हे मैं अपनी पटरानी बनाऊगा। मेरा सारा अत -पुर तुम्हारे आधीन रहेगा। मेरे तमाम ऐश्वर्यो की और मेरे तमाम राज्य की तुम स्वामिनी बन जाओगी। मैं और सारे लकावासी तुम्हारी सेवा में तत्पर रहेगे। यह सारा भूमडल तुम्हारा हो जायगा। मेरे शौर्य को

देवासुर जानते हैं। वे सब मुझसे हारे हुए हैं और मेरे सामने सिर झुकाते हैं।

"तुम्हारे लिए उपयुक्त वस्त्र और आभूषण मैं अभी भिजवाता हू। मेरे अत पुर की स्त्रिया तुम्हें सजा देंगी। तुम्हे मैं खूब सजी हुई देखना चाहता हू। सज-धजकर मनचाहा दान-धर्म करो। तुम्हें सबकुछ करने का अधिकार है। मेरी प्रजा और बधु-बाधव तुम्हारे आश्रय में रहेगे। जगल में भटकने-वाले राम को भूल जाओ। अब न उसके पास राज्य है, न धन है, न कोई पद है। उससे तुम्हें क्या सुख मिलनेवाला है? उससे तो राज्य-लक्ष्मी और विजयलक्ष्मी दोनों ही दूर हो गई है। पता नही, अब वह जिदा भी है या मर गया। उसे फिर से देखने की आशा छोड दो।

"गरुड जैसे साप को जोर से पकड लेता है, वैसे ही तुमने मेरे हृदय को जकड लिया है। उससे मैं अपनेको छुडा नही पा रहा हू। ऐसे मलिन वस्त्रो में और आभूषणों के बिना भी तुम इतनी अच्छी लग रही हो कि मेरा मन अपनी स्त्रियो पर से हट गया है। मेरे अत पुर में हजारो युवतिया हैं, कितु तुम्हे देखने के बाद मुझे वे बिल्कुल अच्छी नही लगती है। उन सबसे तुम अपनी सेवा करवाओ, और मेरी रानी बन जाओ। तुम ही बताओ, राम किस प्रकार से मेरी बराबरी कर सकता है। तप में, बल में, कीर्ति में और धन में मैं राम से कही अधिक हू। भय छोड दो। हम दोनो दुनिया का चक्कर लगायेंगे। खूब आराम से रहेंगे। समुद्र-तट के वनो में हम दोनो मस्त होकर विचरेंगे। सीते, मान जाओ, मेरी प्रार्थना ठुकराओ नही।"

इस प्रकार राक्षसेंद्र रावण रामवल्लभा सीता के सामने गिडगिडाने लगा।

रावण जब बोलना समाप्त कर चुका तो सीता ने एक तिनका उठाकर अपने और रावण के बीच में रख लिया। उसीकी ओर देखा, तिरस्कारपूर्वक मुस्कराते हुए वह बोली—"रावण, मेरे बारे में बुरे विचार करना छोड दो। तुम बडा अधर्म कर रहे हो। अपनी स्त्रियो पर ही मन लगाओ। तुम्हारा कहना मैं कभी नही मानूगी। जानते हो कि मैं किस कुल में पैदा हुई हू? जिस

कुल में मेरा विवाह हुआ है ? मेरे सामने ऐसे बुरे विचार प्रकट मत करो। वे कभी सफल नही होगे। अपने मन से इन दुर्विचारो को हटा दो।"

सीता ने उसकी तरफ से मुह फेर लिया और दूसरी तरफ देखने लगी। थोडी देर वाद फिर बोली, "मैं दूसरे की पत्नी हू, मैं कभी तुम्हारी पत्नी नही हो सकती। धर्मभ्रष्ट मत हो। अधर्म-मार्ग पर मत चलो। मैंने देखा है कि तुम अपनी पत्नियो की कैसी अच्छी तरह रक्षा कर रहे हो ? क्या दूसरे भी इसी तरह अपनी पत्नियो को बचाने की चेष्टा न करेंगे ? पर-स्त्री पर कभी बुरी दृष्टि न डालो। दूसरे की स्त्री को चाहने का अधिकार किसीको भी नही हो सकता। तुम्हारे कई स्त्रिया हैं, जो तुम्हे खूब चाहती है। उनसे ही सतोष पाओ, अन्यथा अपमान और दु ख के पात्र बनोगे। इसमें कोई शक नही।

"क्या तुम्हारे पास भले और अच्छे उपदेश देनेवाले कोई नही है ? ऐसे बुरे काम में तुम क्यो लगे ? ऐसा करके तुम अपनेको और अपनी प्रजा दोनो को डुबो रहे हो। तुम राजा हो। राजा के लिए अपने मन को अकुश में रखने की बडी आवश्यकता होती है, वरना उसका देश, राजधानी, धन-दौलत, सबकुछ नष्ट हो जाता है। तुम्हारे कारण सारी लका मिट जानेवाली है, इसमें कोई शका नही। अपने ऊपर जो उत्तरदायित्व है, उसे सोचकर मन से बुरे विचारो को हटा लो। प्रजा की रक्षा करो। अपनेको भी बचाओ, नही तो जब तुम मरोगे, तुम्हारी प्रजा खुश होकर कहेगी, 'चलो, अच्छा हुआ, दुराचारी राजा मर गया।' तुम्हारा ऐश्वर्य मुझे नही चाहिए। उससे मुझे ललचाने का प्रयत्न छोड दो उससे कोई लाभ नही। मैंने राम के साथ पाणि-ग्रहण किया है। उन्हें कभी नहीं छोडूगी। दूसरे के वश में कभी न होऊगी। मैं दशरथनदन की प्रिय भार्या हू। उन्हीकी रहूगी। जैसे सपूर्ण रूप से वेदाध्ययन कर लेनेवाले, व्रती ब्रह्मचारी के लिए ही वेद होता है, वैसे ही मैं राम के ही आधीन हू और रहूगी। किसी पर-पुरुष को मैं आख उठाकर भी नही देखूगी।

"मैं तुम्हे सीख देती हू। सुनो ! अब भी मौका है। राम से क्षमा माग लो। उनके क्रोध से बचने का प्रयत्न करो। शरण में आकर मागनेवालो को राम

हमेशा अभयदान देते हैं। उसीमे तुम्हारी भलाई है। मैं तो अब भी उनके धनुष की टकार सुन रही हू। उससे तुम बच नही सकोगे। तुम्हारे बगल में ही काल खडा है। राम-लक्ष्मण के नामाकित बाण अब शीघ्र ही लका में गिरकर इस नगर को भस्म कर देनेवाले हैं। तुम तो जानते ही हो कि जनस्थान में राक्षसो का क्या हाल हो गया था। तभी तो डर के मारे छिपकर तुम मुझे उठा लाये। उन दो भाइयो के सामने तुम टिक नही सकते। व्याघ्र के स्थान में कही कुत्ता खडा हो सकता है? सूर्य जैसे मिट्टी मे पानी को चूस लेता है, राम-लक्ष्मण तुम्हारे प्राणो को उसी प्रकार चूस लेंगे। तुम उनसे अपनेको कही भी छिपा नही पाओगे। बिजली के गिरने से जैसे पेड जल जाता है, राम के बाण से अपना मरण निश्चय समझो।"

सीता के इन तीखे वचनो से रावण को बडा गुस्सा आया। फिर भी क्रोध को रोककर वह बोला—"सीते, तुम्हारा पति एक ढोगी तापस है। उसपर तुम्हें इतना गर्व क्यो है? तुमपर मेरा प्रेम है, इस कारण तुम्हारे कटु वचनो को क्षमा करता हू। तुम्हें मैं अब भी चाहता हू। इसी कारण अपने क्रोध को दबाकर चुप हू। नही तो तुम अबतक जिदा नही रहती। मैंने तुम्हे जो अवधि दी है, उसमें अब दो ही महीने बाकी है। तबतक अपने विचार बदल लो और दो महीनो के बाद मेरी पत्नी बनकर मेरे अत पुर मे आ जाओ, नही तो मेरी पाकशाला में तुम्हे ले जाया जायगा। वहा मेरे लिए भोजन बनानेवाले तुम्हारे शरीर का सुस्वादु भोजन तैयार कर देंगे।"

मनुष्य का मास राक्षसो की खुराक होती थी। इसलिए रावण की यह बात केवल धमकी न थी। उसके घर में प्रतिदिन जो बात होती थी, उसीकी चेतावनी उसने सीता को दी थी।

तब भी सीता डरी नही। रावण से बोली, "तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। तुम्हे समझानेवाला कोई नही मालूम होता है। राम के दड से तुम बचने-वाले नही हो। जगली हाथी के समान बलशाली राम यहा अवश्य आवेंगे, उनसे तुमने जान-बूझकर दुश्मनी मोल ली है। अपनेको कुबेर का भाई बताते हो। अपनी गिनती शूरो में करते हो। सेना भी तुम्हारी खूब बढी-चढी है।

तब मुझे चोरी से उठा लाने का नीच कार्य तुमने क्यो दिया ? ऐसा करते हुए तुम्हे शरम नही आई ?"

सीता के इन वचनो से रावण का गुस्सा बहुत बढ गया। लाल-लाल आखो से उसने सीता को देखा। जब उसकी छोटी रानी धान्यमालिनी ने देखा कि रावण का पारा बहुत चढ रहा है तो प्यार से उसका आलिगन करके बोली, "नाथ, आप इस तुच्छ मानुपी के लिए क्यो परेशान हो रहे हैं ? इसका भाग्य ही खोटा है, तभी तो यह आपकी बातें मान नही रही है। कीडे-जैसी जरा-सी तो है। छोडिये इसे। चलिये अपने अत पुर में।"

बडे प्रेम के साथ वहा से वह रावण को अदर ले गई। रावण भी हँसता हुआ उसके साथ चला गया। उसके पैरो के भार से भूमि डोलने लगी। जाते-जाते रावण राक्षसियो को आदेश देता गया कि वे सीता को किसी-न-किसी प्रकार से राजी करके ही मानें।

रावण के जाने के बाद सभी राक्षसिया सीता को घेरकर बैठ गई और उन्हे डराने-धमकाने लगी। रावण के सामने तो सीता डरी न थी, किंतु इन भयकर आकार की राक्षसियो को देखकर भय से काप उठी। एक ने सीता को धमकाया, "रावण को तूने क्या समझ रखा है ? वह बडे ऊचे कुल का है। उसके समान वीर दूसरा कोई नही। रावण जब तुमसे प्रेम की माग करता है, तो तू कैसी मूर्ख है, कि उससे इन्कार करती है। वह स्वय ब्रह्मा का प्रपौत्र है। ब्रह्मा का पुत्र पुलस्त्य था। पुलस्त्य का पौत्र रावण है। रावण जैसे साहसी के प्रति उदासीनता न दिखा।"

दूसरी ने भी रावण का गुणगान करके सीता को सलाह दी कि रावण की बात मान ले। तीसरी ने कहा, "राक्षसेंद्र के सामने सारे देवगण डर से कापते रहते है। अरे पगली, जब वह चाहता है कि तू उसकी पत्नी बने, तो उससे बच थोडे ही सकेगी।"

चौथी ने कहा, "अपनी सभी रानियो का तिरस्कार करके रावण तुझे अपनी पटरानी बनाना चाहता है। तुझे वह सबसे अधिक सुदरी समझ रहा है। तो पागल मत बन। 'हा' कह दे।"

यों एक के बाद एक, वे सीता के सामने रावण का गुणगान करती रहीं। उन्होंने कहा, "अगर तुम रावण की माग स्वीकार नहीं करोगी तो अवश्य ही मार डाली जाओगी।" अंत में सब एक साथ बोलीं, "हमें जो कुछ कहना था, कह दिया, अब तेरी मर्जी। जान-बूझकर मरना हो तो भले मर।"

: ६२ :

'बुद्धिमत्तां वरिष्ठ'

सीता अकेली कैद में थी। वह बहुत ही साहसी थी। फिर भी कई मास कारावास में रहने से तथा हमेशा डराये-धमकाये जाने से अब वह कुछ हताश-सी हो रही थी। उसने बडी प्रतीक्षा की कि राम-लक्ष्मण उसे ढूढते हुए वहा पहुच जायगे, पर न तो राम-लक्ष्मण ही आये, न कोई दूसरा ही वहा ऐसा था, जो उसे दो-चार आश्वासन के बोल सुनाकर धीरज दिलाने का प्रयत्न करता। ऐसी स्थिति में सीता का निराश हो जाना स्वाभाविक था।

राक्षसिया उसे कुछ-न-कुछ कहकर सताती ही गई, "क्या अब भी हमारी बात नही मानोगी? तू तो हद से ज्यादा मूर्ख है। मनुष्य-जाति के लोग ऐसे ही मूर्ख होते है। एक तुच्छ मनुष्य की याद में ऐसे बडे भाग्य को ठुकरा रही है! रावण के अत पुर का अधिकार भला किसी ऐसे-वैसे को मिल सकता है? एक निकम्मे दरिद्र आदमी के ध्यान में पडी है। उसे फिर से पाने की तेरी आशा व्यर्थ है। उसे छोड दे। रावण की बात मान जा। उसकी अतुल धन-दौलत का भोग कर।"

राक्षसियो की ये बातें सुनकर सीता बडे जोर से रोने लगी। बोली, "ऐसे पाप-वचन मुझे मत सुनाओ। मैं कभी तुम लोगो की बात नही मानूगी। राम को तुम लोग गरीब और देश से निकाला हुआ बताती हो। यह ठीक है, पर मनुष्य-जाति की स्त्रिया केवल इन्ही कारणो से पति का त्याग नही कर देती। राक्षसेंद्र एक मानुप-स्त्री को क्यो चाहता है? यह अनुचित बात है। असभव है। जैसे सूर्य के साथ-साथ उसकी प्रभा चलती रहती है, वैसे ही मैं भी अपने पति श्रीराम से सदा सलग्न हू। जैसे शची देवेंद्र के साथ और अरुवती वसिष्ठ के साथ सदा रहती है, मैं भी सदा राम के ध्यान में रहूगी।"

राक्षसियो ने सोचा कि इस स्त्री के साथ प्यार से बोलने से कोई लाभ

नही। इसे अब डराना चाहिए। एक बोली, "मुझे गर्भ है। मनुष्य मास खाने की कबसे इच्छा हो रही है। मेरा तो इस मानुपी को चीरकर इसका कलेजा चबा जाने को जी कर रहा है।"

दूसरी ने कहा, "चलो, इसका गला घोटकर मार डालते है। महाराज रावण से कह देंगे कि वह दु ख के कारण मर गई। रावण इसे भूलकर जरा चैन तो पायेंगे।"

तीसरी ने कहा, "इसका कलेजा बहुत ही स्वादिष्ट होगा।"

चौथी ने कहा, "चलो, इसे अभी मार डालते है। सब मिलकर इसका मास खायेंगे। देखो तो, कौन है उधर, सुनो, यहा आओ। कुछ चटनी और अन्य व्यजन ले आओ। साथ ही शराब का घडा भी लेती आना। इसका मास खाकर फिर खूब शराब पियेंगे। फिर देवी निकुभिला के मदिर में जाकर नाचेंगे और गायेंगे।"

राक्षसियो के क्रूर रूप और डरावनी बातो से सीता बिलख-बिलखकर रोने लगी। बडी धीरजवाली होने पर भी ऐसी असहाय स्थिति में अपने को पाकर वह एक बालक की तरह रुदन करने लगी। तब भी राम का ध्यान उसने एक क्षण के लिए भी न छोडा और अपनी बुद्धि को स्थिर रखा।

"राम, तुमने चौदह हजार राक्षसो को जनस्थान में निर्मूल कर दिया था। मुझे छुडाने अभीतक क्यो नही आये? दडकारण्य में भयकर राक्षसो को तुम दोनो भाइयो ने मार डाला था। अब क्यो चुप हो? शायद आप दोनो को मालूम नही कि मैं कहापर हू? मालूम होता तो अबतक यहा पहुचे बिना कभी न रहते। गीधराज जटायु को रावण ने मार डाला। यदि वह जीवित होते तो अवश्य तुम लोगो को बता देते कि मुझे रावण उठा ले गया है। गरीब पक्षी मेरे कारण राक्षस के साथ घोर युद्ध करके मर गया। राम को अबतक पता भी न चला होगा कि मेरा क्या हुआ?

"किंतु एक-न-एक दिन राम अवश्य आयेंगे। यहां लका और सारे राक्षस मर मिटनेवाले है। इस नगरी के घर-घर में स्त्रिया विधवा होकर रोनेवाली है।"

अपने मन में इस प्रकार से विचार करती हुई सीता कुछ शात हुई। तुरत ही उसके मन में और विचार आने लगे, "राम शायद मेरे विरह से मर न गये हो। यह भी बिल्कुल सभव है, अन्यथा वह इतने दिनो तक चुप कैसे रहते ? राम, तुम बडे भाग्यशाली हो। देवो के साथ रहने चले गये। मैं बडी पापिन हू। जो अभी तक जिदा हू। मेरा हृदय बहुत कठोर है, इसीसे अभी तक मरी नही।

"राम ने कही सन्यास तो नही ले लिया ? हो सकता है, दोनो भाइयो ने मुझे याद करना ही छोड दिया हो। पर नही, वीर पुरुष अपने कर्तव्य को पूरा किये बिना सन्यास-जीवन कभी नही ग्रहण करते। राम को अभीतक इसका पता नही चला होगा कि मैं कहापर हू। राम का जो मुझपर प्रेम था, वह कही समाप्त तो नहीं हो गया ? कहते है कि आख के सामने न रहने पर वस्तु का स्मरण भी जाता रहता है।

"पर नही, मेरा यह सोचना ठीक भी नहीं। मेरे राम मुझे कभी नहीं भूलेंगे। मैंने क्या पाप किया जो वह मुझे भूल जाय ?

"कही ऐसा तो नही हुआ कि किसी छल-कपट से रावण ने दोनो राज-कुमारो को मरवा डाला हो ?"

जनकनदिनी सीता इस प्रकार तरह-तरह की आशकाए करने लगी। उसे अब जीवित रहने में कोई सार न लगा। शोक का भार सहना अब उसे असह्य लगने लगा। उसने प्राण-त्याग करने का निश्चय कर लिया। उपवन के शिशुपा-वृक्ष की डाल पर अपने लबे केशो की फासी लगाने का निश्चय कर लिया। अपने विषाद से छुटकारा पाने का दूसरा उपाय उसे नहीं दिखाई दिया।

× × ×

राक्षसियो की समझ में नहीं आया कि सीता के मन में परिवर्तन किस प्रकार लाया जाय। उनमें से कुछ तो रावण के पास यह कहने के लिए चली गईं कि इनसे काम नही सध सकता। कुछ वहा टिकी रही और सीता को धमकाती रही।

तब उनमें से त्रिजटा नाम की राक्षसी ने दूसरी अन्य निशाचरियों को डाटकर कहा, "अरे बेवकूफ राक्षसियो, तुम लोग यह क्या कर रही हो ? मुझे तो लगता है कि राक्षस-कुल का नाश जल्दी ही होनेवाला है। आज मैंने एक भयानक सपना देखा है, उसे सुन लो।

"मैंने देखा है कि सीता का पति राम सूर्य के समान चमकता हुआ लका में आ पहुचा है, और रावण को यमलोक पहुचाकर सीता को हाथी पर विठा-कर वापस ले गया है। मैंने अपने सपने में रावण तथा सारे राक्षस-कुल को मैले-कुचैले कपडे पहने यमदेव द्वारा खीचे जाते भी देखा है।

"अत अब तुम लोग सीता को सताना छोड दो। यह बडी पतिव्रता है। इसके रोप के बजाय इससे आशीर्वाद की माग करो।"

जब त्रिजटा राक्षसियो को अपने स्वप्न का हाल बता रही थी, सीता को, जो अपने प्राणत्याग करने का सकल्प कर रही थी, अच्छे-अच्छे शकुन दिखाई देने लगे। उसके मगल-सूचक अग फडकने लगे।

× × ×

पेड पर बैठा हुआ हनुमान यह सब देख-सुन रहा था। वह सोचने लगा कि कि अब आगे क्या किया जाय। पाठक कह सकते है कि वह लका में तो पहुच गया था। सीता को भी देख लिया था, तब फिर बहुत सोचने-विचारने की क्या आवश्यकता रही होगी ? किंतु उसका काम जितना हम लोग सोचते हैं, उतना सरल न था। अब आगे देखें कि हनुमान क्या करता है ?

मारुति सोचने लगा—"सबसे कठिन काम समुद्र पार करने का था। वह तो मैंने कर डाला। सीता को भी ढूढ निकाला। राक्षसो का नगर, उनकी सुरक्षा की व्यवस्था आदि को भी अब मै जान गया हू। मैंने एक जासूस का काम तो कर डाला। यह सब मै राम के पास जाकर तुरत बता सकता हू, किंतु यहा का क्या हाल होगा ? राम-लक्ष्मण वानर-सेना के साथ यहा पहुचे, उससे पहले सीता मर जायगी, तो सारा काम बिगड जायगा। मुझे सीता से मिलकर उनको आश्वासन और धैर्य दिये बिना वापस नही जाना चाहिए। सीता से मिले बिना और उससे बात किये बिना राम के पास जाऊगा तो राम

को भी सतोप नही होगा । तव यह सोचना चाहिए कि सीता से बात कैसे की जाय ?"

आजनेय स्तोत्रमाला में उसे 'वुद्धिमता वरिष्ठ' कहा गया है यह विल्कुल ठीक है ।

हनुमान सोचने लगा, "वैदेही से किस भाषा में बात करू ? कैसा रूप घरकर उसके सामने जाऊ ? मुझे देखकर सीता सदेह कर सकती है कि रावण ही बदर रूप में न आ गया हो वह चिल्ला उठेगी । सोती राक्षसिया आवाज सुनकर उठ पडेंगी और मुझे देख लेंगी । मुझे दुश्मन का दूत जानकर मरवाने के लिए राक्षसो को बुला लायेंगी । घोर युद्ध छिड जायगा । तब मैं भी चुप न रह सकूगा । वहुतो को मार डालूगा, किंतु उससे सीता को छुडाने के काम में रुकावट पैदा हो जायगी । मुझे भी पकडकर ये लोग कैद में डाल देंगे तो राम के पास सदेश कौन ले जायगा ? वैसे मुझे कैद करना आसान नही है, फिर भी मै अधिक घायल हो गया तो शायद लौटने में समुद्र पार न कर पाऊगा । इसलिए मुझे एक-एक कदम सोच-समझकर उठाना होगा । राम और सुग्रीव मेरे ही भरोसे पर हैं । मुझे जल्दबाजी में कोई गलती न कर बैठना चाहिए । सीता के मन में डर पैदा किये बिना मुझे उसके साथ बात करनी होगी । उसके मन में यह सदेह न होना चाहिए कि मै रावण हू या उसका कोई सहायक हू । उसके लिए क्या उपाय सोचा जाय ?

"मै वहुत ही धीमी आवाज में, सीता ही सुन सकें, ऐसे स्वर में, राम के गुण और उनकी कथा सुनाने लगूगा । उसे सुनकर सीता के मन में आनद उत्पन्न होगा, वह मुझपर विश्वास करेंगी और तव कार्य सफल होगा ।"

यो 'वुद्धिमता वरिष्ठ' हनुमान सोच करके पेड में छिपे-छिपे ही वहुत ही धीमी आवाज में राम-नाम का जप करने लगा ।

: ६३ :

सीता को आश्वासन

तरु-पल्लवों के वीच छिपा हुआ हनुमान अपने-आप ही वहुत धीमी आवाज में, जिसे सिवा सीता के और कोई सुन न सके, रामचद्र के वारे में कहने लगा—"राजा दशरथ कोशल देश के राजा थे। उनकी चतुरग सेना वहुत वडी थी। पुण्यशील दशरथ सत्य और धर्म की रक्षा में तत्पर, यशस्वी तथा सभी राजाओं में अग्रगण्य थे। ऋषियों के समान नियमशील थे। देवेंद्र के समान पराक्रमी थे। वह किसीसे न द्वेष करते थे, न किसीको उन्होंने कभी सताया था। इक्ष्वाकु-कुल-सिंह चक्रवर्ती, सत्य-परायण दशरथ के चार पुत्रों में सवसे वडे राम हैं। वुद्धिमान, धृतिमान, धनुर्वेद में पारगत श्रीराम अयोध्या की प्रजा पर वहुत स्नेह रखते हैं। प्रजा भी राम को वहुत चाहती थी। धर्मनिष्ठ राम राजगद्दी के सभी दृष्टि से अधिकारी थे। किंतु उन्हें अपने पिता का वचन पालन करने के लिए अपना राज्य छोड देना पडा और जगल में वास करना पडा। उनके साथ उनकी पतिव्रता पत्नी और छोटा भाई लक्ष्मण भी भी थे। वनवास के समय राम ने अनेक क्रूर राक्षसों को हराकर ऋषियों की रक्षा की। खर और दूषण नाम के महावली राक्षसों का वध कर डाला। उनकी सेना में से शायद ही कोई वचा होगा। उसका वदला लेने के लिए रावण ने एक राक्षस को मायामृग के वेष में उन लोगों के पास भेजा। सीता का मन लुभाया। जव राम और लक्ष्मण दोनों पर्णशाला छोडकर चले गये, तव वलात् सीता को वह उठा ले गया। राम और लक्ष्मण सीता को ढूंढ़ते हुए निकले। राम ने सुग्रीव नामक वानरराज से मित्रता की। वालि को हराकर सुग्रीव को राज्य दिलाया। सुग्रीव के आदेश से हजारों वानर-वीर सारे भूमंडल में सीता को खोजने लगे। वे वानर असाधारण शक्तिवाले, नाना प्रकार के रूप धर सकनेवाले थे। उनमें से एक मैं हूं। सपाति गीध ने मुझे

कुछ बातें बताई थी। उससे यहा के बारे में जानकारी पाकर, मैं शतयोजन विस्तीर्ण समुद्र को लाघकर, यहा पहुचा हू। श्रीरामचद्र ने देवी के जो रूप और लक्षण मुझे बताये थे, वे सब मैं आपमें पा रहा हू।"

इतना कहकर वायुपुत्र चुप हो गये। इन मधुर वचनो को सुनकर देवी सीता विस्मृत हुई। अति प्रसन्न हुई, चारो तरफ देखा कि यह कौन बोल रहा है। उसे आश्चर्य हुआ। वह जानना चाहती थी कि ऐसी शुद्ध सस्कृत भाषा में कौन बोल रहा है। वहा कोई मनुष्य दिखाई न दिया। सीता ने एक छोटे-से बदर को पेड की डाली में छिपा देखा। वानर बडा सुदर था। उसके चेहरे पर बुद्धि का तेज था। हनुमान बाल-सूर्य की तरह तेज-युक्त था। उसपर जब जगदबा सीता की शीतल दृष्टि पडी, तो वह आनद से पुलकित हो उठा।

उस दृश्य की हम भी कल्पना करके कृतार्थ होने का प्रयत्न करें। उससे हमारा हृदय पावन होकर हम भव-भय से मुक्त होगे। क्षीर-सागर छोडकर भगवान नारायण हमारे हृदय में वास करने के लिए खुशी के साथ आ जायगे। भक्तो का पावन हृदय ही वास्तव में क्षीर-सागर है।

× × ×

देवी जानकी ने हनुमान को देखा। वह विचार में पड गई। सोचने लगी, "मैंने जो सुना था, जो देख रही हू, वह सब कही स्वप्न तो नही है। जिस बारे में सदा सोचती रहती हू, उसीका मैं यह स्वप्न तो नही देखती हू! मेरे प्राण-नाथ श्रीराम की बातें ही सदा मेरे मन में आती रहती है। इसलिए मुझे भ्रम ही हुआ है या कोई मुझे उनकी कथा ही सुना रहा है? इसमें कोई शक नही कि मैंने स्वप्न ही देखा। कहते है कि स्वप्न में बदर को देखना अच्छा नही होता। बधु-बाधवो की हानि होती है। मेरे राम, तुम कुशल से रहो! लक्ष्मण भैया, तुम अच्छे हो न? मिथिला में मेरे माता-पिता सब कुशल से हो। पर नही, यह स्वप्न नही मालूम होता। बदर स्पष्ट दिखाई दे रहा है और मैं सोई भी नही हू। सो जाने पर ही तो स्वप्न की सभावना हो सकती है। यह सचमुच की बात है, स्वप्न नही। हे देवगण, क्या सचमुच यह वानर मेरे राम के पास से आया है? तुम लोग मुझपर दया करो। ऐसा ही हो कि यह मेरे नाथ का दूत हो।

हे वाचस्पति, हे अग्नि, हे स्वयभू, तुम सबको मेरा नमस्कार हो। मेरी रक्षा करो।"

इधर सीता के दर्शन से प्रफुल्लित हनुमान पेड से नीचे उतर आया। देवी को हाथ जोडकर प्रणाम किया और बोला, "मा, आपका तेजोमय रूप देखकर मुझे शका हो रही है कि आप कोई देवकन्या तो नही है ? या आप कोई नागकन्या है। आप चद्रमा से बिछुडी रोहिणी तो नही है ? वसिष्ठ मे किसी कारण से विलग हुई अरुधती तो नही है ? ध्यान से देखने पर तो आप मानवी ही मालूम होती है। अवश्य ही आप एक राजकुमारी है। आपके नयन-कमलो से आसू क्यो निकल रहे है ? अत्यत उदास एव दुखी होकर पेड के सहारे आप क्यो खडी है ? मुझे अपना परिचय देने की कृपा करें। क्या आप ही राम-वल्लभा सीता है, जिनका रावण ने अपहरण किया ? क्या मुझे सचमुच ही देवी सीता के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है ? मुझे बताकर अनुग्रहीत करें।" हनुमान ने नम्रतापूर्वक मधुरता से पूछा।

सीता के हर्ष का ठिकाना न रहा। बोली, "भैया, मै सीता ही हू। विदेह राजा की पुत्री, राम की सहधर्मिणी। बारह वर्ष मैने अयोध्या मे अपने पति के साथ बडे आराम से बिताये। जब बारह वर्ष बीत गये, तब मेरे श्वसुर सम्राट दशरथ ने मेरे पति के युवराज्याभिषेक की आयोजना की। सब तैयारिया हो चुकी थी, पर राजा की सबसे छोटी रानी ने हठ किया कि राज्य उनके बेटे भरत को दिया जाय और मेरे पति को चौदह वर्ष वनवास की आज्ञा दी जाय। उसने अपनी माग स्वीकार न किये जाने पर आत्महत्या कर डालने की धमकी दी। राजा ने कभी उसे दो वर मागने का वचन दे रखा था। इसलिए उन्हे विवश होकर राम को वन भेजना पडा। मेरे पति ने बडी प्रसन्नता के साथ पिता की आज्ञा मान ली। वह जब वन जाने की तैयारी करने लगे तब मैंने कहा कि, "मै भी उनके साथ चलूगी। मै अपने पति से एक क्षण के लिए भी अलग क्यो रहू ? छोटा भाई लक्ष्मण तो मुझसे भी पहले भाई के साथ चलने के लिए तैयार हो चुका था। हम तीनो वन के लिए रवाना हुए। वन में घूम-घामकर हम दण्डारण्य वन में रहने लगे। वहा आराम और शाति से हमारे

दिन बीत रहे थे कि रावण ने एक दिन छल-कपट और ज़ोर-जवर्दस्ती से मुझे पर्णशाला से हर लिया और इस अशोकवाटिका में कैद में डाल दिया। उसने मुझे बारह महीने की अवधि दी है। उसमें अब दो महीने ही बाकी रह गये हैं। बस, समझ लो कि दो महीने से अधिक मेरे जीवित रहने की अब सभावना नही है।" कहते-कहते सीता का गला भर आया।

× × ×

इस प्रकार एक बार हनुमान के मुह से और दूसरी बार स्वय सीता के मुह से दो छोटे अध्यायो में पूर्वकथा का वर्णन कवि ने कर दिया है। इसे हम सक्षिप्त रामायण कह सकते है। वायुपुत्र हनुमान और सीता माता के मुख से हमें रामायण सुनने का सौभाग्य कवि दिलाते है। जैसे त्रिविक्रम ने अपने छोटे-छोटे तीन चरणो में सारी दुनिया को नाप लिया था, और उससे महाबली उद्धार पाया था, उसी प्रकार सारी रामायण की पूर्व-कथा को बहुत ही थोडे श्लोको में सपुटित करके देवी जानकी ने हनुमान को बताया। हम उसे पढें और अपने हृदय से अहकारादि दुर्गुणो को दूर करके प्रभु की शरण लें।

× × ×

जब वैदेही ने अपने मुह से हनुमान को बताया कि अब दो महीने से अधिक समय मै नही जी सकूगी, तो मारुति देवी सीता को ढाढस देने लगे, "पुरु-षोत्तम, वीरो में श्रेष्ठ, सम्राट के सुपुत्र श्रीराम ने आपको अपना कुशल समाचार भेजा है। आपकी स्थिति का ही सदा विचार करनेवाले दुखी भाई लक्ष्मण ने आपको अपना प्रणाम भेजा है।"

अपने पति और देवर के नाम और उनका सदेश सुनकर सीता का सारा शरीर पुलकायमान हो उठा। बोली, "मै, यह कैसी शातिप्रद बातें सुन रही हू। तभी तो लोग कहते है कि प्राण रहे तबतक आशा नही छोडनी चाहिए। कभी भी आशा सफल हो सकती है। आज मै समझी कि यह बात बिल्कुल सच है।"

हनुमान और सीता दोनो में, जो आज तक बिल्कुल एक दूसरे से अपरि-चित थे, परस्पर स्नेह और सद्भावना पैदा हो गई। हनुमान बहुत ही प्रसन्न

था। उसने सोचा कि जानकी के और पास जाकर उसे अच्छी तरह से आश्वासन दू। वह सीता के एकदम निकट जाने लगा, लेकिन सीता को एक बार राक्षसो के मायारूप का बडा बुरा अनुभव हो चुका था। इसलिए हनुमान को अपने पास आते देखकर वह चौक पडी। उन्हें फिर डर और सदेह होने लगा। अबतक वह पेड के सहारे खडी थी। अब वह दोनो हाथो से अपने चेहरे को ढककर एक ओर को बैठ गई। यह देख हनुमान विनयपूर्वक अजलिबद्ध होकर सामने खडा हो गया।

सीता डरकर बोली, "अब मै समझी, तू रावण है। एक बार सन्यासी के भेस में आकर मुझे बहकाया। अब दूसरे भेस में आया है। मै कहती हू, तेरा भला नही होनेवाला। तू मेरे सामने से हट जा। उपवास और दुख से मेरा शरीर और मन दोनो बहुत ही दुर्बल अवस्था में है। मुझे तग करेगा तो तुझे बडा पाप लगेगा। चला जा, यहा से!"

सीता यो बोली तो पर जरा सोचने भी लगी। "यह प्राणी शत्रु-पक्ष का दीखता नही, क्योकि इसे देखकर मेरे मन में एक प्रकार का वात्सल्य और श्रद्धा का भाव पैदा होता है। शायद इसपर शका करना उचित नही है। यह सोचकर फिर बोली, "हे वानर, क्या तू सचमुच राम का दूत है? अगर यह सही है तो तेरा मगल हो। राम के बारे में मुझे और भी बातें सुना। मेरा हृदय शात कर।"

सीता को फिर सदेह होने लगा कि वह कही स्वप्न तो नही देख रही है। या पागल तो नही हो गई? मन-ही-मन बोली, "नही, मै अच्छी तरह देख रही हू, सोचती भी हू। पागल भी नही दीखती, पर यह वानर सतयोजन विस्तृत समुद्र पार करके यहा कैसे आया होगा। जरूर झूठ बोलता है। यह रावण ही है।" यो सीता के मन में विचार आने लगे। उसने हनुमान की ओर आख उठाकर नही देखा।

हनुमान ने देखा कि अब भी सीता के मन में भय और शका है। यह स्वाभाविक ही था। वह विचार करने लगा कि सीता के मन में विश्वास लाने के लिए क्या किया जाय? पुन राम की स्तुति करने का हनुमान ने निश्चय

किया। उसने देखा था कि राम का वर्णन सुनने से सीता अपना दु ख भूलकर प्रसन्नचित्त हो गई थी। वह फिर श्रीराम की स्तुति करने लगा—

"श्रीराम आदित्य के समान तेजस्वी है। चद्रमा के समान सर्वजनप्रिय है। देवताओ में कुबेर की तरह, पृथ्वी के राजाओ में अग्रगण्य समझे जाते है। महाविष्णु के समान यशस्वी और पराक्रमी पुरुष है। वृहस्पति के समान धीमान, सत्यवादी और मृदु वचन बोलनेवाले है। मन्मथ के समान रूपवान है। जहा और जिसपर क्रोध करना उचित है, उसपर वह क्रुद्ध भी होते है। वडे न्यायी पुरुष है। मै उन्ही श्रीराम का दूत हू। रावण ने मायामृग द्वारा वहकाकर आपको राम से अलग करवाया। जव आप अकेली पड गई तो वह आपका हरण करके भाग निकला। इस अत्याचार का फल रावण को अवश्य ही मिलनेवाला है। यह सव आप अपनी आखो से देखेंगी। राम-लक्ष्मण के वाणो से लकापुरी के जलने में अव देर नही रही। राक्षस-समूह समूल नष्ट हो जानेवाला है। मै राम के पास से आया हू। आपका सदेशा श्रीराम को सुनाऊगा। राम की ओर से आपसे विनयपूर्वक मै कुशल-प्रश्न कर रहा हू। लक्ष्मण की ओर से मै आपको प्रणाम कर रहा हू। वानर-राज सुग्रीव का प्रतिनिधि वनकर आपको नमस्कार कर रहा हू। राम-लक्ष्मण-सुग्रीव को सदा आपका ध्यान रहता है। मेरा अहोभाग्य है कि आपको मैंने जीवित पाया। अव शीघ्र ही राम-लक्ष्मण और वानर-राज सुग्रीव की सेना के साथ यहा आयेंगे। सुग्रीव का मै मुख्यमत्री हू। मेरा नाम हनुमान है। समुद्र को लाघकर मैंने लका में जो पैर रखा है, वस यही समझ लीजिये कि वह रावण के सिर पर रखा है। देवि, मुझपर शका न करें। मै श्रीराम का दूत हू।" इस प्रकार वोलते-वोलते भावावेश के कारण हनुमान की आखें गीली होगई।

हनुमान की वातो से सीता का डर मिट गया। उनके मन में अव उत्साह और धैर्य आ गया। वोली, "हे वानर, मैंने थोडी देर के लिए तुम्हारे ऊपर अविश्वास किया, उसके लिए मुझे क्षमा करना। वुरी तरह धोखा दिये जाने के कारण मै वहुत ही डरने लगी हू। हे मित्र, तुम्हारा राम से मिलना कैसे

हुआ ? राजकुमार राम की वानरो से मित्रता किस प्रकार हुई ? इसका सारा हाल मुझे विस्तार से बताओ।"

हनुमान ने सीता को राम-लक्ष्मण के गुण-विशेषो का, रूप-लावण्य का विस्तार से वर्णन किया ताकि सीता के मन से शका बिल्कुल मिट जाय। राम-सुग्रीव-मैत्री की कहानी भी सुनाई। किस प्रकार उनका पहला परिचय हुआ कैसे मित्रता बढी, वालि का वध, सुग्रीव का अभिषेक, सीता के आभूषणो का रामचद्र को बताया जाना, उसे देखकर राम का शोक-विह्वल होना, वर्षा ऋतु के बाद वानरो द्वारा सीता की खोज, दक्षिण-तट पर अगदादि का निराश होकर प्रायोप्रवेशन न करने का सकल्प, सपाति द्वारा जानकारी प्राप्त होना, अपना समुद्र लाघना, रावण के अत पुर में उनको खोजना आदि सारा हाल सीता को हनुमान ने विस्तार से और अच्छी तरह से सुनाया। यह सब कहने के बाद उसने वैदेही को श्रीराम की दी हुई राम-नामाकित मुद्रिका दी।

अमित आनद के साथ सीता ने उस अगूठी को आखो से लगाकर प्यार किया। अब उनके मन में हनुमान के प्रति तनिक भी शका न रही। उन्हें पूर्ण रूप से विश्वास हो गया कि यह वानर सचमुच श्रीराम का दूत है। उन्हें बडा पछतावा हुआ कि उन्होने प्रारभ में क्यो उसपर अविश्वास किया।

हनुमान ने सीता से अपने जन्म, माता-पिता और बल-पराक्रम आदि का वर्णन किया और बोला, "मैं अपनी बडाई करने के लिए यह सब नही बता रहा, आपके मन में हिम्मत और आशा उत्पन्न हो, इसलिए यह कह रहा हू। अब बहुत शीघ्र ही वानर-सेना के साथ राम-लक्ष्मण यहा आकर रावण का वध करनेवाले है। बस मेरे वापस पहुचकर राम को खबर देने की ही देरी है।"

इसके बाद हनुमान ने सीता को राम की दिनचर्या का, उनकी विरह-वेदना का बहुत ही करुण वर्णन किया, जिसे सुनकर देवी अपना दुःख भूल गई और श्रीराम की व्यथा से दुखी हो उठी।

: ६४ :

हनुमान की बिदाई

सीता हनुमान से कहने लगी, "प्रिय मारुति, तुमसे सारी बाते सुन लेने पर मुझे हँसना और रोना एक साथ आ रहा है। समझ मे नही आता है कि अब क्या करू। ऐसा मालूम हो रहा है कि मैं विष और अमृत दोनो एक साथ पी रही हू। राम मुझे भूल नही गये, मुझे ढूढने मे लगे है, यह सोच-कर आनद का अनुभव हो रहा है, किंतु उनके दु ख से मेरा मन भी उसी प्रकार रो रहा है।"

अपने मन की बाते सही रूप में हनुमान को बताकर सीता को कुछ समाधान हुआ। हरेक मनुष्य जीवन में सुख और दु ख का निरतर अनुभव करता है। सीता बोली, "मित्र, मालूम होता है कि दुनिया में हरकोई सुख और दु ख के बधन में कस जाता है। राम, लक्ष्मण और मै अब इसका अनु-भव कर रहे हैं। बवडर में झोंके खानेवाली नाव की तरह मेरे प्राणनाथ आकुल-व्याकुल हो रहे होगे। हे प्रिय वानर, मेरे स्वामी यहा कबतक आ जायगे ? कब इन सब क्रूर राक्षसो को हरायेंगे ? मुझे रावण ने जो समय दिया है, तबतक वह न आ पाये तो क्या होगा ? अब दो ही महीने बाकी रह गये है। रावण के विभीषण नाम का एक भाई है। उसने रावण को बहुतेरा समझाया। मुझे वापस राम के पास छोड आने का सदुपदेश दिया। चेतावनी भी दी कि ऐसा न करने पर सारे राक्षस मारे जायगे। पर उसका समझाना व्यर्थ हुआ। तुमसे मिलकर अब मेरी अतरात्मा में साहस का अनुभव हो रहा है। मेरे मन में किसी प्रकार की भी बुरी कल्पना नही रही। मुझे तो साफ लगता है कि अब रावण के विनाश का समय समीप आ गया है।"

सीता बोलती गई, पर उनकी आखो से आसुओ की झडी रुकती नही थी। हनुमान से यह देखा न गया, वह बोला, "मा जानकी, आप तनिक भी

चिंता न करें। मैं जल्दी ही श्रीराम को यहा लाऊगा। वह बडी भारी सेना के साथ लका में आयेंगे। यदि आपको आपत्ति न हो तो मैं कहता हू कि अभी मेरी पीठ पर बैठ जाइये। मैं बडी आसानी से आपको समुद्र पार कराके राम के पास पहुचा दूगा। उसके लिए पर्याप्त शक्ति मेरे अदर है। जैसे अग्नि इद्र को हवि पहुचाता है, मैं आपको ले जाकर श्रीरामचद्र को समर्पित करूगा। हे पुण्यशीले, इसके लिए आप मुझे आज्ञा दें तो मैं आज ही आपको श्रीराम के पास पहुचा सकता हू। अनुजसहित श्रीराम के आज ही आप दर्शन कर सकेंगी। मेरे बल के बारे में शका न करें। चाहू तो मैं इस सारी लका को हाथ मे उठाकर राम के चरणो में रख सकता हू। चलिये। मेरे कधो पर बैठ जाइये। मैं अभी आपको ले चलता हू। जैसे रोहिणी अपने कात चद्र के पास पहुच जाती है, उसी प्रकार आप अपने नाथ के पास पहुच जायगी। यह आप स्वय देखेंगी।"

हनुमान बडे उत्साह के साथ अपनी बात कहता गया। सीता के विस्मय का पार न रहा। उसने सोचा यह नन्हा-सा वानर समुद्र को कैसे लाघ सका होगा। तब सीता के मन में विश्वास पैदा करने के लिए हनुमान पेड के चबूतरे पर से, जहापर वह इतनी देर मे खडा था, नीचे उतरा और अपने शरीर को पर्वताकार बढाता गया। सीता उसे देखकर बडी प्रसन्न हुई। बोली, "अब मैंने तुम्हारी शक्ति पहचानी। फिर भी मैं सोचती हू कि मेरा तुम्हारे साथ चलना ठीक नही रहेगा। रास्ते में राक्षस तुम्हे रोकेंगे। तुम्हारे ऊपर आक्रमण करेंगे। शस्त्रो को तुम्हारे ऊपर फेंकेंगे। तुम मेरी चिता करने लगोगे। उन राक्षसो से युद्ध करने से तुम्हारा ध्यान बट जायगा। चाहे कितना भी बल अपने में हो तो भी युद्ध में कौन जीतेगा, यह कहना मुश्किल है। यदि तुम्हे कुछ हो जाय तो मैं क्या करूगी। जब तुम राक्षसो के साथ युद्ध कर रहे होगे तब मैं किस प्रकार निश्चित तुम्हारी पीठ पर बैठी रह सकती हू? मैं डर के मारे समुद्र में भी गिर सकती हू। इन सब बातों को सोचकर मुझे तो यह ठीक नही लगता मैं तुम्हारे साथ इसी समय चल पडू। तुम चुपके-से मुझे ले चलोगे तो श्रीराम के पराक्रम को कौन देख पायगा?

क्षत्रिय-कुल का गौरव तो इसीमें है कि शत्रु का सामना करके लडें और विजयी हो। रावण मुझे चोरी से ले आया है। मैं भी यहा से चोरी से निकल जाऊ, भैया, मुझे यह बात पसद नही आ रही है। तुम राम-लक्ष्मण के पास अकेले ही जाओ। मेरे समाचार सुनाना और उन्हे यहा ले आना। अपनी वानर-सेना साथ में लाना। रावण के साथ भयकर युद्ध होने दो। मुझे जरा भी शक नही कि हमारा ही पक्ष जीतेगा। पापी राक्षस-राज और उसके साथी शीघ्र ही यमलोक पहुचेगे। मेरे स्वामी के बाण प्रलय-काल के सूर्य के समान राक्षस-समूह को नष्ट करनेवाले हैं।"

हनुमान सीता की बात मान गया। उसने सीता से पूछा, "मैं लौटकर राम को आपका क्या सदेश सुनाऊ ? आप कोई ऐसी चीज राम के लिए दें, जिससे उनको विश्वास हो कि मैं आप से मिला हू तो अच्छा होगा।"

यह सुनकर सीता को पुरानी बाते याद आ गई और उनके लिए आसुओ को रोकना मुश्किल हो गया।

उन्होंने सोचा कि वह हनुमान को कुछ ऐसे सस्मरण सुनावेंगी, जिसका पता अबतक केवल राम ही को है। उससे राम को विश्वास होगा कि हनुमान उससे सचमुच मिला। बोली, "सुनो हनुमान, एक बार ऐसा हुआ कि मैं और राम चित्रकूट में खेल-खेल में घूम-फिरकर बहुत थक गये थे। नदी-तट पर एक जगह आराम करने बैठे। राम मेरी गोद में सिर रखकर सो गये। तब एक कौआ कहीसे आया और मेरे शरीर पर चोच मारकर सताने लगा। मै उसे हटाती। पर वह बार-बार आकर मुझे तग करने लगा। मैंने वही पास से एक पत्थर उठाकर उसपर फैंका। तब भी वह नही माना। मुझे चोचो से बुरी तरह घायल करता गया। तब राम ने आखें खोली। पहले तो वह समझ नही पाये कि यह क्या हुआ। मेरी आखो में आसू देखकर मुसकराये। उन्होंने यही सोचा कि मै रूठी हू। पर जब उन्होंने देखा कि मेरा शरीर घायल हुआ है और उसमें से खून टपक रहा है तो मेरे बताने पर बोले कि यह काम साधारण कौए का नही हो सकता। अवश्य ही वह कौआ कोई असुर होगा। उन्होंने उसपर अपना अस्त्र फैंका। अस्त्र ने काकासुर का

ऐसा पीछा किया, ऐसा पीछा किया कि वह कौआ हताश होकर मेरे नाथ के चरणों में गिर पड़ा और गिड-गिडाकर प्रार्थना करने लगा कि उसे क्षमा करे। यह सस्मरण तुम राम को मेरी तरफ से सुनाना और उनसे कहना कि शीघ्र-से-शीघ्र यहा आवें और मुझे यहा से मुक्त करे।"

यह कहते-कहते सीता राम को याद करके रोने लगी और बोली, "एक दूसरी घटना और है। एक समय राम और मै वन में घूमते-घूमते बहुत दूर निकल गये। श्रम के कारण माथे से पसीने की बूंदें टपकने लगी। उससे मेरा तिलक घुलकर मिट गया। तब राम ने पसीना पोंछकर तथा चट्टानों से लाल धातु घिसकर मेरे माथे पर नया तिलक लगा दिया था। उन्हे यह बात स्मरण है या नही, यह पूछना।"

इस प्रकार पुरानी बातो को याद करते-करते सीता की आखो से आसुओं की धारा बहने लगी। वह फिर बोली, "हे वायुपुत्र, मै राम को अधिक क्या समझाऊ। उन्हे सबकुछ मालूम है। वह स्वय सर्वज्ञ है। उनसे बस यही कहना कि सीता ने आपको अपना प्रणाम भेजा है। पास में लक्ष्मण तो है ही। इस भूमडल में उसका जैसा भाई दूसरा कौन हो सकता है? वह अतुल सामर्थ्यवान है। उसका चेहरा देखकर राम अपने पिता के स्वर्गवास के शोक को भूल सके थे। लक्ष्मण-जैसा निर्भीक कोई नही मिल सकता। बच्चों जैसा निर्मल हृदयवाला है वह। अपनी मा को छोडकर मुझे ही मा समझकर मेरे साथ वन आ गया था। उससे कहना कि मेरा सकट दूर करे।"

लक्ष्मण के बारे में बात करते-करते सीता का गला भर आया। शायद उन्हें याद आ गया होगा कि उन्होंने बडी मूर्खता से लक्ष्मण पर भयकर आरोप लगाये थे।

पर हनुमान ने शातिपूर्वक सीता को समझाया और लक्ष्मण की ओर से आश्वासन दिया। सीता चाहने लगी कि वायुपुत्र जब शीघ्र श्रीराम के पास पहुचे और उनके समाचार उन्हे सुनाये। पर साथ ही हनुमान को विदा करने का भी उनका मन न हुआ। हनुमान ने ही तो उन्हे आत्महत्या करने से बचा लिया था? वह बोलीं, "हनुमत, यह लो मेरी चूडामणि।

मेरी मा ने मुझे विवाह के समय दी थी। महाराज दशरथ ने वात्सल्य के साथ अपने हाथो से यह मुझे पहनाई थी। इसे राम को दिखाना। वह इसे तुरत पहचान लेंगे।"

यह कहकर अपनी चूडामणि उसने हनुमान के हाथो में रख दी। उस आभूषण पर देवी सीता की विशेष भावना और प्रीति थी। बडे विनय के साथ हनुमान ने उसे ग्रहण किया। उसे पाकर हनुमान को ऐसा लगा, मानो वह श्रीराम के पास पहुच गया है और बडे उत्साह के साथ उनसे कह रहा है कि मै सीता से मिल आया। उसका मन उस समय किष्किधा पहुच गया। केवल शरीर लका में था। सीता ने उसको जागृत किया। बोली, "प्रिय हनुमान, राम को भली प्रकार यथायोग्य सलाहे देकर उनको विजय दिलाना तुम्हारा काम है।"

हनुमान देवी से विदा लेकर जाने लगा तो सीता फिर बोली, "हनुमान, दोनो राजकुमारो से कहना कि मैने उन्हे बहुत-बहुत याद किया है। सुग्रीव और उसके सचिवो को मेरा सविनय नमस्कार कहना। उनसे कहना कि श्रीराम को वे हर प्रकार से सहायता दें, जिससे मै इस शोक-सागर से पार हो सकू।"

हनुमान ने उत्तर दिया, "मा, आप बिल्कुल निश्चित रहे। राम-लक्ष्मण के यहा आकर आपको वापस ले जाने में अब बहुत दिन नही है।"

सीता बोली, "मित्र, आज यही-कही तुम ठहर जाओ। एक दिन विश्राम करो। तुम्हे देखकर मेरे गये प्राण लौट आये है। तुम यहा से चले जाओगे तो फिर मुझे ढाढस देनेवाला कौन रहेगा? तुमने तो आसानी से समुद्र लाघ लिया, किंतु राम-लक्ष्मण से यह कैसे होगा? तुम क्या सोचते हो?

हनुमान ने कहा, "देवि, सुग्रीव के सभी वानर एक-से-एक बढकर चतुर है। मेरे ही समान शक्तिशाली है। कई तो मुझसे भी बढकर है। अतः आप शका न करे। वे सब राम की सहायता करेंगे। मै तो उन वानरो के सामने अति साधारण हू। इसीलिए मुझे सबने दूत चुना। सबसे बलिष्ठ को दूत नही नियुक्त किया जाता है। आप तो यह जानती ही है। आप बिल्कुल चिंता

न करें। अपने दोनो कधो पर राम-लक्ष्मण को चढाकर ले आऊगा। यह नगरी अब नष्ट हुई समझ लीजिये। रावण के कुल में कोई नहीं वचनेवाला है। आपका दु ख मिटने के दिन आ गये। आपका मगल हो। शीघ्र ही धनुप-वाण लेकर लका के द्वार पर लक्ष्मण के साथ राम को आप देखेंगी। वानर-वृद लका में अशाति फैला देनेवाले है। वस, मेरे वहा पहुचने भर की देर है।"

देवी को प्रणाम करके हनुमान वहा से चलने लगा।

सीता वोली, "वानर-वीर, राम से कहना कि मै जीवित हू। उनके यहा आने का काम जल्दी से कराना। तुम्हारा मगल हो।"

वायुपुत्र आजनेय को, सीता-दु ख-हरण हनुमान को हमारे प्रणाम!

: ६५ :

हनुमान का पराक्रम

सीता से विदा लेकर हनुमान बाग की उत्तर दीवार पर बैठकर विचार करने लगा, "मुझे अब कुछ ऐसा काम करके दिखाना चाहिए, जिससे देवी सीता के मन में मेरे वल के बारे मे श्रद्धा पैदा हो, रावण तथा उसके सबधी राक्षसो के मन में आतक छा जाय, जिससे वे सीता को तग करना छोड दें। जसा आया वैसा ही चुपके से वापस चला जाऊ, यह ठीक नहीं। रावण का गर्व उससे कैसे मिटेगा ? राक्षसो के साथ सख्ती को छोड और दूसरा उपाय काम नही आता। दुरात्मा रावण के पास बहुत धन है। उसके कारण जितने राक्षस हैं, वे सभी अर्थलाभ से खूब खुश हैं और आपस में एक हैं। उनमें आपस में किसी प्रकार का मन-मुटाव नही दीखता। इस कारण साम, दाम और दड, ये काम नही आयेंगे। उनमें भय पैदा करने से ही कुछ हा सकता है। तभी वे सीता के साथ दुर्व्यवहार करने से डरेंगे। अत यहा से लौटने से पहले मैं कुछ करके दिखा जाऊ, यही ठीक लगता है।"

यह सोचकर हनुमान ने अपना रूप खूब वढा लिया और सुदर अशोक वाटिका का विध्वस करने लगा। वृक्षो को जड से उखाडकर नीचे गिराने लगा। पुष्पलताओ को तोड डाला। पहाडो को समतल कर दिया। जितनी सजावट की चीजें थी, सारी नष्ट-भ्रष्ट कर डाली। देखते-देखते सुदर अशोक उपवन शोभाविहीन हो गया। उपवन के पशु-पक्षी डर के मारे भागने लगे। राक्षसियो की नीद उचट गई। कच्ची नींद में रहने के कारण वे समझ ही नही पाई कि यह सब हो क्या रहा है ?

यह सब कर चुकने के वाद हनुमान फिर दीवार पर चढ गया। राक्षसियो की निगाह उसपर पडी। हनुमान ने अपने शरीर को और भी वढ़ा लिया। उसे देखकर राक्षसियो के हृदय में डर का सचार हो गया। वे थर-थर

कापने लगी । उनमें से कुछ रावण को खबर देने के लिए दौडी । कुछ राक्ष-सिया सीता से पूछने लगी, "यह बदर कौन है ? कहा से आया है ? तुम्हे जरूर मालूम होगा ? हमें सच-सच बता दो । उसने तुमसे कुछ बातें भी की है क्या ?"

सीता ने कहा, "तुम सब बडी मायावी हो । यह तुम लोगो की ही माया हो सकती है । यह तो तुम लोगो में से ही कोई हो सकता है । मैं क्या जानू ?"

हम अब इस चर्चा में न उतरें कि सीता ने सच कहा या वह झूठ बोली । उसने रावण को कई बार चेतावनी दे दी थी कि राम से दुश्मनी करने पर उसके प्रतिफलो के लिए वह तैयार रहे । अब युद्ध छिड गया था । राम का कार्य बिगडे, ऐसा कोई भी काम सीता नही कर सकती थी ।

अशोक-वाटिका से जो राक्षसिया डरकर भाग निकली थी, वे रावण के पास पहुची और बोली, "राजन्, एक भयकर रूपवाला बदर वाटिका में पहुच गया है । बाग का रूप ही उसने बदल डाला । उसने बडा उपद्रव कर रखा है । हमें उस वानर को देखने में भी डर लगता है ।"

उन राक्षसियो ने बड़ी चतुराई के साथ यह बात रावण से छिपाई कि वे सब खूब गाढी नींद में सो गई थी । बोली, "हमने सीता से कई बार पूछा कि 'बदर कहा से आया, तुमसे उसने कुछ कहा क्या ?' किंतु वह भी कुछ ठीक से जवाब नही देती है । महाराज, किसी उपाय से उस बदर को भगा देना चाहिए । वह बदर भी कोई मामूली नही मालूम पडता । बडा ही भयकर है । इसलिए उसे पकडने के लिए शक्तिशाली सैनिको को भेजें । इस बदर ने सारे बाग का सत्यानाश कर डाला है । किंतु उस शिशुपा-वृक्ष को, जिसके नीचे सीता बैठी है, उसने छुआ तक नही । इसका जरूर ही कोई-न-कोई कारण मालूम होता है । जब उसने अशोक-वाटिका की एक भी चीज साबुत नही छोडी तो उस एक स्थान का क्यो कुछ नही किया ? इसमें अवश्य कुछ-न-कुछ रहस्य है । हमें तो यह साधारण जानवर मालूम नही होता । आपके दुश्मन कुबेर ने अथवा देवेंद्र ने इसे भेजा हो, ऐसा हो सकता है । अथवा कहीं राम की आज्ञा से ही तो यह नही आया है ? तभी तो सीता के प्रति वह

सहानुभूति प्रकट करता-सा दिखाई दे रहा है। हमें तो ऐसा लगता है कि इसें राम ने ही भेजा होगा। आप तुरत अपने वीरो को भिजवाकर वानर को पकडवा लें।"

रावण ने बडे यत्न के साथ अपनी रानियो के लिए अशोक-वाटिका का निर्माण किया था। उसका जो बुरा हाल हुआ, उसका वर्णन सुनकर उसकी मशाल जैसी लाल-लाल आखो में से गरम-गरम तेल की बूदो जैसे आसू टपक पडे।

तत्काल उसने कई योद्धाओ को, जिनके पास गदा, मूसल, तलवार; शूल आदि शस्त्र थे, हनुमान को मार डालने अथवा सभव हो तो पकडकर लाने के लिए भेजा।

रावण द्वारा भेजे गये राक्षसो ने अशोक-वाटिका में पहुचकर देखा कि एक वानर उपवन के द्वार के ऊपर बैठा हुआ है। उन्हें देखते ही हनुमान ने अपना रूप बढा लिया और नीचे कूद पडा। लबी पूछ को जमीन पर पटक-कर ऐसी गर्जना की कि उससे आठो दिशाए काप उठी। उपवन के बडे द्वार पर लोहे का एक बहुत भारी खूब मोटा डडा था, जो चटखनी का काम देता था। उसे उखाडकर हनुमान सबके ऊपर प्रहार करने लगा। उस लोहे के डडे की मार से उसने सबका काम तमाम कर डाला और फिर अशोक-वाटिका के शिला-द्वार के ऊपर जा बैठा। बोला, "राम-लक्ष्मण की जय हो! राजा सुग्रीव की जय हो! हे राक्षसो, तुम लोग अब बचनेवाले नही। मै राम, लक्ष्मण और राजा सुग्रीव का दूत हू। तुम लोगो के साथ युद्ध करने आया हू। किसीमें हिम्मत हो तो आ जाओ, लड लो मेरे साथ। मैंने मा सीता को नमस्कार करके उनका आशीर्वाद पा लिया है। अब मैं तुम लोगो की राजधानी लका को नष्ट करनेवाला हू।"

जब रावण ने यह सुना कि उसके सभी किंकर मारे गये तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसे विश्वास न हुआ कि कोई ऐसा भी शक्तिशाली हो सकता है, जो उसके उपवन का सत्यानाश करके उसके हाथी जैसे किंकरो का सहार कर डाले!

अब लडने में बहादुर प्रहस्त के लडके जाबुमाली को रावण ने हनुमान का दमन करने के लिए भेजा।

जबतक जाबुमाली कवच धारण करके शस्त्रों को लेकर लडने के लिए आया तबतक हनुमान से चुप न रहा गया। वह एक मडप के ऊपर चढ गया। वहा वह दूसरे सूर्य की तरह चमक रहा था। मडप के ऊपर चढकर उसने घोर गर्जना की। उसकी प्रतिध्वनि चारो दिशाओ में गूज उठी। उससे राक्षसो के कलेजे दहल उठे।

मडप के पहरेदार ने हनुमान को भगाने का प्रयत्न किया, पर हनुमान ने उनको डाट दिया और कहा, "मैं कोशल-राजेंद्र रामचद्र का दूत हू। रामचद्रजी की जय हो! महाबली लक्ष्मण की जय हो! वानरेंद्र सुग्रीव की जय हो! मैं वायु का पुत्र हू। तुम लोगो का खात्मा करने और मा जानकी की सेवा करने यहा आया हू। हजारो रावणो का मैं वध कर सकता हू। बडे-से-बडे पहाड को उठाकर तुम लोगो के ऊपर फेंक सकता हू।"

पहरेदार राक्षस हनुमान को हर प्रकार के हथियारो से मारने लगे। हनुमान ने मडप के एक स्तभ को, जिसपर कि सोने और रत्नो की कारीगरी की गई थी उखाड लिया, और उसे घुमा-घुमाकर अपनी आत्म-रक्षा भी करता गया और राक्षसो को मारता भी गया। राक्षसो के शस्त्र जब उस स्तभ से टकराते थे तब उसकी रगड से आग की चिनगारिया निकलती थी। हनुमान ने गरजकर कहा, "हमारी सेना में मुझसे भी अधिक बली योद्धा हैं। तुम लोगो के राजा ने नाहक इक्ष्वाकु-कुल के राजा के साथ वैर मोल लिया है। उसका फल वह अवश्य भोगेगा। तुम लोगो में से एक भी राक्षस अब बचनेवाला नहीं है।"

उसी समय प्रहस्त का लडका जाबुमाली आ पहुचा। उसकी बडी-बडी आखें थी। विकराल दात थे। उसने लाल वस्त्र पहन रखे थे। कानो में कुडल लटक रहे थे। हाथ में बडा भारी धनुष था। वक्षस्थल पर बडे-बडे हार थे, कमर में तलवार लटकी थी। उसके रथ के चलने की आवाज दूर तक सुनाई देती थी। गदहे उसके रथ को खीच रहे थे। रथ पर से ही जाबु-

माली ने हनुमान पर शर-वर्षा शुरू कर दी। शस्त्रो की चोट से मारुति के शरीर पर से खून की धारा बहने लगी। इससे उसके शरीर की शोभा दुगुनी हुई, पर घायल हो जाने के कारण वायुपुत्र का क्रोध भभक गया। एक बडा भारी पत्थर उठाकर उसने जाबुमाली के रथ पर फेंका। एक बडे भारी वृक्ष को उखाडकर और घुमाकर जावुमाली के ऊपर दे मारा। उसके बाद लोहे के भारी डडे से कभी तो रथ को और कभी जाबुमाली को मार-मारकर उन्हें चूर-चूरकर डाला।

रावण के पास खबर पहुची। वह बोला, "मै यह क्या सुन रहा हू ? यह कोई सच्चा असली वानर नही लगता। मेरे पुराने दुश्मन देवो ने एक नई सृष्टि की मालूम होती है। उसे किसी तरह मेरे सामने पकडकर ले आओ।" इसके बाद उसने बहुत बडी सेना के साथ बडे-बडे योद्धाओ को हनुमान को पकड लाने के लिए भेजा।

सब राक्षस मिलकर एक साथ हनुमान को पकडने का प्रयत्न करने लगे, किंतु वायुपुत्र के दैवी वज्रगात्र का वे कुछ भी न बिगाड सके। जैसे-जैसे वह घायल होता गया, उसका क्रोध और उत्साह भी बढता गया। शरीर को स्वेच्छा से बढाता गया। पहाडो को और वृक्षो को जमीन से उखाडकर, आकाश में उछालकर वह राक्षसो के ऊपर फकता था और रथो पर चढ कर उन्हें कुचल डालता था। देखते-देखते सारे राक्षस अपनी सेनासहित मार डाले गये। कुछ डर के मारे भाग निकले। बीच-बीच में हनुमान की गरज तथा उसके डाटने की घोर आवाज से लकापुरी के निशाचर काप उठते थे। इस प्रकार सबको हराकर वह फिर द्वार पर आ बैठा।

× × ×

अपने चुने हुए पाच सेना-नायको और राक्षस-योद्धाओ का वध सुनकर अब रावण के मन में कुछ आतक पैदा हुआ। उसे निश्चय हो गया कि जरूर इसमें देवताओ की कोई चाल है। फिर भी उसने अपना भय व्यक्त नही किया। सबसे हँसी-मजाक से ही बात-चीत करता रहा।

दरबार में जितने राक्षस थे, सबको उसने देखा। उसका पुत्र अक्ष भी वहींपर था। अक्ष के चेहरे पर भय की जगह उत्साह था। युद्ध करने के लिए वह आतुर दिखाई दिया। रावण ने अपने पुत्र को ही अब हनुमान से लड़ने के लिए भेज दिया।

: ६६ :

हनुमान की चालाकी

तरुण अक्षकुमार वीरता में देवो के समान था। वह रावण की आज्ञा पाकर आठ घोडोवाले, कनकमय रथ पर चढकर हनुमान से लडने चला। कवि वाल्मीकि ने अद्वितीय ढग से इस प्रसग का मनोहर वर्णन किया है। उनका यह युद्ध-वर्णन अथवा प्राकृतिक सौंदर्य-वर्णन पढते हुए हमें ऐसा लगता है, मानो हम वह दृश्य स्वय अपनी आखो से देख रहे है। युद्ध से सवधित दोनो पक्षो की खूविया मुनि वाल्मीकि अच्छी तरह वता देते हैं।

जिस रथ पर वैठकर राक्षस-कुमार जा रहा था वह तप के वल से प्राप्त हुआ था और सोने का वना हुआ था। अक्ष ने देखा कि उद्यान के शिला-तोरण के ऊपर हनुमान वडी शाति और निर्भीकता के साथ वैठा हुआ है। अपने वैरी को देखकर रावणकुमार को वडी खुशी हुई। हनुमान कालाग्नि की तरह तेजयुक्त दीख रहा था। अक्ष ने भी अपने अदर खूब शक्ति वढा ली।

युवक अक्ष ने हनुमान पर तीन वडे ही तीव्र वाण छोडे। वे वाण प्रभजन-सुत को जाकर लगे। उसके शरीर से खून की धारा वह निकली। हनुमान का मुख-मडल उससे और भी कातियुक्त हो गया। अक्ष की शूरता देखकर मारुति भी खुश हुआ।

दोनो के वीच घमासान युद्ध छिड गया। शरो के एक के वाद एक छूटने के कारण हनुमान का शरीर उनमें छिप गया। वर्षाकाल की वर्षा की तरह अक्ष ने पवनसुत के ऊपर वाणो की झडी लगा दी। उन शरो के वीच से हनुमान उछलकर ऊपर की ओर चला जाता था और राजकुमार के ऊपर आक्रमण कर देता था। जैसे वायु से वादल विखर जाते हैं, अपनी गतिमान हलचलो से अक्ष के वाणो को हनुमान अपने ऊपर नही आने देता था। उन्हें

तितर-बितर कर देता था। हनुमान को अक्षकुमार के शौर्य पर बडा विस्मय हुआ। उसे बहुत दुःख भी हुआ कि ऐसे वीर का वध उसे करना पड रहा है। राक्षस-कुमार का बल बढ़ता ही चला जा रहा था। हनुमान ने मन को दृढ करके उसे मार डालने का निश्चय किया।

तीव्र गति से वह उसके रथ पर कूद पडा। रथ के टुकडे-टुकडे हो गये। पहिये दूर जाकर गिरे। आठों घोडों को हनुमान ने मार गिराया। राक्षस-कुमार अब जमीन पर खडा होकर लडने लगा। उसमें भी ऊपर उडने की ताकत थी। सो वह आकाश में उड गया और हनुमान और अक्ष दोनों आकाश में जोरों से युद्ध करने लगे। अंत में अक्ष हारा। उसकी हड्डी-पसलियां हनुमान के प्रहारों से चूर हो गईं। वह नीचे गिर गया और उसके प्राण निकल गये।

रावण ने सुना कि वानर ने अक्ष को भी मार डाला तो पुत्र-शोक से उसका दिल तडपने लगा, किंतु उसने अपने आवेश को रोका। देवेंद्र के समान पराक्रमी अपने पुत्र इंद्रजीत को उसने बुलाया।

"इंद्रजीत, तुम बहुत-से अस्त्रों का प्रयोग करना जानते हो। कई बार देवों को युद्ध में तुमने हराया है। ब्रह्मा के पास से तुम्हें ब्रह्मास्त्र प्राप्त हुआ है। तुम्हारे सामने कोई खडा नहीं रह सकता। बुद्धिमान भी हो। तप करने के कारण शक्तिमान भी हो। ऐसा कोई काम नहीं है जो तुम्हारे लिए असाध्य हो। सदा सोच-समझकर किसी कार्य में प्रवेश करने का तुम्हारा स्वभाव है। अबतक उस वानर ने मेरे कई सेवकों का, जाबुमाली का, पांच सेनानायकों का और अब तुम्हारे छोटे भाई अक्ष का काम तमाम कर डाला है। उसे अब तुम हराकर बदला लो। मुझे लगता है कि सैन्य बल से उस वानर को नहीं जीत सकते। पास जाकर उसके साथ द्वंद्व करना भी नहीं हो सकता। किसी प्रकार उसे पकडकर मेरे सामने लाओ। बुद्धि से काम लेना होगा। शस्त्रों से तो काम नहीं बना। अब तुम्हें अस्त्रों का प्रयोग करना होगा। तुम्हारी विजय हो।"

पिता को प्रणाम करके और उनका आशीर्वाद लेकर इंद्रजित, बडे

उत्साह के साथ अशोक-वाटिका की ओर चला।

उसके रथ को चार विकराल सिंह खीच रहे थे। अपनी प्रत्यचा खीच-कर टकार करता हुआ वह हनुमान के पास पहुचा। वर्षा-काल के बादलो की तरह उसके रथ से आवाज निकली। इद्रजित के कमलपत्राक्षो से विजय-प्रभा निकल रही थी।

हनुमान इद्रजित को अपनी ओर आते देखकर बहुत ही प्रसन्न हुआ। इद्रजित ने बडे तेज बाणो को निकालकर आक्रमण के लिए तैयार रख लिया था। आकाश में नाग, यक्ष, सिद्ध लोग आदि हनुमान-इद्रजित के बीच होने-वाले युद्ध को देखने के लिए कौतूहल से जमा हो गये। इद्रजीत को देखने के बाद हनुमान ने अपने महाकाय को और भी पर्वताकार बना लिया। राक्षस-वीर कुछ बोला नही। आते ही चुपचाप उसने हनुमान पर बाण छोडना शुरू कर दिया। देवासुर-युद्ध ही था वह। हनुमान बिजली की गति से आकाश में ऊपर तथा इधर-उधर हटकर इद्रजित के सभी शरो को व्यर्थ करने लगा। इद्रजित धनुष की प्रत्यचा से टकार निकालता था तो मारुति अपनी गर्जना से दशो दिशाओ को गुजा देता था। दर्शक इस युद्ध को देखकर आश्चर्यचकित रह गये। दोनो योद्धा हर प्रकार से समान शक्तिवाले निकले।

इद्रजित ने हनुमान के ऊपर बाणो की वर्षा की। अब उसने अनुभव किया कि रावण ने ठीक ही कहा था कि यह वानर शस्त्रो से नही हराया जा सकता, अब इसे ब्रह्मास्त्र से बाधने के सिवा कोई दूसरा उपाय नही है।

उसने मारुति पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। मारुति ने अपनेको असहाय पाया। उसे यह समझते देर न लगी कि वह पितामह के अस्त्र से बद्ध हो गया।

ब्रह्मा ने हनुमान को यह वरदान दिया था कि ब्रह्मास्त्र से वह एक मुहूर्त के लिए ही बधन में रहेगा। यह बात उसे याद थी। इसलिए वह घबराया नही। सोचा कि चलो, यह अच्छा अवसर है। देखें, ये लोग क्या करते हैं। इनके भेदो को भी थोडा-बहुत समझ लूगा। यह सोचकर प्रसन्नता से ब्रह्मास्त्र के बधन में वह चुपचाप पडा रहा। पितामह से चिरजीव-व्रत उसे प्राप्त

था ही, इसलिए उसे उस महास्त्र से प्राणभय नही था।

सभी राक्षस जो डर के मारे दूर खडे थे, हनुमान को निश्चल देखकर अब हिम्मत करके पास आये और उसे घेरकर खडे होकर तरह-तरह के अपशब्द कहने लगे, इद्रजित की स्तुति करने लगे तथा नाचने-कूदने लगे। बोले, "इस बदर को टुकडे-टुकडे करके खा जायगे। अभी इसे खीचकर रावण के पास ले चलते है।" किसीने कहा, "यह ढोग भी कर सकता है। एकदम पलटकर यह हमें मार डाल सकता है। इस कारण पहले इसे रस्से से खूब कसकर बाध देना चाहिए।"

उसी क्षण उन लोगो ने मोटे-मोटे रस्से लाकर हनुमान को कस दिया। इद्रजित को कुछ बोलने या करने का अवकाश ही नही दिया। खूब शोर मचाने लगे कि हमने दुष्ट वानर को कैद कर लिया।

इद्रजित दुखी हुआ। उसे ब्रह्मास्त्र की महिमा के बारे में सब मालूम था। ब्रह्मास्त्र यदि बाहर की अपवित्र वस्तुओ के सपर्क में आ जाय तो वह अपनी दैवी शक्ति खो देता है। उसे लगा कि अब ब्रह्मास्त्र की शक्ति क्षीण हो जायगी और हनुमान बधन-मुक्त हो जायगा।

मारुति चालाक निकला। यद्यपि वह पहचान गया कि उसे फिर से उसकी स्वाभाविक शक्ति मिल गई है, फिर भी वह निश्चल ही पडा रहा। चाहता था कि राक्षस उसे रावण के पास ले चले। उसने रावण से बात करने का यह अच्छा मौका समझा।

: ६७ :

लंका-दहन

हनुमान जान-बूझकर राक्षसो का अपमान सहन करता गया। राक्षस लोग उसे घसीटकर रावण की सभा में ले गये। रावण को देखते ही हनुमान के मन में सीता के प्रति किये गये अन्याय का स्मरण ताजा हो उठा। वह बहुत उत्तेजित होगया। दिव्य माल्याबर तथा दिव्य आभूषण और मणिमय मुकुट धारण करके रावण सिहासन पर बैठा था। काले पहाड की तरह उसका शरीर सभी राज-लक्षणो से पूर्ण था। उसके आभूषणो में जडे हुए हीरे-माणिको की काति से मडप प्रकाशमान हो रहा था।

हनुमान के मन में विचार आया कि "यह वैभवशाली राजा यदि सन्मार्गी होता तो कितना अच्छा होता ! तब इसके पास से धन-लक्ष्मी और राज्य-लक्ष्मी कभी न हटती। आह ! कैसा रूपवान है ! कैसा बली है ! देवेंद्र से भी वढ-चढकर दीखता है। अपने कठिन तप से प्राप्त असाधारण वरदानो के द्वारा यह मूर्ख घमड में आकर सारी सपत्ति नष्ट कर देनेवाला है।"

जव हनुमान इस प्रकार विचारमग्न था, तभी रावण ने अपने मन्त्रियों से पूछा, "कौन है यह दुष्ट ? कहा से आया है ? पूछो कि किसने उसे यहा भेजा है ? उससे कहो कि मुझे विस्तार से सबकुछ ठीक-ठीक वतायें।"

रावण से आज्ञा पाकर मन्त्री प्रहस्त ने हनुमान से कहा, "हे वानर, डरो मत। सच-सच सवकुछ वता दोगे तो तुम्हे क्षमा मिल जायगी। तुम्हे यहा पर इद्र ने भेजा है या कुवेर ने ? या तुम और किसी तीसरे व्यक्ति के अनुचर हो ? तुमने यह वानर का वेश क्यो वना रखा है ? हमें सही वात वतानी होगी।"

प्रहस्त ने हनुमान से अच्छी तरह से पूछा, पर हनुमान ने उसे जवाव न

दिया। सीधे रावण से ही कहने लगा, "मुझे यहापर न इद्र ने भेजा है, न कुवेर ने। मै सचमुच ही वानर हू। राक्षसेंद्र रावण को देखने की मेरी इच्छा हुई। उसी उद्देश्य मे मैंने अशोक-वाटिका का विध्वस किया। आपके कर्मचारियो ने मुझे मार डालने की चेष्टा की। आत्म-रक्षा करने के लिए मुझे उन लोगो का वध करना पडा। मै वानरो के राजा सुग्रीव का भेजा हुआ दूत हू। हे राक्षसेंद्र, सुग्रीव ने मैत्री-भाव से आपका कुशल पुछवाया है। अयोध्या-पति श्री रामचद्र और सुग्रीव के बीच में बधुत्व का सबध स्थापित हुआ है। सुग्रीव के कहने से राम ने वालि को मार डाला है। सुग्रीव ने फिर से राज-पद प्राप्त कर लिया है। पितृवाक्य का पालन करते हुए श्रीराम दडकारण्य में निवास करते थे। तभी वहा से उनकी पत्नी को कोई उठा कर ले गया। उसे ढूढते-ढूढते वे हमारे प्रदेश में आये। राम ने सुग्रीव से मित्रता करके उनकी सहायता मागी। सुग्रीव ने सारे भूमडल में सीता की खोज कराने के निमित्त वानरो को भेजा। उसी कार्य से मैं लका में आ पहुचा। पुण्यशीला वैदेही सीता का दर्शन यहा मैंने कर लिया। आप राक्षसो के राजा है। वानरो के राजा सुग्रीव का मै दूत हू। सुग्रीव की ओर से तथा सम्राट दशरथ के पुत्र राम की ओर से मेरा यह नम्र निवेदन है कि देवी सीता को उठा ले आकर आपने ठीक नही किया। आप तो समझते ही होगे कि आपने यह धर्मविरुद्ध काम हुआ है। इससे आपको तथा आपके कुल को क्षति हो जायगी। राम से आपकी क्यो शत्रुता हो ? अब भी अवसर है। देवी सीता को राम के पास वापस छोड आवें और श्रीराम से क्षमा माग लें। सीता को आप अपना काल ही समझें। विष को अमृत न मानें। बुद्धिमान लोग धर्म-विरुद्ध कामो में पडकर विनाश की ओर नही जाया करते। पर-स्त्री की इच्छा करना बडा भारी पाप है। आपका किया हुआ सारा तप सब इस पाप से व्यर्थ हो जायगा। गलती तो आपने कर डाली। उससे मुक्त होने का यही एक मार्ग है कि प्रभु रामचद्र से क्षमा याचना करें। राम से वैर करना आपके लिए बहुत बुरा होगा। मेरी बात मान लीजिये। आपको जो अति दुर्लभ वर प्राप्त है, वे राम के सामने निष्प्रयोजन सिद्ध होगे। सुग्रीव आपके जैसा ही एक राजा है।

मैं उसका दूत हू । आपके कल्याण के लिए मैंने आपसे ये वातें कही हैं ।"

धैर्य के अवतार हनुमान ने साफ-साफ, पर अति मधुर ढग से रावण को उपर्युक्त वातें कही, किंतु रावण के कानो में विष जसी लगी । रावण का क्रोध अपनी सीमा पर पहुच गया । रोष के साथ उसने आदेश दिया, "इसे मारकर खत्म कर डालो ।"

विभीपण उस सभा में उपस्थित था । उसने रावण को समझाया कि दूत की हत्या नही की जाती । यह राजधर्म के विरुद्ध है । आप दूत को अपग कर सकते हैं । चाबुक से मार सकते हैं, किंतु उसके प्राण नही ले सकते ।"

रावण ने पूछा, "जिसने हमारी इतनी क्षति कर डाली है, उसे मार डालने में क्या दोष है ?"

विभीषण ने फिर समझाया, "इसने जो कुछ भी किया अपने स्वामी के कहने से किया है । अपने लिए या स्वय निर्णय करके नही किया है । हमारे साथ जो लडना चाहते हैं, उन्होने इसे अपना साधन बनाया है । जो कोई मालिक हो, उन्हें दड दीजिये । यदि यह वानर हमारी कैद में रहे तो इसके मालिक इसे ढूढते हुए आयेंगे ही । तब आप उन्हें भली प्रकार दड दे सकते हैं । इसे वापस जाने दें तो भी हमारा कोई नुकसान नही होगा । इसके स्वामी हमारे साथ लडने के लिए अवश्य आयगे । तब हम उन्हें बुरी तरह हरा सकते हैं । इसे जान से मार देने से कोई लाभ नही, उल्टे हम वदनाम होगे ।"

रावण को विभीपण की बात ठीक लगी, । बोला, "बदरो के शरीर की सबसे प्रधान वस्तु उनकी पूछ होती है । सो इसकी पूछ जला दी जाय और उसके बाद इसे यहा से भगा दिया जाय ।"

राजा की आज्ञा पाकर उसके नौकरो ने ढेर-के-ढेर पुराने कपडो को तेल में भिगोकर हनुमान की वढती हुई पूछ में लपेटा । उसपर खूब तेल गिराया और आग लगा दी । आग जोरो से भभक उठी । हनुमान अब भी रस्से में बधा हुआ था । उसे पकडकर लोग लकापुरी की गलियो में खीचकर ले गये । राक्षस-प्रजा वानर को देखने के लिए घर से बाहर दौड आई । स्त्रिया और बच्चे उसे चिढाने लगे ।

इधर सीता के पास भी राक्षसियां खबर लेकर दौड़ी। बोली, "तुम्हें पता चला कि नहीं ? उस वानर का, जो तुमसे बातचीत करने आया था बुरा हाल हो गया है। रावण की आज्ञा से उसकी पूंछ जलाई जा रही है।" राक्षसियां बड़ी खुश थीं।

सीता को चिंता हो गई। उसने तुरंत अग्नि प्रज्वलित की और उससे प्रार्थना करने लगी, "हे अग्निदेव, मुझसे यदि कोई भी पुण्य-कर्म हुए हों यदि मैं सच्ची पतिव्रता होऊं, तो हनुमान के शरीर को तुम जलाओ नहीं।"

उधर हनुमान ने अपने पर होनेवाले अनाचारों का कोई विरोध नहीं किया। नगर की गलियों में राक्षस उसे ले गये। हनुमान को इस बहाने नगर के एक-एक कोने का अच्छी तरह निरीक्षण करने का मौका मिल गया। किले के अंदर के रहस्यों को भी वह जान गया। वह सोचने लगा कि इस प्रकार सबकुछ अच्छी तरह देख लेने से मेरे स्वामी का काम बन जायगा।

सहसा हनुमान का ध्यान अपनी पूंछ की ओर गया। क्या ही आश्चर्य की बात थी ! आग की लपटें ऊपर की ओर उठ रही थी, किंतु हनुमान को अग्नि का स्पर्श एकदम शीतल लगा। उनकी पूंछ को गरमी लग ही नहीं रही थी, जलने की तो बात ही दूर थी। हनुमान के मन में विचार आया कि पंचभूत भी इस समय श्रीराम की सहायता करना चाहते हैं। तभी तो अग्नि का स्पर्श मेरे लिए शीतल हो गया है। बीच समुद्र में से पर्वत ऊपर उठकर मेरा अतिथि-सत्कार जो करने लगा था। संभव है, अग्नि देवता भी अपने मित्र तथा मेरे पिता वायु के प्रति प्रेम के कारण मेरा अनिष्ट न कर रहे हों। इन राक्षसों ने तो मेरी पूंछ जलाने की पूरी-पूरी कोशिश की। अब मैं इनका ठीक-ठीक बदला लूंगा।

तुरंत हनुमान ने अपने शरीर को बहुत छोटा बना लिया और बंधन में से बड़ी आसानी से बाहर निकल आया। इसके बाद फिर पहले जैसा शरीर बढ़ा लिया। उनकी पूंछ को आग की गरमी नहीं लग रही थी, किंतु उसमें से आग की बड़ी-बड़ी लपटें निकल रही थीं। अपनी जलती हुई पूंछ के साथ हनुमान लपककर एक बड़े महल की छत पर जा बैठा। वहां से एक

बडे-से खभे को उखाड लिया और उसे घुमाकर सबको डराने लगा। उसके बाद एक महल से दूसरे महल पर छलाग मारता हुआ वह चारो ओर घूमने लगा और इस प्रकार उसने सभी मकानो में आग लगा दी। थोडी देर में वायु भी जोर से चलने लगी। बस फिर क्या था ? सारे नगर में चारो ओर आग की लपटें निकलने लगी। लोग घर के बाहर चीखते-चिल्लाते निकल गये। स्त्रिया और बच्चे रोने लगे। चारो ओर हाहाकार मच गया। "यह बदर नही, स्वय कालदेव हैं। अग्निदेवता है।" यो चिल्लाते हुए वे सब इधर-उधर दौडकर अपने-अपने प्राण बचाने का प्रयत्न करने लगे।

हनुमान को अपने ऊपर किये गये अनाचार का इस प्रकार बदला ले लेने से कुछ सतोष हुआ। त्रिकूट पर्वत के एक ऊचे स्थान पर वह पहुच गया और वहा से जलती हुई लका को देखने लगा। थोडी देर के बाद उसने समुद्र में डुबकी लगाई और अपनी पूछ की अग्नि-ज्वाला को बुझा डाला।

× × ×

त्रिकूट पर्वत पर अकेले खडे हनुमान को एकाएक विचार आया, "मैंने भी यह कैसी मूर्खता की ! क्रोध में आकर मैंने विवेक बिल्कुल भुला दिया। कितना भी बल हो, चतुराई हो, धन-सपत्ति हो, पर जबतक कोई क्रोध को दबाना नही जानता, सब कुछ व्यर्थ है। मैंने जो सारी नगरी में आग लगाई वह अशोक-वाटिका में भी अवश्य ही फैली होगी। देवी सीता भी अबतक राख हो गई होगी। मेरे जैसा मूर्ख दूसरा कौन हो सकता है ! राक्षसों पर मैंने जो क्रोध दिखाया उससे अबतक देवी सीता भी भस्म हो गई होगी। इससे बुरी और लज्जा की बात मेरे लिए और क्या हो सकती है। अब मै किसीको मुह दिखाने लायक न रहा। मै यहीपर मर जाऊ, इसके अलावा मेरे लिए दूसरा कोई रास्ता नही है।"

तभी हनुमान के कानो में आकाश में यक्षो की बातचीत सुनाई दी। वे आपस में कह रहे थे, "कैसी आश्चर्य की बात है ! जय हो हनुमान की ! जहापर सीता कैद हैं उस जगह को छोडकर बाकी सारी लका जल रही है।"

यह सुनकर हनुमान की जान-में-जान आई। उसे तब स्मरण आया कि उसकी पूछ भी जली नहीं थी। "शायद सीता के आशीर्वाद से ही अग्नि-देवता मेरे लिए शीतल रहे हो। महा पतिव्रता देवी को अग्निदेव भला कैसे हानि पहुचा सकते थे! उन्होंने भी मैनाक पर्वत की तरह श्रीराम के कार्य में सहायता दी है।" यो विचार करके हनुमान वहा से अशोक वाटिका की ओर चला।

शिशुपा-वृक्ष के नीचे जनकसुता बैठी थी। दौडकर हनुमान जानकी के पास पहुचा और उनके चरण छूकर प्रणाम किया और बोला, "मा, आप ठीक है न? आप कल्पना नही कर सकेंगी कि यह देखकर मैं कितना खुश हू कि आपको आग मे कोई हानि नही पहुची। आपकी अपनी शक्ति से यह हुआ। अब मुझे श्रीराम के पास जाने की आज्ञा दें।"

जानकी ने उत्तर दिया, "हे हनुमान, तुम सच्चे वीर हो। ऐसा कौन सा कार्य है जो तुमसे नही हो सकता! तुम्हारी सहायता लेकर मेरे राम यहा शीघ्र आयगे और रावण को हराकर मुझे वापस ले जायगे, इसमें अब मुझे कोई शक नही रहा। यह काम तुम अकेले भी कर सकते हो। आज मैंने यह देख लिया।"

हनुमान बोला, "मा, सुग्रीव की सेना करोडो की सख्या में है। उसे लेकर श्रीरामचद्र यहापर जल्दी ही आयगे। रावण और उसके दुष्ट साथी सब मरनेवाले है। आप बिल्कुल निश्चित रहे। आपका मगल हो। मुझे अब विदा दीजिये।"

सीता को इस प्रकार आश्वासन देकर हनुमान अरिष्ट नामक पर्वत पर चढकर वहा से आकाश में वापस उडा। वापसी में भी मैनाक ने समुद्र से ऊपर उठकर वायुपुत्र का स्वागत किया। हनुमान ने उसपर प्रेम से हाथ फेरा, पर वहा रुका नहीं। जैसे धनुष से तीर चल पडता है, वह सीधे चलता ही गया। महेन्द्र पर्वत का शिखर दिखाई देने लगा तो हनुमान समझ गया कि वह समुद्र के दूसरे किनारे पर आ गया है। उसने बडे जोर से गर्जना की। वहा ठहरे हुए वानर राह देख ही रहे थे। गरुड के समान आसमान में हनुमान

को देखकर सभी वानर चिल्लाने लगे—"आ गया! वह आ गया।" इससे पहले तक वानरो को हनुमान के बारे में बडी चिंता थी। प्रयत्न की असफलता के विचार से उनकी आखो से आसू बह रहे थे, किंतु हनुमान को कुशलपूर्वक प्रसन्न मुद्रा में देखकर सब-के-सब खुशी के मारे उछलने लगे।

सामने के पहाडो पर, वृक्षो पर, सब जगह वानर-वृद कतार बाधे खडे थे। उन्हें देखकर हनुमान को बहुत हर्ष हुआ। वह महेंद्र पर्वत पर उतरा। वानरो ने उसका बडा ही भव्य स्वागत किया।

: ६८ :

वानरों का उल्लास

हनुमान के सकुशल वापस पहुच जाने पर सभी वानर बडे आनदित हुए। सब दौडकर महेंद्र पर्वत के ऊपर हनुमान से मिलने और उसका स्वागत करने पहुच गये। वृद्ध जाबुवान बडे प्रेम से हनुमान से मिला। उसने कहा, "हनुमान, हमें अपनी यात्रा का सारा हाल बताओ। हमें बडा आनद मिलेगा। तुम देवी सीता से कैसे मिले? वहा क्या-क्या हुआ? वह कैसी हैं? उनकी मानसिक स्थिति कैसी है, उस सबका वर्णन करो। रावण उसके साथ किस प्रकार व्यवहार करता है? हे प्रिय, हमें विस्तार से सबकुछ बताओ। तभी हम कुछ निर्णय कर पायेंगे कि आगे क्या करना चाहिए।"

हनुमान ने सीता का ध्यान किया, मन-ही-मन नमस्कार किया और फिर अपने अनुभव सुनाने लगा।

"आपलोगों ने मुझे महेंद्र पर्वत के ऊपर से तो उडते देखा ही था। फिर मैं समुद्र को लाघता गया। आगे चलकर बीच रास्ते में समुद्र के भीतर से एक पहाड निकल पडा। वह मेरे सामने ऊपर तक बढता हुआ आ पहुचा। मैंने उसे रुकावट समझकर तोड डालना चाहा। वह मैनाक पर्वत था। मैंने उसपर अपनी पूछ पटकी। पर्वत ने उस प्रहार को विनय से स्वीकार किया और बोला, "मैं तुम्हारा मित्र हू। तुम्हारे पिता ने मेरा उपकार किया था। उसे मैं कभी नहीं भूल सकता। मुझे देवेंद्र के वज्रायुध से तुम्हारे पिता वायु ने बचाया था। तब से समुद्र के भीतर छिपकर बचा हुआ हू। पहले जमाने में पर्वतों के पर होते थे। उस कारण वे आकाश में इधर-उधर उड़ा करते थे। उससे लोगों में बडा आतक फैल गया था। उसे दूर करने के लिए देवेंद्र ने पर्वतों के परों को काट दिया था। तुम्हारे पिता की सहायता से मैं बच गया। तुम बहुत बड़े काम के लिए जा रहे हो। कुछ देर ठहर जाओ। थोडा

विश्राम करके फिर चले जाना।" मैंने उसके प्रति उसके स्नेह के लिए कृतज्ञता प्रकट की और उससे कह दिया कि मैं कही रुक नही सकता। फिर आगे बढ गया।"

इस प्रकार हनुमान ने समुद्र को लाघते समय जो-जो घटनाए हुई, उनका विस्तार से वर्णन किया। फिर लका में प्रविष्ट होने, सीता को नगर के कोने-कोने में, रावण के प्रासाद मे ढूढने, अशोक-वाटिका में सीता के मिलने, रावण की मिन्नतें और सीता द्वारा उसका तिरस्कार, रावण द्वारा सीता को धमकाये जाने, सीता की आत्महत्या करने की चेष्टा करने, सीता के साथ अपनी बातचीत, आदि का सारा विवरण हनुमान ने वानरो को विस्तार से सुनाया।

सीता ने जो सदेश भेजा, उसका वर्णन करते हुए हनुमान की आख गीली हो आई। अशोक-वाटिका का उसने किस प्रकाशनाश किया, उसका हाल सुनाया। राक्षसो के वध के बारे में बातें बताई। इद्रजित का अपने ऊपर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग तथा रावण के सम्मुख उपस्थित किये जाने और अत में लका-दहन आदि के विवरण उपस्थित किये।

ऐसे स्थानो में वाल्मीकि-रामायण में एक विशेष चीज यह है कि पुरानी घटनाओ का वर्णन अलग-अलग पात्रो के मुह से हम बार-बार सुनते हैं। दोहराने के समय एक भी बात छूटती नही, फिर भी उसे पढकर हम ऊबते नही। आजकल के लोगो में एक ही चीज को बार-बार पढने की सहिष्णुता अथवा रुचि कम है। इसलिए हम उन बातो को सक्षेप में ही कहेंगे।

दक्षिण भारत में सकटो से मुक्त होने तथा कार्य-सिद्धि के लिए वाल्मीकि रामायण के सुदर-काड का पारायण किया जाता है। हनुमान के मुह से समुद्र के लाघने से लेकर आगे की सभी घटनाओ का वर्णन इस अध्याय में हम सुनते हैं। इसे सक्षिप्त सुदर-काड समझकर इस अध्याय का पारायण किया जा सकता है।

सारी बातें बताकर अत में हनुमान ने कहा, "हमारा खोज का काम बहुत सफल हुआ। माता सीता की महिमा से सबकुछ होगया। सीता मा का जब-जब स्मरण करता हू तो उनके शील का बडा गहरा प्रभाव पडता है।

मेरे हाथ अपने-आप उनको नमस्कार करने लग जाते हैं। रावण का भी तपोबल बहुत बड़ा है, नही तो वह कभी का नष्ट होगया होता। वैसे सीता चाहती तो उसे एक क्षण में अपनी कोप-दृष्टि से जला डालती। किंतु वह यह काम स्वयं नही करना चाहती। श्रीरामचंद्रजी द्वारा ही कराना चाहती है। तभी चुप है। अब आप लोग क्या सलाह देते हैं? क्या हम सब यही से लंका चलें चलें और राक्षसों को हराकर हम लोग ही सीता को छुडाकर ले आयें? आप लोग यह न सोचें कि यह काम हमसे नही हो सकेगा। मैं अकेले ही राक्षसों को मार सकता हूं। तब जांबुवान और अंगद से भला कौन-सा काम असंभव हो सकता है? पनस, मैंद, द्विविद आदि हमारे योद्धा सबकुछ कर सकते हैं। रावण को भी ये मारकर और विजयी होकर लौट सकते हैं। इन्हें पितामह से दुर्लभ वर प्राप्त हैं। हमारी सेना में वीरों की कोई कमी नही। रावण को मैं खूब धमकी दे आया हूं।

माता सीता दुष्ट रावण की कैद में शिंशुपा-वृक्ष के नीचे बैठी हुई हैं। उनका मुखमंडल बादलों से आच्छादित चंद्र के समान कभी साफ दीखता है, कभी दुख से आवृत्त हो जाता है। वह सदा इसी प्रतीक्षा और आशा में हैं कि राम अभी आये जाते हैं। वह सदा राम के ही ध्यान में लगी रहती हैं। राक्षसियां उन्हें किस प्रकार तंग करती हैं यह मैंने अपनी आंखों से देखा है। हिरनी की भांति वैदेही उनके बीच में भयभीत रहती हैं। मैंने सीता माता को सांत्वना दी है। बारबार कह आया हूं कि राम-लक्ष्मण अवश्य आयेंगे, रावण का वध करके उन्हें बंदीवास से छुड़ाकर ले जायगे। इसलिए आप लोग सोचकर निर्णय करें कि हमें आगे क्या करना चाहिए।"

अंगद हनुमान की बात सुनकर बड़े उत्साह में आगया। गुस्से से उत्तेजित हो उठा। बोला, "मैं अकेला ही रावण को मारकर सीता को छुड़ा सकता हूं। हम तो इतने अधिक हैं। फिर चिंता किस बात की? हमने काफी समय निकाल दिया। अब खाली हाथ राम के पास क्यों चलें? चलिये, सब-के-सब लंका पर धावा बोल दें और रावण तथा उसके कुल के सारे लोगों को हराकर ही किष्किंधा लौटें।"

बूढा जाबुवान युवराज अगद की बातें चुपचाप सुनता रहा। फिर धीरे-से बोला, "मेरे प्यारे राजकुमार, तुम्हारा विचार ठीक नही। हमें श्रीराम और लक्ष्मण को सारी बातें पहले वता देनी चाहिए। वाद में वे जैसा चाहेगे, वैसा करेंगे। यही उचित होगा।"

हनुमान और अगद दोनो बुद्धिमान जाबुवान की बात मान गये। दूसरे वानर भी इससे सहमत हुए। सबने वहासे निकलकर आकाश-मार्ग से तेजी-से किष्किधा की ओर प्रस्थान किया।

वहासे चलकर वानर-वृद राजा सुग्रीव के उद्यान मधुवन के समीप उतरे। कार्य में सफल होकर अपने राज्य में पहुचने के कारण वे खुशी से पागल हो रहे थे। मधुवन के अदर घुस गये। वहा उद्यान के रक्षक दधिमुख की आज्ञा के विना, उसके रोकने की भी परवाह न करके, मनमाने ढग से फल तोड-कर खाने लगे। शहद के छत्तो से शहद निकालकर पीने लगे। उन्हें जब रक्षक रोकने आये तो उन्हें मारकर भगा दिया। रक्षक दधिमुख वानरो के उत्पात से बहुत तग आ गया। रोते-रोते सुग्रीव के पास पहुचा और बोला, "हे राजा, हमारे सुदर मधुवन का सत्यानाश हो रहा है। यहासे दक्षिण की ओर सीताजी की खोज में जो वानर गये थे, वे सव-के-सब वापस आ गये है। उन्होने मधुवन में घुसकर बाग का भारी नुकसान कर डाला है। उनके उत्पातो का वर्णन करना कठिन है। मेरा कहना बिल्कुल नही मान रहे हैं। मार-पीट करके मेरा बुरा हाल कर दिया। शहद पी-पीकर बेसुध पडे है। सारे पेड तथा वेलें टूटी पडी हैं। आप इन उद्दड वानरो को उचित दड दें।"

सुग्रीव समझ गया कि हनुमान, जाबुवान और अगद कार्य में सफलता प्राप्त करके लौटे हैं। उसी विजय के नशे में उन्होने इस प्रकार से उद्दंड व्यवहार का प्रदर्शन किया है। उसने लक्ष्मण से भी यही बात कही।

राजा सुग्रीव ने दधिमुख से कहा, "अब शीघ्र ही उन सवको यहा आने के लिए कहो।"

दधिमुख तेजी से मधुवन पहुचा और नशे में चूर वानरो को राजा की आज्ञा सुनाई।

: ६९ :

हनुमान ने सब हाल सुनाया

वानरो की बेफिक्री का सुग्रीव ने जो अनुमान लगाया था उससे श्रीराम बहुत खुश हुए। राम, लक्ष्मण और सुग्रीव आतुरता के साथ वानरो से समाचार सुनने की प्रतीक्षा करने लगे। इतने में ही बडे शोरगुल के साथ वानरवृंद वहा आ पहुचा। हनुमान सबके आगे थे। अगद और अन्य वानर पीछे थे। सब राजा सुग्रीव के पास पहुचे। हनुमान जानता था कि राम सबसे पहले यही सुनना चाहेंगे कि सीता मिली या नही। इसलिए रामचद्रजी को प्रणाम करते ही उसने कहा, "सीता मिल गई।" फिर तुरत ही बोला, "सीता जीवित है, और मै उनसे मिल आया हू।"

यह सुनते ही राम, लक्ष्मण और सुग्रीव हनुमान से लिपट गये।

राम से अब रहा न गया। बोले, "मुझे जल्दी से बताओ। सीता कहा है, कैसी है ? उसने क्या-कुछ कहा है ?"

सब वानरो ने हनुमान से कहा कि तुम्ही श्रीरामचद्र को सारा हाल सुनाओ। हनुमान ने दक्षिण की ओर मुडकर वैदेही का स्मरण करके उन्हें प्रणाम किया। फिर अपना अनुभव सुनाने लगा।

हनुमान से हम कई चीजें सीख सकते है। वह ऐसा काम करके आया था, जिसे दूसरा कोई नही कर सकता था, फिर भी वह विनय का अवतार था। अपने राजा सुग्रीव के सामने, जबतक युवराज अगद और वयोवृद्ध जाम्बवान ने उससे बोलने का अनुरोध नही किया, उसने अपने प्रतापो के बारे में एक शब्द भी मुह से नही निकाला। महापुरुषो के इस स्वभाव को वाल्मीकि बताना भूले नही।

एक और भी बात थी। उस समय हनुमान सीता के ध्यान में तन्मय होगया था। उस समय मा पर की उसकी भक्ति, प्रभु पर की भक्ति से भी

अधिक होगई थी । परमात्मा को मा समझकर पुकारनेवाले सभी भक्तो का यही हाल हो जाता है ।

हनुमान ने सुनाया, "सौ योजन लबे समुद्र को लाघकर मैं लकापुरी पहुचा । अत पुर के साथ लगे हुए उपवन में कारावास में रखी गई देवी सीता को मैने देखा । जानकीजी सतत श्रीराम का ध्यान करती हुईं, राम का ही नाम जपती हुई, किसी तरह प्राण धारण किये हुए बैठी थी । अत्यत कुरूपिणी राक्षसिया उन्हें घेरे हुए थी । जानकी के केश बिखरे थे । नीचे पडे रहने के कारण उनका शरीर और उनके कपडे धूल से भरे थे । शीतकाल के कमल-तडाग की तरह शोभा से रहित थे । राक्षसियो ने उन्हें बहुत ही डरा दिया था । उससे बचने के लिए सीता आत्महत्या करने को तैयार होगई थीं । तब मैंने आपके गुणो को गाकर उनका ध्यान आकर्षित किया । बातचीत करके उनके मन में विश्वास बैठाया । मुझे सीता ने पहले कभी नही देखा था, इसलिए मेरी बातो पर भरोसा करना उनके लिए आसान नही था । आपकी बातें सुनकर उनके मन को बहुत ही आनद पहुचा । उन्होने आपके लिए अपनी चूडामणि दी है, और दो सस्मरण सुनाने के लिए कहा है । एक बार जब एक असुर कौए ने उन्हें तग किया था तो उससे आपको बहुत दु ख पहुचा था । यह बात याद दिलाने को कहा है । दूसरे, उनके माथे पर की बिंदी जब पसीने से मिट गई थी तब आपने लाल पत्थर को घिसकर अपने हाथो से उनके बिंदी लगाई थी । यह भी आपको याद कराने को कहा है । वानर-राज को स्नेह-स्मरण भेजा है । वह इसी प्रतीक्षा में है कि हम सब कब वहा पहुचे और रावण का वध करके उन्हें वापस लावें ।" इस तरह सारी कथा सुनाकर हनुमान ने श्रीरामचद्र के हाथो में देवी सीता की दी हुई चूडामणि रख दी ।

चूडामणि हाथ में लेकर श्रीरामचद्र थोडी देर तक अवाक् रह गये । कुछ क्षणो के बाद उस आभूषण को हृदय से लगाकर जोर से रो पडे । फिर बोले, "हे वीर, हे वायुपुत्र हनुमान, मैंने भी तुम्हारी तरह ही अब सीता को देख लिया । मेरे मित्र, मुझे फिर सारी बातें सुनाओ । सीता ने क्या कुछ कहा ?

मुझे विस्तार से दुबारा सुनाओ।'

हनुमान ने दुबारा रामचद्रजी को सीता की हरेक बात मधुर ढग से बताई, जिससे राम का मन द्रवित हो गया। हनुमान ने कहा, "सीता कहती थी कि राम, जिन्होंने हजारो राक्षसो को मार डाला है अभी तक यहा क्यो नही आये ? मेरी विपदाए उन्हें मालूम है कि नही ? अभी तक उन्होने रावण को मार डालने के लिए लक्ष्मण को क्यो नही भेजा ? मेरी उपेक्षा क्यो कर रहे है ? मैंने कोई गल्ती की है क्या ? इस प्रकार सीता कह रही थी। तब मैंने उन्हें आश्वासन दिया। बताया कि आप दिन-रात उन्हीके ध्यान में रहते हैं। एक क्षण के लिए भी भूले नही। अवर्णनीय दु ख में डूबे है। मेरा सदेशा पहुचते ही आप और लक्ष्मण विलब किये बिना लका पहुच जायगे। लका भस्मीभूत होनेवाली है। राक्षस-कुल का एक भी व्यक्ति बचनेवाला नही है। अयोध्या आप सब एक साथ खुशी से लौटेंगे।" मैंने देवी से कहा कि मुझे कोई स्मरण का चिह्न दो, जिससे श्रीरामचद्र को विश्वास हो जाय कि मैं आपसे मिला। तब उन्होने अपने केशो में से यह चूडामणि निकालकर दी। उसे मैं भावना के साथ लेकर वापस चलने लगा तो वैदेही ने कहा, 'हनुमान ! वीर राजकुमार राम और लक्ष्मण तथा राजा सुग्रीव से मेरी कुशल कहना। उनके मत्रियो को मेरा अभिवादन कहना। श्रीराम को मेरे पास आने का रास्ता बता देना। मेरी आशा तुमपर ही केंद्रित ह। तुम्हारा मगल हो। तुम कुशल से वापस पहुचो।' हे प्रभु, आप दुखी न हो। अब काम में मन लगावें। सीता ने चिंता व्यक्त करते हुए मुझसे पूछा था कि राम-लक्ष्मण मनुष्य हैं। विशाल सागर को वे कैसे पार करेंगे ? वानरो की सेना भी यह काम कैसे कर पायगी ? तब मैंने उन्हें साहस दिलाया। कहा कि मैं सुग्रीव का दूत हू। वानरो में कई ऐसे है, जिनके सामने मैं बहुत ही तुच्छ हू। वानरो के पराक्रमो पर जरा भी शका न करें। वे सारे भूमडल का एक बार भी धरती पर पैर रखे बिना चक्कर लगाने में समर्थ हैं। चाहे तो वे श्रीराम और लक्ष्मण को कधे पर बिठाकर आ सकते है। मैं स्वय यह काम कर सकता हू। चिंता बिल्कुल न करें। राम को धनुष बाण के साथ आप शीघ्र ही देखेंगी। मेरी बातो से मा जानकी शात हुई।"

: ७० :

लंका की ओर कूच

राम विचार करने लगे, "हनुमान ने मेरे लिए जो किया वह और कौन कर सकता था ? उसके द्वारा किये गये कामो की कल्पना करना भी दूसरो की शक्ति से बाहर है। इसके लिए मै किस प्रकार कृतज्ञता प्रकट करू।" उनकी आखो से आनदाश्रु निकल पड़े । मारुति को उन्होने हृदय से लगा लिया ।

राम सोचने लगे कि अब आगे के काम किस ढग से शुरू किये जाय । कुछ देर सोचने के बाद सुग्रीव से बोले, "सुग्रीव, हनुमान ने तो कई चमत्कार कर दिखाये । राक्षसो से सुरक्षित लका में प्रवेश करके वह सीता से मिलकर, उसे आश्वासन दे आया । जब सीता आत्महत्या करने जा रही थी तो उसके प्राण बचाये । सीता के कुशल-समाचार सुनाकर मुझे भी बचाया । किंतु अब समस्या यह है कि हम समुद्र को किस प्रकार पार करेंगे ? तुम्हारी सेना उस पार कैसे पहुचेगी ? हमारे बिना वहा पहुचे रावण की नगरी तथा उसकी सेना पर आक्रमण कैसे सभव हो सकता है ? इसका उपाय क्या है ? मुझे अब यही चिंता होने लगी है। हनुमान की कार्यसिद्धि से जो खुशी हुई थी, वह अब इस चिंता से कम होने लगी है ।"

यह सुनकर सुग्रीव राम को धीरज देने लगा । बोला, "आर्य श्रीराम, इस प्रकार निराश होना आपको शोभा नही देता । आपको किस बात का डर है ? मेरे ये वानर-योद्धा खड़े है । आपके लिए ये अपना सर्वस्व त्याग करने के लिए तैयार है । ये खुशी-खुशी अपने प्राण तक दे देंगे । इन्हें मैं खूब जानता-पहचानता हू । आप चिंता करना बिल्कुल छोड दें । चिंता से धैर्य नष्ट होता है । आपको तथा भाई लक्ष्मण को लका में पहुचाना मेरा काम है। इसमें किसी भी प्रकार आप शका न करें। शत्रु को मारकर आप सीता को

अवश्य छुडाकर लायेंगे। मुझे तो इसमें जरा भी शका नही मालूम देती। हनुमान ने जब लका पुरी देख ली है तो यही समझ लीजिये कि रावण का किला टूट ही गया। आप शोक और चिंता एकदम छोड दें। शोक वीर पुरुषो का महा रिपु है। फिर आप तो सर्वज्ञ है। मैं भला आपको क्या समझाऊ ? मैं आपका पूरी तरह साथ दूगा। मेरे सैनिक आपकी सहायता में तत्पर रहेंगे। धनुष लेकर आप जब लडने के लिए खडे हो जायगे तो आपके सामने कौन टिक सकेगा ? फिर शोक करना तो कायरो का काम है। आप शोक को मन से हटा दीजिये और क्षत्रियोचित रोष मन में लाइये। आपकी बुद्धि तीक्ष्ण है। कुछ ऐसा उपाय सोचिये, जिससे हम समुद्र को पार कर सकें। हमारे वानरो में कई असाधारण शक्तिवाले है। उन्हें काम में लाइये। मेरे मन में तो वडे ही उत्साह का अनुभव हो रहा है। यह अच्छा शकुन है। मैं तो निश्चयपूर्वक कहता हू कि हमारी विजय अवश्य होगी।"

सुग्रीव की इस प्रकार की धैर्य दिलानेवाली बातें सुनकर राम को बडा अच्छा लगा। उन्होने हनुमान से लका, रावण के राजमहल और किले आदि के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त की। हनुमान ने श्रीराम को बताया, "रावण के राज्य में अन्न और धन की तनिक भी कमी नही है। उसे प्रजा खूब चाहती है। रावण का सैन्य बल भी बहुत ही अधिक है। महल और किले अत्यत सुरक्षित है। कई प्रकार के यत्र और तत्रो से राक्षस लोग किले और राजमहल की रक्षा कर रहे है। किले के चारो ओर गहरे पानी की खाइया है। उनपर आने-जाने के लिए खुलने और बद होनेवाले लकडी के पुल है। समुद्र-तट की बडे ध्यान से रक्षा की जाती है। शत्रुओ के जहाज वहा किसी प्रकार भी नही पहुच सकते। त्रिकूट पर्वत, लकापुरी और नगर के दुर्ग के पास तक कोई फटक भी नही सकता। सेना का अपना निजी बल भी असाधारण है, परन्तु यह सब होते हुए भी हमारी वानर-सेना की शक्ति रावण की सेना से कम नहीं है। हमारे वीर अगद, द्विविद, मैंद, जाम्बवान, पनस, नल और नील के होते हुए हम क्यो किसीसे डरें ? हमारी सेना की गिनती नही की जा सकती। जमीन को छुए बिना ही हम समुद्र के उस पार

पहुच सकते हैं। लका द्वीप के पहाड और जगलो की हमें कोई परवा नही। हम युद्ध में अवश्य विजयी होगे। शुभमुहूर्त में हम सबको निकल पडना चाहिए।"

× × ×

उत्तरा फाल्गुनी के मध्याह्न का शुभ मुहूर्त। वानर-सेना ने दक्षिण की ओर कूच कर दिया। चलते हुए अच्छे-अच्छे शकुन होने लगे। श्रीराम और सुग्रीव आपस में बातें करते हुए चलने लगे, "यदि सीता को पता लग जाय कि हम यहा से निकल पडे हैं तो उसे कितनी खुशी होगी! उसे कितना धीरज मिलेगा।" राम ने सुग्रीव से कहा।

रास्ता जाननेवाले वानर आगे-आगे चले। चलते हुए वे देखते जाते थे कि कही पेडो की आड में दुश्मन तो छिपकर नही बैठे है। वे ऐसे मार्ग से गये, जहा इतनी बडी सेना को खाने-पीने की पूरी सुविधा मिलती रहे। सेना बडी तेजी मे जगलो और पर्वतो को पार करके आगे बढती गई। उन्होंने राम-लक्ष्मण को अपने कधो पर बिठा लिया।

वानरो में असाधारण उत्साह था। वे जोर-से चिल्लाते, गाते, गरजते, खेलते मस्ती से आगे बढते चले जा रहे थे। आपस में प्रतिस्पर्धा की बातें करते जाते थे—"रावण को मैं मारूगा।" दूसरा कहता, "नही, मैं मारूगा।" राम को उनकी इन बातो से बडा प्रोत्साहन मिलता था। नील और कुमुद आगे-आगे मार्ग देखते और बताते चल रहे थे। आगे-पीछे रक्षक दल चल रहा था। मध्य में राम, लक्ष्मण, सुग्रीव आदि थे।

श्रीराम ने वानरो को कडा आदेश दिया था कि रास्ते में आनेवाले नगरो और गावो आदि को किसी प्रकार की हानि न पहुचाई जाय। वानर-सेना के शोर से आठो दिशाए गूज उठी। उनके पैरो से उठी धूल आसमान में छा गई।

इस प्रकार चलते-चलते सारी सेना दक्षिण समुद्र-तट के महेंद्र पर्वत पर पहुच गई। श्रीराम ने पर्वत के ऊपर से समुद्र का निरीक्षण किया। उन्होंने सुग्रीव से कहा, "अब हमें यह सोचना है कि समुद्र को किस प्रकार लाघा

जाय। इस बीच हमारी सेना यहा के वनो में अच्छी तरह डेरा डाल सकती है।"

सुग्रीव ने अपने सेना-नायको को उसी प्रकार की आज्ञा दे दी।

समुद्र-तट के वन में वानर-सेना ने पडाव डाला। पहरेदार बडे ध्यान से देखते रहे कि कही शत्रु-पक्ष के लोग छिपकर उनके हालचाल न देख रहे हो और उनके मार्ग में कोई रुकावट न पैदा कर रहे हो। राम ने लक्ष्मण और सुग्रीव के साथ सैनिको की सारी व्यवस्था स्वय देखी और बडे सतुष्ट हुए कि सब सैनिक आराम से ठहरे हैं। जब सब विश्राम करने चले गये तो एकात में राम लक्ष्मण से बोले, "लक्ष्मण, कहते हैं कि कैसा भी दुख हो, समय बीतने पर वह हल्का हो जाता है, किंतु सीता के वियोग का दुख बिल्कुल कम नहीं हो रहा है।

"बार-बार यही विचार मन में आता रहता है कि वैदेही रावण के फदे में फसकर असहाय होकर 'हे राम, हे लक्ष्मण,' पुकार कर रही होगी। हम उसे क्यो उसी क्षण बचा नही पाये। उसके दुख को सोचकर मेरा शोक इस समुद्र के समान ही उमड रहा है। विष-पान से जसे शरीर का प्रत्येक अग जलने लगता है, उसी प्रकार मेरा सारा शरीर जल रहा है। राजा जनक की कन्या, सम्राट दशरथ की पुत्रवधू, मेरी प्रियतमा, राक्षसियो के बीच सताई जा रही है। मेरे मन से ये विचार दूर ही नही हो पाते।"

लक्ष्मण बडे भाई को बडे प्रेम और आदर से आश्वासन देने लगे, "भैया, घबराओ नही। अब तो थोडे ही दिन बाकी है। रावण का वध करके हम सब शीघ्र ही अयोध्या वापस लौटनेवाले हैं। अयोध्या में देव-कन्या की तरह भाभी प्रवेश करेगी। आप मन में धैर्य लाइये। चिता छोड दीजिये।"

: ७१ :

लंका में मंत्रणाएं

अब हम रावण के पास चलते हैं। महाकवियो में कई विशेषताए होती हैं। उनमें एक यह भी है कि वे कथा के पात्रो में खलनायक का वर्णन करते हुए उसकी बुरी बातो के साथ-साथ उसके स्वभाव की अच्छी बातो का भी बडी रोचकता से विस्तृत वर्णन करते हैं।

लोगो के मन में सात्विक भावना पैदा करने के लिए कविजन राजस तथा तामस स्वभावो को बडी खूबी के साथ काम में लाते हैं। साधारण लोगो में इन दो गुणो का प्रभाव अधिक रहता है। इस कारण उन्हें राजस, तामस-प्रधान पात्रो के प्रति विशेप सहानुभूति होती है। निम्न कोटि के स्वभाववालो के वारे में कुछ कहने की क्या आवश्यकता है ? वे तो तमोगुण-प्रधान पात्रो को अपने भाई-बधु समझने लग जाते हैं और सात्त्विक-गुण-प्रधान कथा-नायक को एक कल्पित व्यक्ति समझकर उसे दूर ही रहने देते हैं।

मिल्टन अग्रेजी भाषा के एक महान कवि हो गये हैं। ईसाई धर्म-पुराण "पैरेडाइज लास्ट" उन्हीकी कृति है। उस ग्रथ की दुनिया में बडी प्रसिद्धि है। उसमें भगवान का, भगवान के मानस-पुत्र प्रभु ईसा का और देवताओ का वर्णन अवश्य है, किंतु उस ग्रथ का मुख्य पात्र शैतान है, जो भगवान के साथ लडता है और ससार में पाप और मरण का कारण होता है। शैतान से मिल्टन ने वडे रोचक ढग से काम लिया है। इसी प्रकार प्रसिद्ध नाटककार शैक्सपियर ने अपने नाटक 'मरचेंट आव वेनिस' में लोभी वनिये शायलाक की मनोदशा का वडा ही आकर्षक वर्णन किया है। वुरे पात्रो के अवगुणो के साथ-साथ उनकी चालाकी, धीरज और वुद्धि का भी सुदर परिचय कवि हमें देते रहते हैं। रामायण महाग्रथ में भी इसी प्रकार वाल्मीकि ने रावण तथा कुभकर्ण की अच्छाइयो पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है। अच्छे

भोजन में सभी प्रकार की रुचियों में कुछ कड़ुआ भी शामिल होना आवश्यक समझा जाता है। काव्यों के पात्रों में इसी प्रकार मनुष्य-स्वभाव के विभिन्न रूप दिखाये जाते हैं।

हनुमान ने लंका में जो पराक्रम दिखाया था, उससे रावण को पहली बार कुछ लज्जित होना पड़ा। उसके मन में कुछ आतंक का अनुभव होने लगा। अपने मंत्रियों को उसने बुलाया और सबने मिलकर मंत्रणा की।

रावण की वाणी से उसका गर्व कुछ चूर हुआ लगता था। वह बोला, "हमने आजतक किसी बाहरी व्यक्ति को अपने नगर के अंदर घुसते नहीं देखा था। एक बंदर ने वह काम कर लिया। कारागार में रखी गई सीता से भी वह मिल गया! और हमारी नगरी में आग लगाकर काफी नुकसान कर गया। हमारे बहादुर समझे जानेवाले अनेक वीर राक्षसों का उसने वध कर डाला। हमारी प्रजा को डर से कंपा दिया। अब वह यहीं तक थोड़े ही रुकनेवाला है? वह जरूर कुछ-न-कुछ और उपद्रव करेगा। इसलिए अब हमें अत्यंत सावधान हो जाना चाहिए। आगे हमें क्या करना होगा, यह भी सोच लेना चाहिए।

"राजा होने पर भी मैं आप लोगों की सलाह के बिना कोई कदम उठा नहीं सकता। इसीलिए मैंने यह सभा बुलाई है। राम अब हमारा दुश्मन है। उसे दबाने के लिए क्या किया जाय, यह आप लोग सोच-विचार करके मुझे बतायें। किसी भी राजा को केवल अपनी बुद्धि और होशियारी पर ही भरोसा नहीं कर लेना चाहिए। अपने हितचिंतक मंत्रियों से सलाह लेकर उसे चलना चाहिए। मंत्रियों को चाहिए कि नीति-शास्त्र की पूर्ण जानकारी रखें, गुणवान् हों और साहस के साथ राजा को समय-समय पर सलाह देते रहें। अनिश्चित बुद्धिवाले और अस्पष्ट बोलनेवाले मंत्री निकम्मे होते हैं।

"हमारे सामने अब एक गंभीर समस्या है। राम बड़ा पराक्रमी है। उसकी सेना भी असाधारण शक्तिशाली है। वे लोग हमारे द्वीप पर अवश्य आक्रमण करेंगे। वैसे हमारा दुर्ग भी बहुत दुर्गम है, किंतु इसने ही समुद्र

होकर हम चुप नहीं बैठ सकते। नगर की सुरक्षा और फौज की ताकत बढाने की ओर अब हमें विशेष ध्यान देना चाहिए। उसके लिए हमे क्या-क्या करना चाहिए, यह आप लोग भली प्रकार सोच लें और मुझे बतायें।"

राक्षसेंद्र के सभी सचिव एकमत होकर बोले,

"हे राजन्, आप वृथा चिंता करते है। सारे ब्रह्माड में हमारे जोड की फौज है भी ? कौन दुश्मन है जो हमारे किले तक आने की हिम्मत कर सके ? आपके बल से कौन अपरिचित है ? क्या आपने एक बार भोगवती नगरी पर हमला करके नागराज को नही हराया था ? कुबेर को हराकर, उसके यक्षो को बुरी तरह से मारकर, उसके पुष्पक विमान और लका नगरी को आपने नही जीत लिया था ? दानवराज भी आपसे डर गया था और आपसे दोस्ती करके अपनी अनुपम सुदरी कन्या मदोदरी की शादी आपसे कर दी थी। पाताल के कितने ही राजाओ पर आपने विजय प्राप्त की है। वरुण के पुत्रो तथा यम ने आपसे गिडगिडाकर अभयदान मागा था। इस राम को भला हम क्या समझेंगे ? अकेला राजकुमार इद्रजित् राम और उसकी सारी वानर-सेना को हराने के लिए काफी है। क्या आप भूल गये कि राजकुमार ने एक बार देवेंद्र को ही कैद कर लिया था ? आप इद्रजित को बुलाकर कहें कि वह जाय और राम और उसकी सेना को नष्ट कर दे।"

इस प्रकार रावण के मत्रियो ने अपने राजा के सामने उसका गुणगान किया।

महाशूरवीर, बादल के समान काला प्रहस्त बोला, "हे राजा, देव, दानव और गधर्वो को आपने पराजित किया। इस तुच्छ मनुष्य राम से आप क्यो घबरा रहे हैं ? हम लोगो की असावधानी से वह वानर किसी प्रकार यहा पहुच गया था। उसने हमारी असावधानी का लाभ अवश्य उठाया और कुछ उत्पात भी किये, पर अब हम वैसा थोडे ही होने देगे ? एक बार उसे फिर यहा आने दीजिये और देखिये कि मैं क्या करता हू। वानर-जाति के एक भी वानर को जिंदा नहीं छोडूगा। एक बार गलती हो गई तो क्या हमेशा ही ऐसा होता रहेगा ? मुझे आज्ञा दीजिये, मैं उन्हें हटाकर आता हू।"

दुर्मुख बोला, "उन बंदरों ने हम सबका अपमान किया है। हम उन्हें नही छोड़ेंगे। मैं अभी जाकर उन सबको खतम करके आ सकता हू। आपकी आज्ञाभर की देर है।"

हाथ में भयंकर मूसल लिये वज्रदंष्ट्र खड़ा हुआ और बोला, "यह रहा मेरा मूसल। इसपर दुश्मनों का मांस और खून सदा चिपका रहता है। मैं इसे कभी साफ नही करता। आप नाहक बंदरो की चर्चा कर रहे हैं। हमारे दुश्मन असल में राम और लक्ष्मण हैं। यदि राजा की आज्ञा हो तो मैं पहले उन दोनो भाइयो की हत्या करके, बाद में वानर-सेना को मारकर लौट आऊगा।"

वज्रदंष्ट्र आगे बोला, "मैं एक निवेदन करना चाहता हू। कुछ राक्षसो को मनुष्य के वेश में राम के पास भेजा जाय। हम उनसे कहेंगे कि भरत ने हमें तुम्हारे पास भेजा है। वह तुम्हारी मदद के लिए बड़ी भारी सेना भेज रहा है। इस झूठे भरोसे में आकर राम से गफलत हो जायगी। तब हम सब आकाश से उनपर टूट पड़ेंगे और सबको मार डालेंगे।"

कुंभकर्ण का लड़का निकुंभ जो अबतक चुप था, बोला, "आप सब यही रहे। मैं अकेला जाकर शत्रुओ को हराकर लौटता हू।"

इस प्रकार रावण के मंत्री हाथ ऊंचा उठा-उठाकर रावण की स्तुति करने और अपनी-अपनी बहादुरी की डींग मारते गये।

रावण के भाई विभीषण ने सबको चुप किया और अपने-अपने आसनो पर बैठ जाने को कहा। फिर बोला, "क्या आप लोगो को धर्म की बातें बिल्कुल नही सोचनी चाहिए। भैया, इन लोगो की बातें कानो को मीठी लगने पर भी वास्तव में आपके लिए अहितकारी हैं। धर्म के विरुद्ध काम करने से हमेशा दुःख मिलता है। इनके कहने के अनुसार कूट-युक्ति से हम राम से युद्ध छेड़ते हैं तो उसके परिणाम-स्वरूप लंका का नामोनिशान नही रहेगा और हम भी मर मिटेंगे।

"क्या यह ठीक था कि आप सीता को चुराकर ले आवें? यह निश्चय ही पाप-कर्म था। इस पाप से मुक्त होने के लिए हम सबको कोई यत्न

उटायें ? राम ने कौन-सा अन्याय किया ? दडकारण्य में यदि उसने राक्षसों को मारा तो वह आत्मरक्षा के लिए था। हमारे लोग उसका पीछा नहीं छोडते थे। हमनें उसे शाति से कहा रहने दिया ? उसे मारने के लिए जो जाते थे उन्हें वह मारता था। राम की पत्नी को चुराने के लिए हमारे पास कोई कारण या बहाना नही है। राम से हमें बदला लेना था तो उससे हम लडे क्यो नही ? चोरी से उसकी पत्नी को क्यो ले आये ?

"गलती जब हमारी है तब उसे दड देने के लिए कुछ करना नीति-विरुद्ध है। हमें पहले पता लगाना चाहिए कि राम की शक्ति कितनी है, उसमें कौन-सी विशेपताए है। उसकी सेना के बारे में भी हम अनभिज्ञ है। हमने देखा कि हनुमान कितना अद्भुत वीर है। हममें कितनी भी ताकत क्यो न हो, तो भी हमें दुश्मन की ताकत के बारे में भी अदाज कर लेना चाहिए। सधि करने में लाभ हो सकता है या नही, यह भी देखना चाहिए। मैं तो कहता हू कि सीता को राम के पास वापस पहुचा दीजिये। राम हमारे ऊपर आक्रमण करे, उससे पहले यह काम हो जाना चाहिए। भाई रावण, मैं आपके हित के लिए ही कह रहा हू। आप मुझपर क्रोध न करें। हमसे भूलें हुई हैं। उन्हें क्यो न ठीक कर लें ?"

दूसरे मत्रियो के प्रोत्साहन से रावण खुश था। विभीषण की बातो से कुछ चितित हो गया। वह तुरत कुछ निर्णय न कर पाया। उसने सभा को दूसरे दिन तक के लिए स्थगित कर दिया और अपने महल की ओर चला गया।

: ७२ :

रावण की अशांति

रावण का सदा हित चाहनेवाला विभीषण दूसरे दिन सुबह उठते ही अपने भाई रावण के पास गया। उसने खूब सोच-विचार कर लिया था और किसी प्रकार से भी अपने भाई के विचारों में परिवर्तन कराकर उसे बचाने का निश्चय कर लिया था।

रावण का राजमहल सदा की भांति सुशोभित था। मूल्यवान वस्तुओं से सुसज्जित और मंगल-चिह्नों से अंकित राजभवन में पूजा-विधियां हो रही थीं। जगह-जगह पर सेविकाएं राजा के मस्तकादि उसे देने के लिए हाथ में लिये खड़ी थीं। राक्षस-ब्राह्मण वेदों का पाठ कर रहे थे। वाद्य-वृंदों के साथ गायक लोग प्रभाती गा रहे थे। ऐसे वातावरण में चिंताकुल विभीषण ने महल में प्रवेश किया।

राजा को उसने हाथ जोड़कर नमस्कार किया। रावण ने अपने प्रधान मंत्री के अतिरिक्त अन्य सबको अलग चले जाने को कहा और अपने छोटे भाई से बोला, "कहो, क्या बात है?"

विभीषण बोला, "भैया, अपने स्वार्थ के लिए मैं आपसे कुछ नहीं कह रहा हूं। आपकी भलाई के लिए ही कह रहा हूं। मेरे कहने में यदि कोई त्रुटि हो तो क्षमा करें। मेरी बात पर ध्यान दें।

"जबसे आप यहां सीता को ले आये हैं, अपशकुन-ही-अपशकुन दिखाई दे रहे हैं। होमाग्नि ठीक तरह से प्रज्वलित नहीं हो रही। मंत्रोच्चार के साथ ढंग से आहुति डालने पर भी अग्नि नहीं जलती। पूजा-स्थलों में सांप पाये जाते हैं। नैवेद्यों में चींटियां आ रही हैं। गायों के थनों से दूध सूख गया है। हाथी, ऊंट, घोड़े तथा खच्चर बीमार से हो गये हैं। भोजन ठीक तरह से नहीं ले रहे हैं। चिकित्साएं निष्फल हो रही हैं। कौए प्रासादों पर झुंड-

कर विचित्र प्रकार की आवाजें कर रहे हैं। चीलो के मडराने से ज्योतिषी चिंतित हो रहे हैं। लोमडिया असमय पर चिल्ला रही हैं। जगली जानवर नगर में प्रवेश कर रहे हैं। ये सभी चिह्न अशुभ-सूचक हैं। हमें इन अपशकुनो की उपेक्षा नही करनी चाहिए। मैं तो यही कहता हू कि सीता को आप वापस छोड आइये। जबसे वह यहा आई है, तभी से ये अपशकुन दिखाई देने लगे हैं। आप अन्य लोगों से भी पूछ सकते हैं कि मैं जो कुछ कह रहा हू वह सच है या झूठ। यदि आप मेरी बातो से सहमत नही हो तो भी मुझपर नाराज न हो। मै फिर आपसे अनुरोध करना चाहता हू कि सीता को लौटा आइये। उसीमें हम सबका कल्याण है।

रावण ने कहा, "नही, यह कभी नही हो सकता। सीता को लौटाने की बात मेरे सामने मत कहो। राम को मैं अजेय नही समझता। न मुझे किसी बात का डर ही मालूम होता है। तुम अब जा सकते हो।"

इतना कहकर विभीषण को उसने वापस भेज दिया।

यद्यपि रावण ने अपना हठ नही छोडा, फिर भी सीता की दृढता से और अपने प्रिय भाई विभीषण के असहयोग से रावण के मन की शाति भग हो चुकी थी। किंतु इस अशाति को उसने अपने मन ही में रखा। दूसरे दिन उसने फिर मत्रि-परिषद् बुलाई। काम-वासना तथा क्रोध के कारण वह चित्त को स्वस्थ और स्थिर न रख सका। इस बात का अनुभव रावण ने स्वय किया। इसीलिए मत्रियो से वह बार-बार सलाह लेता गया, उससे उसे कुछ शाति का अनुभव हुआ।

अपने सोने के रथ पर बैठकर राजवीथि से होता हुआ रावण सभा में जाने लगा। अत्युत्तम घोडे रथ को खीच रहे थे। खड्ग और कवचादि से सुसज्जित चित्त को लुभानेवाले वस्त्र धारण किये। उसके अगरक्षक रथ के आगे-पीछे चल रहे थे। कुछ सैनिक भयकर शस्त्रो के साथ हाथी और घोडो पर चढकर राजा के साथ-साथ जा रहे थे। शख और भेरी की ध्वनि गूज रही थी। राजवीथि पर जब रावण इस प्रकार शान से जाने लगा तो दोनो ओर पक्तिवद्ध लोग खडे हो गये और उसका जय-जयकार करने लगे। जय-घोष

से दिशाएं गूंज उठीं। रावण ने मंत्रणा-परिषद् में प्रवेश किया।

सभा-मंडप बड़ा विशाल था। उसके स्तंभ सोने और चांदी के थे। नीचे बहुमूल्य कालीन बिछे थे। मयासुर की अद्भुत शिल्प-कला का बड़ा प्रदर्शन हो रहा था। अपने रत्न-जटित सिंहासन पर रावण बैठा गया। सैकड़ों राक्षस सभा की पहरेदारी कर रहे थे। रावण की आज्ञा से हजारों राक्षस परिषद् में आये थे। सब यथोचित आसनों पर बैठ गये। पुरोहित और धार्मिक लोग भी काफी संख्या में आ गये थे।

विभीषण, शुक्र और प्रहस्त राजा को नमस्कार करके अपने-अपने आसनों पर बैठ गये। रावण ने कई कर्मचारियों ने, जो कार्यों में बड़े ही निपुण, राज-भक्त तथा वीर थे, सभा में भाग लिया।

धूप का सुगंधित धुआं मंडप में फैल रहा था। परिषद् के लिए एकत्र लोग आपस में बात नहीं कर पा रहे थे। बड़ी शांति थी। प्रकांड विद्वान्, शूरवीर और बली लोगों से भरी हुई वह परिषद् देवेंद्र की सभा के समान अत्यंत गंभीर थी।

रावण सदा ही अपनी प्रजा का कल्याण चाहनेवाला था। फिर भी वासना के आवेग में आकर उसने अपनी सहजता खो डाली थी। अहंकार और काम के वश में आकर उसकी विवेक-बुद्धि नष्ट हो चुकी थी। उसने परिषद् में इकट्ठे राक्षसों को संबोधित करके कहा, "मेरे मित्रो, आप लोग सभी समझदार हैं। कैसी भी समस्या हो, अपने बुद्धि-चातुर्य से हल कर सकते हैं। हमेशा आप लोगों की सलाह से मुझे लाभ ही हुआ है। अब भी इसी कारण से आपकी मदद चाहता हूं। आप सभी जानते हैं कि मैं सीता को दंडकारण्य से उठा लाया हूं। मैं आप सबके सामने यह स्वीकार करता हूं कि मैं सीता के पीछे पागल हूं। किसी भी कारण से उसे मैं लौटा नहीं सकता, न उसके प्रति अपने मन की भावना को बदल सकता हूं।

"अभी तक सीता ने मेरा कहना नहीं माना है। इस आशा को लेकर कि 'राम आयगा और मुझे छुड़ायेगा' वह मेरे प्रति तिरस्कार दिखा रही है। मैंने उसे लाख समझाया कि राम कभी नहीं आयगा, मुझे स्वीकार कर, पर

वह मानती ही नही है। उसने मुझसे एक साल की अवधि मागी है। वह मैंने स्वीकार कर ली है। मेरी इच्छा अभी पूरी नही हो पाई। मुझसे यह कभी न होगा कि सीता को लौटाऊ और राम से क्षमा-याचना करू। आजतक मैंने या आप लोगो ने किसी प्राणी से हार नही खाई है। एक वानर किसी उपाय से समुद्र लाघकर यहा पहुच गया था। यहा बहुत ही उत्पात मचाकर वह सही-सलामत लौट भी गया। किंतु मै नही समझता कि राम, लक्ष्मण और दूसरे वानर यहा आ सकेंगे। यदि मान लिया जाय कि वे यहा पहुच जाते है तो भी हमें डरना नही चाहिए। आप लोगो का क्या विचार है ? मैंने मालूम किया है कि राम, लक्ष्मण और वानरो की सेना सामने के समुद्र-तट पर पहुच गई है। उन्हें मार डालने का मुझे कोई उपाय बताइये।

"मै पहले ही यह परिषद् बुलाना चाहता था। किंतु कुभकर्ण के जगने के लिए ठहर गया था।"

इस प्रकार कामाध रावण ने अपनी प्रजा के सामने असत्य-मिश्रित वक्तव्य दिया, क्योकि सीता ने उससे समय की अवधि नही मागी थी। राक्षसो के सामने वह एकदम हार मानने को तैयार न था, इसीलिए उसने बात कुछ बदल कर रखी थी।

: ७३ :

विभीषण का लंका-त्याग

उस परिषद् में रावण का छोटा भाई कुंभकर्ण भी था। रावण जब बोल चुका तो कुंभकर्ण खड़ा हुआ और बोला, "महाराज, मुझे आपकी दलील ठीक नहीं लग रही। आपका व्यवहार नीति-शास्त्रज्ञ का-सा नहीं है। यदि राम और लक्ष्मण से आपका विरोध था और आपको अपनी शक्ति पर भरोसा था तो आपने प्रारंभ में ही उन्हें क्यों नहीं हरा दिया? उन्हें हराने के बाद सीता को ले आते तो शायद आपके पराक्रम से प्रभावित होकर सीता आपकी बात मान जाती। किंतु आपने वैसा नहीं किया। बिना किसी से पूछे-ताछे मूर्खता कर बैठे। अन्याय करके बुरी तरह आफत में फंसे हैं। इसमें से बाहर निकलने के लिए हमारे सुझाव चाहते हैं। भला यह किसी राजा को शोभा देता है?"

कुंभकर्ण ने निर्भय होकर साफ-साफ कह तो दिया, किंतु उसी क्षण उसकी दृष्टि अपने बड़े भाई के चिंता से मुरझाये हुए चेहरे पर पड़ी। कुंभकर्ण का रावण के प्रति अत्यधिक भ्रातृ-स्नेह था। उससे रावण की चिंता न देखी गई। उसी क्षण कुंभकर्ण ने निश्चय कर लिया कि कुछ भी हो, वह रावण का पक्ष लेगा। उसने यह भी देखा कि रावण किसीके कहने-सुनने से अपनी बात बदलनेवाला नहीं है। राम के अतुल शौर्य के बारे में भी उसने सुन रखा था। धनुर्विद्या में राम का नाम बहुत प्रख्यात था। रावण के दुर्लभ वरदान में एक बात की कमी थी। वर में यह बात शामिल न थी कि रावण मनुष्य के हाथ न मारा जा सकेगा। यह सब जानते हुए भी कुंभकर्ण ने अब रावण को औरों की तरह ही धैर्य दिलाना ठीक समझा। उसने धीरज न खोने को कहा। बोला, "भैया, आपने गलती तो कर डाली। जो पहले करना चाहिए था, वह बाद में कर रहे हैं। फिर भी मैं आपके साथ हूं। आप घबराइये नहीं।

राम के बाणों की मार मुझपर अवश्य होगी, पर उसकी कोई चिंता नहीं। उसे मारकर, उसका खून चूसकर मैं आपको जिताऊंगा। अब आगे जो कुछ करना चाहें, सो निश्चित हो कर शुरू कर दें।"

कुंभकर्ण ने शुरू में रावण का विरोध किया, बाद में उसको प्रोत्साहित किया, इसलिए टीकाकर उसे मदमतिवाला, आधी नींद में से उठने के कारण उलटी-सीधी बातें करनेवाला समझते हैं। किंतु यह गलत है। शाप के कारण छ महीने सोये रहने पर भी एक बार जग जाने पर उसकी बुद्धि काफी तेज रहती थी। पहले उसने रावण को अपने विचार बतलाये। बाद में कैसी भी अवस्था में अपने भाई का पक्ष न छोड़ने का निश्चय किया। वह कुटुंब-धर्म को पालनेवाला प्यारा भाई था।

रावण के सलाहकारों में प्रधान व्यक्ति प्रहस्त था। वह रावण के बल से अच्छी तरह परिचित था। उसने भी रावण को खूब प्रोत्साहन दिया। कहा कि बिल्कुल चिंता न करें। तीनों लोकों में आपको कोई नहीं हरा सकता। रावण खुश हो गया। बोला, "मैंने कुबेर को लड़ाई में जीता है। उसे भगाकर उसकी लंकापुरी मैंने अपनी बना ली है। देखें, मेरे सामने कौन लड़ने की हिम्मत रखता है।"

परिषद् में जय-जयकार का स्वर गूंज उठा।

केवल विभीषण ने जय-घोष में भाग नहीं लिया। उसने सोचा, रावण मुझपर भले ही क्रोध प्रकट करे, मेरा धर्म उसको सही मार्ग बताने का है। उसे मरने से बचाना ही मेरा कर्तव्य है। वह उठा और बोलने लगा, "सीता को विषैली नागिन के समान खतरनाक समझें। उसे वापस छोड़ आइये, अन्यथा हम सब मारे जानेवाले हैं।"

उसने राम के युद्ध-चातुर्य, वीरता और साहस का वर्णन किया। कहने लगा, "अब भी सीता को लौटा दें तो राम से संधि हो सकती है। राक्षस मौत से बच जायंगे।"

इंद्रजित् को विभीषण की बातें तनिक भी अच्छी न लगीं। अपने चाचा की कायरतापूर्ण बातें उससे न सही गईं। बोला, "चाचाजी, यह आप

क्या कह रहे हैं ? मुझे तो आपकी बातों से बड़ी लज्जा आ रही है। क्या हमारी शक्ति ! कैसा हमारा कुल ! पुलस्त्य-कुल में उत्पन्न कोई व्यक्ति ऐसी कायरतापूर्ण बात करे और राक्षस महा-परिषद् के लोग उसे चुपचाप सुनते रहें ! मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। मेरे चाचा बहुत नीचे की ओर चले गये हैं। हम कभी उनकी बात न मानेंगे। दो नीच मनुष्यों से कोई इस प्रकार डर जाता है ? इंद्र और अनन्य देवगणों का हमने क्या हाल किया था ? सारे लोग हमारे नाम से कांपते हैं और चाचा विभीषण ऐसी बातें कहते हैं। उनकी इन बातों से मैं तो बहुत ही शरमिंदा हो गया हूं।"

विभीषण ने उत्तर दिया, "वत्स, तुम अभी बच्चे हो। तुम्हें अनुभव नहीं है। राजा के लड़के होने पर भी अपने विचारों के कारण बाप के शत्रु बन रहे हो। हे मन्त्रिगण, आप लोग राजा को बहुत बुरी सलाह दे रहे हैं। आप लोगों के प्रोत्साहन से रावण मरण की ओर जा रहा है। भैया रावण, अब भी मेरी बात मान जाइये। जानकी को मान एवं मर्यादा के साथ राम के पास छोड़ आइये। जो अपराध हुआ उसके लिए रामचन्द्र से क्षमा मांग लीजिये। हम सबके बचने के लिए अब यही एक मार्ग है।"

रावण की सहिष्णुता समाप्त हो गई। क्रोध से वह आग-बबूला हो उठा, बोला, "चुप ! अपना छोटा भाई समझकर अबतक तेरी बातें सुनता रहा। नहीं तो कभी का तू मरकर यहां लोट गया होता। छोटा भाई भी कभी-कभी शत्रु बन जाता है। ईर्ष्या के वश होकर भाई भाई की दुर्गति कर डालता है। इसके कई उदाहरण हैं। आप लोग हाथियों की कहानी जानते ही हैं, जिसमें जंगली हाथी कहता है कि हम आग से नहीं डरते, शिकारियों के तीखे भालों से हमें डर नहीं, हमारे गले को फांसी के समान फांसनेवाली जंजीरों से भी हम नहीं घबराते, किंतु अपनी ही जाति के कुछ प्राणियों से डरते हैं, जो शिकारियों से मिलकर हमें पकड़ा देते हैं। यह बात बिल्कुल सच है कि सुख के समय हमारे बंधु हमारे साथ मौज करते हैं, पर आपत्ति के समय एकदम साथ छोड़ जाते हैं। फूलों में जबतक मधु भरा रहता है, मधुमक्खी उनके साथ लिपटी रहती

है। मधु के समाप्त होते ही वहा से हट जाती है। उसी प्रकार यह विभीषण इस सकट के समय में मुझे सहायता देने से इन्कार कर रहा है। और कोई होता, तो इसके लिए बहुत बुरी सजा भोगता। नीच, अब बकना बद कर।"

रावण ने सबके सामने इस प्रकार विभीषण को डाटा और उसका अपमान किया।

विभीषण से यह अपमान न सहा गया। बोला, "भैया, आप मुझसे बडे हैं। इसलिए कुछ भी कह सकते हैं। मेरे बडे भाई होने पर भी आप अधर्मी हैं। मेरा आपने सबके सामने अपमान किया है। मैं आपके काम में कभी सहयोग नही दूगा। मुझे लगता है कि आप काल के पाश से खिचे जा रहे हैं। मेरी हितकर बातें आपके कानो को पसद नही आई। इन मत्रियो की गलत सलाह आपको पसद आ रही है। मैं नही चाहता था कि राम के बाणो के आप शिकार बनें। इसलिए मैंने सधि की बात सुझाई। आप मुझपर काफी क्रुद्ध हैं। मुझे अपना दुश्मन बताते हैं। आपका मगल हो। आप खुश रहें। मैंने सोचा था कि आपको सकट से बचाऊ। उसका आपने यह अर्थ लगाया कि मै आपसे ईर्ष्या कर रहा हू। विनाश काल में अच्छी बातें भी मन को नही भाती। मैं यहा से अभी निकल जाता हू। आपके साथ अब मेरा कोई सबध नही रहा।"

विभीषण वहा से निकल गया। उसे साफ मालूम हो गया कि रावण अब उसे लका में रहने नही देगा। अपना सबकुछ त्याग कर वह आकाश-मार्ग से रामचद्र के पास पहुच गया। रावण के साथ उसका तीव्र मतभेद हो गया था। इस कारण लका में वह नही टिका।

वानरों की आशंकाएं

कई बार जब हम धर्म-संकट में फंस जाते हैं, तो अपने-अपने स्वभाव के अनुसार उसमें से निकलने का रास्ता ढूंढते हैं ।

रावण अपनी मान-हानि नहीं चाहता था । पाप करने के लिए भी आदमी मन को दृढ़ करता है । किंतु पाप को स्वीकार कर क्षमा मांगने के लिए उससे भी अधिक मानसिक धैर्य की आवश्यकता होती है । रावण को अपने किये पर पछतावा व्यक्त करने का साहस न हुआ । क्षमा मांगना उसके स्वभाव के विरुद्ध था ।

किसी व्यक्ति से जब बुरा काम हो जाता है तो उसके बंधु-बांधव भी धर्म-संकट में पड़ जाते हैं । सोचते हैं, "मैंने आज तक इसका नमक खाया है, अब इसका विरोध मुझसे नहीं किया जायगा । मेरे भाई ने जो किया सो उचित तो नहीं था, किंतु मैं अब उसका साथ थोड़े ही छोड़ सकता हूं ।" निश्छल मनवाले कहेंगे कि मित्र को तो उसकी गलती समझाने का प्रयत्न करना चाहिए । इस कार्य में मित्र की अप्रियता, क्रोध, अपमान सब-कुछ सहन करना पड़े, तो भी उसकी परवा न करके उसे सुधारने का यत्न करना चाहिए । किसी भी हालत में हमें धर्म-विरुद्ध आचरण नहीं करना चाहिए ।

रामायण में कुंभकर्ण और विभीषण के द्वारा हमें इन दो प्रकार के स्वभावों के उदाहरण मिलते हैं ।

रावण के इतना समझाने पर भी न्यायी विभीषण सीता-अपहरण में अपने भाई की सहायता नहीं करता है । यदि विभीषण ने रावण की सहायता की होती तो हम कभी उसकी प्रशंसा न करते ।

उसने रावण को बहुत समझाया कि तुमने बुरा काम किया है, जो हुआ सो हो गया, अब भी सीता को लौटा दिया जाय । पर रावण ने उसकी

बात पर ध्यान देने से साफ इन्कार कर दिया। ऐसी स्थिति में धर्म और सदाचार-प्रिय विभीषण के लिए रावण को त्यागने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग नही रहा था। हमें विभीषण पर दोषारोपण नही करना चाहिए। हमारे दिल में कुकर्मो के प्रति सहानुभूति हो तभी विभीषण के कार्य में हम चूक देख सकते हैं।

कुभकर्ण ने भी रावण को समझाने का प्रयत्न किया, पर उसमें वह सफल नही हुआ। अत में लाचार होकर अपने बधु रावण के कार्य में उसने प्राण-त्याग किया। मारीच ने भी यही किया था। इन दोनो के त्याग के प्रति हमारा मान अवश्य है, किंतु विभीषण ने जो कदम उठाया था, वह सर्वथा न्यायपूर्ण था। आजकल लोगो को धर्म-विरुद्ध बातें अच्छी लगने लगती हैं, इसलिए इसके बारे में कुछ विस्तार से कहना पड रहा हूँ।

पाप करनेवाले व्यक्ति को यह मालूम होना चहिए कि उसके पाप में उसके इष्टमित्र साथ नही देंगे। पाप करेंगे तो उनको खोना पड़ेगा। यदि ऐसा न हो, अपने कुकर्मो से उन्हें अपने बधु-बाधवो के व्यवहार में कोई भेद दिखाई न दे तो वे कभी पाप-कर्म करने से सकोच नही करेंगे। बुरे आवेग ही व्यक्ति को पाप की ओर खीचते हैं। उसमें प्रियजनो का समर्थन मिल जाय तब तो उससे बचना असभव ही हो जाता है। इस बात को ध्यान में रखकर हम, विभीषण को 'द्रोही' बतानेवालो से, अपनेको अलग रखें। विभीषण जानता था कि उसपर 'कुल-द्रोही' का आरोप लगेगा। फिर भी धर्म पर अटूट श्रद्धा रखकर उसने सकटो का समना किया। रावण को छोडकर वह शत्रु-पक्ष में पहुच तो गया, किंतु वहा भी उसके लिए स्थिति बहुत अनुकूल न थी। अब देखते हैं कि वहा क्या-क्या हुआ।

× × ×

समुद्र-तट पर खडे वानर-सेनापतियो ने देखा कि आकाश में कुछ चमक-सा रहा है। ऐसा लगता था, मानो मेरु-पर्वत विशाल सुनहरा मुकुट धारण किये आकाश में खडा हो। बिजली चमकती है, फिर विलीन हो जाती है, किंतु यह प्रकाश जो वानरो ने देखा, स्थिर-सा दिखाई दिया। वानरो ने ध्यान से

निरीक्षण किया। पाच महाकाय राक्षस आकाश में मंडरा रहे थे। सुग्रीव ने भी स्वयं यह दृश्य देखा। वह बोला, "देखो हमें नष्ट करने के लिए ये राक्षस लंका से आये दीखते हैं।"

यह सुनते ही वानर-वीर पेड़ और भारी-भारी पत्थरों को हाथ में लेकर राक्षसों पर प्रहार करने के लिए तैयार हो गये। कहने लगे, "राजन्, आप हमें आज्ञा दीजिये। अभी इन राक्षसों का हम खात्मा किये देते हैं। उन लोगों का शोर राक्षसों ने भी सुना। किंतु विभीषण रंच मात्र भी नहीं घबराया। उसका मन निष्कपट था। इसलिए हिम्मत के साथ बड़े गंभीर स्वर में बोला, "मैं राक्षसों के राजा दुष्ट रावण का छोटा भाई हूं। वीर जटायु को जिसने निर्दयता से मार डाला था, जो बलात् सीता को उठा लाया था, उस रावण का मैं भाई हूं। मैंने रावण को बहुत समझाया कि यह भारी अत्याचार है, सीता को राम के पास वापस पहुंचा दो। बार-बार मैंने उससे अनुरोध किया, किंतु रावण ने मेरी बात न मानी। भरी सभा में एक तुच्छ सेवक की तरह मेरी निंदा की और अन्य प्रकार से मुझे अपमानित किया। मैंने उसके पाप-कर्म में सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया और अपना परिवार, धन-सम्पत्ति सबकुछ त्यागकर श्रीराम की शरण में आया हूं। यह बात आप लोग सीतापति श्रीराम को बताने की कृपा करें।"

सुग्रीव तुरन्त राम के पास यह संदेश लेकर गया और बोला, "श्रीराम, रावण का भाई विभीषण चार राक्षसों के साथ समुद्र के तट पर पहुंच गया है। कहता है कि वह आपका शरणार्थी होकर आया है। अभीतक तो आकाश में ही ये मंडरा रहे हैं। नीचे नहीं उतरे हैं। आप समझदार हैं। जल्दी में किसी की बात पर विश्वास न करें। ये राक्षस मायावी होते हैं। मुझे तो लगता है कि ये रावण के कहने से हमारे पास आये हैं। हमारे अंदर तरह-तरह की फूट पैदा करने के लिए रावण ने इन्हें भेजा होगा। यह भी हो सकता है कि अवसर पाकर हमारे [illegible] की हत्या करने के लिए ये आये हों। यह बात हमें कभी नहीं भूलनी चाहिए कि यह विभीषण हमारे परम वैरी रावण का सगा भाई है। राक्षसों पर कभी विश्वास नहीं किया जा सकता।

मुझे तो यही लग रहा है कि रावण का यह नया षड्यंत्र है। इन राक्षसों को मार ही डालना चाहिए। अपने बीच इन्हें जगह देने से अनर्थ हो सकता है।

राम से इस प्रकार निवेदन करके सुग्रीव उत्तर की प्रतीक्षा में खडा रहा।

राम ने सुग्रीव की बातें ध्यान से सुनी और हनुमान आदि वानरो से वह बोले, "नीति-शास्त्र जाननेवाले राजा सुग्रीव ने जो-कुछ कहा है, आप सब ने सुना ही होगा। रावण का सगा भाई आया हुआ है। आप लोगो की राय इस विषय में क्या है? ऐसे विषय पर सबके विचार मालूम करने के बाद ही कुछ निर्णय किया जा सकता है। आप लोग अपने-अपने विचार बिना सकोच के व्यक्त करें।"

सबोने अपने-अपने मत प्रकट किये।

युवराज अगद ने कहा, "विभीषण शत्रु-पक्ष से आया है। वह स्वय आया है, या रावण के कहने से, यह बताना कठिन है, पर इसकी माग का तिरस्कार करना उचित नही होगा। किंतु कुछ भी जाच किये बिना इसे अपने में ले लेना खतरनाक हो सकता है। हमें इस विषय पर बिना जल्दी किये सोच-समझकर निर्णय करना चाहिए। पहले इसके हाव-भाव देखें, यदि इसका व्यवहार पसद न आया तो इसे भगा देंगे। अच्छा लगा तो रख लेंगे।"

शरभ बोला, "अपने बीच में आने देकर बाद में परीक्षा लेना, मुझे तो ठीक नही लगता। वह कठिन भी होगा और खतरनाक भी। पहले से ही हम गुप्तचरो से पता लगवायें कि विभीषण की क्या वृत्ति है, बाद में सोचें कि उसे अपने साथ मिलाया जाय या नही।"

जाबुवान बोला, "राक्षस लोग बडे चालाक होते हैं। उनकी परीक्षा करके उनके भेदो को समझना आसान काम नही। हम तो अभी समुद्र के इधर ही है, तभी विभीषण को इतनी जल्दी क्यो पड गई? रावण हमारा सदा का दुश्मन है। उनके भाई की बातो को हम सत्य कैसे मान सकते है? मुझे तो लगता है कि इसे अपने पक्ष में लेना ठीक नही रहेगा।"

मंद बोला, "यह हमारे पास अपने-आप पहुचा है। केवल सदेह के कारण इसकी माग को ठुकराना ठीक नही। पर्याप्त सावधानी और युक्ति के साथ हम विभीषण की परीक्षा ले सकते हैं। हमें यह पता करना चाहिए कि इसने सचमुच रावण का पक्ष छोड दिया है या क्या ? हमारे कुछ चतुर वानर यह काम बडी आसानी से कर लेंगे।"

सब-कुछ सुन लेने के बाद रामचद्र ने बुद्धि के भडार हनुमान की ओर देखा।

: ७५ :

शरणागत की रक्षा

हनुमान समझ गया कि श्रीराम उसका भी मत सुनना चाहते हैं। मृदु वाणी से वह बोला, "प्रभो, आप हमसे क्यो अभिप्राय मागते हैं ? बृहस्पति भी आपसे अधिक समझदार नही हो सकता। अभी हमारे मित्रो ने जो कहा, उससे मैं सहमत नही हू। मैं तो सोचता हू कि विभीषण को अपने पक्ष में शामिल करने में कोई डर नही। यदि वह हमारा अहित करना चाहता तो छिपकर आता। इस प्रकार खुल्लमखुल्ला न आता। हमारे गुप्तचरो को इसमें क्या भेद मिलनेवाला है ?

"हमारे मित्र कहते है कि शत्रु-पक्ष से जो इस प्रकार अचानक हमारे पास आ जाता है, उसपर विश्वास कैसे किया जाय ? ठीक है। किंतु यदि कोई अपने भाई के दुर्गुणो को देखकर उसे चाहना छोड दे तो उसमें आश्चर्य की क्या बात है ? आपकी महिमा से विभीषण प्रभावित हो तो उसमें कौन आश्चर्य है ? परिस्थितियो को देखते हुए मुझे विभीषण पर किसी प्रकार की भी शका नही होती है।

"कुछ लोग ऐसा विचार बताते है कि हम विभीषण को अपने पक्ष में लिया जाय या नही, इसका निर्णय हम तभी कर सकेगे जब हम विभीषण की परीक्षा लेकर उसके उत्तरो से सतुष्ट हो जाते हैं। मुझे यह बात ठीक नही लगती है, क्योकि जब कोई व्यक्ति जान लेता है कि उसकी बातो पर हम शका कर रहे हैं, तब उसका व्यवहार अस्वाभाविक हो जाता है। डर के कारण उसका स्वभाव कुछ विकृत भी हो जाता है। मैंने विभीषण को देखा। उसके चेहरे के भावो से तो वह जो कुछ कहता है उससे सत्य मानने को मैं तैयार हू। उसके भोले चेहरे पर कपट के कोई चिह्न नही दीखते। अतर के बुरे भावो को, विशेषकर कपट को, छिपाना बहुत कठिन होता है।

"मैं तो यही सोचता हू कि विभीषण और उसके भाई लकेश रावण में भारी मतभेद हो गया है। विभीषण का लका में रहना दुष्कर हो गया है और इस कारण वह आपका आश्रय चाहता है। उसे यह भी पता है कि रावण आपसे हार जानेवाला है। उसने यह भी सुना होगा कि आपने वालि का वध करके सुग्रीव को राज्य दिलाया। रावण के बाद यदि विभीषण लका का आधिपत्य चाहता हो तो उसमें भी कोई अनुचित बात नही है, न आश्चर्य करने की आवश्यकता है। मैं तो कहता हू कि इसे हम अपना लें।

"अपनी अल्प बुद्धि में जो बात सूझी, वह मैंने आपको बता दी। आप जो निर्णय करे वह हम सबके लिए मान्य होगा।"

इस प्रकार वानरो ने विभीषण के बारे में भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किये।

× × ×

कुभकर्ण ने सामान्य धर्म का पालन किया। लोगो को उसको समझने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती। किंतु विभीषण ने जो कदम उठाया था, वह असाधारण था। इसीलिए लोग उसे दोषी ठहराते हैं। विभीषण की अंतरात्मा रावण की नीति को मानने को तैयार नही हुई। उसने जो मानसिक सघर्ष का अनुभव किया होगा, उसकी कल्पना करना दूसरो के लिए सभव नही। इसी कारण से कुछ वानर विभीषण को शका की दृष्टि से देखने लगे, जैसे हममें से भी कुछ विभीषण को दोषयुक्त समझते हैं।

× × ×

रामचद्र ने प्रमुख वानरो की बातें ध्यान से सुनी। उन्हें हनुमान की राय पसद आई। शरणागतो की रक्षा करना राम अपना धर्म मानते थे। हनुमान की बातो से राम के मन में शांति हुई। अपने मत से सहमत होनेवालो को देखकर सात्विक स्वभाववालो को आनद का अनुभव होता ही है।

राम बोले, "आप सब मेरे मित्र है। मेरी स्थिति को समझने का प्रयत्न करे। मुझे अपना मित्र समझकर जब कोई मेरे पास आश्रय मागने आता है, मेरे ऊपर सपूर्ण श्रद्धा रखता है, तो उसे मैं कैसे भगा दू ? मेरा

धर्म आश्रितों की रक्षा करना है। शरणागतो में कुछ दोष भी हो तो भी उनकी रक्षा करना मै अपना धर्म मानता हू।"

राम की बातो से सुग्रीव को समाधान नही हुआ। वह बोला, "हो सकता है कि विभीषण बहुत अच्छा हो। किंतु उसने सकट के समय अपने भाई को त्यागा है। ऐसा व्यक्ति भविष्य में हमारे साथ भी इसी प्रकार का व्यवहार कर सकता है। हम इसपर विश्वास नही कर सकते।"

वाल्मीकि कहते है कि उस समय श्रीराम लक्ष्मण की ओर देखकर जरा मुस्कराये। उन्हें सुग्रीव के अपनी स्वय की बातो के भूल जाने पर कुछ हँसी आ गई थी। वह बोले "राजा लोगो को अपने निकट के लोगो पर सदा सदेह होता रहता है। ऐसे राजा लोग भी है, जो अपने भाई-भतीजो पर शका नही रखते, किंतु उनकी सख्या थोडी ही होती है। रावण को जब विभीषण पर सदेह, द्वेष और क्रोध हुआ तो उसने भरी सभा में उसका अपमान किया। उसपर यह आरोप लगाया कि वह रावण से द्वेष करता है। जान-बूझकर अपमान करना चाहता है। तब विभीषण समझ गया कि उसके लिए लका में रहना हितकर नही है। वह डर गया और इस कारण हमारे आश्रय में आया है। यदि मान लिया जाय कि उसे रावण के बाद राज्याधिकार पाने की इच्छा है तो भी उसमें असाधारण बात कौन-सी है? क्योकि अब उसे विश्वास हो गया है कि रावण का हारकर मरना निश्चित है। हे लक्ष्मण, दुनियाभर में भरत-जैसा त्यागी, दृढ़ सकल्पी दूसरा कोई हो नही सकता।"

इतना कहकर राम थोडी देर के लिए भरत के ध्यान मे लीन हो गये। फिर बोले, "मेरे जैसा भाग्यवान और कौन हो सकता है? भरत जैसा भाई और किसका हो सकता है? मेरे वियोग से दुखी होकर पिता ने प्राण छोड दिये। ऐसे प्यार करनेवाले पिता हमारे थे। हे सुग्रीव, तुम लोगो के जैसे मित्र भी किसे प्राप्त हैं?"

राम कुछ देर तक भावुकता के वशीभूत रहे। फिर बोले, "मुझे यह दलील ठीक नही लगती है कि जैसे विभीषण ने रावण को त्याग दिया, उसी

प्रकार मौके पर हमारा भी त्याग कर देगा। हम विभीषण से कौन-सी ऐसी विशेष अपेक्षा रख रहे हैं ? हमें उसके राज्य का मोह थोडे ही है ? हम रावण को जीतेंगे तभी तो लका का राज्य विभीषण को मिल सकता है।

"फिर विभीषण चाहे कैसी भी प्रकृति का हो, वह हमारी शरण में आया है। अत उसे अभयदान देना मेरा धर्म है। यह मेरा स्वभावगत गुण है। उससे यदि मेरा नुकसान भी हो रहा होगा तो भी मैं उसकी परवा न करके विभीषण की रक्षा करूगा। धर्म की रक्षा करना मेरे लिए प्रथम कर्तव्य है। विभीषण मेरा क्या विगाड सकता है ? शरणागत की रक्षा अवश्य होनी चाहिए। यदि रावण स्वय भी मेरी शरण में आता तो मै उसकी परीक्षा लिये विना ही उसे आश्रय दे देता। जव यह वात है तो विभीषण का तिरस्कार क्यो किया जाय ?"

रामचद्र की वातें सुनकर सुग्रीव वोला, "राम, अव मेरी शका दूर हो गई। विभीषण भी आज से जैसे हम है, उसी प्रकार का एक प्रिय मित्र वनकर रहेगा। मै अभी उसे वुला लाता हू।"

× × ×

वैष्णव सप्रदाय के भक्त श्रीमद्रामायण में राक्षस विभीषण की इस शरणागति को वडा महत्त्व देते है। वैष्णव सप्रदाय का सवसे प्रधान सिद्धात यही है कि चाहे कैसा भी अधम हो, प्रभु की शरण में जाय तो उसके लिए मुक्ति सभव है। सभी पाप प्रभु के चरणो के सामने जलकर नष्ट हो जाते है। विभीषण की शरणागतिवाले अध्याय को वैष्णव सज्जन एक धर्म-शास्त्र जैसा ही महत्त्व देते है। हर प्रकार से जो निराश्रित है, उसके लिए एकमात्र आश्रय-स्थान प्रभु के चरण है।

केवल वैष्णव सप्रदाय में नही, सभी सप्रदायो में, सभी धर्मों में, यही वोध मिलता है कि हमें कभी निराश होने की आवश्यकता नही। हमारी पुकार सुनने के लिए प्रभु सर्वदा तत्पर रहता है। "अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच।" यह भगवान ने अर्जुन के लिए कहा था, किंतु

समस्त मानव-जाति के लिए समय-समय पर, स्थान-स्थान पर, अभयदान मिला है।

वाल्मीकि-रामायण के इस अध्याय से हमें दो चीजें सीखने को मिल रही हैं। शत्रु-पक्ष से अलग होकर हमारे बीच कोई आ जाय तो क्या-क्या बातें सोचने की होती हैं, यह राजनीति का पाठ हमें सुग्रीव आदि वानरो के मुख से मिल जाता है। सुसस्कार और सच्चरित्र व्यक्तियो को हनुमान के तथा श्रीरामचद्र के मुखो से धर्म की बातें सीखने को मिल जाती हैं। आश्रयदाता राम कहते हैं, "यदि रावण मेरे पास आये तो मैं भी उसका तिरस्कार नहीं करूगा।"

यह वाक्य हम सभीके लिए अमृत-तुल्य है।

: ७६ :

सेतु-बंध

इस बीच रावण ने एक नादानी का काम किया। उसने शुक नाम के एक गुप्तचर को सुग्रीव के पास भिजवाकर उसके मन को बिगाडने का प्रयत्न किया। शुक आकाश-मार्ग से आया और सुग्रीव से मिला। बोला, "लंकेश रावण ने मुझे आपके पास प्रेमपूर्वक भेजा है। आप भी रावण के समान ही राजा हैं। राम तो राजा नही है। राजा होने से पहले ही वह राज्य से भगा दिया गया है। उससे मित्रता करके आपको क्या लाभ मिलनेवाला है? किंतु यदि आप रावण से शत्रुता करेंगे तो बहुत दु ख पायेंगे। रावण को अपना बडा भाई समझकर उससे मित्रता का सबध क्यो नही कर लेते? राम की पत्नी को रावण उठा लाये तो उससे आपका क्या बिगड गया? मैं इसलिए आपको सलाह देता हू कि आप वृथा इस झगडे में न पडें और अपनी सेना के साथ किष्किंधापुरी लौट जाय।"

रावण ने इस प्रकार आपस में फूट डालने का प्रयत्न किया।

सुग्रीव ने गुप्तचर को उत्तर दिया, "हे नीच, अपने राजा से जाकर कह दे कि वह न मेरा भाई है, न बधु। वह एक दुरात्मा है। राम मेरा परम मित्र है। राम का शत्रु मेरा भी शत्रु है। राक्षस-कुल का जीवन तो अब खत्म होनेवाला है। राम से बिना कारण दुश्मनी मोल लेकर रावण कहीं भी छिपकर अपनेको बचा नही पायेगा। अपने स्वामी को मेरा यह सदेश सुना देना। तुमको भी यहा से जल्दी चला जाना चाहिए।"

सुग्रीव की यह बात सभी वानर सुन रहे थे। वे शुक के ऊपर टूट पडे और उसे सताने लगे। राम ने उन लोगों को ऐसा करने से रोका। यह हाल देख शुक फौरन ही वापस लका चला गया।

राम की आज्ञा पाकर लक्ष्मण और सुग्रीव ने विभीषण को लका का

राजा घोषित कर दिया। सागर के जल से उसका अभिषेक किया। विभीषण ने भी राम के साथ सदा मैत्री की प्रतिज्ञा की। राम ने भी शपथ ली कि रावण को मारकर ही अयोध्या लौटेंगे।

अब लक्ष्मण, विभीषण और सुग्रीव तीनो मिलकर सोचने लगे कि समद्र को कैसे लाघा जाय। सबने यह निश्चय किया कि पहले समुद्र-राज से सहायता मागी जाय। जब राम के पास जाकर उन्होने यह विचार बताया तो राम ने भी अपनी स्वीकृति दे दी। समुद्र-तट पर दर्भ फैलाकर शास्त्रीय ढग से राम ने सागर-राज की उपासना करते हुए उपवास प्रारभ किया। पूरे तीन दिन और तीन रात तक बिना कुछ खाये-पिये राम ने सागर-राज की उपासना की, पर सागर ने राम की प्रार्थना न सुनी। वह चुप रहा। तब राम ने सोचा कि समुद्र यो नही मान रहा है तो अब अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग करना पडेगा। उन्होने लक्ष्मण से धनुष और विशेष प्रकार के शक्तिवाले बाण लाने के लिए कहा।

रामचद्र समुद्र पर बाण-प्रयोग करने लगे तो सारी धरती कापने लगी। समद्र का पानी जोरो से ऊपर-नीचे होने लगा। सागर-राज से स्थिति सभाली नही गई। तब मेरु पर्वत पर उदित सूर्य-सा कातिमान् समुद्र श्रीराम के सामने आया! राम को उसने नमस्कार किया और बोला, "हे रामचद्र, आप शात होइये। मेरी बात सुनिये। मैं नियति के विरुद्ध कैसे चल सकता हू ? अपने भीतर मैने असख्य जीव-धारियो को आश्रय दिया हुआ है। अपना रूप छोड दू तो उनका क्या हाल होगा ? बडी-बडी लहरो के साथ रहना मेरा प्रकृति-जात धर्म और गुण है। उसके कारण किसीके लिए भी मुझे पार करना दुष्कर होता है। अपने पानी को मै सुखा नही सकता। पर मैं आपकी सहायता अवश्य करूगा। आपकी आज्ञा में रहनेवाले इन वानरो द्वारा लका तक मुझपर एक लबा पुल बनवाइये। जल्दी ही आप शिलाओ तथा वृक्षो की सहायता से पुल के निर्माण में जुट जाइये। मैं उस पुल को टिकाये रखूगा। मेरी लहरें उसे नही गिरायेंगी। मै जानता हू कि आपकी वानर-सेना में नल नामक वानर विश्वकर्मा का पुत्र है। पुल का निर्माण वह बडी चतुराई से करा

सकता है। उसे यह काम सौंपिये। आपकी विजय हो!"

सागर-राज के वचनों से रामचंद्र बहुत ही प्रसन्न हुए।

राम की आज्ञा पाकर वानर सेतुबंध के निर्माण में लग गये। लाखों वानरों ने इस काम में भाग लिया। चारों ओर वानरों के काम में जुट जाने से कोलाहल होने लगा। पांच ही दिनों में देखते-देखते एक अद्भुत पुल का निर्माण करके वानरों ने चमत्कार कर दिखाया।

वाल्मीकि ने इस सेतुबंध का बड़े विस्तार से वर्णन किया है। आजकल के बड़े-बड़े बांधों के बारे में जैसी बातें सुनते हैं, उसी ढंग का वर्णन कवि वाल्मीकि ने भी किया है। वानर घने जंगलों में से हजारों-लाखों विशाल वृक्षों को उखाड़-उखाड़कर लाये। अधिक बलशाली वानर पहाड़ियों को ही उठा लाये। नल निर्माण-कार्य में अति कुशल तो था ही। उसके निरीक्षण और आदेश से वानर काम करने लगे। वे पहाड़ियों को समुद्र में डालते गये ऊपर पेड़ों को रखते गये, उसके ऊपर पत्तों को फैलाकर समतल मार्ग बनाते गये। उनके दबाव से उठ-उठकर लहरें आसमान को छूने लगीं। पर काम करते समय जो शोरगुल होता था, उससे समुद्र की आवाज सुनाई नहीं देती थी।

सागर-राज की भी इसमें पूरी सहायता थी। आकाश में नक्षत्र-वीथि के समान महार्णव पर एक अति अद्भुत नये पुल का निर्माण देखते-देखते हो गया। देव-गंधर्वों को भी उसे देखकर बड़ा विस्मय हुआ। वे पुष्पवृष्टि करने लगे और 'श्री राम विजयी भव' का घोष करने लगे। ऋषियों ने राम को आशीर्वाद दिया।

अब सारी राम-सेना समुद्र पार करने को आगे बढ़ी। हनुमान ने राम को अपने कंधे पर बिठा लिया। लक्ष्मण को अंगद ने अपने कंधे पर बिठाया। वानरों की गति असामान्य थी। सारी सेना देखते-देखते समुद्र पार करके सागर के दूसरे किनारे पर पहुंच गई।

यहां पर एक वेदान्त-तत्व का हमें दर्शन मिलता है। कोदंडपाणी राम के सम्मुख अंजलिबद्ध हाथों से सागर-राज निवेदन करता है, "प्रिय राघव,

पृथ्वी, वायु, आकाश, पानी और अग्नि ये जो पचभूत हैं, अपनी-अपनी प्रकृति का अवलबन करके विद्यमान हैं। अनादि काल से यह धर्म चला आ रहा है। काम, लोभ अथवा भय के कारण मैं अपनी प्रकृति को नही बदल सकता। मेरा यह पानी सूखकर पत्थर बन जाय, अथवा मेरी गहराई बिल्कुल कम हो जाय, और तुम लोग पैदल ही मुझे पार कर लो, यह मेरे लिए सभव नही है।"

सागर-राज के इस कथन के द्वारा हमें इस तत्व का दर्शन मिलता है कि प्रकृति और ईश्वर का सबध अनादि काल से है। प्रकृति, कर्म, जीव तथा जड वस्तुए ईश्वर से सृजित होकर अपनी-अपनी नियति के अनुसार चलती चली आ रही हैं। प्रकृति ही ईश्वर का निरूपण करती है। प्रकृति-विरुद्ध बातो से ईश्वर का अस्तित्व नही बताया जाता। हिंदू-शास्त्रो में यही कहा गया है कि प्रकृति, कार्य-कारण का न्याय, पचभूतो का काम, यह सब ईश्वर से सकल्पित होकर अपने-आप चलता रहता है। श्रीमद्भगवद् गीता में नवें अध्याय में भी भगवान् बताते हैं—

मयाध्यक्षेण प्रकृति· सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय, जगद्विपरिवर्तते ॥

लंका पर चढ़ाई और रावण को संदेश

राक्षस माल्यवान ने रावण को बहुत समझाया। उसने कहा, "हे रावण, तुम्हारे भाग्य के दिन अब समाप्त हुए। तुम्हारे दुष्कर्मों के परिणाम से तुम्हारा तेज कम हो गया। तुम अपने वरदानों की शक्ति पर अब भरोसा छोड़ दो और राम से सधि कर लो। तुम जरा बाहर आकर देखो तो सही कि राम के साथ कितनी भारी सेना आई है। मनुष्यों में तो राम-लक्ष्मण ही हैं, कितु उनके साथ अगणित वानर और रीछ हैं। सेतु को देखकर तो मेरे आश्चर्य की सीमा नही रही। मुझे तो यही लग रहा है कि महाविष्णु स्वय मनुष्य के शरीर में आये है।"

बूढ़े माल्यवान की बात रावण को तनिक भी अच्छी न लगी। बोला, "तुम्हारे वचन मेरे कानो को नही सुहाते। तुम भी शत्रु-पक्ष में मिल गये क्या ? मनुष्य-जाति बड़ी दुर्बल होती है। राज्य से निकाले हुए एक तुच्छ आदमी से आप सब व्यर्थ घबरा रहे है। बदर और रीछो के बल पर भरोसा रखकर एक आदमी मेरे साथ लड़ने आया है ! और उसे देखकर आप सब राक्षस डर गये ! मुझे आप सबको देखकर बड़ी लज्जा आ रही है।

"आप लोगों के मन में मेरे प्रति ईर्ष्या पैदा हो गई दीखती है, नही तो सब-के-सब ऐसी निरर्थक बातें क्यो करते ! मैं राम के सामने अपना सिर कभी नहीं झुकाऊंगा। युद्ध में मर जाना पड़े तो खुशी से मर जाऊंगा, कितु राम से समझौते की माग मैं कभी नही करूंगा।"

माल्यवान को रावण के उत्तर से दुःख हुआ। बोला, "देखो रावण, सोच-समझकर ही कदम उठाना। तुम्हारी जय हो!"

यों कहकर वह वापस लौट आया। माल्यवान रावण का नाना लगता था।

रावण ने अपने सेनापतियो को अलग-अलग स्थानो के लिए नियुक्त किया। उन्हें अलग-अलग काम सौपे। उसने नगर के पूर्वी द्वार पर प्रहस्त को खडा किया, दक्षिण-द्वार की रक्षा के लिए महापार्श्व और महोदर को भेजा, युवराज इद्रजित को पश्चिम द्वार की रक्षा में नियुक्त किया। उत्तर द्वार का दायित्व स्वय अपने हाथो में लिया। महापराक्रमी विरूपाक्ष को नगर के अदर का सेनानायक वनाया।

इस तरह नगर-रक्षा के लिए रक्षको की नियुक्ति हो जाने पर उसके मन में कुछ धैर्य का अनुभव हुआ। अव उसे लगा कि वह युद्ध में नही हारेगा। परतु उसका विनाश होने ही वाला था। इसलिए लोगो की चेतावनी का उसके कानो में असर नही हुआ। वह अपने-आपको धोखे में डालता गया और उसके सचिव उसे उल्टे प्रोत्साहित करते गये।

उधर राम, सुग्रीव और लक्ष्मण भी युद्ध की तैयारी करने लगे। रावण के प्रवधो के वारे में गुप्तचरो द्वारा जो-कुछ जानकारी मिली, उसे विभीषण ने राम को वताया। विभीषण वोला, "सख्या में, वल में और वीरता में रावण ने कुवेर की सेना से भी वडी सेना इकट्ठी कर ली है। फिर भी श्रीराम अवश्य उसपर विजय प्राप्त करेंगे।"

रामचद्र ने भी अपनी सेना का विभाजन किया। नील को पूर्व दिशा में प्रहस्त से लडने के लिए नियुक्त किया, दक्षिण में अगद को महापार्श्व और महोदर के साथ जूझने का आदेश दिया। पश्चिम में इद्रजित का सामना करने का भार हनूमान को सौपा और रावण के साथ लडने का दायित्व अपने और लक्ष्मण के ऊपर डाला। सुग्रीव, जावुवान और विभीपण को उन्होने अपने साथ रखा। इस प्रकार अपनी सेना का वटवारा राम ने किया।

रामचद्र ने लका में पहली रात सुवेल पर्वत पर अपनी सेना के साथ विताई। दूसरे दिन सूर्योदय से कुछ पहले ही सव जग गये। वहा से सभीने लका के सौंदर्य को देखा। त्रिकूट पर्वत के ऊपर निर्मित लकापुरी आसमान से एक झूमके के समान लटकती हुई-सी दिखाई देती थी। पक्ति-वद्ध राक्षस

सैनिक किले की रक्षा में खड़े थे। उन्हे देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो किले के चारो ओर एक दूसरी ही दीवार खड़ी कर दी गई है।

राम ने लका के ऊचे-ऊचे महलो को देखा। नगर के वैभव को देखा। उन्हें बड़ा दु ख हुआ कि रावण के अन्याय से और उसकी मूर्खता से यह सब नष्ट हो जायगा। रावण स्वय तो मरने ही वाला है, पर अपने साथ सभी राक्षसो को मौत के मुह में घसीटकर ले जा रहा है।

राम ने अपने सैनिकों को चेतावनी देते हुए कहा, "आप लोग अत्यत सावधानी से रहें। राक्षस बड़े मायावी होते है। वे नाना प्रकार के रूप धारण करेंगे। हमारी सेना के वानर अपने-अपने निजी रूप में ही रहे। विभीषण और उसके चारो मित्र मेरे साथ मनुष्य-रूप में रहेंगे। मै नही सोचता कि रावण और उसके साथी कभी मनुष्य रूप में आयगे। उसमें वे अपने गौरव की हानि समझेंगे। उन्होंने मनुष्य-जाति को अति तुच्छ समझ रखा है। हमें बहुत ही सतर्क होकर रहना होगा। जिन्हें मारना चाहिए, उन्हें ही हम मारेंगे। जिनकी सहायता करनी होगी, उनकी सहायता करेंगे।"

इस प्रकार श्रीराम ने अपने सैनिको को समझाया।

सेना के साथ राम, लक्ष्मण और सुग्रीव सुवेल पर्वत से उतरकर लका के पार्श्व में स्थित वन में गये। असख्य प्राणियो को अदर आते देखकर वन के पशु-पक्षी इधर-उधर भागने लगे। पर्वत के ऊपर से विश्वकर्मा द्वारा निर्मित लका की विशेषता राम ने देखी थी। अब नीचे से दुर्ग का भव्य रूप और नगर की शोभा स्पष्ट दिखाई देने लगी। उसे देखकर रामचद्र को बड़ा विस्मय हुआ। राक्षसो की युद्ध की भूख, सैन्य शक्ति, युद्ध-प्रणाली, दुर्गद्वार तथा शस्त्र और यत्रो को देखकर वानरो के मन में लड़ने के उत्साह में बड़ी वृद्धि हुई।

रावण अपने परिजनो के साथ लाल वस्त्र धारण किये एक दिव्य आसन पर बैठा हुआ था। इद्र के हाथी ऐरावत के दांतों से उसका वक्षस्थल घायल हुआ था। उस घाव का चिह्न उसकी छाती को सुशोभित कर रहा था। तभी वहा अचानक सुग्रीव आकाश से धड़ाम से कूद पड़ा और रावण

की ओर एकदम लपककर उसके रत्नजटित मुकुट को नीचे गिरा दिया तथा उसके गाल पर एक जोर की चपत लगाकर बोला, "हे रावण, अब तुम बुरी तरह फस गये हो । देखो, मैं सुग्रीव हू—राम का मित्र और सेवक ।"

देखते-देखते रावण और सुग्रीव दोनो में मल्लयुद्ध प्रारभ हो गया । दोनो उस विद्या में पारगत थे । दोनो को अनेक दाव आते थे । रावण को सुग्रीव ने बहुत परेशान किया । तब रावण अपनी माया का प्रयोग करने लगा । सुग्रीव वहासे भागकर एक ही छलाग में राम के पास पहुच गया ।

सूर्य-पुत्र सुग्रीव के इस प्रकार रावण को तग करके सकुशल वापस आ जाने पर वानरो में हर्ष का ठिकाना न रहा । युद्ध में घायल हो जाने के कारण सुग्रीव के शरीर से खून बह रहा था ।

राम ने वानर-राज से कहा, "हे सुगीव, तुम्हारा साहस तथा शौर्य देखकर हम सब बडे ही विस्मित और प्रसन्न है । फिर भी बिना किसीसे पूछे और सलाह लिये रावण से तुम्हारा भिड जाना उचित न था । तुम्हे यह न भूलना चाहिए कि तुम एक राजा हो । राजा को बिना सोचे आपत्ति के कार्य में नही उतरना चाहिए ।"

सुग्रीव मान गया । उसने कहा, "श्रीराम, आपका कहना ठीक है । आपसे बिना पूछे मुझे कोई काम नही करना चाहिए । किंतु रावण को देखकर मै आपे से बाहर हो गया था । उसने सीता पर जो अन्याय किया, उसका स्मरण हो आने से मै अपने क्रोध को न सभाल सका ।"

राम से आदेश पाकर वानर-सेना ने लका को चारो ओर से घेर लिया । उसके बाद रामचद्र ने अगद को बुलाकर कहा, "अगद, तुम रावण के पास मेरे दूत बनकर जाओ । उसको समझाओ कि राम दुर्ग-द्वार पर युद्ध के लिए खडे है । देवताओ से वरदान पाकर और उस कारण घमडी होकर वह जो अत्याचार करता आया है, उसका अब अत होनेवाला है । दुनिया, जो उसके कुकर्मो से कापती रही, अब उसके पजो से मुक्त होनेवाली है । अब वह बाहर निकलकर मेरे साथ युद्ध करे । युद्ध में प्राण देकर अपने पापो का

प्रायश्चित्त करे। यदि वह मरना नही चाहता तो सीता को मेरे पास भेज दे। मुझसे क्षमा माग ले। मै उसे अवश्य ही विना मारे छोड दूगा। अपने घमड से रावण ने लोगो पर वडे अत्याचार किये है। इसलिए किसी भी हालत मे वह राजा वने रहने के योग्य नही रहा है। धर्मात्मा विभीपण ही राजा होने योग्य है। अव से वही लका का राजा है। उसे यदि यह वात स्वीकार न हो तो मेरे साथ लडने के लिए आ जाय। आने से पहले अपने क्रिया-कर्म भी वह करवा ले। लकापुरी से अतिम वार विदा लेकर आवे। यह सव तुम मेरी ओर से रावण से कहना।"

राम के वचनो से उत्साहित होकर अगद राम का दूत वनकर रावण के पास पहुचा। रावण अपने मत्रियो से घिरा हुआ एक ऊचे सिंहासन पर वैठा था।

अगद ने उससे कहा, "रावण, तुमने वालि का नाम तो सुना ही होगा। मै वालि का पुत्र और राम का दूत हू। तुम अव अपने पापो से छूटनेवाले हो। राम से लडते-लडते वीरो की गति पाओगे। राम और उनकी सेना दुर्ग के द्वार पर तुम्हारे साथ युद्ध की प्रतीक्षा मे खडी है। युद्ध मे प्राण देकर तुम सपूर्ण प्रायश्चित्त कर सकते हो। यदि अपनी प्राण-रक्षा की तुम्हारी इच्छा है तो श्रीराम से क्षमा-याचना करो। उनकी शरण मे जाओ। यदि यह वात तुम्हे प्रिय न हो तो युद्ध करने के लिए निकल पडो। अपने प्रियजनो से सदा के लिए विदा लेकर ही निकलना, और हा, अपनी उत्तर-क्रियाए भी पहले से ही करा लेना, क्योकि तुम्हारे कुल मे कोई भी वचनेवाला नही है। लका को भी एक वार जी भरकर देख लेना।"

अगद के वचनो से रावण का क्रोध चरम सीमा पर पहुच गया। उसने अपने किंकरो से कहा, "पकड लो इस दुष्ट को और मार डालो इसे इसी क्षण।"

दो लवे-चौडे राक्षस अगद को पकडने दौडे। अगद ने उनसे अपने को पलभर मे छुडा लिया और ऊपर की ओर उछला। महल की छत को अपनी लातो से तोड डाला और वही से वाहर निकलकर श्रीराम के पास वापस चला आया।

: ७८ :

जानकी की प्रसन्नता

पहाड पर से अगणित वानर सेना नीचे उतरी। वानरो की चाल से वहा की धरती हिलने लगी। नगर के पास के वन में वानर-सेना ने आराम से रात बिताई। उधर राक्षस भी जोरो से युद्ध का घोष करने लगे। शखो, भेरियो तथा दुदुभियो की ध्वनि चारो ओर गूजने लगी। उनसे वानरो का उत्साह खूब बढने लगा। रामचद्र स्वय सेना की व्यवस्था करते जाते थे। साथ ही लकापुरी की शोभा से विस्मित भी होते जाते थे। लक्ष्मण से कहने लगे, "लक्ष्मण, देखो तो सही, कितनी सुदर नगरी है ?"

जैसे ही लका पर उनकी दृष्टि गई, उनका ध्यान अशोकवाटिका में जा पहुचा, जहापर देवी सीता कारावास में निवास करती थी। राम सोचने लगे, "अवतक तो वैदेही के कानो में अवश्य ही यह समाचार पहुच गया होगा कि मै वानर और भालुओ की भारी सेना के साथ उसे छुडाने आ गया हू। अब उसकी चिंता मिटी होगी। मेरी सीता का मन अब प्रसन्न हुआ होगा।" किंतु वह कुछ बोले नही। चुपचाप काम में लग गये।

उधर राक्षस शुक रावण के पास पहुचा और बोला, "आपकी आज्ञा के अनुसार मैंने काम किया था, किंतु उसका कोई फल नही निकला। मैं बुरी तरह से पीटा गया। राम, जिसने विराध, कबध आदि राक्षसो को खेल-खेल में मार डाला था, अब यहा सुग्रीव की सेना के साथ आया हुआ है। उसने नगर के बाहर डेरा डाल दिया है। ऐसी भारी सेना मैंने कभी नही देखी। राजन्, अब आपका क्या विचार है ? अब भी समय है। खूब सोच-समझकर ही युद्ध में उतरें।" यो कहकर शुक ने धीरे-से रावण से कहा, "सीता को अब भी लौटा दिया जाय तो हम सब आराम से रह सकेंगे।"

यह सुनकर रावण की आखें लाल हो गईं। बोला, "क्या कहा तूने ?

खबरदार, जो मेरे सामने सीता को लौटाने की बात कही। देव, दानव, गंधर्व, यक्षों में कोई भी मेरे सामने आने का साहस नही कर सकता। इन्द्र और यम को भी मैं भस्म कर सकता हू। दो मनुष्य और बंदर और रीछो से मैं डरता नही। तुम सब देखोगे कि उनमें से एक भी प्राणी बचनेवाला नही।"

रावण ने सचमुच यही माना था कि उसके सामने से राम, लक्ष्मण और सुग्रीव बुरी तरह से हारकर भागनेवाले है। आज तक ऐसी कल्पना भी कोई नही कर सकता था कि रावण भी किसीसे हार मानेगा।

रावण ने अपने दो मंत्रियों को बुलाकर कहा, "मैं सुन रहा हू कि समुद्र पर दुश्मनो ने पुल बाधा है। मुझे विश्वास तो नही होता। फिर भी आप वहा जाय और मालूम करें कि यह बात कहातक सच है। शत्रुओ की ताकत भी देख आवें और मुझे विस्तार से बतावें।"

दोनो मंत्री वानर का रूप धारण करके सुग्रीव की सेना में घुस गये। घूम-फिरकर सारी बातें मालूम करने लगे। विभीषण ने इन दोनो राक्षसो को पहचान लिया। उन्हे पकडकर रामचद्र के सामने ले गया। इससे राक्षस डर गये। गिडगिडाकर बोले, "प्रभो, हमारी कोई गल्ती नही। राजा की आज्ञा थी, इसलिए हम आ गये, हमें आप मारें नही।"

राम ने अपने सैनिको को आज्ञा दी कि इन्हें हमारी सेना को अच्छी तरह से देखने दो। इन्हे मारो-पीटो मत। राम ने राक्षसो से कहा, "रावण से तुम दोनो जाकर कहो कि जिस बल के आधार पर वह सीता को उठा लाया था, उसी बल की अब परीक्षा होगी। राम के बाणो के लिए वह तैयार रहे।"

राम की बातें सुनकर स्वभाव के अनुसार दोनो राक्षसो के मुह से अपने आप "आपकी जय हो!" यह वचन निकल पड़ा। इसने वानरो ने मन में सोचा कि यह तो बडा अच्छा सगुन हुआ है।

दोनो राक्षस रावण के पास गये। हाथ जोडकर बोले, "हे रावण विभीषण ने हमें पहचान लिया। हमें राम के सामने खडा कर दिया। किंतु राम ने हमारे साथ युद्ध नही किया। हमें छोड दिया। हमने यही देखा कि राम की सहायता करने के लिए सुग्रीव और विभीषण दृढ़ खड़े है। इनको

सेना तो हमें अजेय लगती है। राम को पहली बार हमने देखा। हम आपके सामने क्या कहें ? हमें तो ऐसा लगा कि वह अकेला ही हम सबको जीत सकता है। हम आपसे फिर निवेदन करना चाहते हैं कि इस युद्ध में उतरना महा मूर्खता है। सीता को वापस पहुचाकर आराम से क्यो न रहा जाय ? आप जरा इस बात को फिर सोच लें।"

रावण ने डाटकर कहा, "अरे कायरो, क्या बक रहे हो ? राम ही क्या, यदि सारी दुनिया भी मेरे विरुद्ध खडी हो जाय तो भी मैं उससे डरनेवाला नही। मुझे कोई नही जीत सकता।"

इसके बाद स्वय रावण ने प्रासाद के ऊपर चढकर शत्रु की सेना को देखा। मन्त्रियो के साथ उसने लबी-चौडी बातें की। जो अभी-अभी शत्रु सैन्य देखकर आये थे उन राक्षसो से उसने मालूम किया कि वानरो में मुख्य कौन-कौन हैं।

उन राक्षसो ने रावण को सारी बातें बताईं। कौन-कौन वानर दुनिया के किन-किन भागो से आये हैं, उनकी कितनी शक्ति है, सेना में कितने रीछ हैं, वे सब रामचद्र पर कितनी भक्ति और कितना प्रेम रखते हैं, सबमें कैसी एकता है, इन सारी बातो का विस्तृत वर्णन मत्री सारण ने रावण के आगे किया। एक ऊचे प्रासाद पर खडे सब शत्रु-पक्ष के सैनिको को देख रहे थे। राक्षसो ने रावण को बताया, "वह देखिये, वही राम है। उसके पास जो खडा है, वह लक्ष्मण है। वीरो में वीर, नीति और युद्ध दोनो शास्त्रो को भली प्रकार जाननेवाला है। राम के लिए लक्ष्मण को दूसरा ही प्राण समझना चाहिए। वह राम का दाहिना हाथ है। उन दोनो के पास जो खडा है, वह सुग्रीव है। उसके गले में उसके भाई का दिया हुआ इद्र का हार झूम रहा है। सुग्रीव के पास आपका भाई विभीषण भी खडा है। इन सबको जीतना आसान नही है।"

अपने मन्त्रियो के मुख से शत्रुओ की प्रशसा रावण को अच्छी न लगी। उसका क्रोध बढा। बुद्धिमान राजा अपना हित चाहनेवाले राजदूत और मन्त्रियो पर कभी गुस्सा नही करता, किंतु रावण की बुद्धि अब भ्रष्ट हो चुकी थी। मन्त्रियों का कहना उसे बहुत ही अप्रिय लगा।

उसने अपने मन में भली-भाति विचार किया। उसे एक विचित्र उपाय सूझा। उसने सोचा कि यदि सीता किसी प्रकार से उसके वश में आ जाय तो राम का बडा अपमान होगा और उससे राम का दिल टूट जायगा। निराश होकर वह वापस चला जायगा। अब सीता को किसी युक्ति से राजी कर लेना चाहिए। तुरत उसने एक राक्षस को बुलाया और कहा, "हे विद्युत्-जिह्वा, तुम मन्त्र-तन्त्र अच्छी तरह जानते हो। मेरे लिए एक काम करो। मैं अभी सीता के पास जा रहा हू। तुम्हे वहा आने के लिए बुला भेजूगा। तब तुम राम का-सा एक सिर बनाकर ले आना।"

रावण वहा से अशोक-वाटिका में पहुचा। जानकी को उसने तरह-तरह की बातो से फुसलाने का प्रयत्न किया। बोला, "सीते, राम मर गया। मेरे वीर समुद्र पार करके वानरो के पास पहुचे। सारे वानर, तुम्हारा पति राम और तुम्हारा देवर लक्ष्मण सब सोये हुए थे। सोते हुए उन सबको उन्होंने वध कर डाला। बचे हुए वानर भाग गये। मेरे सैनिक राम का कटा हुआ सिर लाये है। अभी तुम्हे दिखाता हू। अब क्यो हठ करती हो? मेरी बात मान जाओ। आज ही मेरी पटरानी बन जाओ।" रावण ने एक राक्षसी को विद्युज्जिह्वा को बुला लाने के लिए भेजा।

राक्षस विद्युज्जिह्वा राम के सिर को लेकर आ पहुचा। सीता के सामने रख दिया। सीता एकदम चौंकी। सिर देखने में बिल्कुल राम के जैसा ही था। अपनी दुर्गति पर वैदेही बडे जोर से विलाप करने लगी।

इस बीच राम की सेना लका के बिल्कुल समीप पहुच गई थी। मन्त्रिगण रावण से इसी क्षण मिलना चाहते थे। रावण को जल्दी से दरबार में जाना पडा।

रावण नाना प्रकार के मन्त्र-तन्त्र करता-कराता था। किन्तु जबतक वह पर स्वय उस स्थल पर उपस्थित रहता था तबतक ही वे मन्त्र सफल होते थे। इसलिए जैसे ही रावण वहा से हटा, वह झूठा सिर पिघल गया। उसमें से धुआ-सा निकला और वह लुप्त हो गया।

विभीषण की पत्नी सरमा सीता के पास थी। उसने सीता

को सारी बातें बता दी । बोली, "राम को किसीने नही मारा। राम सकुशल हैं। बडी भारी सेना के साथ वह यहापर पहुच गये है। एक अद्‌भुत सेतु का निर्माण करके उसके ऊपर से सभी वानर इस पार आ गये है। सारे राक्षस उनमे भयभीत हो गये है। रावण तुम्हें धोखा देना चाहता है।"

सरमा ने सीता को और भी बहुत-सी बाते बताई। रावण के लगभग सभी मन्त्रियो ने उससे कहा है कि तुम्हे राम के पास लौटा दिया जाय। पर रावण ने उसके हितोपदेशो पर बिल्कुल ध्यान नही दिया। उसने उन सबसे कह दिया कि युद्ध में खुशी से मरूगा, किंतु सीता को लौटाकर राम के साथ कभी सधि न करूगा। इसलिए हे देवि, अब भय छोड दो। तुम्हारे पति शीघ्र ही रावण को मारकर तुम्हे यहा से मुक्त करेंगे।

यह जानकर कि श्रीराम लका पहुच गये हैं, सीता बहुत ही प्रसन्न हुई। उसी समय वानर-सेना के युद्ध-घोष से दिशाए कपित हुई। सीता पुलकित हुई। साथ ही राक्षसो के दिल भय के मारे धडकने लगे।

: ७९ :

नाग-पाश से चिंता और मुक्ति

रावण के सैनिकों में से कुछ लोग उसके पास दौड़े आये और कहने लगे कि लंकापुरी वानर-सेना-रूपी सागर से घिर गई है। क्रोधोन्मत्त होकर रावण ने प्रासाद के ऊपर से देखा कि बात सच है। नगर के बाहर चारों ओर वानर-ही-वानर दिखाई दे रहे थे। वृक्ष और शिलाओं को लेकर वे युद्ध के लिए तैयार खड़े थे। रावण सोच में पड़ा कि इन्हें किस प्रकार हराया जाय।

रामचंद्र भी उसी समय राक्षसों से सुरक्षित लंका को दुर्ग के बाहर से देख रहे थे। जब उन्हें यह विचार आया कि इसी किले के भीतर जानकी दीनावस्था में है तो उन्हें बड़ा रोष हुआ। वानर-वीरों को राम ने आज्ञा दी, "आगे बढ़ो, दुर्ग पर आक्रमण करो और राक्षसों को मार डालो। तनिक भी शिथिलता न दिखाओ।"

वानरों ने एक साथ घोष किया, "महाराज सुग्रीव की जय! श्री राम-लक्ष्मण की जय! हम राक्षसों को हरायेंगे।" इतना कहकर वे दुर्ग की दीवारों पर विशाल शिलाओं से और वृक्षों से प्रहार करने लगे। दीवारें टूटने लगीं।

रावण ने जब यह देखा तो उसने भी वानरों के नाश के लिए एक बड़ी सेना किले के बाहर भेज दी। राक्षसों के युद्ध के बाजे बजने लगे। "रावण की जय हो!" की प्रतिध्वनि चारों ओर सुनाई देने लगी। राक्षसों के पास हर प्रकार के शस्त्र थे। दुर्ग से बाहर निकलकर राक्षस-सेना वानर-सेना के साथ भिड़ गई।

वानरों के हथियार तो पहाड़ों की शिलाएं, बड़े-बड़े पेड़, उनके नुकीले दांत और नखादि ही थे। उनकी मुष्टिकाएं और लातें भी बड़ी भयानक थीं। दोनों ओर से भीषण युद्ध होने लगा। दोनों पक्षों के हजारों सैनिक ढेर

होगये। सारी भूमि रुधिर की कीचड से और कटे हुए अगो और मास से ढक गई।

इसके अतिरिक्त जगह-जगह पर द्वद्व-युद्ध होते रहे। अगद और इद्रजित् आपस में भिड गये। उन्हें देखकर ऐसा लगता था, मानो रुद्र और यम आपस में लड रहे है। प्रजघ नाम का राक्षस और विभीषण का मत्री सपाती आपस में युद्ध करने लगे। जाबुमाली और हनूमान, नील तथा निकुभ, लक्ष्मण और विरुपाक्ष के बीच में अलग-अलग द्वद्व हुए। इसी प्रकार कई विरोधी जोडिया थी। दो स्थानो में, सुदर-काड में और यहा, जावुमाली के साथ हनुमान के युद्ध का उल्लेख है। सभव है, एक ही नाम के दो राक्षस रहे हो।

इद्रजित् का रथ टूट गया, उसके घोडे मारे गये। अगद भी इद्रजित् के शरो से बुरी तरह घायल हो गया। जाबुमाली ने हनुमान पर अपनी गदा से जोर का प्रहार किया, हनुमान ने जाबुमाली के रथ को नष्ट कर डाला। राक्षस लोग राम पर भी शर-वर्षा करते जाते थे। राम ने अपने बाणो से कई राक्षसो को मार गिराया।

विद्युन्माली ने सुपेण पर कई तीर चलाये। एक बहुत बडी शिला फेंक कर सुपेण ने विद्युन्माली का रथ तोड डाला। रथ से नीचे कूदकर विद्युन्माली सुषेण पर अपनी गदा चलाने लगा। एक विशाल शिला से सुषेण ने विद्युन्माली को कुचलकर मार डाला। इस प्रकार सारे दिन युद्ध चलता रहा, और रात होने पर भी निशाचरो ने लडना नही छोडा। रात का युद्ध बहुत ही भयकर रहा। खून की नदी बहने लगी। दोनो पक्षो के हजारो सैनिक मारे गये। अगद ने इद्रजित् पर आक्रमण किया। उसका रथ टूट गया। सारथी मारा गया। वानरो ने अगद का साहस देखकर जोरो का जयघोप किया और उसे खूब प्रोत्साहित किया। रथ से नीचे खडे हुए इद्रजित् को बड़ा गुस्सा आया। अब वह कौशल को काम में लाया।

मत्र के प्रभाव से इद्रजित् अदृश्य हो गया। इस प्रकार छिपकर उसने राम-लक्ष्मण पर तरह-तरह के बाण चलाये। उन्हें लहू-लुहान कर डाला। वानर-सेना के कई वानरो ने इद्रजित् को ढूढ निकालने का प्रयत्न किया,

किंतु वे असफल रहे। मंत्र की शक्ति से इंद्रजित् अदृश्य था। उसकी शर-वर्षा चलती रही।

अंत में इंद्रजित् ने राम और लक्ष्मण पर महाशक्तिवाले विषैले नाग-बाण चलाये। उनसे राम और लक्ष्मण निश्चल होकर भूमि पर गिर पड़े। उनकी समझ में न आया कि यह क्या हो रहा है। पहले राम नाग-पाशो से कसे गये। उनके शरीर में सर्प के डसने जैसी पीडा होने लगी। वे बेसुध होकर अपने धनुष के दड के साथ नीचे गिर गये। लक्ष्मण ने जब राम की यह दीनावस्था देखी तो वह तड़पने लगा। नागपाश से वह भी आहत था। दूसरे ही क्षण वह भी बेहोश होकर शरो से भरी जमीन पर गिर पड़ा। वानरो ने देखा कि दोनो राजकुमार नीले पड़ गये है तो उनमें हाहाकार मच गया। वे जोर से चीत्कार करने लगे।

इंद्रजित् की खुशी का पार न था। उसने अपने साथी सैनिको को बड़ी शाबाशी दी। थका हुआ तो था ही। अपने पिता रावण को अपनी विजय की सूचना देने की भी उसे जल्दी थी। युद्धस्थल में ही वह रावण के पास पहुचा और बोला, "पिता, राम-लक्ष्मण नाग-बाणो के विष से बेहोश होकर नीचे गिर गये। अब उन्हें कोई बचा नही सकता। मै आपका काम पूरा करके आया हू।"

रावण ने बड़े आनंद से पुत्र को छाती से लगा लिया।

राक्षसो ने सोच लिया कि राम-लक्ष्मण मर गये। उनके अट्टहासो से दिशाए गूज उठी।

सारे वानर बुरी तरह घायल हो गये थे। राम-लक्ष्मण को निश्चेष्ट देख करके उनके मन में जीत की आशा जाती रही। सुग्रीव किंकर्तव्यविमूढ हो गया। तब विभीषण ने स्थिति सभाली। वह सुग्रीव से बोला, "इस प्रकार हताश हो जाना ठीक नही। राम-लक्ष्मण का चेहरा देखिये। चिंता करने की कोई बात नही। आप लोग धीरज रखें। दोनो राजकुमार थोडी ही देर में उठ खडे होगे।" यो धीरज बधाकर विभीषण ने वानर-सेना में फिर से उत्साह पैदा किया। विभीषण ने देखा कि वानर-सेना तितर-बितर हो गई

है। उसने सेना को फिर से एकत्र करके अपने-अपने स्थानो पर युद्ध के लिए खड़े रहने को कहा।

रावण ने लका में घोषित कर दिया कि राम-लक्ष्मण का इद्रजित के हाथ से वध हो गया। राक्षसियो को बुलाकर कहा कि वे फौरन सीता के पास जाय और कहें कि दोनो राजकुमार युद्ध-क्षेत्र में मारे गये है। वानर-सेना में अब कोई नही बचा। रावण ने यह भी कहा, "तुम लोग सीता को पुष्पक विमान में ले जाकर उसे युद्ध-क्षेत्र दिखा देना, जिससे उसका घमड चूर हो जाय। तब उसकी समझ में आयगा कि उसके लिए अब मेरे सिवा कोई दूसरा आश्रयदाता नही रहा।

राक्षसियो ने वैसा ही किया। जानकी ने ऊपर विमान से युद्ध-क्षेत्र देखा। देखा कि राम और लक्ष्मण निश्चल भूमि पर पडे हैं। उनके शस्त्र अलग पडे हैं। सीता का सारा धैर्य समाप्त हो गया। वह करुण विलाप करने लगी, "हाय, यह क्या हो गया! सारे ज्योतिषी, जो मेरा भविष्य बताते थे, झूठे निकले! किसीने आजतक यह नही कहा था कि मैं एक दिन विधवा हो जाऊगी। सबने बताया था कि मेरे पुत्र होगे। मैं पटरानी बनूगी। उनकी सारी बातें झूठी निकली। कौशल्या माता यह समाचार कैसे सुनेंगी? वह इसी आशा में जीवित है कि 'राम वापस आयगा। उसे मैं देखूगी।' राम, तुम्हारे दिव्य अस्त्रो का क्या हुआ? क्या वे सब बेकार निकले? मै अब क्या करु?"

तभी त्रिजटा नाम की राक्षसी, जो सीता के साथ विमान में थी बोली, "प्यारी सीता घबराती क्यो हो? तुम्हारा पति और देवर अभी मरे नही हैं। उनके मुख देखो। मुझे वे निर्जीव नही दिखाई देते। मायावी अस्त्रो के कारण उनकी यह दशा हुई है। थोडी ही देर मे दोनो राजकुमार जग पडेंगे। वानर-सेना को देखो। सब अपने-अपने स्थानो पर खडे है। इससे पता चलता है कि राम अभी मरे नहीं।'

त्रिजटा के इन अमृत-वचनो से सीता की जान-में-जान आई। वह विमान से राक्षसियो के साथ अशोक-वाटिका वापस पहुची। वहा पहुचकर वह चिता के मारे दुखी होकर रोती रही।

नागपाश की शक्ति धीरे-धीरे कम होती गई। राम के शरीर में कई घाव हो गये थे। फिर भी अपनी आत्म-शक्ति के बल से वह फिर होश में आने लगे। उन्होंने देखा कि लक्ष्मण में अभी तक चेतना-शक्ति नही आई है। राम ने सोचा कि लक्ष्मण मर गया। उनके मुख से एक करुण चीख निकल पड़ी। रोने लगे, "अब मैं युद्ध जीत करके क्या करूंगा? मेरे लक्ष्मण, तुम्हे मैं क्यों अपने साथ यहा घसीट लाया? तुम्हारे बिना मैं किस मुंह से वापस लौटूंगा? मैं जब कभी उदास होता था, कितने प्यार से तुम मुझको आश्वासन देते थे। अब चुप क्यों हो गये? मेरे प्राणप्रिय, हे लक्ष्मण, तुम्हारे बिना मैं जी नही सकता। तुम्हारे जैसा वीर कौन है? दुनिया में तुम्हारे जैसा भाई दुर्लभ है। सैकड़ो हाथवाले कार्तवीर्यार्जुन की तरह अपने दो ही हाथो से तुम राक्षसो से लड़े थे। तुम कैसे मरे? मुझसे यह सहन नही होगा। मैं हार गया। मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा। विभीषण को मैंने जो वचन दिया था, वह पूरा नही हो पाया। हे वानर-राज सुग्रीव, अपनी सेना के साथ तुम किष्किंधा लौट जाओ। तुम लोगो ने मेरे लिए बहुत त्याग किया। कष्ट उठाये। उसके लिए कृतज्ञता प्रकट करता हूं। अब मैं सोचता हूं कि आप लोगो के यहा रहने से कोई लाभ नही। मैं यही प्राण छोड़ दूंगा।"

उसी समय अपनी गदा लेकर विभीषण वहा आ पहुंचा। रंग में एकदम काले विभीषण को देखकर वानर डर गये कि इंद्रजित ही फिर से आ गया। वे भागने लगे। लेकिन जब उन्होंने ठीक से देखा कि वह विभीषण है तो कुछ निश्चिंत हुए।

वानरों को इस प्रकार कायर होते देखकर सुग्रीव को चिंता हुई। उसने अंगद से पूछा "मेरे वीर वानरों को यह क्या हो गया है? वे क्यों इस तरह डरे हुए है?"

अंगद ने कहा, "राम-लक्ष्मण को युद्ध में मारा गया समझकर वानरों में अब धैर्य नही रहा।"

बाद में सुग्रीव को पता चला कि वानरो ने विभीषण को इंद्रजित समझ लिया था और भागने लगे थे।

जाबुवान ने वानरो को समझाया। उससे वानरो में कुछ शाति हुई।

राम और लक्ष्मण दोनो के सारे शरीर में तीर लगे थे। विभीषण ने जब यह देखा तो वह आवेग में आकर रोने लगा। सुग्रीव ने विभीषण को ढाढस बधाया। उसने अपने मामा सुषेण से कहा, "तुम राम-लक्ष्मण को अपने कधो पर उठाकर किष्किधा ले चलो। मैं रावण का वध करके वैदेही को ले आऊगा।"

सुषेण बोला, "दोनो राजकुमार बहुत घायल हो गये है। उनके घाव ठीक करने के लिए कई औषधियो की आवश्यकता है। वे कहा से मिल सकती हैं, इसका पता हमारे हनुमान तथा अन्य कुछ वानरो को है। आप हनुमान को भेजकर औषधिया मगाइये।"

जब सुषेण इस प्रकार कह रहा था, तभी समुद्र विचलित हुआ, आधी-सी आई। सबने देखा कि पक्षिराज गरुड उडता हुआ उनकी तरफ आ रहा है। गरुड को देखते ही राम-लक्ष्मण के शरीर में चिपके हुए सारे सर्प-बाण एकदम लुप्त हो गये। एक भी न टिका।

गरुड ने दोनो राजकुमारो के शरीरो को प्यार से स्पर्श किया। राम-लक्ष्मण उसी क्षण एकदम स्वस्थ हो गये। उनकी खोई हुई शक्ति फिर से आ गई। दोनो राजकुमार पहले से भी अधिक शक्ति का अनुभव करने लगे। सुग्रीवादि वानरो की खुशी का ठिकाना न रहा।

राम ने गरुड से पूछा, "आप कौन है ? यह परम उपकार आपने कैसे किया ?"

गरुड ने उत्तर दिया "मैं आपका बहुत पुराना मित्र हू। साथी हू। आपका मगल हो। जब युद्ध जीतकर लौटोगे तब मैं विस्तार से बताऊगा कि मैं कौन हू।"

श्रीहरि का वाहन गरुड इतना कहकर वहा से चल दिया।

राम और लक्ष्मण को इस प्रकार फिर से खडे देखकर सारी वानर-सेना में नये प्राण का सचार हो गया। वे दुगुने उत्साह के साथ लका के दुर्ग पर आक्रमण करने लगे।

: ८० :

रावण लज्जित हुआ

रावण ने समझ लिया था कि राम और लक्ष्मण दोनो मारे गये। सो वह निश्चिंत होकर महल के अदर विश्राम कर रहा था। उसने जब सहसा वानरो का कोलाहल सुना तो उसे आश्चर्य होने लगा। पास में बैठे मत्रियो से उसने पूछा, "मुझे आश्चर्य हो रहा है। इन वानरो की इस खुशी का क्या कारण हो सकता है? राम-लक्ष्मण तो बुरी तरह से घायल होकर विषैली नागपाश में बद्ध एव मूर्च्छित थे। मैं सोचता था कि अबतक वे मर गये होंगे। ऐसी विषम परिस्थिति में वानर खुशी से क्यो चिल्ला रहे है? अवश्य ही कोई नई बात हुई होगी। आप सब मालूम करके बतावें।"

राक्षसो ने दुर्ग की दीवारो पर खड़े होकर देखा और रावण के पास वापस दौड़े आये। डरते-डरते बोले, "महाराज, सुग्रीव के नेतृत्व में वानर-सेना दुर्ग पर आक्रमण कर रही है। राम-लक्ष्मण दोनो पूर्ण स्वस्थ होकर खड़े है। हाथी जैसे अपनी रस्सियो को तोड़कर बधन से निकल आते है, उसी प्रकार राम और लक्ष्मण अपने शरीर पर लिपटे नागबाण को हटाकर बड़ी भारी सेना के साथ हमला कर रहे है। जवान सिंह के समान निर्भय युद्ध-क्षेत्र में घूम रहे है। युवराज इद्रजित् के अमूल्य नागपाश व्यर्थ हो गये।"

यह सुनकर रावण का चेहरा कातिहीन हो गया। बोला, "आजतक मैंने किसी प्राणी को इस नागबाण के लग जाने पर जीवित नहीं देखा। यदि ये बाण भी व्यर्थ गये तो हमारा काम बहुत ही कठिन हो गया है।"

रावण को राम की शक्ति पर बहुत ही क्रोध आया। तुरत धूम्राक्ष नामक राक्षस को बुलाकर उसने कहा, "हे धूम्राक्ष, तुम्हारे रहते मुझे किस बात की चिंता हो सकती है? मदद के लिए बहुत-से राक्षसो के साथ निकल पड़ो और राम-लक्ष्मण का वध करके लौटो।"

धूम्राक्ष ने रावण के इस आदेश को अपना गौरव समझा। कई राक्षसो को लेकर वह नगरी के बाहर आया। वहा हनुमान के नेतृत्व में वानर-सेना आक्रमण कर रही थी। धूम्राक्ष ने उनका सामना किया। दोनो पक्ष के काफी सैनिक मारे गये। घमासान युद्ध हुआ। अत में धूम्राक्ष मारुति के हाथो मारा गया। बचे हुए राक्षस युद्ध-क्षेत्र से भागकर लका में चले गये। राक्षस सेना में मृतको की सख्या बहुत भारी थी।

रावण ने जब यह सुना तो उसका आश्चर्य और भी बढा। उसके मुह से शब्द नही निकल रहे थे। होठ काप रहे थे। उसने वज्रदण्ट्र से कहा, "हे वीरश्रेष्ट, अब विलब न करो। अभी निकल पडो। इन दुष्टो की हत्या करना तुम्हारा पहला काम है।"

वज्रद्रष्ट्र ने रावण को प्रदक्षिणा करके नमस्कार किया और उससे विदा लेकर वह युद्ध-क्षेत्र में आया। दुर्ग के दक्षिण-द्वार से वह बडी भारी सेना को साथ लेकर निकला। वहा अगद का आक्रमण हो रहा था। वज्रदष्ट्र के आधिपत्य में निशाचरो ने जोरो से युद्ध किया। असख्य वानर इस युद्ध में मारे गये। तो भी वानरो का उत्साह कम न हुआ। अपने आयुध वृक्ष और गिरि-शिखरो से उन्होंने सैकडो राक्षसो को मार गिराया। दोनो ओर के सैनिको में बडा रोष था। अत में अगद और वज्रद्रष्ट्र दोनो के बीच भयकर द्वद्व होने लगा। काफी समय तक युद्ध चला। आखिर में वालि-पुत्र अगद के हाथो वज्रद्रष्ट्र मारा गया। वानरो ने अगद को घेरकर जोरो की गर्जना की।

अब रावण ने क्रूर राक्षस अकपन को बुला भेजा। कहा, "अपने योद्धाओ में से अच्छे-से-अच्छो को चुनकर अपने साथ ले जाओ। सुग्रीव और राम को किसी भी उपाय से मारकर ही लौटना। तुम्हारी शूरता पर मुझे भरोसा है।"

प्रहस्त ने अकपन के साथ बहुत ही शूरवीर राक्षसो को भेजा। अकपन युद्ध में सचमुच कभी कपित नही होता था। बडा चतुर योद्धा था। बडी भारी फौज के साथ, नाना प्रकार के शस्त्र लेकर, वह युद्ध के लिए चल पडा। उस समय बडे अशकुन होने लगे। अकपन ने और उसकी फौज ने उनकी कोई परवा न की। राक्षसो के सिंहनाद से सागर भी विचलित होने लगा।

भयंकर युद्ध हुआ। खून की नदी बहने लगी। लाल धूल आसमान में छा गई। अंधकार हो गया। दोनों पक्षों के अनगिनत लोग मरे। अकंपन के साथ वानर कुमुद, नल, मैंद और द्विविद लड़े। अकंपन की असाधारण शूरता देखकर सब चकित हो गये।

वानर हारने लगे। भाग निकलनेवाले ही थे कि तभी वहां हनुमान आ पहुंचा। अकंपन की शर-वर्षा की हनुमान ने परवा न की। एक बहुत ही भारी शिला लेकर हनुमान ने घुमाकर राक्षस के ऊपर फेंकी। किंतु राक्षस के बाणों से वह चूर-चूर हो गई। हनुमान ने अपने शरीर को बहुत ही बड़ा किया। उसके तेज से सबों की आंखें चकाचौंध होने लगीं। उसने एक बहुत ही बड़े पेड़ को घुमाकर राक्षस की ओर लक्ष्य करके फेंका। अकंपन इस बार बचा नहीं। वृक्ष के तीव्र प्रहार से वहीं ढेर हो गया। उसकी सेना डर के मारे दुर्ग की ओर भाग खड़ी हुई। वह भागते-भागते पीछे की ओर देखती जाती थी कि हनुमान उसका पीछा तो नहीं कर रहा है। इस युद्ध में काफी राक्षस मारे गये। वानरों ने जय-जयकार करके हनुमान की सराहना की।

अकंपन की मृत्यु का समाचार पाकर रावण का चेहरा कुम्हला गया। राम के प्रति उसका क्रोध बढ़ता ही जाता था। उसने फिर से एक बार नगर की सुरक्षा का निरीक्षण किया। सुरक्षा की व्यवस्थाएं देखकर रावण के मन में कुछ शांति हुई। मुख्य सेना-नायक प्रहस्त से उसने बातें कीं। बोला, "हमारा लक्ष्य तबतक पूरा नहीं हो सकता जबतक हम इन वानरों के आक्रमण को पूरी तरह से दबा नहीं देते। मैं, कुंभकर्ण, तुम, इंद्रजित और निकुंभ, चारों में से एक को अब युद्ध-क्षेत्र में जाना होगा। वानरों में जो मुख्य हैं, उन्हें पहले मार डालना चाहिए। तभी हमारा काम बनेगा। इन जंगली वानरों से हमें डरना नहीं चाहिए। इन्हें युद्ध की कला थोड़े ही आती है! हथियारों को तो इन वानरों ने देखा भी नहीं होगा? हम राक्षसों को चाहिए कि अपनी हुंकारभरी गर्जना से ही इन बंदरों को भगा दें।"

प्रहस्त ने रावण की बातें सुनीं। विनय से उत्तर देने लगा, "हे राजा, मैंने जो सोचा था वही हो रहा है। हम सबने आपसे कहा था कि [illegible] मार्ग

तो सीता को राम के पास लौटा देना है, पर आप नही माने। मैंने आपका नमक खाया है। अपना तन, मन, धन और परिवार आप पर न्योछावर कर देने के लिए तैयार हू। मै अभी अपनी सेना के साथ लडाई के मैदान में पहुचता हू।"

सेनापति प्रहस्त की आज्ञा से एक बडी भारी सेना तैयार हुई। निकलने से पहले प्रहस्त ने हवन, ग्रह-शाति, ब्राह्मण-पूजा आदि विधिया कराई। सुगधित धुआ सब जगह फैल गया। युद्ध की भेरी बजी। सेनापति प्रहस्त रण-क्षेत्र में जाने लगा। उस समय भी कई अपशकुन हुए। प्रहस्त ने उनकी ओर ध्यान नही दिया और न हिम्मत हारी। अपनी सेनासहित पूर्वद्वार से वह रणक्षेत्र में पहुचा। जब वानरो ने यह देखा तो वे भी लडने के लिए तैयार हो गये।

जलते दीपक पर जैसे पतगे दौड-दौडकर जाते है, राक्षस सैनिक प्रहस्त के सेनाधिपत्य में वानरो के बीच बडे उत्साह से घुस पडे। बडी निर्दयता से लडाई शुरू हो गई।

राम ने विभीषण से पूछा, "यह जो भारी सेना लेकर आ रहा है, कौन है?"

विभीषण ने उत्तर दिया, "यही प्रहस्त है। रावण का सुप्रसिद्ध सेनाधिपति। रावण की समूची सेना का एक-तिहाई भाग इसके अधीन है।"

राक्षसो के पास तो हर प्रकार के शस्त्र थे। पर वानर किसी प्रकार से कम न निकले। उधर हथियारो की वर्षा हुई तो इधर पहाड जैसे पत्थर और पेड आसमान में फेंके जाते थे। मल्लयुद्ध भी होने लगा। दोनो पक्षो में मृतको की सख्या बहुत बढती गई।

प्रहस्त की सेना के मुख्य वीर नरातक, महानाद और कुभहनु को द्विविद, दुर्मुख और जाबवान ने मार डाला। प्रहस्त और नील बडे भयकर रूप में लडने लगे। प्रहस्त एक भारी लोहे के मूसल से नील को मारने चला, किंतु उससे पहले ही नील के शिला-प्रहार से महासेनापति प्रहस्त का वध हो गया। राक्षस सैनिक तुरत भागने लगे। नील ने राम के पास पहुचकर

नमस्कार किया और प्रहस्त के मारे जाने का समाचार सुनाया। दोनों राजकुमारों ने नील की बड़ी सराहना की।

× × ×

रामायण तथा महाभारत इन दोनों ग्रंथों में युद्ध का वर्णन एक ही समान लंबा और कुछ अनाकर्षक भी हो गया है। यथासंभव मैंने इस वर्णन को संक्षिप्त रूप दिया है, किंतु इसका अर्थ यह नहीं कि युद्ध बहुत जल्दी समाप्त हो गया। हथियार खूब टकराये। घायलों का भीषण हाहाकार हुआ। असंख्य लोग मरे और खून की नदियां बहीं।

× × ×

युद्ध-क्षेत्र से जो राक्षस भाग निकले थे, उन्होंने रावण को बताया कि अग्निपुत्र नील ने प्रहस्त का वध कर डाला। रावण को विश्वास नहीं हुआ। बोला, "देवेंद्र और उसकी सेना को मेरे सेनापति प्रहस्त ने हराया था। क्या यह बात सच है कि वीरों में वीर प्रहस्त मारा गया? अब मैं कैसे शांत रहूंगा? इन राम-लक्ष्मण को तथा उनकी वानर-सेना को अब मैं जीवित न छोड़ूंगा।"

अब रावण स्वयं रणारूढ़ हो गया। जगमगाते सोने के रथ पर उसे जाते हुए देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो रुद्रदेव भूतगणों के साथ जा रहे हैं। रावण दुर्ग से बाहर युद्ध-क्षेत्र में आया। रावण ने राम की सेना को देखा। वानर-सेना का शोर समुद्र की लहरों की आवाज से कम न था।

राक्षस-वीर वानरों से भिड़ गये। वानर तो इसकी प्रतीक्षा में ही थे। राक्षसों की विभिन्न शक्तियों के बारे में विभीषण ने राम को बताता गया। बोला, "वह देखो, महा रथ पर बाल-सूर्य की तरह रावण का लड़का इंद्रजित खड़ा है। उसके पास ही दशकंठ रावण अपने रथ में खड़ा है।"

राम ने रावण को देखा। रावण के तेजस्वी शरीर से राम बड़े प्रभावित हुए। सोचने लगे कि इसमें कोई शक नहीं कि यह रावण बहुत पराक्रमी है, किंतु साथ-ही-साथ महादुष्ट भी है। अब इसे मारने का अवसर आ गया है।"

रावण के हाथो कई वानर मरे। नील ने कुछ देर रावण से लडाई की। उसे काफी हैरान किया। अत में रावण के आग्नेयास्त्र से वेहोश होकर वह गिर पडा। हनुमान ने रावण के साथ वहुत देर तक मुष्टियुद्ध किया। रावण पर उसका विशेप असर नही हुआ। कई वानर मरे। फिर लक्ष्मण आये। रावण के साथ उन्होने भी वहुत युद्ध किया। वह भी वेहोश होकर गिर पडे। उसी समय हनुमान ने आकर लक्ष्मण को युद्ध-क्षेत्र से हटा लिया। राम ने स्वय हनुमान के कधे पर चढकर रावण के साथ भीषण युद्ध किया। उससे रावण वहुत घायल हो गया। उसका मुकुट नीचे गिर गया, रथ टूट गया। उसका धनुप हाथ से अलग होकर गिर पडा। वह किंकर्तव्यविमूढ होकर गिर पडा।

तव राम रावण से वोले, "हे रावण, आज मैं तुम्हे छोडे देता हू। तुमने अच्छी तरह युद्ध किया। आज घर लौटो। आज की रात आराम करो। कल फिर तैयार होकर आना।"

रावण वडा लज्जित हुआ और नीचे की ओर सिर झुकाये वापस लकापुरी में चला गया।

: ८१ :

कुंभकर्ण को जगाया गया

जब युद्ध-भूमि में रावण का मुकुट टूटकर गिर पड़ा और लज्जा के कारण सिर झुकाये उसे वापस लौटना पड़ा तो उसे देखकर देवतागण बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्हें लगा कि उनके बरसों के दुःख और क्लेश का शीघ्र ही अंत होनेवाला है।

रावण बड़ी मनोव्यथा के साथ अपने किले में आया। वहां शांति के साथ विचार करके मन को स्थिर किया और अपने किंकरों को कुंभकर्ण को नींद से जगाने की आज्ञा दी।

एक पुराने शाप के कारण कुंभकर्ण जब कभी सोता था तो महीनों सोया करता था। इस बार उसकी नींद को शुरू हुए कुछ ही दिन हुए थे। रावण ने सोचा कि उसको जगाने का काम कठिन न होगा। उसने अपने मंत्रियों से कहा, "किसी भी प्रकार भाई कुंभकर्ण को जगाना चाहिए। उसे सब बातें बताकर युद्ध के लिए तैयार रहने को कहो।

"मुझे लगता है मेरा तपोबल अब काम नहीं कर रहा है। ऋषियों ने जो कहा था वह शायद सच निकलेगा। दुर्ग की रक्षा चारों ओर से खूब सावधानी से की जाय। कुंभकर्ण अभी-अभी ही सोया है। उसकी नींद वैसे तो महीनों की होती है, पर चूंकि वह अभी-अभी सोया है, इसलिए उसे जगाने में कठिनाई नहीं होगी। जल्दी ही जग जायगा। उसके सामने हमारे वैरी नहीं टिक सकते। यदि वह उठ जाय तो मैं निश्चिन्त हो जाऊंगा। सोते रहने के कारण उसे इस बात का खयाल तो नहीं है कि मैं कितना व्याकुल हूं।"

रावण की आज्ञा पाते ही राक्षस लोग कुंभकर्ण के महल में घुस पड़े। कुंभकर्ण को सोने से उठने के बाद असाधारण भूख लग जाया करती थी।

इसलिए ढेर-का-ढेर खाना उसके लिए तैयार किया गया। शख, भेरी आदि वाजो को उसके कानों के पास खूब जोर से बजाया गया। कई राक्षस उसके शरीर पर मुष्टियो से प्रहार करने लगे। उन लोगो की उसे चिल्ला-चिल्ला-कर जगाने की आवाज दूर-दूर तक सुनाई देने लगी। पशु-पक्षी उससे घबराये। डर के मारे वे भी जोर-जोर से आवाजें करने लगे।

कुभकर्ण की शाप-निद्रा तब भी भग न हुई। राक्षस अव उसपर चढ कर नाचने-कूदने लगे। लाठियो से जोर-जोर-से मारने लगे। तव भी वह न जगा। राक्षसो ने उसपर हाथियो को चलाया। तब जाकर कुभकर्ण ने आखें खोली। अपने ऊपर से सवको वडी आसानी से नीचे गिराकर उसने अगडाई ली। इस प्रकार असमय में ही निद्रा के टूट जाने से उसे सवपर वडा क्रोध आया। ऐसा क्यो किया गया, उसकी समझ में नही आया। भूख लगने के कारण सामने रखे ढेर-के-ढेर अन्न और मास पर अच्छी तरह से हाथ साफ किया। वडे-वडे घडो में शराव और कच्चा खून भरा था, उसे पी गया। जव उसकी भूख-प्यास कुछ कम हुई तो उसका क्रोध भी कुछ शात हुआ। राक्षसो को अव उसके पास जाकर वात करने की हिम्मत हुई। यूपाक्ष रावण का एक मत्री था। उसने कुभकर्ण को हाथ जोडकर नमस्कार किया और वोला, "स्वामिन्, हम लोग सुग्रीव और राम की सेना के द्वारा वुरी तरह पीटे गये हैं। सीता के कारण घोर युद्ध शुरू हो गया है। राम-लक्ष्मण ने और वडे-वडे वानरो ने हममें से कइयो का वध कर डाला है। ऐसे लडनेवालो को हमने आजतक देखा नही। लकापुरी चारो ओर से वानर-सेना से घिरी हुई है। रावण स्वय वुरी तरह से हार खाकर युद्ध भूमि से लौटा है। वह मुश्किल से जीवित लौट पाया है।"

रावण के अपमान की वात कुभकर्ण से सुनी न गई। क्रोधावेश में आकर-उठ खडा हुआ। वोला, "इसी क्षण मैं सारे दुश्मनो को मार डालूगा। राम-लक्ष्मण का खून पीऊगा। उसके वाद ही भैया रावण से मिलूगा।"

कुभकर्ण के जागृत हो जाने से रावण के मत्री वहुत खुश हुए। उन्होने कहा, "आपका कहना ठीक है, फिर भी एक वार राजा से मिलकर ही

युद्ध में जाइये। सभव है, राजा आपको कुछ सलाह देना चाहते हो।"

कुभकर्ण मान गया। उसने मुह धोया। अपने बल की वृद्धि की। फिर यमराज की तरह अपनी चाल से भूमि को हिलाता हुआ रावण के दरबार में पहुचा। राजमार्ग से होता हुआ जब वह जाने लगा तो राक्षस उसकी जय-जयकार करने लगे। उन्होंने उसपर पुष्पवृष्टि की।

कुभकर्ण रावण के दरबार में पहुचकर उसके सामने जा खड़ा हुआ। उसे देखकर रावण अपने आसन से उठकर उतरा और छोटे भाई को बड़े प्यार से आलिगन किया।

कुभकर्ण ने पूछा, "भैया, क्या आज्ञा है? मुझे किस कारण से आपने जगाया है। आपकी चिता का कारण जानना चाहता हू। आपका जो कोई दुश्मन हो, उसे अभी खतम करके आता हू।"

रावण ने उत्तर दिया, "प्यारे भाई, अब तो बात बहुत बढ़ गई है। तुम सो गये थे, इसलिए तुम्हे पता नही चला। राम के कारण मैं बड़ा परेशान हो गया हू। सारी लका को वानरो ने घेर लिया है। हमारे बड़े-बड़े वीर उनका सामना करते हुए काम आ गये। राम, समुद्र पर बहुत लबे सेतु का निर्माण करके, बड़ी भारी सेना के साथ लड़ने आ गया है। मेरा अब तक की लड़ाई में काफी धन खर्च हो गया। सेना भी बहुत घट गई है। अब तुम्ही बिगड़ी स्थिति को सभाल सकते हो। मेरा भरोसा अब तुम्हारे ही ऊपर है। तुमने अनेक बार देवो को युद्ध में बुरी तरह से हराया है। मेरे ऊपर तुम जो प्रेम रखते हो उसे मैं अच्छी तरह जानता हू। वीरता में तुम्हारे समान और कौन हो सकता है। अभी युद्ध-भूमि पर पहुच जाओ। शत्रु-सेना को निर्मूल करके मुझे और लका को बचाओ।

कुभकर्ण को रावण की बातें सुनकर हंसी आई। शुरू में रावण को चितित और पीड़ित देखकर उसे भी बहुत दुःख हुआ था। शत्रु पर उसे क्रोध भी आया था। अब कुभकर्ण की नींद पूरी तरह से टूट गई थी। पुरानी बातें साफ-साफ याद आने लगीं। वह हंसा और बोला।

"भैया, मैं आपको एक बात बताना चाहता हू। मेरी इच्छा तो इतना

करें। पहले आपने भारी परिषद् बुलाई थी। उसमें हम सबने अपना-अपना विचार बताया था। हमने आपसे जो कहा था, वही बात हो गई। हमने आपकी भलाई के लिए चेतावनी दी थी, पर आपने उसकी अवहेलना कर दी। सीता-हरण न्याय-विरुद्ध था। उसीका फल अब आपको भोगना पड रहा है। किसी काम में हाथ डालने से पहले फलाफल के बारे में सोच लेना चाहिए। हाथ डाल देने पर फिर पछताने से क्या लाभ हो सकता है। यह तो मूर्खता की निशानी है। सीता को पाने की इच्छा जब हुई तो आपको राम-लक्ष्मण को मारकर बाद में उसे लाना चाहिए था। आपने तो उल्टा ही काम कर डाला। आपको ठीक उपदेश दिया गया, पर उसपर आपने ध्यान नही दिया। अपनी इच्छानुसार चलना, किसीसे सलाह लिये बिना कदम उठाना एक राजा के लिए सर्वथा अनुचित है। राजा को इतना अवश्य समझना चाहिए कि कौन उसका भला चाहता है और कौन उसके प्रति उदासीन है ?"

कुभकर्ण के इस राजनीति के उपदेश से रावण कुछ नाराज हुआ, किंतु चूकि वह सकट में फसा था, क्रोध को रोककर बोला, "भैया, अब इन बातो को छोडो। इनसे अब क्या फायदा हो सकता है ? जो हो गया, सो हो गया। अब मै तुम्हारी सहायता चाहता हू। न्यायपूर्वक या अन्यायपूर्वक, विवेकपूर्ण अथवा अविवेकपूर्ण, घमड के कारण अथवा मूर्खता के कारण, हमसे जो कुछ हो गया, वह तो अब बदल नही सकता। अब हम सकट में फस गये है। इसमें से छूटने के लिए क्या किया जाय, यही सवाल है। ऐसी परिस्थिति में तुम्हें चाहिए कि अपनी बुद्धि और वीरता से मेरी मदद करो। सच्चा मित्र वही है, जो ऐसी परिस्थिति में सहायता करता है। यदि तुम मुझे सचमुच चाहते हो तो इस समय मेरी सहायता करो। तुम्हारी वीरता को मैं अच्छी तरह जानता हू। तुम्हारी शक्ति को पहचानता हू। मैं बहुत ही परेशान हो गया हू। मुझे ऐसे समय में तुम कैसे छोड सकते हो ?"

कुभकर्ण बोला, "अब आप चिंता छोड दीजिये। मैं अभी उन सभी लोगो को, जो आपके दु ख के कारण है, मारकर लौटता हू। मै आपका छोटा भाई हू। हमेशा आप ही का साथ दूगा। बस, समझ लीजिये कि राम और लक्ष्मण

खतम हुए। राम का कटा हुआ सिर थोड़ी देर में आपके सम्मुख रख दूंगा। आप चिंता छोड़ दें। सुग्रीव के शरीर से एक झरने के समान खून बह निकलनेवाला है। मुझे मारे बिना कोई शत्रु आपके पास नहीं आ सकेगा। और मुझे मारने की शक्ति है किसमें?"

जैसे-जैसे कुंभकर्ण इस प्रकार बोलता गया, उसका दर्प भी बढ़ता गया। उसने रावण से कहा, "चाहे कैसा भी शत्रु हो, मैं उसका वध कर डालूंगा। यमराज से भी मैं डरनेवाला नहीं। सूर्य हो अथवा अग्नि, उसका मैं सामना करूंगा। सबको चबाकर खा जाऊंगा। अच्छा, मैं चला।"

यों कहकर कुंभकर्ण रणक्षेत्र की ओर जाने लगा।

नींद से जगने पर पहले उसकी समझ में ही कुछ नहीं आया था। वह क्रोध से भरा हुआ था। बाद में खा-पीकर और रावण से बातें होने पर उसकी बुद्धि जरा ठिकाने आई। तभी उसने रावण को नीति की बातें समझाईं। उसके बाद अपने प्रिय भाई को जब आफत में फंसे देखा, तो हर हालत में सहायता करने का उसने निश्चय कर लिया।

कुंभकर्ण के आश्वासन पर रावण भी बहुत खुश हुआ। उसने सोचा, "ऐसा प्यारा, ऐसा शूर और कौन हो सकता है?" उसकी चिंता दूर हो गई। उसे पूरा भरोसा था कि कुंभकर्ण को कोई नहीं हरा सकता।

कुंभकर्ण त्रिशूल लेकर अकेला ही युद्ध-भूमि पर जाने लगा। रावण ने उसे रोककर कहा—"नहीं, अपने साथ सेना अवश्य ले जाओ।"

यों कहकर लंकेश ने भाई कुंभकर्ण को बहुत-से आभूषण पहनाये। उसके गले में फूलों का हार डाला, और राक्षसों की बड़ी सेना उसके साथ भेजी और आशीर्वाद दिया, "अब जाओ, मेरे प्रिय भाई, और जाकर शत्रुओं का संहार करके जय-ध्वनियों के साथ विजयी होकर रण-भूमि से लौटो।"

कुंभकर्ण ने रावण की प्रदक्षिणा की और उसे नमस्कार किया। भाई से विदा लेकर सर्वाभरण-भूषित कुंभकर्ण त्रिविक्रम की तरह शूलयुक्त होकर युद्धभूमि की ओर चल पड़ा। उसके पीछे-पीछे राक्षस-सेना आई। राज-वीथि पर नागरिकगण उसपर फूल बिखेरते जाते थे। जलते हुए ज्वालामुखी से

समान कुभकर्ण आगे वढा। दुर्ग की दीवारो को आसानी से लाघते हुए यमराज के समान उसे देखकर वानरो का धैर्य छूटने लगा। उनमें आतक छा गया। वे इधर-उधर छिपने और भागने लगे। वानरो के नेताओ ने वडे प्रयास से उन्हे एकत्र किया। युवराज अगद ने वानरो को धीरज और साहस बधाया।

: ८२ :

चोट पर चोट

अगद के बार-बार समझाने और धैर्य दिलाने पर सारे वानर फिर से एकत्र होकर कुभकर्ण के ऊपर आक्रमण करने लगे। पत्थर और वृक्षो की उस पर वर्षा करने लगे। पर कुभकर्ण पर इनका क्या असर होता था! हँसते-हँसते वह वानरो का नाश करने लगा। कुभकर्ण के शौर्य और क्रूरता के सामने वानर टिक नही पाये। बार-बार अगद ने भागते हुए वानरो को रोका। कभी समुद्र के सेतु पर, कभी आकाश मे और कभी जगलो मे जा-जाकर वानर छिपने लगे, पर अगद सबको वापस ले आता था। द्विविद, हनुमान, नील, वृषभ और शरभ आदि सारे वानरो ने एक साथ मिलकर कुभकर्ण पर प्रहार किया, पर कुभकर्ण को वे हिला तक न सके। वह वानर-वीरो को बुरी तरह से घायल करके नीचे गिराने लगा। वानर-सेना की भयकर क्षति हो गई। अगद बेहोश हो गया। सुग्रीव भी सुधि-हीन होकर नीचे गिर पडा। अचेतन अवस्था मे ही कुभकर्ण सुग्रीव को अपने हाथो मे उठाकर लकापुरी के अन्दर ले जाने लगा। राक्षस-सेना मे आनद का सागर उमड पडा। कुभकर्ण अपने भाई रावण को सुग्रीव का शव पुरस्कार मे देने के लिए उसे घसीटता हुआ तेजी से जाने लगा। वह उसे कभी खीचता तो कभी कधो पर उठाकर लकापुरी के राजमार्ग से रावण के महल की ओर बढा। नागरिक विजयी कुभकर्ण पर पुष्पवृष्टि करने लगे। चदन और सुगधि की सामग्रियो की वर्षा करने लगे। इस प्रकार कुछ समय बीता। इतने मे सुग्रीव धीरे-धीरे होश मे आने लगा। सोचने लगा, "यह क्या हो रहा है, मै कहाँ हूँ?" पूरी तरह से जागृत होने पर स्थिति उसकी समझ मे आ गई। वह एकदम उछला और अपने तीखे नोकीले नखो से कुभकर्ण के कानो को और नाक को बुरी तरह से काटकर घायल कर दिया। अपने नुकीले नाखूनो से राक्षस के शरीर को जगह-जगह से नोचने लगा।

कुभकर्ण इस पीडा को सहन न कर पाया। उसने सुग्रीव को जमीन पर पटक-कर पैरो से कुचल डालना चाहा। जसे ही कुभकर्ण ने सुग्रीव को नीचे पटका वह वानरेंद्र आकाश में उछलकर चला गया और रामचद्र के पास पहुच गया।

हनुमान जानता था कि सुग्रीव किसी-न-किसी उपाय से वापस आ पहुचेगा। उसने वानर सैनिको को यत्न से स्थिर रखा और युद्ध के लिए उन्हे फिर से तैयार किया।

कुभकर्ण के कटे हुए कानो से और नाक से खून की धारा बहने लगी। सध्या-काल के बादल के समान उसका शरीर रक्तवर्ण का हो गया। अपमान के कारण उसका क्रोध वढ गया। भारी लोहे का मूसल लेकर वह दुबारा साक्षात् यमदेव के समान युद्धभूमि पर पहुच गया।

कुभकर्ण का सामना करना किसीसे न बना। वह कभी वानरो को मार गिराता तो कभी उन्हें खा जाता। वानरो ने मिलकर राक्षस के शरीर को चीरने-फाडने का प्रयत्न तो किया, पर किसीसे कुछ बना नही। जैसे मक्खियो को हम हाथ से हटा लेते है, वैसे ही वह वदरो को धकेल देता था। लक्ष्मण की उसने परवा न की। वह राम की तरफ दौडा।

राम ने कुभकर्ण के साथ काफी देर युद्ध किया। रामचद्र का वाण कुभ-कर्ण का कुछ भी विगाड न कर सका। वही वाण, जिसने सात साल-वृक्षो को एक साथ भेद दिया था, वालि की वज्रोपम छाती को चीर गया था, अव निकम्मा हो गया। दूसरे तीक्ष्ण वाणो से राम ने कुभकर्ण के हाथ-पैरो को धड से अलग कर दिया। फिर भी कुभकर्ण ने लडना वद न किया। हाथ और पैरो के विना ही वह युद्धभूमि में इधर-उधर घूमकर वानरो को मुह से निगलता गया। तव राम ने एक वहुत ही शक्तिशाली वाण से कुभकर्ण का सिर छेद दिया। राक्षस का कटा हुआ सिर उस वाण के वेग के कारण उडकर एक उडते हुए ज्वालामुखी-पर्वत के समान लकापुरी के अदर जा गिरा।

रावण के पास राक्षस खवर ले गये। वोले, "हे राजा, कुभकर्ण युद्ध में मारा गया। अद्वितीय पराक्रम के साथ लडा। उसने असख्य वानरो की

हत्या कर डाली। राम और लक्ष्मण को उसने बेहाल कर दिया। वही वीर युद्धभूमि में काम आ गया। आपके भाई के कटे अंग कुछ समुद्र में जा पडे हैं और कुछ दुर्ग-द्वार को रोककर पडे हैं। सिर उडकर नगर के अंदर पडा हुआ है।"

यह सुनकर राक्षसेंद्र रावण को ऐसा लगा मानो उसकी देह से प्राण ही उड़ गये। वह बेहोश होकर गिर पडा। कुछ देर बाद उसे होश आया। करुण विलाप करने लगा, "हाय, मेरे प्यारे कुंभकर्ण, हे अतुल्य पराक्रमी, मुझे छोड़कर कहां चला गया? अब मैं क्या करूंगा? मुझे तो ऐसा लगता है कि मेरे हाथों को ही किसीने काट डाला है। तुम तो सदा अजेय थे। तुम्हें राम ने कैसे मारा होगा? मैं देख रहा हूं कि आकाश में देवतागण खुशियां मना रहे हैं, वानर नाच रहे हैं। अब मुझे यह राज्य नहीं चाहिए। मेरे प्यारे भाई, तुम्हारे बाद अब मुझे जीने की इच्छा नहीं रही। जिसने तुम्हारा वध किया, उसके मैं टुकड़े-टुकड़े करके ही छोड़ूंगा। राम को मैं मारे बिना न रहूंगा।"

फिर शोकाकुल होकर रोने लगा, "हाय मैंने विभीषण की बात क्यों नहीं मान ली?"

रावण के पुत्र उसे आश्वासन देने लगे। बोले, "अब आप रोना-धोना बंद करें। दैन्यता छोडें। आपके पास पितामह ब्रह्मा का दिया हुआ कवच है। बाण है। आपको असाधारण शक्तियां प्राप्त हैं। आपको तनिक भी चिंता नहीं करनी चाहिए।"

त्रिशिर नाम का रावण का पुत्र युद्ध के लिए निकल पडा। उसके साथ अन्य कई वरिष्ठ राक्षस भी चले। सबमें बडा उत्साह था। सबके-सब रथों में और घोडे और हाथियों पर बैठकर रणभूमि में गये।

घोर युद्ध हुआ। अश्वारूढ होकर नरान्तक ने अपने भाले से कई वानरों को मारा। जब वह सुग्रीव को लक्ष्य करके दौड रहा था, अंगद ने उसे और उसके घोडे को मार गिराया।

हनुमान ने उसी प्रकार त्रिशिर को समाप्त किया। नील ने महोदर का वध किया। लक्ष्मण के छोडे गये अस्त्र से अतिकाय के प्राण पखेरू उड गये।

ये चारो राक्षस-वीर कोई सामान्य वीर न थे। चारो कालातक के समान घोर युद्ध करके कई वानरो को मारकर तब मरे थे।

अतिकाय के मरने की खबर पाकर रावण का दिल टट गया। सोचने लगा, "मैं यह क्या सुन रहा हू। पर्वतो के समान शरीरवाले, समुद्र के समान धैर्यवाले, मेरे वीर सभी एक के बाद एक मरते चले जा रहे है। जिन्होने कभी हार का नाम भी न सुना था, वे इन मनुष्यो से और वानरो से पराजित हो गये है। इस राम का रहस्य मेरी समझ में नही आ रहा है। मेरे पुत्र के नाग-पाश से भी वह विना मरे बच गया! इसमें अवश्य ही कोई-न-कोई भेद मालूम होता है। मुझे तो लगता है कि कही यह साक्षात् नारायण तो नही है?"

रावण के मन में यो विचार आने लगे। उसे अब विजय की आशा नही रही। क्रोध, दु ख तथा दीनता का एकसाथ अनुभव करता हुआ अत पुर में पहुचा।

वडे भारी हृदय के साथ उसने फिर से नगर की सुरक्षा की व्यवस्था की, विशेपकर अशोकवाटिका में कोई घुस न सके, ऐसा उसने प्रबध किया। उसके वाद दुखी होकर वह महल के भीतर चला गया।

: ८३ :

इंद्रजित् का अंत

"पिताजी, मेरे जीतेजी आपको कोई चिंता नहीं करनी चाहिए। आप बेफिक्र रहें। मैं अभी रण-क्षेत्र में जा रहा हूं।" इस प्रकार बाप से विदा लेकर इंद्रजित् दुबारा युद्ध-भूमि में पहुंचा।

उसने सहस्रों वानरों को मार गिराया। वानर हक्के-बक्के रह गये। इंद्रजित् ने राम-लक्ष्मण पर भी ब्रह्मास्त्र चला दिया। उस अस्त्र के प्रभाव से दोनों राजकुमार बेहोश होकर धरती पर गिर गये। रावण को यह खुशी की खबर देने के लिए इंद्रजित् राजमहल की ओर चला। विभीषण वानरों के सेनाओं को ढूंढकर उनके पास पहुंचा। उन्हें धैर्य देने लगा। वानर मारे अधमरे बेहाल पड़े थे। जांबवान ने, जो स्वयं घायल हो गया था, वानरों के पास धीरे-धीरे आकर पूछा, "हनुमान कहां है? वह जीवित है न?" यह सुनते ही मारुति झट वहां आ पहुंचा और नमस्कार करके बोला, "जांबवान, आपने मुझे बुलाया है क्या? मैं यहां हूं।"

जांबवान बोला, "बेटा हनुमान, अभी उत्तर दिशा में तुमको जाना है। समुद्र को फिर से लांघकर उत्तर दिशा में हिमगिरि जाओ। वहां ऋषभ-पर्वत और कैलास-पर्वत के बीच औषधि-पर्वत है। उसके शिखर पर अद्भुत हरियाली वाले पौधे हैं। उन पौधों को ले आओ। उन्हींके प्रयोग से राम, लक्ष्मण और वानरों के ये घाव ठीक हो सकते हैं। विलंब मत करो। जाओ। यह काम तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता।"

हनुमान उसी क्षण वहां से उत्तर की ओर आकाश-मार्ग से निकल पड़ा। जान पर्वत पर जाकर वह उतरा। उसके लिए पौधों को पहचानना कठिन था। वह समूचे पर्वत को ही उठा लाया और वापस लंका आ पहुंचा।

पर्वत को हवा में लिये हनुमान ज्यों ही राम, लक्ष्मण और वानरों के

निकट आने लगा, वैसे ही उन चमत्कारी औषधियो के प्रभाव से सबके शरीर में फसे शर अपने आप निकल-निकलकर बाहर गिरने लगे और सभी घाव भर गये। सबको पूर्णतया आराम हो गया और सब-के-सब उठकर खडे हो गये।

सुग्रीव ने राम से सलाह करके कुछ चुने हुए वानरो को बलात् लका के अदर प्रवेश करके नगर में आग लगा देने की आज्ञा दी।

उस आज्ञा के अनुसार वानर वीर जलती हुई मशालें ले-लेकर लका के अदर घुस गये। पहरेदार राक्षसो को वानरो ने मार डाला और लकापुरी के सभी ऊचे-ऊचे प्रासादो में आग लगा दी। उससे नगर के धन तथा सौंदर्य की अपार हानि हुई।

कवि वाल्मीकि ने इस घटना का विस्तार से वर्णन किया है। आजकल के युद्धो में नगर और नागरिको का जो हाल हो जाता है, उसी प्रकार की स्थिति उस समय हुई होगी, यह इसपर से मालूम होता है।

रावण ने जलती हुई लकापुरी को देखा। क्रोध से उसका हृदय भी जलने लगा। वानरो को रोकने और दवाने के लिए उसने कुभकर्ण के दोनो पुत्र कुभ और निकुभ को भेजा। घोर युद्ध हुआ। कुभ को सुग्रीव ने और निकुभ को हनुमान ने मार गिराया।

खर का लडका महाराक्षस राम से सीधे लडने लगा। राम ने उसपर आग्नेय अस्त्र चला दिया। महाराक्षस भस्मीभूत हो गया।

इस प्रकार अगणित राक्षस मारे गये। रावण ने इद्रजित् को रण में भेजा। इद्रजित् ने एक राक्षसी यज्ञ किया। उसके बल से अपनेको अदृश्य बनाकर वह युद्ध करने लगा। उसने अपनी माया के बल से एक झूठ-मूठ की सीता को वानरो के सामने खडा करके सबके देखते उसे मार डाला। वानर धोखे में आ गये। उन्होने सोचा—"सीता को तो इद्रजित् ने मार डाला, अब लडने से क्या लाभ ?" उन्होने जाकर राम को यह खबर सुनाई। इस बीच इद्रजित् एक और आसुरी यज्ञ-विधि करने में लग गया। राम-लक्ष्मण अथवा वानरो को इसका पता भी न लगा। राम-लक्ष्मण ने जब सुना कि सीता वानरो के सामने मारी गई है तो वे दोनो बेहोश हो गये। विभी-

षण को जब यह सारा हाल मालूम हुआ तो वह सबको समझाने लगा, "हे वानरो, आप लोग बुरी तरह से बहकावे में आ गये हैं। रावण कभी सीता की हत्या नहीं करेगा। यह सब इद्रजित् का मायाजाल है। अब वह और शक्तियां पाने के लिए दूसरा यज्ञ कर रहा है। उसे रोकने का प्रयत्न करो। यदि वह इस यज्ञ में सफल हो जायगा तो उसे जीतना असंभव हो जायगा। लक्ष्मण को उठाइये, वह अभी जाकर इंद्रजित् के इस यज्ञ को रोकें।"

यह सुनकर राम ने लक्ष्मण को इद्रजित् की यज्ञ-भूमि पर भेजा। लक्ष्मण के साथ कई वानर गये। विभीषण भी गया। यज्ञभूमि पर ही भीषण लड़ाई हुई। हनुमान के कंधे पर खड़े होकर लक्ष्मण ने इंद्रजित् पर शर-वर्षा की। इसके कारण यज्ञ में बाधा हो गई। इंद्रजित् और लक्ष्मण दोनों धनु-विद्या में निपुण थे। दोनों का द्वंद्व देखते ही बनता था। अंत में लक्ष्मण ने इंद्र-जित् के रथ को तोड़कर उसे नीचे गिरा दिया। दोनों जब भूमि पर खड़े आपस में युद्ध करने लगे। लक्ष्मण ने राम का ध्यान करके मंत्रोच्चार के साथ इंद्रा-स्त्र चला दिया। उस प्रबल अचूक अस्त्र की शक्ति ने इंद्रजित् का सिर काटकर धरती पर गिर पड़ा। रावण पुत्र इंद्रजित् का इस प्रकार अंत हुआ। उसके वध से प्रफुल्लित होकर देव-गंधर्वों ने पुष्प-वृष्टि की।

अति पराक्रमी इंद्रजित् को मारकर लक्ष्मण राम के पास जाने लगा। वह स्वयं भी बहुत ही घायल हो गया था। उससे चला भी नहीं जाता था। हनुमान और जाम्बवान के ऊपर भार देकर उनके सहारे वह राम के पास पहुंचा। राम के पास इंद्रजित् के वध की खबर पहुंच गई थी। राम उठकर दौड़े आये और लक्ष्मण को गले से लगा लिया। अपने अंक में बिठाकर लक्ष्मण के शरीर पर स्नेह से हाथ फेरा और बोले, "अब राक्षस-कुल बच नहीं सकता। तुमने जो काम किया वह और किसी से नहीं हो सकता था। रावण का सबसे बड़ा सहारा इंद्रजित् था। उसे मारकर अब रावण कुछ न कर सकेगा। विभी-षण, हनुमान और तुम, तीनों के कारण मैं सीता को फिर से पाऊंगा। लक्ष्मण, आज की तुम्हारी विजय बड़ी अद्भुत है। उससे मैं फूला नहीं समा रहा हूं। जिसने देवेंद्र को जीता था, उसे तुमने जीत लिया।"

राक्षस लोग रावण के पास दौडकर गय और वोले, "हे राजा, वुरी खवर है। आपका पुत्र वीर इद्रजित् स्वर्ग पहुच गया। आपके भाई विभीपण की सहायता से लक्ष्मण ने इद्रजित् को मार डाला।"

जलती हुई मशाल से गिरनेवाले गरम-गरम तेल की वूदो के समान रावण की लाल-लाल आखो से आसू टपक पडे। अग्नि-ज्वाला की तरह गरम श्वास उसके मुह और नासिका से निकल पडा। पुत्र शोक से वह पागल-सा हो गया। वोला, "हे मेरे वत्स, हे अनुपम वीर, महेंद्र को जीतनेवाले शूर, तुम्हे यम ने जीत लिया क्या ? नही, मै रोऊगा नही, मेरे प्यारे पुत्र, तुम तो वीरगति को प्राप्त हुए हो।"

एक क्षण के लिए उसने रोना रोका, पर फिर से उसका दुख उमड पडा। वह चिल्ला कर रो पडा। "हाय मेरे लाल तू मुझे और अपनी मा मदोदरी को छोडकर सचमुच चला गया क्या ? तेरी प्यारी पत्नी को मै किस प्रकार से समझाऊगा ?"

कुछ देर विलाप करने के वाद रावण का रोप फिर वढ चला। वह बोला 'इन सव दुखो का कारण सीता है। उसे ही मार डालना चाहिए। इद्रजित् ने झूठ-मूठ की सीता को मारा था। मै सच्ची सीता को ही मार डालूगा।"

यह कहकर तलवार को घुमाता हुआ वह अशोक-वाटिका की ओर जाने लगा। कई राक्षसो को इससे वडी खुशी हुई। किंतु रावण के मत्रियो मे सुपार्श्व नाम के राक्षस ने रावण को रोका और समझाया, "हे रावण, तुम यह मत भूल जाओ कि तुम कौन हो ? तुम्हारे जैसे वीर को एक असहाय स्त्री को मार-कर क्या मिलनेवाला है ? केवल अपकीर्ति पाओगे। तुम्हारे समान वलिष्ठ दूसरा कोई नही। अपना क्रोध राम पर उतारो। उसे मारकर सीता को अधि-कार से प्राप्त करो। आज चतुर्दशी है। कल अमावस्या है। अपनी पूरी शक्ति लगाकर राम से लडो। उसे मारकर सीता को जीत लो। पितामह से दिये हुए कवच को धारण करो और जाकर राम से युद्ध करो।"

सुपार्श्व की वातें रावण को ठीक लगी। वह मान गया और अपने महल को वापस लौट आया।

लंकेश बड़ी देर तक सिंहासन पर बैठा-बैठा चिंतामग्न सोचता रहा। फिर उसने अपने सेनानायकों को बुलाकर कहा, "पहले आप सबके-सब-जाकर एक साथ अकेले राम पर आक्रमण करें। यदि आप लोगों से राम को मारना सभव न हुआ, तो मैं स्वय आ पहुचूगा।"

सारी राक्षस सेना रथ, गज, तुरगों पर चढ़कर युद्ध के लिए निकल पड़ी।

वानर शिलाओं, वृक्षों, दातों और नाखूनों से राक्षसों पर चोट करने लगे। राक्षसों ने भी बड़ी निर्दयता के साथ वानरों को मारा। एक राक्षस को कई वानर एक साथ मिलकर मारने लगे। राक्षसों ने उससे भी अधिक जोर से प्रत्याक्रमण किया। हजारों वानर मारे गये।

अब राम भी युद्ध-क्षेत्र में आगे आकर खड़े हो गये। राम के धनुष से निकले बाण राक्षसों के प्राण हरने लगे। अग्नि-ज्वाला के समान वे राक्षस-समूह को जला देते थे। शरों को ही राक्षस देख पाते थे। राम का चेहरा उन बाणों के बीच से देखना मुश्किल था। राक्षस एक के बाद एक मरने लगे। साथ ही उनके हाथी और घोड़े भी मारे जाने लगे। राक्षसों में अब टिके रहने का साहस न रहा। रण-क्षेत्र में जितने बचे थे, सब भाग निकले। देव, गंधर्वों ने राम के ऊपर फूलों की वर्षा की और उनका जय-जयकार किया। लंकापुरी में राक्षस-स्त्रियों का करुण क्रदन मच गया। वे रोती थीं और एक ही बात कहती थीं, "इस मूर्ख राजा रावण के कारण ही हमारा सर्वनाश हो रहा है।"

: ८४ :

रावण-वध

लकापुरी के घर-घर में से स्त्रियों का क्रदन सुनाई देने लगा।

इद्रजित् के मारे जाने के बाद रावण के हृदय में शोक, अपमान, क्रोध आदि आवेगो ने भयकर रूप धारण कर लिया। अब रावण की एकमात्र इच्छा किसी तरह भी राम को मारकर उसकी सारी सेना को कुचलकर बदला लेने की थी। अपने वरदानो के कारण उसे जो असाधारण शक्तिया प्राप्त थी, उनके वल पर राम को जीत लेने की आशा रावण ने अब भी नही छोडी थी। वडी हिम्मत के साथ आठ घोडोवाले, विविध शस्त्रो से सज्जित सोने के अपने रथ में चढकर वह युद्ध-भूमि में गया। अन्य राक्षस भी अपने-अपने रथो में चढकर उसके साथ चल पडे। रथो की तेज गति के कारण भूमि हिलने लगी।

जिस घडी रावण युद्ध-भूमि के लिए निकला, पक्षी अमगल-सूचक वोली वोलने लगे। सूर्य का प्रकाश धीमा हो गया। रावण ने इन अपशकुनो की कोई परवा नही की। वह सीधे नगर के उत्तरी फाटक से होकर बाहर निकल आया। विरुपाक्ष, महोदर, महापार्श्व आदि राक्षस वीर रावण के पीछे अपने-अपने रथो में चले।

ये सभी वीर सुग्रीव और अगद के द्वारा लडते हुए मारे गये। लक्ष्मण ने रावण के साथ युद्ध किया। रावण राजकुमारो के वाणो को आसानी से हटाता गया। लक्ष्मण की ओर ध्यान न देकर वह सीधे राम के सामने आकर खडा हो गया। राम के ऊपर उसने प्रारभ में साधारण वाणो को चलाया। उन्हें विफल होते देखकर और भी अधिक शक्तिशाली वाणो का प्रयोग किया। उन्हे भी राम ने रोक लिया। काफी देर तक इस प्रकार युद्ध चलता रहा।

रावण के नाराच वाण रामचद्र के माथे पर लगते जाते थे, किंतु उनसे

दशरथनंदन पर कोई असर नही होता था। उसी प्रकार राम के धनुष से जो तीर निकलते थे, वे रावण के दैवी कवच को भेद नही पाते थे। राम के चलाये गये अस्त्रो को भी रावण बडी दक्षता से अपने बाणो से रोक लेता था।

इस बार राम-रावण का यह युद्ध बडे विचित्र प्रकार का था। दोनो मंत्र-शक्तिवाले अद्भुत अस्त्र-शस्त्र चलाने लगे। वे दोनो एक-दूसरे की सामर्थ्य को, शक्तिशाली शस्त्रो को देखकर विस्मित थे। उनके प्रबल अस्त्रो से अग्नि की-सी ज्वालाए निकल पडती थी। आकाश में कई सूर्यों का-सा प्रकाश हो जाता था। राम ने अपने बाणो से रावण के समस्त अगो को छेद दिया। फिर भी युद्ध का अत नही हुआ।

अब लक्ष्मण और विभीषण भी राम के साथ रावण पर प्रहार करने लगे। अपने छोटे भाई विभीषण को अपने विरुद्ध युद्ध करते देख रावण का क्रोध उमड पडा। उसने विभीषण पर एक शक्तिशाली आयुध फेंका। लक्ष्मण ने उसे समय पर अपने बाणो से रोक दिया। रावण के आयुध के दो टुकडे हो गये। [illegible] से अग्नि-ज्वाला निकालता हुआ रावण का टूटा आयुध धरती पर गिर पडा। तत्काल एक दूसरे अस्त्र का रावण ने प्रयोग किया। लक्ष्मण ने उसे भी रोका। तत्पश्चात् रावण ने सीधे लक्ष्मण पर ही यह कहते हुए कि 'अब तू मरा' [illegible] फेंका। लक्ष्मण मरा तो नही, किंतु उस शस्त्र के प्रहार से बेहोश होकर नीचे गिर गया।

राम का ध्यान रावण पर ही था। लक्ष्मण को उन्होने देखा नही। राक्ष-सेना पर वह बाण और अनेक प्रकार के अस्त्र चलाते गये। युद्ध जारी रहा। वानरो ने देख लिया कि लक्ष्मण मरणासन्न हैं। वे बहुत चिन्तातुर होकर सोचने लगे कि अब क्या किया जाय। हिमालय की औषधियो के अतिरिक्त अन्य उपायो से लक्ष्मण बच नही सकता था। मारुति के अतिरिक्त और किसके बार-बार समुद्र [illegible] हो सकता था? मारुति को दुबारा [illegible] का काम सौंपा गया। [illegible] हिमगिरि [illegible] तेजी से पहुँचा। [illegible] भी औषधि

विशेप को पहचान न सकने के कारण पहाड-के-पहाड को ही उठा लाया, चिकित्सा जाननेवाले वानरो ने दिव्य औषधियो के प्रयोग से लक्ष्मण के प्राणो को बचा लिया। वह एकदम स्वस्थ होकर फिर से युद्व में सम्मिलित हो गया। इस बीच देवेंद्र ने राम के लिए अपना रथ, सारथी मातलि के साथ भेजा।

देवेंद्र के सारथी ने राम को प्रणाम करके कहा, "हे दाशरथे, रावण देवगण का भी शत्रु है। हम सब उसका वध चाहते हैं। देवेंद्र ने आपके लिए अपना यह रथ भेजा है। मै उसका सारथी हू। आप इस रथ पर चढकर रावण के साथ लडें।"

राम दिव्य रथ को प्रणाम करके उस पर चढ गये।

दोनो योद्धा अब रथारूढ थे। खूब लडे। रावण शरीर से और मन से थककर वेहोश होने लगा। उसके सारथी ने जब यह देखा तो रथ को धीरे-से युद्ध-भूमि के वाहर निकाल ले गया।

थोडी ही देर में उसकी मृर्च्छा दूर हो गई। आखें खोलकर उसने अपने सारथी से डाटकर पूछा, "क्यो, क्या वात हुई ? मुझे युद्ध-भूमि के वाहर क्यो निकाल लाये ? ले चलो वापस।"

रावण फिर राम के सम्मुख खडा हो गया और घोर युद्व फिर से चालू हो गया।

अस्त्र-प्रत्यास्त्र चलने लगे। ऐसा चमत्कार न किसीने देखा था, न सुना था। दोनो पक्ष के सैनिक आश्चर्य-चकित होकर लडना छोड राम-रावण का युद्ध देखने लगे।

मातलि ने धीरे-से राम से कहा, "हे राम, रावण का अत समय आ गया है। विलव करने से क्या लाभ ? अपना ब्रह्मास्त्र क्यो नही चला देते ?"

अवतक अनेक वार राम ने अपने शक्तिवाले अस्त्र-शस्त्रो से रावण के दसो सिरो को काट डाला था। किंतु वे फिर उगते जाते थे। मारुति के कहने पर राम ने दिव्य ब्रह्मास्त्र को मत्रोच्चार करके विधिवत् रावण के ऊपर चला दिया।

प्रचंड ब्रह्मास्त्र, अग्नि-ज्वालाएं निकालता हुआ सीधा रावण के पास पहुंचा और उसके शक्ति-कवच को भेदकर वक्षस्थल में घुस गया। लंकेश के हाथ से धनुष खिसककर नीचे गिर पड़ा। अबतक जो अजेय माना गया था, वही राक्षसेंद्र धरती पर निष्प्राण होकर गिर पड़ा।

देवों ने दुंदुभि बजाई। आकाश से पुष्प-वर्षा हुई। रथारूढ़ राम पुष्पों के ढेर से ढक गये। लक्ष्मण, विभीषण, जाम्बवान आदि राम को घेरकर जय-घोष करने लगे। सब-के-सब आनंद-सागर में मग्न हो गये।

विभीषण की दृष्टि रावण के मृत शरीर पर गई। उस समय उसका भ्रातृ-स्नेह उमड़ पड़ा। वह अपना वैर भूल गया। युद्ध भूल गया। जो घटनाएं घटी थीं, सब भूल गया। शोकातुर होकर विलाप करने लगा, "हे वीर, मेरे भाई, तुम्हारा यह क्या हो गया? तुमने कैसे-कैसे साहस के काम किये थे? तुम कितने विद्वान थे। अब किस प्रकार निर्जीव होकर तुम धरती पर पड़े हो?

"वीर, विक्रान्त विख्यात विनीत नयकोविद!
महार्हशयनोपेत किं शेषेऽद्य हतो भुवि!"

यद्यपि विभीषण ने स्वयं रावण को हराने के लिए राम की सहायता की थी, तो भी अपने भाई का मृत शरीर देखकर वह शोकाकुल हो गया। कहने लगा, "यह मैं क्या देख रहा हूं? भैया, तुम इस प्रकार हाथ फैलाये कैसे पड़े हो? तुम्हें मैंने कितनी बार समझाया था? तुमने मेरी एक न सुनी। [illegible] मूर्ख मंत्रियों की कुमंत्रणा से तुम्हारा यह हाल हुआ! हे राक्षसेंद्र, [illegible] के नृप, मेरे भैया, तुम्हारी भी मृत्यु हो गई क्या?'

राम विभीषण को आश्वासन देने लगे। बोले, 'विभीषण, धीरज रखो। तुम्हारे भाई ने एक महान् वीर की भांति युद्ध किया। मरने से पहले अपने असाधारण शौर्य का संपूर्ण प्रदर्शन करके वह गया है। वह अवश्य ही उत्तम पद पायेगा। जय-पराजय की परवाह न करके युद्ध में पराक्रम दिखाते हुए मरना वीरों का लक्षण है। अब आगे के कामों पर ध्यान दो। प्राण जब छूट जाते हैं, तब कोई विरोध वैर नहीं रहता। इस रावण की अन्त्येष्टि-क्रिया [illegible]

है। आप उसके छोटे भाई हो। आपके ऊपर यह जिम्मेदारी है। आप मेरे मित्र हैं। रावण आपका भाई है। तो मेरे भी भाई के समान ही है। मैं भी उसके कर्म कर सकता हू। चलो, अब इन कामो की ओर ध्यान दो।

रावण के अत पुर से उसकी स्त्रिया आई। सबके पीछे शोक की प्रतिमा के समान, रावण की प्राणप्रिया अति सुदरी, पटरानी मदोदरी थी। आकर उसने अपने पति को देखा। उसके मुह से एक करुण चीत्कार निकली और अपने पति की देह के साथ लिपट गई।

"मेरे देव, तुम जब क्रुद्ध होते थे, तो देवेंद्र भी तुम्हारे सामने खडा नही रहता था। देवर्षि तथा गधर्व तुम्हारे डर से आठो दिशाओ में जाकर छिप जाते थे। एक मनुष्य ने तुम्हें कैसे मार डाला ? तुम चुप कैसे हो ? इसका भेद मेरी समझ में नही आ रहा है। मेरे प्राणनाथ, मैंने तुम्हें कितना समझाया था कि राम एक साधारण मनुष्य नही मालूम होता है। महाविष्णु का कोई रूप मालूम होता है। जनस्थान में जब उसने अकेले ही खर-दूषणादि राक्षसो को मार डाला था, तभी मुझे यह सदेह हो गया था। तुम्हें बताया भी था। इस लका में जब उस वानर ने प्रवेश किया था तभी मै समझ गई थी कि हमारा विनाश होनेवाला है। महापतिव्रता सीता पर तुमने क्यो बुरी निगाह डाली! उसीका यह भयानक परिणाम हो गया! सीता से मैं किस प्रकार से कम थी! यह बात क्यो तुम्हारी समझ मे नही आई ? तुमने अपनी बुद्धि क्यो खो दी थी ? विभीषण को देखो। वह सभी सौभाग्य पानेवाला है और तुम यो निर्जीव पडे हो। मेरे नाथ, मृत्यु को तो सीता के रूप में तुम अपने घर ही ले आये थे। मेरा तो सर्वनाश हो गया। राम और सीता परस्पर मिल गये और मैं तुमसे बिछुड गई। हाय, मैं क्या करू! मैं तो इसी अभिमान में थी कि मेरा पति रावण है। इद्रजित् मेरा पुत्र है। पर मेरा गर्व चूर हो गया। अब विधवा हो गई! यह क्यो हुआ ? तुम्हारी यह दिव्य देह खून की कीचड में कैसे लथपथ पडी है ? मुझसे एक शब्द तो बोलो।"

इस प्रकार विलाप करते-करते मदोदरी रावण के शरीर पर बेहोश होकर गिर पडी।

: ८५ :

शुभ समाप्ति

युद्ध समाप्त हो गया। रामचद्र के आदेश से विभीषण लका का राजा घोषित किया गया। बडे ठाट-बाट से उसका राज्याभिषेक किया गया। दशरथनंदन तो अब भी नगर के बाहर ही वास करते थे। अभिषेक-विधि के पश्चात् विभीषण ने राम के पास आकर उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया।

राम ने हनुमान से कहा "राजा विभीषण की अनुमति लेकर अशोक-वाटिका में सीता को सब समाचार सुना आओ।"

तुरत हनुमान वहा से चल पडा। विभीषण की अनुमति लेकर अशोक-वाटिका में सीता माता के पास पहुचा। उन्हे सारा वृत्तात सुनाया। परम आनद के कारण देवी के मुह से एक शब्द भी न निकल पाया। हनुमान ने विनीत भाव से पूछा, "मा, आप कुछ बोल क्यो नही रही है ?"

जानकी बोली, "हे तात, मेरा गला भर गया है। शब्द निकल नही रहे है। किस प्रकार मैं तुम्हे धन्यवाद दू ? तुम्हारे समान मित्र दूसरा कौन हो सकता है ? तुम्हारे जैसा विवेकी, वीर, मनोबलवाला, धैर्यवान तथा विनयशील व्यक्ति मैने आजतक नही देखा।"

वैदेही की आखो से अविरल अश्रुधारा बहती गई। तब हनुमान की दृष्टि उन निशाचरियो पर पडी, जो कारावास के समय सीता को बहुत तग कर चुकी थी। उन्होने सीता से कहा, "मा, आप मुझे आज्ञा दें तो अभी इन क्रूर राक्षसियो को मार डालू।"

महात्मा जनकनदिनी देवी सीता ने कहा, "नही वत्स, इनसे कुछ न कहो। इस ससार में भूलें सभीसे हो जाती है।"

माता के इन वचनो को भक्त लोग अनुपम बताते आये है। हमारे सभी पापो को दयामयी मा क्षमा कर सकती है। यदि हम अपने हृदय में ऐसी

की शरण मे जाय तो वडे-से-वडे पाप से भी हम मुक्त हो सकते हैं। यही हमारे शास्त्रो में कहा गया हैं। सीता हनुमान से बोली, "हे मारुति, आखिर इन राक्षसियो ने अपने स्वामी की ही आज्ञा का तो पालन किया। इसमें उनका क्या दोप हो मकता है ? दुष्ट रावण तो मारा गया। इन्हे कोई दड देने की आवश्यकता नही।"

हनुमान ने देवी से पूछा, "मा, राम के पास क्या सदेशा लेकर जाऊ ?"

मीता वोली, "वस, इतना ही कहना कि उनके दर्शन के लिए तरस रही हू।"

हनुमान रामचद्र के पास पहुचा। उसने राम को सीताजी का सदेशा मुनाया। मालूम नही क्यो, राम का चेहरा कुछ वदला। उनकी आखें सजल हो आई। थोडी देर कुछ भी न वोले। विचारमग्न हो गये। फिर हनुमान को प्रभु ने आज्ञा दी, "अच्छी वात है, सीता स्नानादि करके स्वच्छ हो जाय और वस्त्राभूपण पहने। उसके वाद उसे मेरे पास ले आओ।"

सीता को जव रामचद्र का यह सदेशा सुनाया गया तो वह वोली, "क्यो ? मैं तो जैसी हू, उसी रूप में अपने नाथ के पास जाना चाहती हू।"

विभीपण ने उन्हें समझाया, "नही, मा, प्रभु जैसा कहते है, वही होना चाहिए। आप उनकी आज्ञा को न टालें।"

मीता मान गई। नहा-धोकर वस्त्र और आभूपणो से अलकृत होकर राम के पास जाने के लिए पालकी पर वैठ गई।

राम ने, जो अपने विचारो मे लीन वैठे थे, सुना कि सीता आ रही है तो जागृत हुए। उनका हृदय धडकने लगा। उनके मन में नाना प्रकार के आवेग उमड पडे। रोप, विपाद, हर्प आदि तीनो मिश्रित होकर वडी लहरो की तरह उनकी वुद्धि मे टकराने लगे।

मारे वानरो ने जव सुना कि मीता माता आ रही है, तो उनके दर्शनो के लिए वे पालकी की ओर एक साथ दौड। पालकी के चारो ओर वडी भीड लग गई। शोर मचने लगे। वानर-नायको ने वडी कठिनाई से उन्हें ममझाया, भीड को हटाया और शाति कराई। राम ने वानर-नेताओ से कहा,

"इन्हे क्यो रोकते हो ? ये मेरे मित्र है। इन्होकी सहायता से तो मैने यह युद्ध जीता है। ये सब यही रहे। इन्हे मत हटाओ। सीता पैदल ही यहा आये। सीता को इन्हे देखकर आनद होगा।"

वानरो को तथा लक्ष्मण को रामचद्र के व्यवहार मे कुछ विचित्रता लगी। उनकी समझ में कुछ नही आ रहा था।

देवी पालकी से उतर पडी। नीचे सिर किये धीरे अपने स्वामी के पास पहुची। उन्होने केवल इतना ही कहा, "आर्यपुत्र।" आगे उनसे कुछ बोला न गया और फट-फटकर रोने लगी।

"शत्रु मारा गया। तुम्हे मैने कारागृह से मुक्त कर दिया। मेरा क्षत्रिय-धर्म पूरा हुआ। मैने जो प्रण किया था, वह भी पूर्ण हुआ।" राम बोले।

उनके वाक्यो का अर्थ स्पष्ट किसीकी भी समझ में नही आ रहा था। उनके मुख-मडल का रग कुछ गहरा हो गया। दशरथनदन के मुह से ये कटु वचन निकले, "मैने तुम्हारे कारण यह भयकर युद्ध नही किया। मैने तो अपना कर्तव्य पूरा किया। तुम्हें पाकर मुझे अब खुशी नही हो रही है। लोकाप-वाद के घुए से तुम छाई हुई हो। बोलो, अब तुम क्या कहना और करना चाहती हो ? मेरे साथ अब तुम्हारा रहना असभव है। अपने किसी सबधी अथवा मित्र की रक्षा में मैं तुम्हे सौंप सकता हू। पराये घर में बहुत समय तुम रह चुकी हो। ऐसी स्थिति में तुम्हे स्वीकार करना मेरे लिए उचित नही। तुम क्या कहती हो ?"

सीता ने राम की ओर देखा। उनकी आखो मे अब दीनता नही थी। आखो से आग की चिनगारिया निकल रही थी। बोली, "राम, तुम्हारे मुह से ऐसी बातें सुनने की मुझे आशा न थी। तुम्हारे वचनो से मेरे हृदय के टुकडे-टुकडे हो गये। एक सामान्य आदमी के समान तुम बोल पडे। क्या तुम नही जानते कि रावण मुझे जबरदस्ती उठा लाया था ? क्रोध के कारण तुम्हारी विवेक-बुद्धि नष्ट हो गई लगती है ? मेरे नाथ, क्या यह भूल गये कि मैं किस कुल की हू ? याद करो, मेरे पिता राजा जनक है। तुम्हारे साथ मैं बडी हुई हू। उसे मैने धर्म सीखा है। लक्ष्मण, जल्दी से अग्नि जलाओ।"

पुत्र को क्षमा करो। धर्म की रक्षा करने के उद्देश्य से उसने तुम्हारे ऊपर क्रोध किया। तुम्हारा सौभाग्य अटल रहे।"

देवेंद्र ने भी वरदान दिया। जितने वानर युद्ध में काम आ गये थे, वे सब-के-सब पुनर्जीवन पा गये।

× × ×

इस प्रकार देवी सीता, जिनका वनवास के समय अकेली छोड़ी जाने पर राक्षस द्वारा चोरी से अपहरण किया गया था, राम को फिर से प्राप्त हुईं। उनके दुःख का अंत हुआ। प्रभु ने समुद्र पार करके दुष्ट राक्षस का संहार किया। सीता फिर से अपने पति के पास पहुंच गईं। सीता, राम, लक्ष्मण पुष्पक विमान में बैठे। विभीषण और सारे वानर भी विमान में साथ ही बैठ गये। विमान अयोध्या की ओर चल पड़ा।

विमान में बैठकर गगन-मार्ग से जाते हुए श्रीराम सीता को बताते जाते थे, "प्रिये, मैं और लक्ष्मण तुम्हें ढूंढ़ते-ढूंढ़ते यहां आये थे। यह देखो, उस वन में हम दोनों भाई बहुत घूमे थे। यह अद्भुत सेतु नल ने मेरे लिए बांधा। कैसे चमत्कार का काम है! अब यह किष्किंधापुरी आ गई। यहीं पर मैंने हनुमान और सुग्रीव से मित्रता की।"

इस प्रकार जाते हुए सब-के-सब भरद्वाज के आश्रम में उतरे और वहीं से राजा गुह और भरत को प्रत्यागमन का शुभ संदेश भिजवाया।

अयोध्यापुरी में आनंद का सागर उमड़ पड़ा। लोग उसमें अपार हर्ष से गोते लगाने लगे। राम-लक्ष्मण-सीता चौदह वर्ष के बाद घर लौट आये।

× × ×

राम और भरत का मिलाप हो गया। मंथरा और कैकेयी दोनों ने भरत के सुख के लिए जो-जो सोचा था, उसका कोई प्रयोजन सिद्ध न हुआ। आज राम से पुनः मिलकर भरत को जो आनंद मिला, उसकी तुलना किस-से हो सकती है? राम के चरणों में गिरकर भरत ने जो आनंद पाया, वह सोने के मुकुट से, सोने के सिंहासन से, मिल सकता था? रामभक्ति के कारण

लक्ष्मण को इस समय राम पर असह्य क्रोध आ रहा था। सीता ने जब आदेश दिया कि आग जलाओ तो लक्ष्मण ने राम की ओर देखा।

राम के मुख पर तनाव के ढीले पडने का चिह्न दिखाई नही दिया। उन्होने लक्ष्मण को मना नही किया।

सीता के आग्रह से लक्ष्मण ने अग्नि प्रज्वलित की। सीता ने किसीकी भी ओर नही देखा। भूमि पर दृष्टि किये अपने पति की प्रदक्षिणा की। उनको नमस्कार किया और बोली, "हे देवतागण, तुमको मेरा नमस्कार। हे महर्षिगण, आप सबको नमस्कार। हे अग्निदेव, तुम्हे तो मेरी पवित्रता पर सदेह नही है न ? तुम मुझे आश्रय दो।"

इतना कहकर वैदेही अग्नि-ज्वाला में प्रवेश कर गई।

स्वर्ग के सारे देवता वहा इकट्ठे हो गये। ब्रह्मा ने राम से कहा, "हे नारायण, हे प्रभो, रावण का सहार करने के लिए आपने पृथ्वी पर अवतार लिया था। देवी सीता तो साक्षात् जगदबा है, महालक्ष्मी है।"

श्रीराम ने ब्रह्मदेव से कहा, "मै तो इतना ही जानता हू कि मै राजा दशरथ का पुत्र राम हू। मैं कौन हू, कहा से आया, यह आप ही बता सकते है।"

तभी वहा एक चमत्कार हुआ। अग्निदेव सशरीर वहा आये और सब प्रकार के वस्त्र और आभूषणो से विभूपित देवी सीता को राम के हाथो में समर्पित कर दिया।

राम ने अब सीता को बडे प्यार से दोनो हाथो से स्वीकार किया, अपने पास बिठाया और बोले, "प्रिये,! मै तुम्हे भली-भाति पहचानता हू। तुम्हारी पवित्रता पर मैने एक क्षण के लिए भी सदेह नही किया। साधारण जनता के मन में कोई शका न रह जाय, इसी हेतु मैंने यह परीक्षा ली। लोकापवाद को दूर करने के विचार से मैंने तुम्हे कटु वचन सुनाकर दुखी किया। तुम परीक्षा में सफल होकर पार निकल गई हो।"

तभी स्वर्ग से राजा दशरथ भी वहापर उतर आये। उन्होने राम को अपने अक में भरकर प्यार किया। दशरथ सीता से कहने लगे, "बेटी, मेरे

पुत्र को क्षमा करो। धर्म की रक्षा करने के उद्देश्य से उसने तुम्हारे ऊपर क्रोध किया। तुम्हारा सौभाग्य अटल रहे।"

देवेंद्र ने भी वरदान दिया। जितने वानर युद्ध में काम आ गये थे, वे सब-के-सब पुनर्जीवन पा गये।

× × ×

इस प्रकार देवी सीता, जिनका वनवास के समय अकेली छोडी जाने पर राक्षस द्वारा चोरी से अपहरण किया गया था, राम को फिर से प्राप्त हुईं। उनके दुःख का अत हुआ। प्रभु ने समुद्र पार करके दुष्ट राक्षस का सहार किया। सीता फिर से अपने पति के पास पहुच गईं। सीता, राम, लक्ष्मण पुष्पक विमान में बैठे। विभीषण और सारे वानर भी विमान में साथ ही बैठ गये। विमान अयोध्या की ओर चल पडा।

विमान में बैठकर गगन-मार्ग से जाते हुए श्रीराम सीता को बताते जाते थे, "प्रिये, मैं और लक्ष्मण तुम्हें ढूढने-ढूढते यहा आये थे। यह देखो, उस वन में हम दोनो भाई बहुत घूमे थे। यह अद्भुत सेतु नल ने मेरे लिए बाधा। कैसे चमत्कार का काम है! अब यह किष्किधापुरी आ गई। यही पर मैंने हनुमान और सुग्रीव से मित्रता की।"

इस प्रकार जाते हुए सब-के-सब भरद्वाज के आश्रम में उतरे और वही से राजा गुह और भरत को प्रत्यागमन का शुभ सदेशा भिजवाया।

अयोध्यापुरी में आनद का सागर उमड पडा। लोग उसमें अपार हर्ष से गोते लगाने लगे। राम-लक्ष्मण-सीता चौदह वर्ष के बाद घर लौट आये।

× × ×

राम और भरत का मिलाप हो गया। मथरा और कैकेयी दोनो ने भरत के सुख के लिए जो-जो सोचा था, उसका कोई प्रयोजन सिद्ध न हुआ। आज राम से पुन मिलकर भरत को जो आनद मिला उसकी तुलना किस-से हो सकती है? राम के चरणों में गिरकर भरत ने जो आनद पाया, वह कौन-से मुकुट से, कौन-से सिहासन से, मिल सकता था? रामभक्ति के सामने

भरत की महिमा आजतक दुनिया में व्याप्त है। भक्त लोग भरत को राम से कम नही समझते, वल्कि कही-कही उन्हें भगवान् से भी ऊचा स्थान देते है।

राम के पुनरागमन की प्रतीक्षा में, भरत ने चौदह वर्ष तक, रामपादुकाओ को सिहासन पर रखकर राज्य-भार सभाला था। निर्लिप्त तापस भरत ने अव राम को सिहासन पर विठाकर अपने तप की सिद्धि प्राप्त कर ली।

पति के साथ सिंहासन पर विराजमान देवी सीता ने अपने गले से मुक्ताहार निकालकर हनुमान को उपहार-स्वरूप दिया। हनुमान के गले में वात्सल्य के साथ वह हार पहनाकर मा मुसकराई। हनुमान को अव किस वात की कमी हो सकती थी ?

दशरथनदन श्रीराम ने उसके वाद देवी सीतासहित सैकडो वरसो तक राज्य किया। उनके राज्य में कोई दुखी न था, कोई रोगी न था, कोई अल्पायु में मृत्यु को प्राप्त नही हुआ। लोग धर्मनिष्ठ थे। पृथ्वी धन-धान्य से परिपूर्ण थी।

उपसंहार

वाल्मीकि के मुह से गाई गई राम-कथा को मैंने सक्षेप में कह दिया। मैं लिखता ही गया। कुछ हिसाब नही लगाया था। आज विजयादशमी के दिन कथा समाप्त होती है। जो इस पवित्र कथा को भक्ति-श्रद्धा के साथ पढ़ेंगे अथवा सुनेंगे वे सभी दु ख और पापो से मुक्त होंगे।

ज्ञान के सागर आदिगुरु शकराचार्य ने बताया है कि यदि हम दशरथ के राम का ध्यान करें, उनकी वदना करें, उनकी दिव्य मूर्ति को अपने हृदय के अदर स्थापित करें तो हमारे सारे पाप दूर हो जायगे।

रामावतार के बाद भगवान ने एक बार फिर बहुत ही सुलभ ग्वाले के रूप में जन्म लिया। बाल-गोपाल ने ग्वालो के साथ अनेक खेल दिखाये। फिर अर्जुन के लिए सारथी बने। पार्थ के लिए ज्ञानोपदेश किया। अत में बोले,

> सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरण व्रज।
> अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ॥

प्रभु का यह उपदेश हम सबके कल्याण के लिए पार्थ को दिया गया था।

× × ×

मुनि वाल्मीकि की गाई हुई कथा को अपनी भाषा में लिखने का यह काम आज समाप्त हो गया। संभव है, इसका प्रारंभ करना मेरी धृष्टता थी, किंतु यह काम करते हुए मुझे आनंद-ही-आनंद प्राप्त हुआ। आज ऐसा लग रहा है कि एक मधुर स्वप्न समाप्त हो गया और मेरी आंखें खुल गईं। अयोध्यापुरी को छोड़ते हुए राम दुखी नहीं हुए, किंतु सीता के वियोग में वे विह्वल हो गये।

बहुत वर्षों पहले और दायित्वों से मुक्त होने पर मैंने यह नहीं सोचा था

कि अब क्या करूंगा, किंतु आज दशरथनंदन की कहानी के समाप्त होने पर एक विचित्र शून्यता का अनुभव कर रहा हू।

काम करना भार है, ऐसा कोई न समझे। सत्कार्य करना ही जीवन का सार है, रहस्य है। प्रतिफल का लोभ बुरा होता है, पर कर्म का त्याग जीवन को असह्य बना देता है।

॥ सियावर रामचंद्र की जय ॥

●